सुत्तपिटक का

संयुत्त-निकाय

पहला भाग

[सगाथा वर्ग, निदान वर्ग, खन्ध वर्ग]

अनुवादक

भिक्षु जगदीश काश्यप एम. ए.

त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

प्रकाशक

महाबोधि सभा

सारनाथ, बनारस

प्रकाशकीय निवेदन

आज हमें हिन्दी पाठकों के सम्मुख संयुत्त-निकाय के हिन्दी अनुवाद को लेकर उपस्थित होने में बड़ी प्रसन्नता हो रही है। अगले वर्ष के लिए 'विसुद्धिमग्ग' का अनुवाद तैयार है। उसके पश्चात् 'अंगुत्तर निकाय' में हाथ लगाया जायेगा। इनके अतिरिक्त हम और भी कितने ही प्रसिद्ध बौद्ध-ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करना चाहते हैं। हमारे काम में जिस प्रकार से कितने ही सज्जनों ने आर्थिक सहायता और उत्साह प्रदान किया है, उससे हम बहुत उत्साहित हुए हैं।

आर्थिक कठिनाइयों एवं अनेक अन्य अड़चनों के कारण इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने में जो अनपेक्षित विलम्ब हुआ है, उसके लिए हमें स्वयं दुःख है। भविष्य में इतना विलम्ब न होगा—ऐसा प्रयत्न किया जायेगा। हम अपने सभी दाताओं एवं सहायकों के कृतज्ञ हैं, जिन्होंने कि सहायता देकर हमें इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पादित करने में सफल बनाया है।

विनम्र

२३-४-५४

भिक्षु एम० संघरत्न
मन्त्री, महाबोधि-सभा
सारनाथ, बनारस

प्राक्कथन

संयुत्त निकाय सुत्त-पिटक का तृतीय ग्रन्थ है। यह आकार में दीघ निकाय और मज्झिम निकाय से बड़ा है। इसमें पाँच बड़े-बड़े वर्ग हैं—सगाथा वर्ग, निदान वर्ग, खन्ध वर्ग, सळायतन वर्ग और महावर्ग। इन वर्गों का विभाजन नियमानुसार हुआ है। संयुत्त निकाय में ५४ संयुत्त हैं, जिनमें देवता, देवपुत्र, कोसल, मार, ब्रह्म, ब्राह्मण, सक्क, अभिसमय, धातु, अनमतग्ग, लाभसक्कार, राहुल, लक्खण, खन्ध, राध, दिट्ठि, सळायतन, वेदना, मातुगाम, असंखत, मग्ग, बोज्झङ्ग, सतिपट्ठान, इन्द्रिय, सम्मप्पधान, बल, इद्धिपाद, अनुरुद्ध, झान, आनापान, सोतापत्ति और सच्च—यह ३२ संयुत्त वर्गों में विभक्त हैं, जिनकी कुल संख्या १७२ है। शेष संयुत्त वर्गों में विभक्त नहीं हैं। संयुत्त निकाय में सौ भाणवार और ७७६२ सुत्त हैं।

संयुत्त निकाय का हिन्दी अनुवाद पूज्य भदन्त जगदीश काश्यप जी ने आज से उन्नीस वर्ष पूर्व किया था, किन्तु अनेक बाधाओं के कारण यह अभीतक प्रकाशित न हो सका था। इस दीर्घकाल के बीच अनुवाद की पाण्डुलिपि के बहुत से पन्ने—कुछ पूरे संयुत्त तक खो गये थे। इसकी पाण्डुलिपि अनेक प्रेसों को दी गई और वापस ली गई थी।

गत वर्ष पूज्य काश्यप जी ने संयुत्त निकाय का भार मुझे सौंप दिया। मैं प्रारम्भ से अन्त तक इसकी पाण्डुलिपि को दुहरा गया और अपेक्षित सुधार कर डाला। मुझे ध्यान संयुत्त, अनुरुद्ध संयुत्त आदि कई संयुत्तों का स्वतन्त्र अनुवाद करना पड़ा, क्योंकि अनुवाद के वे भाग पाण्डुलिपि में न थे।

मैंने देखा कि पूज्य काश्यप जी ने न तो सुत्तों की संख्या दी थी और न सुत्तों का नाम ही लिखा था। मैंने इन दोनों बातों को आवश्यक समझा और प्रारम्भ से अन्त तक सुत्तों का नाम तथा सुत्त-संख्या को लिख दिया। मैंने प्रत्येक सुत्त के प्रारम्भ में अपनी ओर से विषयानुसार शीर्षक लिख दिये हैं, जिनसे पाठक को इस ग्रन्थ को पढ़ने में विशेष अभिरुचि होगी।

ग्रन्थ में आये हुए स्थानों, नदियों, विहारों आदि का परिचय पादटिप्पणियों में यथासम्भव कम दिया गया है, इसके लिए अलग से 'बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय' लिख दिया गया है। इसके साथ ही एक नकशा भी दे दिया गया है। आशा है, इनसे पाठकों को विशेष लाभ होगा।

पूरे ग्रन्थ के छप जाने के पश्चात् इसके दीर्घकाय को देखकर विचार किया गया कि इसकी जिल्दबन्दी दो भागों में कराई जाय। अतः पहले भाग में सगाथा वर्ग, निदान वर्ग और खन्ध वर्ग तथा दूसरे भाग में सळायतन वर्ग और महावर्ग विभक्त करके जिल्दबन्दी करा दी गई है। प्रत्येक भाग के साथ विषय-सूची, उपमा-सूची, नाम-अनुक्रमणी और शब्द-अनुक्रमणी दे दी गई है।

सुत्त-पिटक के पाँचों निकायों में से दीघ, मज्झिम और संयुत्त के प्रकाशित हो जाने के पश्चात् अंगुत्तर निकाय तथा खुद्दक निकाय अवशेष रहते हैं। खुद्दक निकाय के भी खुद्दक पाठ, धम्मपद, उदान, सुत्त निपात, थेरी गाथा और जातक के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। इतिवुत्तक, बुद्धवंस और

चरियापिटक के भी अनुवाद मैंने कर दिये हैं और ये ग्रन्थ प्रेस में हैं। अंगुत्तर निकाय का मेरा हिन्दी अनुवाद भी प्रायः समाप्त-सा ही है। संयुत्त निकाय के पश्चात् क्रमशः विसुद्धिमग्ग और अंगुत्तर निकाय को प्रकाशित करने का कार्यक्रम बनाया गया है। आशा है, कुछ वर्षों के भीतर पूरा सुत्त-पिटक और अभिधम्म-पिटक के कुछ ग्रंथ हिन्दी में अनूदित होकर प्रकाशित हो जायेंगे।

भारतीय महाबोधि सभा ने इस ग्रन्थ को प्रकाशित करके बुद्ध-शासन एवं हिन्दी-जगत् का बहुत बड़ा उपकार किया है। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए सभा के प्रधान मन्त्री श्री देवप्रिय वलिसिंह तथा भदन्त संघरत्नजी का प्रयास स्तुत्य है। ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी के व्यवस्थापक श्री ओमप्रकाश कपूर की तत्परता से ही यह ग्रन्थ पूर्णरूप से शुद्ध और शीघ्र मुद्रित हो सका है।

महाबोधि सभा,
सारनाथ, बनारस
२३–४–५४

भिक्षु धर्मरक्षित

आमुख

संयुत्त निकाय सुत्त-पिटक का तीसरा ग्रन्थ है। दीघ निकाय में उन सूत्रों का संग्रह है जो आकार में बड़े हैं। उसी तरह, प्रायः मझोले आकार के सूत्रों का संग्रह मज्झिम निकाय में है। संयुत्त निकाय में छोटे-बड़े सभी प्रकार के सूत्रों का 'संयुत्त' संग्रह है। इस निकाय के सूत्रों की कुल संख्या ७७६२ है। पिटक के इन ग्रन्थों के संग्रह में सूत्रों के छोटे-बड़े आकार की दृष्टि रक्खी गई है, यह सचमुच जँचने वाली बात नहीं लगती है। प्रायः इन ग्रन्थों में एक अत्यन्त दार्शनिक सूत्र के बाद ही दूसरा सूत्र आत्म-वाद के खण्डन का आता है और उसके बाद ही हिंसामय यज्ञ के खण्डन का, और बाद में और कुछ दूसरा। स्पष्टतः विषयों के इस अव्यवस्थित सिलसिले से साधारण विद्यार्थी ऊब-सा जाता है। ठीक-ठीक यह कहना कठिन मालूम होता है कि सूत्रों का यह क्रम किस प्रकार हुआ। चाहे जो भी हो, यहाँ संयुत्त निकाय को देखते इसके व्यवस्थित विषयों के अनुकूल वर्गीकरण से इसका अपना महत्व स्पष्ट हो जाता है।

संयुत्त निकाय के पहले वर्ग—सगाथा वर्ग को पढ़कर महाभारत में स्थान-स्थान पर आये प्रश्नोत्तर की शैली से सुन्दर गाथाओं में गम्भीर से गम्भीर विषयों के विवेचन को देखकर इस निकाय के दार्शनिक तथा साहित्यिक दोनों पहलुओं का आभास मिलता है। साथ-साथ तत्कालीन राजनीति और समाज के भी स्पष्ट चित्र उपस्थित होते हैं।

दूसरा वर्ग—निदान वर्ग बौद्ध सिद्धान्त 'प्रतीत्य समुत्पाद' पर भगवान् बुद्ध के अत्यन्त महत्व-पूर्ण सूत्रों का संग्रह है।

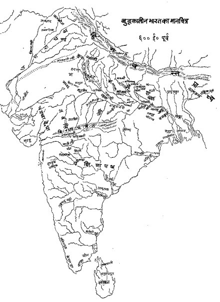
तीसरा और चौथा वर्ग स्कन्धवाद और आयतनवाद का विवेचन कर भगवान् बुद्ध के अनात्म सिद्धान्त की स्थापना करते हैं। पाँचवाँ—महावर्ग 'मार्ग', 'बोध्यंग', 'स्मृति-प्रस्थान', 'इन्द्रिय' आदि महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डालता है।

सन् १९३५ में पेनांग (मलाया) के विख्यात चीनी महाविहार 'चांग ह्वा तास्ज' में रह मैंने, 'मिलिन्द प्रश्न' के अनुवाद करने के बाद ही संयुत्त निकाय का अनुवाद प्रारम्भ किया था। दूसरे वर्ष लंका का सलगल अरण्य के योगाश्रम में इस ग्रन्थ का अनुवाद पूर्ण किया। तब से न जाने कितनी बार इसके छपने की व्यवस्था भी हुई, पाण्डुलिपि प्रेस में भी दे दी गई और फिर वापस चली आई। मैंने तो ऐसा समझ लिया था कि कदाचित् इस ग्रन्थ के भाग्य में प्रकाशन लिखा ही नहीं है, और इस ओर से उदासीन-सा हो गया था। अब पूरे उन्नीस वर्षों के बाद यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सका है। भाई त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित जी ने सारी पाण्डुलिपि को दुहरा कर शुद्ध कर दिया है। संयुत्त निकाय आज इतना अच्छा प्रकाशित न हो सकता, यदि भिक्षु धर्मरक्षित जी इतनी तत्परता से इसके प्रूफ देखने और इसकी अन्य व्यवस्था करने की कृपा न करते।

मैं महाबोधि सभा सारनाथ तथा उसके मन्त्री श्री भिक्षु संघरत्न जी को भी अनेक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने पुस्तक के प्रकाशन में इतना उत्साह दिखाया।

भिक्षु जगदीश काश्यप

नव नालन्दा महाविहार
नालन्दा
२. २. { २४९७ बु० सं०
१९५४ ई० सं०


बुद्धकालीन भारत का मानचित्र
६०० ई० पूर्व

भूमिका

बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय

बुद्धकाल में भारतवर्ष तीन मण्डलों, पाँच प्रदेशों और सोलह महाजनपदों में विभक्त था। महामण्डल, मध्यमण्डल और अन्तर्मण्डल—ये तीन मण्डल थे। जो क्रमशः ९००, ६००, ३०० योजन विस्तृत थे। सम्पूर्ण भारतवर्ष (= जम्बूद्वीप) का क्षेत्रफल १०,००० योजन था। मध्यम देश, उत्तरापथ, अपरान्तक, दक्षिणापथ और प्राच्य—ये पाँच प्रदेश थे। हम यहाँ इनका संक्षेप में वर्णन करेंगे, जिससे बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय प्राप्त हो सके।

§ १. मध्यम देश

भगवान् बुद्ध ने मध्यम देश में ही विचरण करके बुद्धधर्म का उपदेश किया था। तथागत पद-चारिका करते हुए पश्चिम में मथुरा[1] और कुरु के थुल्लकोट्ठित[2] नगर से आगे नहीं बढ़े थे। पूरब में कजंगला निगम के मुखेलु वन[3] और पूर्व-दक्षिण की सललवती नदी[4] के तीर को नहीं पार किया था। दक्षिण में सुंसुमारगिरि[5] आदि विन्ध्याचल के आसपास वाले निगमों तक ही गये थे। उत्तर में हिमालय की तलहटी के सापुग[6] निगम और उसीरध्वज[7] पर्वत से ऊपर जाते हुए नहीं दिखाई दिये थे। विनय पिटक में मध्यम देश की सीमा इस प्रकार बतलाई गई है—"पूर्व दिशा में कजंगला निगम ···। पूर्व-दक्षिण दिशा में सललवती नदी···। दक्षिण दिशा में सेतकण्णिक[8] निगम···। पश्चिम दिशा में थूण[9] नामक ब्राह्मणों का ग्राम···। उत्तर दिशा में उसीरध्वज पर्वत···।[10]"

मध्यम देश ३०० योजन लम्बा और २५० योजन चौड़ा था। इसका परिमण्डल ९०० योजन था। यह जम्बूद्वीप (= भारतवर्ष) का एक बृहद् भाग था। तत्कालीन सोलह जनपदों में से ये १४ जनपद इसी में थे—काशी, कोशल, अंग, मगध, वज्जी, मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पञ्चाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्मक और अवन्ति। शेष दो जनपद गन्धार और कम्बोज उत्तरापथ में पड़ते थे।

§ काशी

काशी जनपद की राजधानी वाराणसी (बनारस) थी। बुद्धकाल से पूर्व समय-समय पर

---

१. अंगुत्तर निकाय ५. २. १०। इस सूत्र में मथुरा नगर के पाँच दोष दिखाये गये हैं।
२. मज्झिम निकाय २. ३. ३२। दिल्ली के आसपास कोई तत्कालीन प्रसिद्ध नगर।
३. मज्झिम निकाय ३. ५. १७। कंकजोल, संथाल परगना, बिहार।
४. वर्तमान सिलई नदी, हजारी बाग और बीरभूमि।
५. चुनार, जिला मिर्जापुर।
६. अंगुत्तर निकाय ४. ४. ५. ४।
७. हरिद्वार के पास कोई पर्वत।
८. हजारीबाग जिले में कोई स्थान।
९. आधुनिक थानेश्वर।
१०. विनय पिटक ५. ३. २।

सुरुन्धन, सुदर्शन, ब्रह्मवर्द्धन, पुष्पवती, मौलिनी और रम्यनगर इसके नाम थे। इस नगर का विस्तार १२ योजन था। भगवान् बुद्ध से पूर्व काशी राजनीतिक क्षेत्र में शक्तिशाली जनपद था। काशी और कोशल के राजाओं में प्रायः युद्ध हुआ करते थे, जिनमें काशी का राजा विजयी होता था। उस समय सम्पूर्ण उत्तर भारत में काशी जनपद सब से बलशाली था। किन्तु, बुद्धकाल में उसकी राजनीतिक शक्ति क्षीण हो गई थी। इसका कुछ भाग कोशल नरेश और कुछ भाग मगध नरेश के अधीन था। उनमें भी प्रायः काशी के लिये ही युद्ध हुआ करते थे। अन्त में काशी कोशल नरेश प्रसेनजित् के अधिकार से निकलकर मगध नरेश अजातशत्रु के अधीन हो गया था।

वाराणसी के पास ऋषिपतन मृगदाव (सारनाथ) में भगवान् बुद्ध ने धर्मचक्र प्रवर्तन करके इसके महत्व को बढ़ा दिया। ऋषिपतन मृगदाव बौद्ध धर्म का एक महातीर्थ है।

वाराणसी शिल्प, व्यवसाय, विद्या आदि का बहुत बड़ा केन्द्र था। इसका व्यावसायिक सम्बन्ध श्रावस्ती, तक्षशिला, राजगृह आदि नगरों से था। काशी का चन्दन और काशी के रंग-बिरंगे वस्त्र बहुत प्रसिद्ध थे।

§ कोशल

कोशल की राजधानियाँ श्रावस्ती और साकेत नगर थे। अयोध्या सरयू नदी के किनारे स्थित एक कस्बा था, किन्तु बुद्धकाल में इसकी प्रसिद्धि न थी। कहा जाता है कि श्रावस्ती नामक ऋषि के नाम पर ही श्रावस्ती नगर का नाम पड़ा था, किन्तु पपञ्चसूदनी के अनुसार 'सब कुछ होने के कारण' (= सर्व+अस्ति) इसका नाम श्रावस्ती पड़ा था।

श्रावस्ती नगर बड़ा समृद्धिशाली एवं सुन्दर था। इस नगर की आबादी सात करोड़ थी। भगवान् बुद्ध ने यहाँ २५ वर्षावास किया था और अधिकांश उपदेश यहीं पर किया था। अनाथपिण्डिक यहाँ का बहुत बड़ा सेठ था और मृगारमाता विशाखा बड़ी श्रद्धावान् उपासिका थी। पटाचारा, कृशा-गौतमी, नन्द, कंखा रेवत और कोशल नरेश की बहिन सुमना इसी नगर के प्रव्रजित व्यक्ति थे।

प्राचीन कोशल राज्य दो भागों में विभक्त था। सरयू नदी दोनों भागों के मध्य स्थित थी। उत्तरी भाग को उत्तर-कोशल और दक्षिणी भाग को दक्षिण-कोशल कहा जाता था।

कोशल जनपद में अनेक प्रसिद्ध निगम और ग्राम थे। कोशल का प्रसिद्ध आचार्य पोक्खरसाति उक्कट्ठा नगर में रहता था, जिसे प्रसेनजित् ने उसे प्रदान किया था। कोशल जनपद के शाला, नगरविन्द और वेनागपुर ग्रामों में जाकर भगवान् बुद्ध ने बहुत से लोगों को दीक्षित किया था। बावरी कोशल का प्रसिद्ध अध्यापक था, जो दक्षिणापथ में जाकर गोदावरी नदी के किनारे अपना आश्रम बनाया था।

हम ऊपर कह आये हैं कि कोशल और मगध में वाराणसी के लिए प्रायः युद्ध हुआ करता था, किन्तु बाद में दोनों में सन्धि हो गई थी। सन्धि के पश्चात् कोशल नरेश प्रसेनजित् ने अपनी पुत्री वजिरा का विवाह मगध नरेश अजात-शत्रु से कर दिया था। कोशल की उत्तरी सीमा पर स्थित कपिल-वस्तु के शाक्य प्रसेनजित् के अधीन थे और वे कोशल नरेश प्रसेनजित् से बड़ी ईर्ष्या रखते थे।

उण्णकत्थक, नळकपान, तोरणवत्थु और पलासवन—ये कोशल जनपद के प्रसिद्ध ग्राम थे, जहाँ पर भगवान् समय-समय पर गये थे और उपदेश दिये थे।

§ अङ्ग

अङ्ग जनपद की राजधानी चम्पा नगरी थी, जो चम्पा और गंगा के संगम पर बसी थी। चम्पा मिथिला से ६० योजन दूर थी। अंग जनपद वर्तमान भागलपुर और मुँगेर जिलों के साथ उत्तर में कोसी नदी तक फैला हुआ था। कभी यह मगध जनपद के अन्तर्गत था और सम्भवतः समुद्र के किनारे तक विस्तृत था। अंग की प्राचीन राजधानी के खँडहर सम्प्रति भागलपुरके निकट चम्पा नगर

और चम्पापुर—इन दो गाँवों में विद्यमान हैं। महापरिनिर्वाण सुत्त के अनुसार चम्पा बुद्धकाल में भारत के छः बड़े नगरों में से थी। चम्पा से सुवर्ण-भूमि (लोअर बर्मा) के लिये व्यापारी नदी और समुद्र-मार्ग से जाते थे। अंग जनपद में ८०,००० गाँव थे। आपण अंग का एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगर था। महागोविन्द सुत्त से प्रगट है कि अंग भारत के सात बड़े राजनीतिक भागों में से एक था। भगवान् बुद्ध से पूर्व अंग एक शक्तिशाली राज्य था। जातक से ज्ञात होता है कि किसी समय मगध भी अंग नरेश के अधीन था। बुद्धकाल में अंग ने अपने राजनीतिक महत्व को खो दिया और एक युद्ध के पश्चात् अंग मगध नरेश सेनिय बिम्बिसार के अधीन हो गया। चम्पा की रानी गग्गरा द्वारा गग्गरा-पुष्करिणी खोदवाई गई थी। भगवान् बुद्ध भिक्षुसंघ के साथ वहाँ गये थे और उसके किनारे वास किया था। अंग जनपद का एक दूसरा नगर अश्वपुर था, जहाँ के बहुत से कुलपुत्र भगवान् के पास आकर भिक्षु हो गये थे।

§ मगध

मगध जनपद वर्तमान गया और पटना जिलों के अन्तर्गत फैला हुआ था। इसकी राजधानी गिरिव्रज अथवा राजगृह थी, जो पहाड़ियों से घिरी हुई थी। इन पहाड़ियों के नाम थे—ऋषिगिलि, वेपुल्ल, वेभार, पाण्डव और गृद्धकूट। इस नगर से होकर तपोदा नदी बहती थी। सेनानी निगम भी मगध का ही एक रमणीय वन-प्रदेश था। एकनाला, नालकग्राम, खाणुमत, और अम्बकविन्द इस जनपद के प्रसिद्ध नगर थे। वज्जी और मगध जनपदों के बीच गंगा नदी सीमा थी। उस पर दोनों राज्यों का समान अधिकार था। अंग और मगध में समय-समय पर युद्ध हुआ करता था। एक बार वाराणसी के राजा ने मगध और अंग दोनों को अपने अधीन कर लिया था। बुद्धकाल में अंग मगध के अधीन था। मगध और कोशल में भी प्रायः युद्ध हुआ करता था। पीछे अजातशत्रु ने लिच्छवियों की सहायता से कोशल पर विजय पाई थी। मगध का जीवक कौमारभृत्य भारत-प्रसिद्ध वैद्य था। उसकी शिक्षा तक्षशिला में हुई थी। राजगृह में वेलुवन कलन्दक निवाप प्रसिद्ध बुद्ध विहार था। राजगृह में ही प्रथम संगीति हुई थी। राजगृह के पास ही नालन्दा एक छोटा ग्राम था। मगध का एक सुरक्षित किला था, जिसकी मरम्मत वर्षकार ने कराची थी। बाद में मगध की राजधानी पाटलिपुत्र नगर हुआ था। अशोक-काल में उसकी दैनिक आय ४००,००० कार्षापण थी।

§ वज्जी

वज्जी जनपद की राजधानी वैशाली थी, जो इस समय बिहार प्रान्त के मुजफ्फरपुर जिले के बसाढ़ गाँव में मानी जाती है। वज्जी जनपद में लिच्छवियों का गणतन्त्र शासन था। वहाँ से खोदाई में प्राप्त लेखों से वैशाली नगर प्रमाणित हो चुका है। इस नगर की जनसंख्या की वृद्धि से नगर-आकार को तीन बार विशाल करने के ही कारण इसका वैशाली नाम पड़ा था। वैशाली समृद्धिशाली नगरी थी। उसमें ७७०७ प्रासाद, ७७०७ कूटागार (कोठे), ७७०७ उद्यान-गृह (आराम) और ७७०७ पुष्करिणियाँ थीं। वहाँ ७७०७ राजा, ७७०७ युवराज, ७७०७ सेनापति और इतने ही भण्डागारिक थे। नगर के बीच में एक संस्थागार (संसद-भवन) था। नगर में उदयन, गोतमक, सत्तम्बक, बहुपुत्रक, और सारंदद चैत्य थे। भगवान् बुद्ध ने वैशाली के लिच्छवियों की उपमा तावतिंस लोक के देवों से की थी। वैशाली की प्रसिद्ध गणिका अम्बपाली ने बुद्ध को भोजन दान दिया था। विमला, सिंहा, वासिष्ठी, अम्बपाली और रोहिणी वैशाली की प्रसिद्ध भिक्षुणियाँ थीं। वर्द्धमान स्थविर, अंजनवनिय, वज्जीपुत्त, सुयाम, पियञ्जह वसभ, वल्लिय और सब्बकामी वहाँ के प्रसिद्ध भिक्षु थे। सिंह सेनापति, महानाम, दुर्मुख, सुनक्खत्त और उग्र गृहपति वैशाली के प्रसिद्ध गृहस्थ थे। वैशाली के पास महावन में कूटागारशाला नामक विहार था। वहीं पर सर्वप्रथम महाप्रजापति गौतमी के साथ अनेक शाक्य महिलायें भिक्षुणी हुईं

थी। वैशाली में ही दूसरी संगीति हुई थी। वैशाली गणतंत्र को बुद्ध-परिनिर्वाण के तीन वर्ष बाद ही, फूट डालकर मगध-नरेश अजातशत्रु ने हड़प लिया था।

§ मल्ल

मल्ल गणतन्त्र जनपद था। यह दो भागों में विभक्त था। कुशीनारा और पावा इसकी दो राजधानियाँ थीं। अनूपिया, थूणग्राम, उरुवेलकप्प, बलिहरण वनखण्ड, भोगनगर और आम्रग्राम इसके प्रसिद्ध नगर थे। देवरिया जिले का कुशीनगर ही कुशीनारा थी और फाजिलनगर-सठियाँव पावा। कुशीनारा राजधानी के महावशेष कुशीनगर के निकट अनुरुधवा ग्राम में विद्यमान हैं। कुशीनारा का प्राचीन नाम कुशावती था। यह नगर बड़ा समृद्ध एवं उन्नतिशील था। बोधिसत्व यहाँ छः बार चक्रवर्ती राजा होकर उत्पन्न हुए थे। पूर्व काल में यह १२ योजन लम्बा और ७ योजन चौड़ा था। महापरिनिर्वाण सुत्त से राजगृह से कुशीनारा तक आने का मार्ग विदित होता है। भगवान् बुद्ध ने अन्तिम समय में इसी मार्ग से यात्रा की थी—राजगृह, अम्बलट्ठिका, नालन्दा, पाटलिग्राम, कोटिग्राम, नादिका, वैशाली, भण्डग्राम, हत्थिग्राम (वर्तमान हाथीखाल), आम्रग्राम (अमया), जम्बूग्राम, भोगनगर और पावा। पावा में चुन्द के घर बुद्ध ने अन्तिम भोजन ग्रहण किया था। पावा और कुशीनारा के मध्य तीन नदियाँ थीं, जिनमें ककुत्था (घागी) और हिरण्यवती के नाम ग्रन्थों में मिलते हैं। हिरण्यवती के पश्चिमी तट पर ही कुशीनारा थी और वहीं शालवन उपवत्तन में बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ था। पावा के चुन्द कम्मारपुत्त, खण्डसुमन, रोजिय, सुबाहु, बल्लिय और उत्तिय प्रसिद्ध व्यक्ति थे। कुशीनारा की महा-विभूतियाँ थीं दब्ब स्थविर, आयुष्मान् सिंह, यशदत्त स्थविर, बन्धुलमल्ल, दीर्घकारायण, रोजमल्ल, वज्रपाणि मल्ल और वंशोत्पन्न मल्लिका। बुद्ध-परिनिर्वाण के बाद पावा और कुशीनारा में धातु-स्तूप बने थे।

§ चेदि

चेदि जनपद यमुना के पास कुरु जनपद के निकट था। यह वर्तमान बुन्देलखण्ड को लिये हुए विस्तृत था। इसकी राजधानी सोत्थिवती नगर था। इसके दूसरे प्रमुख नगर सहजाति और त्रिपुरी थे। वेदब्ब जातक से ज्ञात होता है कि काशी और चेदि के बीच बहुत लुटेरे रहते थे। जेतुत्तर नगर से चेदि राष्ट्र ३० योजन दूर था। सहजाति में महाचुन्द ने उपदेश दिया था। यह बौद्ध-धर्म का एक बड़ा केन्द्र था। आयुष्मान् अनुरुद्ध ने चेदि राष्ट्र के प्राचीनवंस मृगदाय में रहते हुए अर्हत्व प्राप्त किया था। सहजातिक भी चेदि जनपद का एक प्रसिद्ध ग्राम था, जहाँ भगवान् बुद्ध गये थे।

§ वत्स

वत्स जनपद भारत के सोलह बड़े जनपदों में से एक था। इसकी राजधानी कौशाम्बी थी। इस समय उसके ध्वंसावशेष इलाहाबाद से ३० मील पश्चिम यमुना नदी के किनारे कोसम नामक ग्राम में स्थित हैं। सुंसुमारगिरि का भर्ग राज्य वत्स जनपद में ही पड़ता था। कौशाम्बी बुद्धकालीन बड़ी नगरी थी। बावरि के शिष्य बावरी ने कौशाम्बी की यात्रा की थी। कौशाम्बी में घोषिताराम, कुक्कुटाराम और पावारिकाम्र तीन प्रसिद्ध विहार थे, जिन्हें क्रमशः वहाँ के प्रसिद्ध सेठ घोषित, कुक्कुट और पावारिक ने बनवाये थे। भगवान् बुद्ध ने इन विहारों में निवास किया था और भिक्षु संघ को उपदेश दिया था। यहीं पर संघ में फूट भी पैदा हुई थी, जो पीछे शान्त हो गई थी। बुद्धकाल में राजा उदयन यहाँ राज्य करता था, उसकी मागन्दी, श्यामावती और वासुलदत्ता तीन रानियाँ थीं, जिनमें श्यामावती परम बुद्ध-भक्त उपासिका थी।

§ कुरु

पालि साहित्य में दो कुरु जनपदों का वर्णन मिलता है—उत्तर कुरु और दक्षिण कुरु।

ऋग्वेद में वर्णित कुरु सम्भवतः उत्तर कुरु ही है। पालि साहित्य में वर्णित कुरु जनपद ८००० योजन विस्तृत था। कुरु जनपद के राजाओं को कौरव्य कहा जाता था। कम्मासदम्म कुरु जनपद का एक प्रसिद्ध नगर था, जहाँ बुद्ध ने महासतिपट्ठान और महानिदान जैसे महत्वपूर्ण एवं गम्भीर सूत्रों का उपदेश किया था। इस जनपद का दूसरा प्रमुख नगर थुल्लकोट्ठित था। राष्ट्रपाल स्थविर इसी नगर से प्रव्रजित हुए प्रसिद्ध भिक्षु थे।

कुरु जनपद के उत्तर सरस्वती तथा दक्षिण दृषद्वती नदियाँ बहती थीं। वर्तमान सोनपत, अमिन, कर्नाल और पानीपत के जिले कुरु जनपद में ही पड़ते हैं। महासुतसोम जातक के अनुसार कुरु जनपद ३०० योजन विस्तृत था। इसकी राजधानी इन्द्रपट्ठन (इन्द्रप्रस्थ) नगर था, जो सात योजन में फैला हुआ था।

§ पञ्चाल

पञ्चाल जनपद भागीरथी नदी से दो भागों में विभक्त था—उत्तर पञ्चाल और दक्षिण पञ्चाल। उत्तर पञ्चाल की राजधानी अहिच्छत्र नगर था, जहाँ दुर्मुख नामक राजा राज्य करता था। वर्तमान समय में बरेली जिले का रामनगर ही अहिच्छत्र माना जाता है। दक्षिण पञ्चाल की राजधानी काम्पिल्य नगर था, जो फर्रुखाबाद जिले के कम्पिल के स्थान पर स्थित था। समय-समय पर राजाओं की इच्छा के अनुसार काम्पिल्य नगर में भी उत्तर पञ्चाल की राजधानी रहा करती थी। पञ्चाल-नरेश की भगिनी का पुत्र विशाख श्रावस्ती जाकर भगवान् के पास दीक्षित हुआ और छः अभिज्ञाओं को प्राप्त किया था। पञ्चाल जनपद में वर्तमान बदाऊँ, फर्रुखाबाद, और उत्तर प्रदेश के समीपवर्ती जिले पड़ते हैं।

§ मत्स्य

मत्स्य जनपद वर्तमान जयपुर राज्य में पड़ता था। इसके अन्तर्गत पूरा अलवर राज्य और भरतपुर का कुछ भाग भी पड़ता है। मत्स्य जनपद की राजधानी विराट नगर था। नादिका के गिञ्जकावसथ में विहार करते हुए भगवान् बुद्ध ने मत्स्य जनपद का वर्णन किया था। यह इन्द्रप्रस्थ के दक्षिण-पश्चिम और सूरसेन के दक्षिण स्थित था।

§ शूरसेन

शूरसेन जनपद की राजधानी मधुरा नगरी (मथुरा) थी, जो कौशाम्बी की भाँति यमुना के किनारे बसी थी। यहाँ पर भगवान् बुद्ध गये थे और मधुरा के विहार में वास किया था। मथुरा प्रदेश में महा-कात्यायन ने घूम-घूम कर बुद्ध धर्म का प्रचार किया था। उस समय शूरसेन का राजा अवन्तिपुत्र था। वर्तमान मथुरा से ५ मील दक्षिण-पश्चिम स्थित महोली नामक स्थान प्राचीन मधुरा नगरी मानी जाती है। दक्षिण भारत में भी प्राचीन काल में मधुरा नामक एक नगर था, जिसे दक्षिण मधुरा कहा जाता था। वह पाण्ड्य राज्य की राजधानी था। उसके भग्नावशेष इस समय मद्रास प्रान्त में वैगी नदी के किनारे विद्यमान हैं।

§ अश्वक

अश्वक जनपद की राजधानी पोतन नगर था। अश्वक-नरेश महाकात्यायन द्वारा प्रव्रजित हो गया था। जातक से ज्ञात होता है कि दन्तपुर नरेश कालिंग और अश्वक नरेश में पहले संघर्ष हुआ करता था, किन्तु पीछे दोनों का मैत्री सम्बन्ध हो गया था। पोतन कभी काशी राज्य में भी गिना जाता था। यह अश्वक गोदावरी के किनारे तक विस्तृत था। बावरी गोदावरी के किनारे अश्वक जनपद में ही

आश्रम बना कर रहता था। वर्तमान पैठन जिला ही अश्मक जनपद माना जाता है। यहाँ से खारवेल नरेश का एक शिलालेख भी प्राप्त हो चुका है। महागोविन्द सुत्त के अनुसार यह महागोविन्द द्वारा निर्मित हुआ था।

§ अवन्ति

अवन्ति जनपद की राजधानी उज्जैनी नगरी थी, जो अच्चुतगामी द्वारा बसायी गई थी। अवन्ति जनपद में वर्तमान मालवा, निमार और मध्यभारत के निकटवर्ती प्रदेश पड़ते थे। अवन्ति जनपद दो भागों में विभक्त था। उत्तरी भाग की राजधानी उज्जैनी में थी और दक्षिणी भाग की राजधानी माहिष्मती में। महागोविन्द सुत्त के अनुसार अवन्ति की राजधानी माहिष्मती थी, जहाँ का राजा वेस्सभू था। कुररघर और सुदर्शनपुर अवन्ति जनपद के प्रसिद्ध नगर थे।

अवन्ति जनपद बौद्धधर्म का महत्वपूर्ण केन्द्र था। अभयकुमार, इसिदासी, इसिदत्त, सोणकुटिकण्ण और महाकात्यायन अवन्ति जनपद की महाविभूतियाँ थीं। महाकात्यायन उज्जैनी-नरेश चण्डप्रद्योत के पुरोहित पुत्र थे। चण्डप्रद्योत को महाकात्यायन ने ही बौद्ध बनाया था। भिक्षु इसिदत्त अवन्ति के वेणुग्राम के रहने वाले थे।

कौशाम्बी और अवन्ति के राजघरानों में वैवाहिक सम्बन्ध था। चण्डप्रद्योत तथा उदयन में कई बार युद्ध हुए। अन्त में चण्डप्रद्योत ने अपनी पुत्री वासवदत्ता का विवाह उदयन से कर दिया था और दोनों मित्र हो गये थे। उदयन ने मगध के साथ भी वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया था, जिससे कौशाम्बी दोनों ओर से सुरक्षित थी।

अवन्ति की राजधानी उज्जैनी से अशोक का एक शिलालेख मिल चुका है।

§ नगर, ग्राम और कस्बे

अपर गया—भगवान् उरुवेला से गया गये थे और गया से अपर-गया, जहाँ उन्हें नागराज सुदर्शन ने निमन्त्रित किया था।

अम्बसण्ड—राजगृह के पूरब अम्बसण्ड नामक एक ब्राह्मण ग्राम था।

अन्धकविन्द—मगध के अन्धकविन्द ग्राम में भगवान् रहे थे, जहाँ सहम्पति ब्रह्मा ने उनका दर्शन करके स्तुति की थी।

अयोध्या—यहाँ भगवान् गये थे और वास किया था। पालि साहित्य के अनुसार यह गंगा नदी के किनारे स्थित था। फिर भी वर्तमान अयोध्या नगर ही माना जाता है। बुद्धकाल में यह बहुत छोटा नगर था।

अन्धपुर—यह एक नगर था, जो तेलवाह नदी के किनारे बसा था।

आलवी—आलवी में अग्गालव नामक प्रसिद्ध चैत्य था, जहाँ बुद्ध ने वास किया था। वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के नवल (या नेवल) को आलवी माना जाता है।

अनुपिया—मल्ल जनपद का एक प्रमुख निगम (कस्बा) था। यहीं पर सिद्धार्थ कुमार ने प्रव्रजित होने के बाद एक सप्ताह निवास किया था और यहीं अनुरुद्ध, भद्दिय, किम्बिल, भृगु, देवदत्त, आनन्द और उपालि प्रव्रजित हुए थे। दब्बमल्ल भी यहीं प्रव्रजित हुए थे। वर्तमान समय में देवरिया जिले में दादा के पास मझना नदी के किनारे का खँडहर ही अनुपिया नगर माना जाता है, जिसे आजकल 'घोहटए' कहते हैं।

अश्वपुर—राजा चेति के लड़कों ने हस्तिपुर, अश्वपुर, सिंहपुर, उत्तर पञ्चाल और दद्दरपुर नगरों को बसाया था। हस्तिपुर ही पीछे हस्तिनापुर हो गया था और इस समय इसके भग्नावशेष मेरठ

जिले की मसाम तहसील में विद्यमान है। सिंहपुर हुएनसांग के समय में तक्षशिला से ११७ मील पूरब स्थित था। अन्य नगरों का कुछ पता नहीं।

अल्लकप्प—वैशाली के लिच्छवियों, मिथिला के विदेहों, कपिलवस्तु के शाक्यों, रामग्राम के कोलियों, सुंसुमारगिरि के भर्गों और पिप्पलिवन के मौर्यों की भाँति अल्लकप्प के बुलियों का भी अपना स्वतन्त्र राज्य था, किन्तु बहुत शक्तिशाली न था। यह १० योजन विस्तृत था। इसका सम्बन्ध वेठद्वीप के राजवंश से था। श्री बील का कथन है कि वेठद्वीप का द्रोण ब्राह्मण शाहाबाद जिले में मसार से वैशाली जानेवाले मार्ग में रहता था। अतः अल्लकप्प वेठद्वीप से बहुत दूर न रहा होगा। अल्लकप्प के बुलियों को बुद्धधातु का एक अंश मिला था, जिसपर उन्होंने स्तूप बनवाया था।

भद्दिय—अङ्ग जनपद के भद्दिय नगर में महाउपासिका विशाखा का जन्म हुआ था।

वेळुवगाम—यह वैशाली में था।

भण्डग्राम—यह वज्जी जनपद में स्थित था।

धर्मपाल ग्राम—यह काशी जनपद का एक ग्राम था।

एकशाला—यह कोसल जनपद में एक ब्राह्मण ग्राम था।

एकनाला—यह मगध के दक्षिणागिरि प्रदेश में एक ब्राह्मण ग्राम था, जहाँ भगवान् ने वास किया था।

एरकच्छ—यह दसण्ण राज्य का एक नगर था।

ऋषिपतन—यह ऋषिपतन मृगदाव वर्तमान सारनाथ है, जहाँ भगवान् ने धर्मचक्र प्रवर्तन किया था।

गया—गया में भगवान् बुद्ध ने सूचिलोम यक्ष के प्रश्नों का उत्तर दिया था। प्राचीन गया वर्तमान साहबगंज माना जाता है। यहाँ से ६ मील दक्षिण बुद्धगया स्थित है। गयातीर्थ बुद्धकाल में स्नानतीर्थ के रूप में प्रसिद्ध था और यहाँ बहुत से जटिल रहा करते थे।

हत्थिग्राम—यह वज्जी जनपद का एक ग्राम था। भगवान् बुद्ध वैशाली से कुसीनगर जाते हुए हत्थिग्राम से होकर गुजरे थे। वर्तमान समय में यह बिहार प्रान्त के हथुआ से ८ मील पश्चिम शिवपुर कोठी के पास अवस्थित है। आजकल उसके भग्नावशेष को हाथीखाल कहा जाता है। हत्थिग्राम का उग्गत गृहपति संघसेवकों में सबसे बढ़कर था, जिसे बुद्ध ने अग्र की उपाधि दी थी।

हलिद्दवसन—यह कोलिय जनपद का एक ग्राम था। यहाँ भगवान् बुद्ध गये थे। कोलिय जनपद की राजधानी रामग्राम थी और यह जनपद शाक्य जनपद के पूर्व तथा मल्ल जनपद के पश्चिम दोनों के मध्य स्थित था।

हिमवन्त प्रदेश—कोसल, शाक्य, कोलिय, मल्ल और वज्जी जनपदों के उत्तर में फैली पहाड़ी ही हिमवन्त प्रदेश कहलाती है। इसमें नेपाल के साथ हिमालय प्रदेश के सभी दक्षिणी प्रदेश सम्मिलित हैं।

इच्छानङ्गल—कोसल जनपद में यह एक ब्राह्मण ग्राम था। भगवान् ने इच्छानंगल वनखण्ड में वास किया था।

जन्तुग्राम—चालिका प्रदेश के चालिका पर्वत के पास जन्तुग्राम था। भगवान् के चालिका पर्वत पर विहार करते समय मेघिय स्थविर जन्तुग्राम में भिक्षाटन करने गये थे और उसके बाद किमिकाला नदी के तीर जाकर विहार किया था।

कल्लवालमुत्तगामक—यह मगध में एक ग्राम था। यहीं पर मौद्गल्यायन स्थविर को अर्हत्व की प्राप्ति हुई थी।

कजंगल—यह मध्यम देश की पूर्वी सीमा पर स्थित एक ग्राम था। यहाँ के वेलुवन और मुखेलुवन में तथागत ने विहार किया था। मिलिन्द प्रश्न के अनुसार यह एक ब्राह्मण ग्राम था और इसी ग्राम में नागसेन का जन्म हुआ था। वर्तमान समय में विहार प्रान्त के संथाल परगना में कंकजोल नामक स्थान को ही कजंगल माना जाता है।

कोटिग्राम—यह वज्जी जनपद में एक ग्राम था। भगवान् पाटलि-ग्राम से यहाँ आये थे, यहाँ से नादिका गये थे और नादिका से वैशाली।

कुण्डिय—यह कोलिय जनपद में एक ग्राम था। कुण्डिय के कुण्डिधानवन में भगवान् ने विहार किया था और सुप्रवासा को स्वस्ति-पूर्वक पुत्र जनने का आशीर्वाद दिया था।

कपिलवस्तु—यह शाक्य जनपद की राजधानी थी। सिद्धार्थ गौतम का जन्म कपिलवस्तु के ही शाक्य राजवंश में हुआ था। शाक्य जनपद में चातुमा, सामगाम, उलुम्प, सक्कर, शीलवती और खोमदुस्स प्रसिद्ध ग्राम एवं नगर थे। इसे कोसलनरेश विडूडभ ने आक्रमण करके नष्ट कर दिया था। वर्तमान समयमें इसके भग्नावशेष नेपाल की तराई में बस्ती जिले के नौगढ़ स्टेशन से १२ मील उत्तर तौलिहवा बाजार के पास तिलौराकोट नाम से विद्यमान हैं।

केसपुत्त—यह कोसल जनपद के अन्तर्गत एक छोटा-सा स्वतन्त्र राज्य था। यहाँ के कालाम मल्ल, शाक्य, मौर्य और लिच्छवी राजाओं की भाँति गणतन्त्र प्रणाली से शासन करते थे।

खेमावती—यह खेमनरेश के राज्य की राजधानी थी।

मिथिला—मिथिला विदेह की राजधानी थी। बुद्धकाल में यह वज्जी जनपद के अन्तर्गत थी। वज्जी जनपद की वैशाली और विदेहों की मिथिला—यह प्रसिद्ध नगरियाँ थीं। प्राचीनकाल में मिथिला नगरी सात योजन विस्तृत थी और विदेह राष्ट्र ३०० योजन। चम्पा और मिथिला में ६० योजन की दूरी थी। विदेह राज्य में १५,००० ग्राम, १६,००० भण्डारगृह, और १६,००० नर्तकियाँ थीं—ऐसा जातक-कथा से ज्ञात होता है। मिथिला एक व्यापारिक केन्द्र था। श्रावस्ती और वाराणसी से व्यापारी यहाँ आते थे; वर्तमान तिरहुत (तीर भुक्ति) ही विदेह माना जाता है। मिथिला के प्राचीन अवशेष विहार प्रान्त के मुजफ्फरपुर और दरभंगा जिलों के उत्तर में नेपाल की सीमा पर जनकपुर नामक कस्बे में पाये जाते हैं।

मचलग्राम—यह मगध में एक ग्राम था।

नालन्दा—यह मगध में राजगृह से १ योजन की दूरी पर स्थित था। यहाँ के पावारिक-आम्र-वन में भगवान् ने विहार किया था। वर्तमान समय में यह पटना जिले के राजगृह से ७ मील उत्तर-पश्चिम में अवस्थित है। इसके विशाल खण्डहर दर्शनीय हैं। यह छठीं और सातवीं शताब्दी ईस्वी में प्रधान बौद्ध-विश्वविद्यालय था।

नालक—यह राजगृह के पास मगध में एक ग्राम था। इसी ग्राम में सारिपुत्र का जन्म हुआ था और यहीं उनका परिनिर्वाण भी। वर्तमान समय में राजगृह के पास का नालक ग्राम ही प्राचीन नालक माना जाता है।

नादिका—यह वज्जी जनपद का एक ग्राम था। पाटलिग्राम से गंगा पार कर कोटिग्राम और नादिका में भगवान् गये थे और वहाँ से वैशाली।

पिप्पलिवन—यह मौर्यों की राजधानी थी। यहाँ के मौर्यों ने भगवान् बुद्ध की चिता से प्राप्त अंगार (कोयला) पर स्तूप बनवाया था। वर्तमान समय में इसके भग्नावशेष जिला गोरखपुर के कुसुम्हीं स्टेशन से ११ मील दक्षिण उपधौली नामक स्थान में प्राप्त हुए हैं।

रामग्राम—कोलिय जनपद के दो प्रसिद्ध नगर थे रामग्राम और देवदह। भगवान् के परिनिर्वाण के बाद रामग्राम के कोलियों ने उनकी अस्थि पर स्तूप बनाया था। श्री ए० सी० एल०

कारलायल ने वर्तमान धर्मपुर-देवरिया को रामग्राम प्रमाणित किया है जो कि भरवा ताल के किनारे बस्ती जिले में स्थित है, किन्तु महावंश (३१, २५) के वर्णन से ज्ञात है कि रामग्राम अचिरवती (राप्ती) नदी के किनारे था और बाढ़ के समय वहाँ का चैत्य टूट गया था। सम्भवतः गोरखपुर के पास का रामगाँव तथा रामगढ़ ही रामग्राम है।

सामगाम—यह शाक्य जनपद का एक ग्राम था। यहीं पर भगवान् ने सामगाम सुत्त का उपदेश दिया था।

सापुग—यह कोलिय जनपद का एक निगम था।

शोभावती—यह शोभ-नरेश की राजधानी थी।

सेतव्य—यह कोशल जनपद में एक नगर था। इसके पास ही उक्कट्ठा थी और वहाँ से सेतव्य तक एक सड़क जाती थी।

संकस्स—भगवान् ने श्रावस्ती में यमक प्रातिहार्य कर, तुषित-भवन में वर्षावास करके महाप्रवारणा के दिन संकस्स नगर में स्वर्ग से भूमि पर पदार्पण किया था। संकस्स वर्तमान समय में संकिसा-वसन्तपुर के नाम से कालिन्दी नदी के उत्तरी तट पर विद्यमान है। यह एटा जिले के फतेहगढ़ से २३ मील पश्चिम और कन्नौज से ४५ मील उत्तर-पश्चिम स्थित है।

सालिन्दिय—यह राजगृह के पूरब एक ब्राह्मण ग्राम था।

सुंसुमारगिरि नगर—यह भर्ग राज्य की राजधानी था। बुद्धकाल में उदयन का पुत्र बोधिराजकुमार यहाँ राज्य करता था। जो बुद्ध का परम श्रद्धालु भक्त था। किन्तु, भर्ग राज्य पूर्णरूपेण प्रजातन्त्र राज्य था, क्योंकि गणतन्त्र राज्यों में इसकी भी गणना की जाती थी। भर्ग आजकल के मिर्जापुर जिले का गंगा से दक्षिणी भाग और कुछ आस-पास का प्रदेश है, इसकी सीमा गंगा-सोन-कर्मनाशा नदियाँ एवं विन्ध्याचल पर्वत का कुछ भाग रही होगी। सुंसुमारगिरि नगर मिर्जापुर जिले का वर्तमान चुनार कस्बा माना जाता है।

सेनापति ग्राम—यह उरुवेला के पास एक ग्राम था।

थूण—यह एक ब्राह्मण ग्राम था और मध्यम देश की पश्चिमी सीमा पर स्थित था। आधुनिक थानेश्वर ही थूण माना जाता है।

उक्काचेल—यह वज्जी जनपद में गंगा नदी के किनारे स्थित एक ग्राम था। उक्काचेल बिहार प्रान्त के वर्तमान सोनपुर या हाजीपुर के आसपास कहीं रहा होगा।

उपतिस्सग्राम—यह राजगृह के निकट एक ग्राम था।

उग्रनगर—उग्रनगर का सेठ उग्र श्रावस्ती में व्यापार के कार्य से आया था। इस नगर के सम्बन्ध में अन्य कोई जानकारी प्राप्त नहीं है।

उसीरध्वज—यह मध्यमदेश की उत्तरी सीमा पर स्थित एक पर्वत था, जो सम्भवतः कनखल के उत्तर पड़ता था।

वेरञ्जा नगर—भगवान् श्रावस्ती से वेरञ्जा गये थे। यह नगर कन्नौज से संकस्स, सोरेय्य होते हुए मथुरा जाने के मार्ग में पड़ता था। वेरञ्जा सोरेय्य और मथुरा के मध्य कहीं स्थित था।

वेत्रवती—यह नगर वेत्रवती नदी के किनारे बसा था। वर्तमान बेतवा नदी ही वेत्रवती मानी जाती है।

वेणुवग्राम—यह कौशाम्बी के पास एक छोटा ग्राम था। वर्तमान समय में इलाहाबाद से ३० मील पश्चिम कोसम से थोड़ी दूर उत्तर-पूर्व स्थित बेनपुरवा को ही वेणुवग्राम माना जाता है।

§ नदी और जलाशय

बुद्धकाल में मध्यम देश में जो नदी, जलाशय और पुष्करिणी थीं, उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार जानना चाहिए:—

अचिरवती—इसे वर्तमान समय में राप्ती कहते हैं। यह भारत की पाँच महानदियों में एक थी। इसी के किनारे कोशल की राजधानी श्रावस्ती बसी थी।

अनोमा—इसी नदी के किनारे सिद्धार्थ कुमार ने प्रव्रज्या ग्रहण की थी। श्री कनिंघम ने गोरखपुर जिले की आमी नदी को अनोमा माना है और श्री कारलायल ने बस्ती जिले की कुड़वा नदी को। किन्तु इन पंक्तियों के लेखक की दृष्टि में देवरिया जिले की मझना नदी ही अनोमा नदी है। (देखो, कुशीनगर का इतिहास, प्रथम प्रकरण, पृष्ठ ५८)।

बाहुका—बुद्धकाल में यह एक पवित्र नदी मानी जाती थी। वर्तमान समय में इसे धुमेल नाम से पुकारते हैं। यह राप्ती की सहायक नदी है।

बागुमती—वर्तमान समय में इसे बागमती कहते हैं, जो नेपाल से होती हुई बिहार प्रान्त में आती है। इसी के किनारे काठमांडू नगर बसा है।

चम्पा—यह मगध और अंग जनपदों की सीमा पर बहती थी।

छद्दन्त—यह हिमालय में स्थित एक सरोवर था।

गंगा—यह भारत की प्रसिद्ध नदी है। इसी के किनारे हरिद्वार, प्रयाग और वाराणसी स्थित हैं।

गग्गरा पुष्करिणी—अंग जनपद में चम्पा नगर के पास थी। इसे रानी गग्गरा ने खोदवाया था।

हिरण्यवती—कुशीनारा और मल्लों का शालवन उपवत्तन हिरण्यवती नदी के किनारे स्थित थे। देवरिया जिले का सोनरा नाला ही हिरण्यवती नदी है, यह कुलकुला स्थान के पास खनुआ नदी से निकलता है। इसी को हिरना की नारी और कुसम्ही नारा भी कहते हैं, जो 'कुशीनारा' का अपभ्रंश है।

कोसिकी—यह गंगा की एक सहायक नदी है। वर्तमान समय में इसे कुसी नदी कहते हैं।

ककुत्था—यह नदी पावा और कुशीनारा के बीच स्थित थी। वर्तमान बाथी नदी ही ककुत्था मानी जाती है। (देखो, कुशीनगर का इतिहास, पृष्ठ २०)।

कद्दमदह—इस नदी के किनारे महाकात्यायन ने कुछ दिनों तक विहार किया था।

किमिकाला—यह नदी चालिका में थी। मेघिय स्थविर ने जन्तुग्राम में भिक्षाटन कर इस नदी के किनारे विहार किया था।

मंगल पुष्करिणी—इसी के किनारे बैठे हुए तथागत को राहुल के परिनिर्वाण का समाचार मिला था।

मही—यह भारत की पाँच बड़ी नदियों में से एक थी। बड़ी गण्डक को ही मही कहते हैं।

मन्दाकिनी—यह हिमालय में एक सरोवर था।

रोहिणी—यह शाक्य और कोलिय जनपद की सीमा पर बहती थी। वर्तमान समय में भी इसे रोहिणी ही कहते हैं। यह गोरखपुर के पास राप्ती में गिरती है।

सप्पिनी—यह नदी राजगृह के पास बहती थी। वर्तमान पञ्चान नदी ही सम्भवतः सप्पिनी नदी है।

सुतनु—इस नदी के किनारे आयुष्मान् अनुरुद्ध ने विहार किया था।

नेरञ्जरा—यह नदी उरुवेला प्रदेश में बहती थी। इसी के किनारे बुद्धगया स्थित है। इस समय इसे निलाजना नदी कहते हैं। निलाजना और मोहना नदियाँ मिलकर ही फल्गु नदी कही जाती है। निलाजना नदी हजारीबाग जिले के सिमेरिया नामक स्थान के पास से निकलती है।

सुन्दरिका—यह कोशल जनपद की एक नदी थी।

सुमागधा—यह राजगृह के पास एक पुष्करिणी थी।

सरभू—इस समय इसे सरयू कहते हैं। यह भारत की पाँच बड़ी नदियों में से एक थी। यह हिमालय से निकल कर बिहार प्रान्त में गंगा से मिलती है। इसी के किनारे अयोध्या नगरी बसी है।

सरस्वती—गंगा की भाँति यह एक पवित्र नदी है, जो शिवालिक पर्वत से निकल कर अम्बाला के आदि-बद्री में मैदान में उतरती है।

वेत्रवती—इसी नदी के किनारे वेत्रवती नगर था। इस समय इसे बेतवा नदी कहते हैं और इसी के किनारे भेलसा (प्राचीन विदिशा) नगर बसा हुआ है।

वैतरणी—इसे यम की नदी कहते हैं। इसमें नारकीय प्राणी दुःख भोगते हैं। (देखो, संयुत्त निकाय, पृष्ठ २२)।

यमुना—यह भारत की पाँच बड़ी नदियों में से एक थी। वर्तमान समय में भी इसे यमुना ही कहते हैं।

पर्वत और गुहा

चित्रकूट—इसका वर्णन अपदान में मिलता है। यह हिमालय से काफी दूर था। वर्तमान समय में बुन्देलखण्ड के कामतानाथ गिरि को ही चित्रकूट माना जाता है। चित्रकूट स्टेशन से ४ मील दूर स्थित है।

चोरपपात—यह राजगृह के पास एक पर्वत था।

गन्धमादन—यह हिमालय पर्वत के कैलाश का एक भाग है।

गयाशीर्ष—यह पर्वत गया में था। यहीं से सिद्धार्थ गौतम उरुवेला में गये थे और यहीं पर बुद्ध ने जटिलों को उपदेश दिया था।

गृध्रकूट—यह राजगृह का एक पर्वत था। इसका शिखर गृद्ध की भाँति था, इसीलिये इसे गृध्रकूट कहा जाता था। यहाँ पर भगवान् ने बहुत दिनों तक विहार किया और उपदेश दिया था।

हिमवन्त—हिमालय को ही हिमवन्त कहते हैं।

इन्द्रशाल गुहा—राजगृह के पास अम्बसण्ड नामक ब्राह्मण ग्राम से थोड़ी दूर पर वैदिक पर्वत में इन्द्रशाल गुहा थी।

इन्द्रकूट—यह भी राजगृह के पास था।

ऋषिगिलि—राजगृह का एक पर्वत।

कुररघर—यह अवन्ति जनपद में था। महाकात्यायन ने कुररघर पर्वत पर विहार किया था।

कालशिला—यह राजगृह में थी।

पाचीनवंश—यह राजगृह के वेपुल्ल पर्वत का पौराणिक नाम है।

पिप्फलि गुहा—यह राजगृह में थी।

सत्तपण्णी गुहा—प्रथम संगीति राजगृह की सप्तपर्णी गुहा में ही हुई थी।

सिनेरु—यह चारों महाद्वीपों के मध्य स्थित सर्वोच्च पर्वत है। मेरु और सुमेरु भी इसे ही कहते हैं।

श्वेत पर्वत—यह हिमालय में स्थित है। कैलाश को ही श्वेत पर्वत कहते हैं। (देखो, संयुत्त निकाय, पृष्ठ ६१)।

सुंसुमारगिरि—यह भर्ग प्रदेश में था। चुनार के आसपास की पहाड़ियाँ ही सुंसुमार गिरि हैं।

सप्पसोण्डिक पब्भार—राजगृह में।

[illegible]—[illegible] में।

वेभार—राजगृह में।

§ वाटिका और वन

आम्रवन—आम के घने बाग को आम्रवन कहते हैं। तीन आम्रवन प्रसिद्ध हैं। एक राजगृह में जीवक का आम्रवन था। दूसरा ककुत्था नदी के किनारे पावा और कुसीनारा के बीच; और तीसरा नालन्दा में लोहित्य ब्राह्मण का आम्रवन था।

अम्बपालिवन—यह वैशाली में था।

अम्बाटक वन—यह वज्जी जनपद में था। अम्बाटक वन के मच्छिका वनसण्ड में बहुत से भिक्षुओं के विहार करते समय चित्त गृहपति ने उनके पास आकर धर्म-चर्चा की थी।

अनूपिय-अम्बवन—यह मल्लराष्ट्र में अनूपिया में था।

अञ्जनवन—यह साकेत में था। अञ्जनवन मृगदाय में भगवान् ने विहार किया था।

अन्धवन—यह श्रावस्ती के पास था।

इच्छानङ्गल वन-सण्ड—यह कोशल जनपद में इच्छानंगल ब्राह्मण ग्राम के पास था।

जेतवन—यह श्रावस्ती के पास था। वर्तमान महेठ ही जेतवन है। खोदाई से शिलालेख आदि प्राप्त हो चुके हैं।

जातियवन—यह भद्दिय राज्य में था।

कप्पासिय वन-सण्ड—तीस भद्रवर्गीयों ने इसी वन-सण्ड में बुद्ध का दर्शन किया था।

कलन्दकनिवाप—यह राजगृह में था। गिलहरियों को अभय दान देने के कारण ही कलन्दक-निवाप कहा जाता था।

लट्ठिवन—लट्ठिवन में ही बिम्बिसार ने बुद्धधर्म को ग्रहण किया था।

लुम्बिनी वन—यहीं पर सिद्धार्थ गौतम का जन्म हुआ था। वर्तमान् रुम्मिनदेई ही प्राचीन लुम्बिनी है। यह गोरखपुर जिले के नौतनवा स्टेशन से १० मील पश्चिम नेपाल राज्य में स्थित है।

[illegible]—यह कपिलवस्तु से लेकर हिमालय के किनारे-किनारे वैशाली तक और वहाँ से समुद्रतट तक विस्तृत महावन था।

मद्दकुच्छि मृगदाय—यह राजगृह में था।

मोर निवाप—यह राजगृह की सुमागधा पुष्करिणी के किनारे स्थित था।

नागवन—यह वज्जी जनपद में हस्तिग्राम के पास था।

[illegible]—यह नालन्दा में था।

भेसकलावन—भर्ग प्रदेश के सुंसुमारगिरि में भेसकलावन मृगदाय था।

सिंसपावन—यह कोशल जनपद में सेतव्य नगर के पास उत्तर दिशा में था। कौशाम्बी और आलवी में भी सिंसपावन थे। सीसम के वन को ही सिंसपावन कहते हैं।

शीतवन—यह राजगृह में था।

उपवत्तन शालवन—यह मल्लराष्ट्र में हिरण्यवती नदी के तट कुसीनारा के पास उत्तर ओर था।

वेलुवन—यह राजगृह में था।

§ चैत्य और विहार

बुद्धकाल में जो प्रसिद्ध चैत्य और विहार थे, उनमें से वैशाली में चापाल चैत्य, सप्ताम्रक चैत्य,

सारन्दद चैत्य, उदयन चैत्य, गोतमक चैत्य और बहुपुत्रक चैत्य थे। कूटागार शाला, [illegible] और महावन विहार वैशाली में ही थे। राजगृह में [illegible], गिज्झोधाराम और परिब्राजकाराम थे। पाटलिपुत्र में अशोकाराम, शिज्झकावसथ और कुक्कुटाराम थे। कौशाम्बी में बदरिकाराम, घोषिताराम और कुक्कुटाराम थे। साकेत में कालकाराम था। उज्जैनी में दक्षिणगिरि विहार था। और श्रावस्ती में पूर्वाराम, सललागार और जेतवन महाविहार थे।

§ २. उत्तरापथ

उत्तरापथ की पूर्वी सीमा पर थूण ब्राह्मण ग्राम था और वह उत्तर में हिमालय तक फैला हुआ था। उत्तरापथ दो महा जनपदों में विभक्त था—गन्धार और कम्बोज। पूरा पंजाब और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त उत्तरापथ में ही पड़ता था।

§ गन्धार

गन्धार जनपद की राजधानी तक्षशिला नगर था। कश्मीर और तक्षशिला के प्रदेश इसके अन्तर्गत थे। वर्तमान पेशावर और रावलपिण्डी के जिले गन्धार जनपद में पड़ते थे। तीसरी संगीति के पश्चात् गन्धार जनपद में बौद्धधर्म के प्रचारार्थ भिक्षु भेजे गये थे। तक्षशिला नगर वाराणसी से २००० योजन दूर था। यह एक प्रधान व्यापारिक केन्द्र था। यहाँ दूर-दूर प्रदेशों से व्यापारी आते थे। बुद्धकाल में पुक्कुसाति तक्षशिला का राजा था। वह मैत्री-भाव के लिए मगध नरेश को पत्र और उपहार भेजा करता था।

§ कम्बोज

कम्बोज जनपद का विस्तृत वर्णन उपलब्ध नहीं है। यह पश्चिमोत्तर भारत में पड़ता था। लुडर के लेख से केवल नन्दिपुर नगर का ही कम्बोज जनपद में नाम मिला है। हुएनसांग के वर्णन और अशोक-शिलालेख के आधार पर माना जाता है कि वर्तमान राजौरी पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त का हजारा जिला कम्बोज जनपद था। कम्बोज घोड़ों का उत्पत्ति-स्थान माना जाता था। अशोक-काल में कम्बोज में योनक महारक्षित स्थविर ने धर्म-प्रचार किया था।

§ नगर और ग्राम

गन्धार-कम्बोज जनपद में कुछ प्रसिद्ध नगर और ग्राम थे। उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है:—

अरिट्ठपुर—यह शिवि जनपद की राजधानी थी। पंजाब का वर्तमान शोरकोट प्रदेश ही शिवि जनपद माना गया है। इस जनपद में चित्तौड़ के पास जेतुत्तर नामक एक और भी नगर था।

कश्मीर—कश्मीर राज्य गन्धार जनपद के अन्तर्गत था। अशोक-काल में यहाँ बुद्धधर्म का प्रचार हुआ था।

तक्षशिला—यह गन्धार जनपद की राजधानी थी। यह प्राचीन भारत का प्रधान शिक्षा-केन्द्र था। जीवक, बन्धुल मल्ल, प्रसेनजित्, महालि आदि की शिक्षा तक्षशिला में ही हुई थी। वर्तमान समय में पंजाब के रावलपिण्डी जिले में तक्षशिला के भग्नावशेष विद्यमान हैं।

सागल—यह मद्र देश की राजधानी था। वर्तमान समय में इसे स्यालकोट कहते हैं और यह पंजाब में पड़ता है। कुशावती के राजकुमार कुस का विवाह मद्रराजकुमारी प्रभावती से हुआ था। प्राचीन काल में मद्र की स्त्रियाँ अत्यधिक सुन्दरी मानी जाती थीं और प्रायः लोग मद्र-कन्याओं से ही विवाह करना चाहते थे।

§ ३. अपरान्तक

अपरान्तक प्रदेश में वर्तमान सिन्ध, पश्चिमी राजपूताना, गुजरात और नर्मदा के बेसिन के कुछ भाग पड़ते हैं। सिन्ध, गुजरात और वलभी तीन राज्य अपरान्तक के अन्तर्गत थे। अपरान्तक की राजधानी सुप्पारक नगर में थी। काठियावाड़, भड़ौच, महाराष्ट्र, नासिक, सूरत और लाट राष्ट्र अपरान्तक प्रदेश में ही पड़ते थे।

§ नगर और ग्राम

भरुकच्छ—यह समुद्र के किनारे स्थित एक बन्दरगाह था। व्यापारी यहाँ से नौका द्वारा विदेशों के लिये प्रस्थान करते थे। लंका, यवन देश आदि में जाने के लिये यहीं नौका मिलती थी। सुवर्ण-भूमि (लोअर बर्मा) को भी व्यापारी यहाँ से जाया करते थे। काठियावाड़ प्रदेश का वर्तमान भड़ौच ही प्राचीन भरुकच्छ है।

महाराष्ट्र—वर्तमान मराठा प्रदेश ही महाराष्ट्र है। यह अपर गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच फैला हुआ है। यहाँ पर धर्म प्रचारार्थ महाधर्मरक्षित स्थविर गये थे।

सोवीर—सोवीर राज्य की राजधानी रोरुक नगरी थी। वर्तमान समय में गुजरात प्रदेश के ईडर को ही सोवीर माना जाता है।

सुप्पारक—यह भी एक बन्दरगाह था। वर्तमान सोपारा ही सुप्पारक है। यह बम्बई से ३७ मील उत्तर और बसीन से ४ मील उत्तर-पश्चिम थाना जिले में स्थित है।

सुरट्ठ—यह एक राष्ट्र था, जिससे होकर सातोदिका नदी बहती थी। वर्तमान काठियावाड़ और गुजरात का अन्य भाग ही सुरट्ठ (=सुराष्ट्र) माना जाता है।

लाटरट्ठ—इसे ही लाटराष्ट्र भी कहते हैं। मध्य और दक्षिण गुजरात लाटराष्ट्र माना जाता है।

§ ४. दक्षिणापथ

दक्षिणापथ की उत्तरी सीमा सल्लवतिक निगम था। आचार्य बुद्धघोष के मतानुसार गंगा से दक्षिण और गोदावरी से उत्तर का सारा विस्तृत प्रदेश दक्षिणापथ या दक्षिण जनपद कहा जाता था। ऐसा ज्ञात पड़ता है कि बुद्धकाल में गोदावरी से दक्षिण के प्रदेशों का उत्तर भारतवासियों को ज्ञान न था। यद्यपि लंका को जानते थे, किन्तु वहाँ समुद्र मार्ग से ही आना-जाना होता था। गोदावरी से दक्षिण प्रदेशों का पूर्ण-परिचय अशोककाल से मिलता है।

अस्सक और अवन्ति महाजनपद भी दक्षिणापथ में गिने जाते थे। महागोविन्द सुत्त के अनुसार अवन्ति की राजधानी माहिष्मती थी जो दक्षिणापथ में पड़ती थी। इसीलिये अवन्ति को 'अवन्ति दक्षिणापथ' कहा जाता था। अस्सक राज्य गोदावरी के किनारे था और यह भी दक्षिणापथ के अन्तर्गत था। महाकोसल नामक जनपद भी दक्षिणापथ में था, जिसका वर्णन प्रयाग के अशोक-स्तम्भ पर है। इसे दक्षिण कोसल भी कहा जाता था। वर्तमान बिलासपुर, रायपुर और सम्भलपुर के जिले तथा गंजाम के कुछ भाग दक्षिण-कोसल के अन्तर्गत हैं।

§ नगर और ग्राम

धञ्ञकटक—इस नगर में पूर्वकाल में बोधिसत्व उत्पन्न हुए थे। यह आधुनिक समय में धरणीकोट नदी के तट अमरावती नाम से विद्यमान है। इसके ध्वंसित स्तूप बहुत प्रसिद्ध हैं।

[illegible] भोजपुत्र ऋषि भोजराष्ट्र के रहने वाले थे। अमरावती जिले के एलिचपुर के दक्षिण-पूर्व ४ मील की दूरी पर स्थित उम्मक को भोज माना जाता है।

दमिल रट्ठ—द्राविड़ राष्ट्र को ही दमिलरट्ठ कहते हैं। इस राष्ट्र का कावेरी पट्टन बन्दरगाह बड़ा प्रसिद्ध नगर था, जो मालाबार के आसपास समुद्र के किनारे स्थित था।

कालिङ्ग—कलिंग राष्ट्र इतिहास-प्रसिद्ध कलिंग ही है। इसकी राजधानी दन्तपुर नगरी थी।

वनवासी—रक्षित स्थविर वनवासी में धर्म-प्रचारार्थ भेजे गये थे। उत्तरी कनारा ही वनवासी कहा जाता था। यह तुंगभद्रा और वरदा के मध्य स्थित था। आधुनिक मैसूर के उत्तरी भाग को वनवासी जानना चाहिए।

§ ५. प्राच्य

मध्यप्रदेश के पूरब प्राच्य देश था। इसकी पश्चिमी सीमा पर कजंगल निगम, अंग और मगध जनपद थे। प्राच्य प्रदेश में वंग जनपद पड़ता था। वंगहार जनपद भी इसका ही नाम था। प्रसिद्ध ताम्रलिप्ति बन्दरगाह प्राच्य प्रदेश में ही था, जहाँ से सुवर्ण भूमि, जावा, लंका आदि के लिए व्यापारी प्रस्थान करते थे। अशोक ने बोधिवृक्ष को इसी बन्दरगाह से लंका भेजा था। वर्तमान समय में मिदनापुर जिले का तामलुक ही प्राचीन ताम्रलिप्ति है। यहाँ एक बहुत बड़ा बौद्ध विश्वविद्यालय भी था। लंका में प्रथम भारतीय उपनिवेश स्थापित करने वाला राजा विजय वंग राष्ट्र के राजा सिंहबाहु का पुत्र था। सम्भवतः उपसेन वंगन्तपुत्र स्थविर वंगराष्ट्र के ही रहने वाले थे। वंग राष्ट्र का वर्धमानपुर भी प्रसिद्ध नगर था। शिलालेखों में वर्धमानभुक्ति के नाम से इसका उल्लेख है। आधुनिक बर्दवान ही वर्धमानपुर माना जाता है।

संक्षेप में बुद्धकालीन भारत का यही भौगोलिक परिचय है।

सारनाथ, बनारस

भिक्षु धर्मरक्षित

सुत्त (सूत्र)-सूची

पहला खण्ड

सगाथा वर्ग

पहला परिच्छेद

१. देवता संयुत्त

पहला भाग : नल वर्ग

दूसरा भाग : नन्दन वर्ग

तीसरा भाग : शक्ति वर्ग

चौथा भाग : सतुल्लपकायिक वर्ग

पाँचवाँ भाग : जलता वर्ग

छठाँ भाग : जरा वर्ग

दूसरा परिच्छेद

२. देवपुत्त संयुत्त

दूसरा भाग : अनाथपिण्डिक वर्ग

तीसरा भाग : नानातीर्थ वर्ग

तीसरा परिच्छेद

३. कोसल संयुत्त

पहला भाग : प्रथम वर्ग

चौथा परिच्छेद

४. मार संयुत्त

दूसरा भाग : द्वितीय वर्ग

तीसरा भाग : तृतीय वर्ग

पाँचवाँ परिच्छेद

५. भिक्षुणी संयुत्त

छठाँ परिच्छेद

६. ब्रह्म संयुत्त

पहला भाग : प्रथम वर्ग

दूसरा भाग : द्वितीय वर्ग

सातवाँ परिच्छेद

७. ब्राह्मण संयुत्त

पहला भाग : अर्हत् वर्ग

दूसरा भाग : उपासक वर्ग

आठवाँ परिच्छेद

८. वङ्गीश संयुत्त

नवाँ परिच्छेद

९. वन संयुत्त

दसवाँ परिच्छेद

१०. यक्ष संयुत्त

ग्यारहवाँ परिच्छेद

११. शक्र संयुत्त

पहला भाग : प्रथम वर्ग

दूसरा खण्ड

निदान वर्ग

पहला परिच्छेद

१२. अभिसमय संयुत्त

दसवाँ भाग : अभिसमय वर्ग

दूसरा परिच्छेद

१३. धातु संयुत्त

पहला भाग : नानात्व वर्ग

दूसरा भाग : द्वितीय वर्ग

तीसरा परिच्छेद

१४. अनमतग्ग संयुत्त

चौथा परिच्छेद

१५. काश्यप संयुत्त

पाँचवाँ परिच्छेद

१६. लाभसत्कार संयुत्त

छठाँ परिच्छेद

१७. राहुल संयुत्त

सातवाँ परिच्छेद

१८. लक्षण संयुत्त

आठवाँ परिच्छेद

१९. औपम्य संयुत्त

नवाँ परिच्छेद

२०. भिक्षु संयुत्त

तीसरा खण्ड

खन्ध वर्ग

पहला परिच्छेद

२१. स्कन्ध संयुत्त

मूल पण्णासक

दूसरा परिच्छेद

मज्झिम पण्णासक

तीसरा परिच्छेद

चूळ पण्णासक

दूसरा परिच्छेद

२२. राध संयुत्त

तीसरा परिच्छेद

२३. दृष्टि संयुत्त

चौथा परिच्छेद

२४. ओक्कन्त संयुत्त

पाँचवाँ परिच्छेद

२५. उत्पाद संयुत्त

छठाँ परिच्छेद

२६. क्लेश संयुत्त

सातवाँ परिच्छेद

२७. सारिपुत्र संयुत्त

आठवाँ परिच्छेद

२८. नाग-संयुत्त

नवाँ परिच्छेद

२९. सुपर्ण-संयुत

दसवाँ परिच्छेद

३०. गन्धर्वकाय-संयुत

ग्यारहवाँ परिच्छेद

३१. बलाहक-संयुत

बारहवाँ परिच्छेद

३२. वच्छगोत्त-संयुत

तेरहवाँ परिच्छेद

३३. ध्यान-संयुत्त

संयुत्त-सूची

खण्ड-सूची

ग्रन्थ-विषय-सूची

पहला खण्ड

सगाथा वर्ग

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स

संयुत्त-निकाय

पहला भाग

नल वर्ग

§ १. ओघतरण सुत्त (१. १. १)

तृष्णा की बाढ़ से पार जाना

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे।

तब, कोई देवता रात बीतने पर अपनी चमक से सारे **जेतवन** को चमकाते हुये जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया।

एक ओर खड़ा हो वह देवता भगवान् से बोला:— भगवान्! बाढ़ (=ओघ) को भला, आपने कैसे पार किया।[1]

आवुस! मैंने बिना रुकते और बिना कोशिश करते बाढ़ को पार किया।[2]

भगवान्! सो कैसे आपने बिना रुकते और बिना कोशिश करते बाढ़ को पार किया?

आवुस! यदि कहीं रुकने लगता, तो डूब जाता; यदि कोशिश करने लगता, तो बह जाता। आवुस! इसी तरह मैंने बिना रुकते और बिना कोशिश करते बाढ़ को पार किया।

[देवता —]

अहो! चिरकाल के बाद देखता हूँ,
ब्राह्मण को, जिसने निर्वाण पा लिया है;
बिना रुकते और बिना कोशिश करते,
जिसने संसार की तृष्णा[3] को पार कर लिया है॥

---

१. बाढ़ चार हैं—**काम** की बाढ़, **भव** की बाढ़, **मिथ्या-दृष्टि** की बाढ़ और **अविद्या** की बाढ़। पाँच काम गुणों (=रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श) के प्रति तृष्णा का होना 'काम की बाढ़' है। **रूप और अरूप** (देवताओं) के प्रति तृष्णा का होना भव की बाढ़ है। जो बासठ (देखो—दीघनिकाय, ब्रह्मजालसुत्त) मिथ्या धारणाएँ हैं, उन्हें 'दृष्टि की बाढ़' कहते हैं। चार आर्य सत्यों के ज्ञान का न होना 'अविद्या की बाढ़' है।

२. बौद्धधर्म दो अन्तों का वर्जन कर मध्यम मार्ग के आचरण की शिक्षा देता है। कहीं रुक रहने से कामभोग और बहुत कोशिश करने से आत्मपीड़न वाले तपश्चरण का निर्देश किया गया है। बुद्धने इन दोनों अन्तों को त्याग मध्यम मार्ग से बुद्धत्व का लाभ किया।

३. **विसत्तिकं**—"रूपादि आलम्बनों में आसक्त-विसक्त होने के कारण तृष्णा विसत्तिका कही जाती है।"—अट्ठकथा।

उस देवता ने यह कहा। शास्ता (=बुद्ध) ने स्वीकार किया।

तब, वह देवता शास्ता की स्वीकृति को जान भगवान् को अभिवादन और प्रदक्षिणा कर वहीं पर अन्तर्धान हो गया।

§ २. निमोक्ख सुत्त (१. १. २)

मोक्ष

श्रावस्ती में।

...वह देवता भगवान् से बोला:— भगवान्! जीवों के निर्मोक्ष=प्रमोक्ष=विवेक[1] को क्या आप जानते हैं?

आवुस! जीवों के निर्मोक्ष=प्रमोक्ष=विवेक को मैं जानता हूँ।

भगवान्! सो कैसे आप जीवों के निर्मोक्ष=प्रमोक्ष=विवेक को जानते हैं?

> तृष्णामूलक कर्मबन्धन के नष्ट हो जाने से,
> संज्ञा और विज्ञान के भी मिट जाने से,
> वेदनाओं का जो निरुद्ध तथा शान्त हो जाना है।
> आवुस! मैं ऐसा जानता हूँ,
> जीवों का निर्मोक्ष,
> प्रमोक्ष और विवेक॥

§ ३. उपनेय्य सुत्त (१. १. ३)

सांसारिक भोग का त्याग

...वह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

> जिन्दगी बीत रही है, उम्र थोड़ी है;
> बुढ़ापा से बचने का कोई उपाय नहीं।
> मृत्यु के इस भय को देखते हुये,
> सुख देनेवाले पुण्यों को करे॥

[भगवान्—]

> जिन्दगी बीत रही है, उम्र थोड़ी है;
> बुढ़ापे से बचने का कोई उपाय नहीं।
> मृत्यु के इस भय को देखते हुये,
> शान्ति चाहनेवाला सांसारिक भोग छोड़ दे॥

§ ४. अच्चेन्ति सुत्त (१. १. ४)

सांसारिक भोग का त्याग

...वह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

> वक्त गुजर रहा है, रातें बीत रही हैं;
> जिन्दगी के जमाने एक पर एक निकल रहे हैं;

१. "तीनों का अर्थ निर्वाण ही है। निर्वाण को पाकर सत्व निर्मुक्त, प्रमुक्त, विविक्त हो जाते हैं। इसलिए यहाँ निर्मोक्ष, प्रमोक्ष और विवेक एक ही चीज है।" —अट्ठकथा।

मृत्यु के इस भय को देखते हुये।
सुख देनेवाले पुण्यों को करे॥

[भगवान्—]

वक्त गुजर रहा है, रातें बीत रही हैं;
जिन्दगी के जमाने एक पर एक निकल रहे हैं।
मृत्यु के इस भय को देखते हुये,
शान्ति चाहनेवाला सांसारिक भोग छोड़ दे।

§ ५. कतिछिन्द सुत्त (१. १. ५)

पाँच को काटे

···वह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

कितने को काटे, कितने को छोड़े ?
कितने और अधिक का अभ्यास करे ?
कितने संगों को पार कर कोई भिक्षु,
"बाढ़ पार कर गया" कहा जाता है ?

[भगवान्—]

पाँच को काटे, पाँच को छोड़ दे,
पाँच और अधिक का अभ्यास करे,
पाँच संगों को पार कर भिक्षु,[1]
"बाढ़ पार कर गया" कहा जाता है॥

§ ६. जागर सुत्त (१. १. ६)

पाँच से शुद्धि

···वह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला :—

जागे हुओं में कितने सोये हैं ?
सोये हुओं में कितने जागे हैं ?
कितने से मैल लग जाता है ?
कितने से परिशुद्ध हो जाता है ?

[भगवान्—]

जागे हुओं में पाँच सोये हैं,
सोये हुओं में पाँच जागे हैं,

---

१. "पाँच अधर-भागीय बन्धन (संयोजन) को काटे: पाँच ऊर्ध्व-भागीय बन्धन छोड़े: यहाँ काटने और छोड़ने का एक ही अर्थ है...।

"···श्रद्धा आदि पाँच इन्द्रियों का अभ्यास करे। पाँच संग ये हैं—राग, द्वेष, मोह, मान, दृष्टि।"—अट्ठकथा।

पाँच से मैल लग जाता है,
पाँच से परिशुद्ध हो जाता है[१] ॥

§ ७. अप्पटिविदित सुत्त (१. १. ७)

सत्यंश बुद्ध

...वह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

जिनने धर्मों को (=आर्य सत्य) नहीं जाना,
जो जैसे तैसे के मत में पड़कर बहक गये हैं।
सोये हुये वे नहीं जागते हैं,
उनके जागने का अब समय आ गया ॥

[भगवान्—]

जिनने धर्मों को पूरा पूरा जान लिया,
जो जैसे तैसे के मत में पड़कर नहीं बहक गये।
वे सम्बुद्ध हैं, सब कुछ जानते हैं,
विषम स्थान में भी उनका आचरण सम रहता है ॥

§ ८. सुसम्मुट्ठ सुत्त (१. १. ८)

सत्यंश बुद्ध

...वह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

जो धर्मों के विषय में बिल्कुल मूढ़ हैं,
जैसे तैसे के मत में पड़कर बहक गये हैं।
सोये हुये वे नहीं जागते,
उनके जागने का अब समय आ गया ॥

[भगवान्—]

जो धर्मों के विषय में मूढ़ नहीं हैं,
जो जैसे तैसे के मत में पड़कर नहीं बहक गये ॥
वे सम्बुद्ध हैं, सब कुछ जानते हैं,
विषम स्थान में भी उनका आचरण सम रहता है ।

§ ९. नमानकाम सुत्त (१. १. ९)

मृत्यु के राज्य से पार

...वह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

अभिमान चाहनेवाला अपना दमन नहीं कर सकता,

---

१. श्रद्धा आदि पाँच इन्द्रियों के जागे रहते पाँच नीवरण सोये रहते हैं'''इसी तरह, पाँच नीवरणों के सोये रहते पाँच इन्द्रियाँ जगी रहती हैं'''पाँच नीवरणों (=कामच्छन्द, व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, [illegible], विचिकित्सा) से मैल लग जाता है।'''पाँच इन्द्रियों (=श्रद्धा, वीर्य, प्रज्ञा, स्मृति, समाधि) से परिशुद्ध हो जाता है।''—अट्ठकथा।

बिना समाधिस्थ हुए चार मार्गों का ज्ञान[1] भी नहीं हो सकता,
जंगल में अकेला प्रमाद के साथ विहार करते हुये,
मृत्यु के राज्य को पार नहीं कर सकता ॥

[भगवान्—]

मान को छोड़, अच्छी तरह समाधिस्थ,
प्रसन्न चित्त वाला, सर्वथा विमुक्त हो,
जंगल में अकेला सावधान हो विहार करते हुये,
मृत्यु के राज्य को पार कर जाता है ॥

§ १०. अरञ्ञ सुत्त (१. १. १०)

चेहरा खिला रहता है

···वह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला :—

जंगल में विहार करने वाले, शान्त, ब्रह्मचारी,
तथा एक बार ही भोजन करनेवालों का चेहरा कैसे खिला रहता है ?

[भगवान्—]

बीते हुए का वे शोक नहीं करते,
आनेवाले पर बड़े मनसूबे नहीं बाँधते,
जो मौजूद है उसी से गुजारा करते हैं;
इसी से उनका चेहरा खिला रहता है ॥
आने वाले पर बड़े मनसूबे बाँध,
बीते हुए का शोक करते रह,
मूर्ख लोग फीके पड़े रहते हैं,
हरा नरकट जैसे कट जाने पर ॥

नल वर्ग समाप्त

---

१. **मोनं**—"चार आर्य-सत्य का ज्ञान; उसे जो धारण करे (=मुनाति) वह मोन।"—अट्ठकथा।

दूसरा भाग

नन्दन वर्ग

§ १. नन्दन सुत्त (१. २. १)

नन्दन-वन

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—"भिक्षुओ!" "भदन्त!" कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले :—

भिक्षुओ! बहुत पहले, त्रयस्त्रिंश लोक का कोई देवता, नन्दन-वन में अप्सराओं से हिल मिलकर दिव्य पाँच कामगुणों का भोग विलास करते हुये, उस समय यह गाथा बोला :—

ये सुख नहीं जान सकते हैं, जिनने नन्दन को नहीं देखा।
त्रिदश लोक के यशस्वी देवताओं के आवास को॥

भिक्षुओ! उसके ऐसा कहने पर किसी दूसरे देवता ने उसकी बात में लगाकर यह गाथा कही—

मूर्ख! तुम नहीं जानते,
जैसा अर्हत् लोग बताते हैं।
सभी संस्कार अनित्य हैं,
उत्पन्न होना और लय हो जाना उनका स्वभाव है,
पैदा होकर वे गुज़र जाते हैं,
उनका बिल्कुल शान्त हो जाना ही परम-पद है॥

§ २. नन्दति सुत्त (१. २. २)

चिन्ता-रहित

··· वह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला :—

पुत्रोंवाला पुत्रों से आनन्द करता है,
वैसे ही, गौवोंवाला गौवों से आनन्द करता है,
सांसारिक वस्तुओं से ही मनुष्य को आराम होता है,
जिसे कोई वस्तु नहीं, उसे आनन्द भी नहीं॥

[भगवान्—]

पुत्रोंवाला पुत्रों की चिन्ता में रहता है,
वैसे ही, गौवोंवाला गौवोंकी चिन्ता में रहता है,

सांसारिक वस्तुओं से ही मनुष्य को चिन्ता होती है,
जिसे कोई वस्तु नहीं उसे चिन्ता भी नहीं।

§ ३. नत्थि पुत्तसम सुत्त (१. २. ३)

अपने से कोई प्यारा नहीं

...वह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला :—

पुत्र के ऐसा कुछ प्यारा नहीं,
गौओं के ऐसा कुछ धन नहीं,
सूर्य के ऐसा कोई प्रकाश नहीं,
समुद्र सबसे महान् जलराशि है॥

[भगवान्—]

अपने के ऐसा कुछ प्यारा नहीं,
धान्य के ऐसा कुछ धन नहीं,
प्रज्ञा के ऐसा कोई प्रकाश नहीं,
वृष्टि सबसे महान् जलराशि है॥

§ ४. खत्तिय सुत्त (१. २. ४)

बुद्ध श्रेष्ठ हैं

मनुष्यों में क्षत्रिय श्रेष्ठ है,
चौपायों में बलिवर्द,
भार्याओं में कुमारी श्रेष्ठ है,
और, पुत्रों में वह जो जेठा है॥

[भगवान्—]

सम्बुद्ध मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं,
अच्छी तरह सिखाया गया जानवर चौपायों में,
सेवा करने वाली भार्याओं में श्रेष्ठ है,
और, पुत्रों में वह जो कहना माने॥

§ ५. सन्तिकाय सुत्त (१. २. ५)

शान्ति से आनन्द

दुपहरिया के समय,
पक्षियों के (छिप कर) बैठ रहने पर,
सारा जंगल साँय-साँय करता है;
उससे मुझे बड़ा डर लगता है॥

[भगवान्—]

दुपहरिया के समय,
पक्षियों के बैठ रहने पर,

सारा जंगल झाँव-झाँव करता है;
उससे मुझे बड़ा आनन्द आता है ॥

§ ६. निद्दातन्दी सुत्त (१. २. ६)

निद्रा और तन्द्रा का त्याग

निद्रा, तन्द्रा, जँभाई लेना,
जी नहीं लगना, भोजन के बाद नशा सा आ जाना;
इनसे संसार के जीवों को,
आर्य-मार्ग का साक्षात्कार नहीं होता ॥

[भगवान्—]
निद्रा, तन्द्रा, जँभाई लेना,
जी नहीं लगना, भोजन के बाद नशा सा आ जाना;
उत्साह-पूर्वक इन्हें दबा देने से,
आर्य-मार्ग शुद्ध हो जाता है ॥

§ ७. कुम्म सुत्त (१. २. ७)

कछुआ के समान रहना

करना कठिन है, सहना भी बड़ा कठिन है,
जो मूर्ख है उससे श्रमण-भाव का पालना भी;
यहाँ बाधाएँ बहुत हैं,
जहाँ मूर्ख लोग हार जाते हैं ॥

[भगवान्—]
कितने दिनों तक श्रमण-भाव को पाले,
यदि अपने चित्त को वश में नहीं ला सकता;
पद-पद में फिसल जायगा,
इच्छाओं के अधीन रहनेवाला ॥
कछुआ जैसे अंगों को अपनी खोपड़ी में,
वैसे ही भिक्षु अपने में ही मन के वितर्कों को समेट,
स्वतन्त्र, किसी को कष्ट न देते हुए,
शान्त हो गया, किसी की भी निन्दा नहीं करता है ॥

§ ८. हिरि सुत्त (१. २. ८)

पाप से लजाना

संसार में बहुत कम ऐसे पुरुष हैं,
जो पाप कर्म करने से लजाते हैं;
वे निन्दा से वैसे ही चौकें रहते हैं,
जैसे सिखाया हुआ घोड़ा चाबुक से ॥

[भगवान्—]

धीरे से भी पाप करने से जो लजाते हैं,
सदा स्मृतिमान् होकर विचरण करते हैं,
वे दुःखों का अन्त पाकर,
विषम स्थान में भी सम आचरण करते हैं ॥

§ ९. कुटिसुत्त (१. २. ९)

झोपड़ी का भी त्याग

क्या आपको कोई झोपड़ी नहीं ?
क्या आपको कोई घोंसला नहीं ?
क्या आपको कोई बाल-बच्चे (=सन्तान) नहीं ?
क्या बन्धन से छूटे हुए हैं ?

[भगवान्—]

नहीं, मुझे कोई झोपड़ी नहीं,
नहीं, मुझे कोई घोंसला नहीं,
नहीं, मुझे कोई बाल-बच्चे (=सन्तान) नहीं,
हाँ, मैं बन्धन से छूटा हुआ हूँ ॥

[देवता—]

आपकी झोपड़ी मैं किसे कहता हूँ ?
आपका घोंसला मैं किसे कहता हूँ ?
आपकी सन्तान मैं किसे कहता हूँ ?
आपका बन्धन मैं किसे कहता हूँ ?

[भगवान्—]

माता को मान कर तुम झोपड़ी कहते हो,
भार्या को मान कर तुम घोंसला कहते हो,
पुत्रों को मानकर तुम सन्तान कहते हो,
तृष्णा को मानकर तुम बन्धन कहते हो ॥

[देवता—]

ठीक है, आपको कोई झोपड़ी नहीं,
ठीक है, आपको कोई घोंसला नहीं,
ठीक है, आपको कोई सन्तान नहीं,
आप बन्धन से सचमुच मुक्त हैं ॥

§ १०. समिद्धि सुत्त (१. २. १०)

काल अज्ञात है, काम-भोगों का त्याग

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के तपोदाराम में विहार कर रहे थे ।

तब, आयुष्मान् समृद्धि रात के भिनसारे उठकर गात धोने के लिए जहाँ तपोदा (=गर्म-कुण्ड) है, वहाँ गये। तपोदा में गात को धो एक ही चीवर पहने हुए बाहर खड़े गात सुखा रहे थे।

तब, कोई देवता रात बीतने पर अपनी चमक से सारे तपोदा को चमकाते हुए जहाँ आयुष्मान् समृद्धि थे वहाँ आया। आकर, आकाश में खड़ा हो यह गाथा बोला :—

भिक्षु, बिना भोग[1] किये आप भिक्षाटन करते हैं,
भोग करके आप भिक्षाटन नहीं करते हैं,
भिक्षुजी, भोग करके आप भिक्षाटन करें,
काल को ऐसे ही मत गवाँयें ॥

[समृद्धि—]

काल[2] को मैं नहीं जानता,
काल तो अज्ञात है, इसका पता नहीं,
इसीसे, बिना भोग किए भिक्षा करता हूँ,
मेरा समय नहीं खो रहा है ॥

तब उस देवताने पृथ्वी पर उतर कर आयुष्मान् समृद्धि को कहा—भिक्षुजी ! आपने बड़ी छोटी अवस्था में प्रव्रज्या ले ली है। आपकी तो अभी कुमारावस्था ही है। आपके केश काले हैं। इस चढ़ती उम्र में आपने संसार के कामों का स्वाद तक नहीं लिया है। भिक्षुजी ! आप अभी लोक के ऐश-आराम करें। सामने की बात को छोड़कर मुद्दत में होनेवाली के पीछे मत दौड़ें।

नहीं आवुस ! मैं सामने की बात को छोड़कर मुद्दत में होनेवाली के पीछे नहीं दौड़ता हूँ। आवुस, मैं तो उल्टे मुद्दत में होनेवाली बात को छोड़ सामने की बात के फेर में लगा हूँ। भगवान् ने तो कहा है—सांसारिक काम-भोग मुद्दत की चीज हैं; उनके फेर में पड़ने से बड़ा दुःख उठाना पड़ता है, बड़ी परेशानी होती है; उनमें बड़े ऐब हैं। और यह धर्म देखते ही देखते फल देनेवाला है (=सांदृष्टिक), बिना किसी देरी के; जो चाहे इस धर्म को अजमा सकता है; यह धर्म परम-पद तक ले जानेवाला है (=औपनयिको); विज्ञ लोग इस धर्म को अपने ही आप अनुभव करते हैं।

भिक्षुजी ! भगवान् ने सांसारिक काम-भोग को मुद्दत की चीज कैसे बताई है ? उनके फेर में पड़ने से कैसे बड़ा दुःख उठाना पड़ता है, कैसे बड़ी परेशानी होती है ? उनमें कैसे बड़े-बड़े ऐब हैं ? धर्म देखते ही देखते कैसे फल देता है ?……धर्म कैसे परम-पद तक ले जाता है ? विज्ञ लोग धर्म को अपने ही आप कैसे अनुभव करते हैं ?

आवुस ! मैं अभी नया तुरत ही प्रव्रजित हुआ हूँ। इस धर्म-विनय को मैं विस्तार-पूर्वक नहीं बता सकता। वह भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध राजगृह के तपोदाराम में विहार कर रहे हैं। सो, उनके पास जाकर इस बात को पूछें ; जैसा भगवान् बतावें वैसा ही समझें।

भिक्षुजी ! हम जैसों के लिये भगवान् से मिलना आसान नहीं। दूसरे बड़े-बड़े तेजस्वी देवता उन्हें घेरे खड़े रहते हैं। भिक्षुजी ! यदि आप ही भगवान् के पास जाकर इस बात को पूछें तो अलबत्ता मैं धर्म-देशना सुनने के लिये आ सकता हूँ।

"आवुस, बहुत अच्छा" कह आयुष्मान् समृद्धि ने उस देवता को उत्तर दिया; फिर, जहाँ भगवान् थे वहाँ जा अभिवादन करके एक ओर बैठ गये।

१. "पाँच कामगुणों का भोग"। —अट्ठकथा।
२. "मृत्यु काल के विषय में कहा है"। —अट्ठकथा।

एक ओर बैठ आयुष्मान् समृद्धि भगवान् से बोले :— भन्ते ! मैं रात के भिनसारे उठकर गात धोने के लिये जहाँ तपोदा है वहाँ गया। तपोदा में गात धो एक ही चीवर पहने हुये बाहर खड़े-खड़े गात सुखा रहा था। भन्ते ! तब, कोई देवता रात बीतने पर अपनी चमक से सारे तपोदा को चमकाते हुये जहाँ मैं था वहाँ आया। आकर आकाश में खड़ा हो यह गाथा बोला :—

> भिक्षु, बिना भोग किये आप भिक्षाटन करते हैं,
> भोग करके आप भिक्षाटन नहीं करते।
> भिक्षुजी ! भोग करके आप भिक्षाटन करें,
> काल को ऐसे ही मत गवाँवें ॥

भन्ते ! उसके ऐसा कहने पर मैंने देवता को इस गाथा में उत्तर दिया :—

> काल को मैं नहीं जानता,
> काल तो अज्ञात है, इसका पता नहीं;
> इसीसे, बिना भोग किये भिक्षा करता हूँ,
> मेरा समय नहीं खो रहा है ॥

भन्ते, तब उस देवता ने पृथ्वी पर उतर कर मुझे कहा—भिक्षुजी ! आपने बड़ी छोटी अवस्था में प्रव्रज्या ले ली है। आपकी तो अभी कुमारावस्था ही है। आपके केश अभी काले हैं। इस चढ़ती उम्र में आपने संसार के कामों का स्वाद तक नहीं लिया है। भिक्षुजी ! आप अभी लोक के ऐश-आराम करें। सामने की बात को छोड़कर मुद्दत में होनेवाली के पीछे मत दौड़ें।

भन्ते ! उसके ऐसा कहने पर मैंने यह उत्तर दिया—नहीं आवुस ! मैं सामने की बात को छोड़ कर मुद्दत में होनेवाली के पीछे नहीं दौड़ता हूँ। आवुस ! मैं तो उलटे मुद्दत में होनेवाली बात को छोड़ सामने की बात के फेर में लगा हूँ। भगवान् ने तो कहा है—सांसारिक काम-भोग मुद्दत की चीज है; उसके पीछे पड़ने से बड़ा दुःख उठाना पड़ता है, बड़ी परेशानी होती है; उनमें बड़े-बड़े ऐब हैं। और यह धर्म देखते ही देखते फल देनेवाला है, बिना किसी देरी के; जो चाहे इस धर्म को अजमा सकता है; यह धर्म परम-पद तक ले जानेवाला है; विज्ञ लोग इस धर्म को अपने आप ही अनुभव करते हैं।

भन्ते ! मेरे ऐसा कहने पर उस देवता ने कहा···[ऊपर के जैसा]···तो अलबत्ता मैं धर्म-देशना सुनने के लिए आ सकता हूँ। भन्ते ! यदि उस देवता ने सच कहा है तो वह अवश्य यहीं कहीं पास में खड़ा होगा।

इस पर उस देवता ने आयुष्मान् समृद्धि को यह कहा, "हाँ भिक्षुजी, पूछें। मैं पहुँच गया हूँ।"

तब भगवान् ने उस देवता को गाथा में कहा—

> सभी जीव कहे जानेवाले संज्ञा भर के हैं,
> उनकी स्थिति कहे जाने भर में है[1],
> इस बात को बिना समझे,
> लोग मृत्यु के अधीन हो जाते हैं।
> जो कहे भर को समझता है,

---

१. अक्खेय्य-सञ्ञिनो—पाँच स्कन्धों के आधार पर किसी जीव की ख्याति होती है। इन स्कन्धों के परे कोई तात्त्विक आत्मा नहीं है।

मिलाओ "मिलिन्द प्रश्न" की रथ की उपमा। जैसे चक्र, अरा, धुरा इत्यादि अवयवों के आधार पर 'रथ' ऐसी संज्ञा होती है, वैसे ही नाम, रूप, वेदना, संज्ञा और संस्कार इन पाँच स्कन्धों को लेकर कोई जीव जाना जाता है।—अनात्मवाद का आदेश किया गया है।

वह आत्मा की मिथ्या-दृष्टि में नहीं पड़ता[१];
उस (क्षीणाश्रव) भिक्षु को ऐसा कुछ रह नहीं जाता,
जिससे उस पर कोई दोष आरोपित किया जाय[२] ॥

यक्ष ! यदि ऐसे किसी (क्षीणाश्रव) को जानते हो तो कहो !

भन्ते ! भगवान् के इस संक्षेप से कहे गये का अर्थ मैं विस्तार पूर्वक नहीं समझता। यदि कृपा कर भगवान् इस संक्षेप से कहे गये का अर्थ विस्तारपूर्वक बतावें तो मैं समझ सकूँ।

[भगवान्—]

किसी के बराबर हूँ, किसी से ऊँचा हूँ, अथवा नीचा हूँ,
जो ऐसा मन में लाता है वह उसके कारण झगड़ सकता है;
जो तीनों प्रकार से अपने चित्त को स्थिर रखता है,
उसे बराबर या ऊँचा होने का ख्याल नहीं आता ॥

यक्ष ! यदि ऐसे किसी को जानते हो तो कहो।

भन्ते ! भगवान् के संक्षेप से कहे गये इसका भी अर्थ मैं विस्तारपूर्वक नहीं समझता। यदि कृपा कर भगवान् इस संक्षेप से कहे गये का अर्थ विस्तार पूर्वक बतावें तो मैं समझ सकूँ।

[भगवान्—]

जिसने राग, द्वेष और मोह को छोड़ दिया है,
जो फिर माता के गर्भ में नहीं पड़ता[३],
नाम रूप के प्रति होनेवाली सारी तृष्णा को काट डाला है,
उस कटे गाँठ वाले, दुःख-मुक्त, तृष्णा-रहित को
खोजते रहने पर भी नहीं पाते
देवता लोग या मनुष्य, इस लोक में या परलोक में,
स्वर्ग में या सभी लोकों में ॥

यक्ष ! यदि ऐसे किसी को जानते हो तो कहो।

भन्ते ! भगवान् के संक्षेप से कहे गये इसका विस्तारार्थ मैं यों जानता हूँ—

पाप नहीं करे, वचन से या मन से,
या कुछ भी शरीर से, सारे संसार में,
स्मृतिमान् और संप्रज्ञ हो, कामों को छोड़,
अनर्थ करनेवाले दुःखों को न बढ़ाये ॥

नन्दन वर्ग समाप्त

---

१. पाँच स्कन्धों से परे कोई आत्मा नहीं है; इस बात को जिसने अच्छी तरह जान लिया है। इन स्कन्धों के अनित्य, अनात्म और दुःख स्वभाव का साक्षात्कार कर जो उनके प्रति सर्वथा तृष्णा-रहित हो गया है।

२. "ऐसा कोई कारण नहीं रहता, जिससे उस क्षीणाश्रव महात्मा के विषय में कोई यह कह सके कि वह राग में रक्त, द्वेष में द्विष्ट या मोह से मूढ़ है।" —अट्ठकथा।

३. मानं अज्झगा—निर्वाण के अर्थ में मातृ-कुक्षि भी 'मान' से समझी जा सकती है।—अट्ठकथा।

तीसरा भाग

शक्ति (= भाला) वर्ग

§ १. सत्ति सुत्त (१. ३. १)

सत्काय-दृष्टि का प्रहाण

श्रावस्ती में।

··· वह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला :—

भाला लेकर जैसे कोई चढ़ आया हो,
जैसे सिर के ऊपर आग लग गई हो,
काम-राग के प्रहाण के लिये,
स्मृतिमान् होकर भिक्षु विचरण करें॥

[भगवान्—]

भाला लेकर जैसे कोई चढ़ आया हो,
जैसे सिर के ऊपर आग लग गई हो,
सत्काय-दृष्टि के प्रहाण के लिये
स्मृतिमान् होकर भिक्षु विचरण करें॥

§ २. फुसती सुत्त (१. ३. २)

निर्दोष को दोष नहीं लगता

नहीं छूनेवाले को नहीं छूता है,
छूने वाले को छूता है,
इसलिए, छूनेवाले को छूता है*,
निर्दोष पर दोष लगानेवाले को॥

[भगवान्—]

जो निर्दोष पर दोष लगाता है,
जो शुद्ध पुरुष निष्पाप है उस पर।
तो सारा पाप उसी मूर्ख पर पलट आता है,
उलटी हवा में फेंकी गई जैसे पतली धूल॥

---

* जिस (अर्हत्) को किसी कर्म के प्रति आसक्ति नहीं है, उससे उस कर्म का विपाक (=फल) भी नहीं लगता। आसक्ति के साथ कर्म करनेवाले संसारी जीव को उसका विपाक लगता है।

"कर्म को स्पर्श न करनेवाले को विपाक भी स्पर्श नहीं करता, जो कर्म को स्पर्श करता है उसे विपाक भी स्पर्श करता है।" —अट्ठकथा।

§ ३. जटा सुत्त (१. ३. ३)

जटा कौन सुलझा सकता है ?

भीतर में जटा लगी है, बाहर भी जटा ही जटा है[1],
सभी जीव जटा में बेतरह उलझे पड़े हैं;
इसलिए हे गौतम ! आप से पूछता हूँ,
कौन इस जटा को सुलझा सकता है ?

[भगवान्—]

शील पर प्रतिष्ठित हो प्रज्ञावान् मनुष्य,
चित्त और प्रज्ञा की भावना करते[2] हुए,
तपस्वी और विवेकशील भिक्षु,
वही इस जटा को सुलझा सकता है ॥
जिनके रागद्वेष और अविद्या,
बिल्कुल हट चुकी हैं,
जो क्षीणाश्रव अर्हत् हैं,
उनकी जटा सुलझ चुकी है ॥
जहाँ नाम और रूप,
बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं,
प्रतिघ और रूप-संज्ञा[3] भी,
वहाँ वह जटा कट जाती है ॥

§ ४. मनोनिवारण सुत्त (१. ३. ४)

मन को रोकना

जहाँ जहाँ से मन को हटा लेता है,
वहाँ वहाँ से उसे दुःख नहीं होता;
जो सभी जगह से मन को हटा लेता है[4],
वह सभी जगह दुःख से छूट जाता है ॥

---

* बुद्धघोष का विख्यात ग्रन्थ 'विसुद्धिमग्गो' इसी प्रश्नोत्तर को पूरी तरह समझाता है।

१. "जाल फैलाने वाली तृष्णा ही जटा कही गई है। वह रूपादि आलम्बनों में ऊपर-नीचे बार बार उत्पन्न होने और गुथ जाने के कारण बाँस इत्यादि की झाड़ की तरह मानो जटा जैसी हो। इसी से जटा कही गयी है। वही यह स्वकीय-परिष्कार, पर-परिष्कार, स्वात्मभाव, परमात्म-भाव, आध्यात्मायतन, बाह्यायतन इत्यादि में उत्पन्न होने से भीतर की जटा और बाहर की जटा कही गई है।"

२. "समाधि और विदर्शना की भावना करते।"

३. प्रतिघ-संज्ञा से काम-भव लिया गया है। रूप-संज्ञा से रूप-भव। इन दोनों के ले लिये जाने से अरूप भव भी शामिल कर लेना चाहिये...। —अट्ठकथा।

४. "उस देवता को ऐसी मिथ्या धारणा हो गई थी कि अच्छे या बुरे, लौकिक या लोकोत्तर सभी चित्त का निवारण करना चाहिए, उन्हें उत्पन्न नहीं करना चाहिए।"—अट्ठकथा।

[भगवान्—]

सभी जगह से उस मन को हटाना नहीं है,
जो मन अपने वश में आ गया है;
जहाँ जहाँ पाप है,
वहाँ वहाँ से मन को हटाना है[1] ॥

§ ५. अरहन्त सुत्त (१. ३. ५)

अर्हत्व

जो भिक्षु कृतकृत्य हो अर्हत् हो गया है,
क्षीणाश्रव, जो अपने अन्तिम देह को धारण कर रहा है;
'मैं कहता हूँ' ऐसा भी वह कहता है,
'मुझे कहते हैं' ऐसा भी वह कहता है[2] ॥

[भगवान्—]

जो भिक्षु कृतकृत्य हो अर्हत् हो गया है,
क्षीणाश्रव, जो अपने अन्तिम देह को धारण कर रहा है;
'मैं कहता हूँ' ऐसा भी वह कहता है,
'मुझे कहते हैं' ऐसा भी वह कहता है ॥
(किन्तु) वह पण्डित लोगों की बोलचाल के कारण ही,
केवल व्यवहार-मात्र के लिये ऐसा प्रयोग करता है[3] ॥

[देवता—]

जो भिक्षु कृतकृत्य हो अर्हत् हो गया है,
क्षीणाश्रव, जो अपने अन्तिम देह को धारण कर रहा है;
क्या वह अभिमान के कारण,
'मैं कहता हूँ' ऐसा और
'मुझे कहते हैं' ऐसा भी कहता है ?

---

१. "देवता की मिथ्या धारणा को हटाने के लिए भगवान् ने यह गाथा कही। कुछ चित्त निवारण करने योग्य भी हैं, और कुछ चित्त अभ्यास करने योग्य भी।...'दान दूँगा, शील की रक्षा करूँगा' इत्यादि रूप से जो चित्त संयत हो गया है, उसका निवारण नहीं किन्तु अभ्यास करना चाहिए। जहाँ-जहाँ पापमय चित्त उत्पन्न होता है, वहाँ-वहाँ से उसे हटाना उचित है।"—अट्ठकथा।

२. किसी अरण्य में निवास करने वाले एक देवता ने कुछ क्षीणाश्रव अर्हत् भिक्षुओं को आपस में 'मैं कहता हूँ, मुझे कहते हैं, मेरा पात्र, मेरा चीवर' आदि कहते सुना। यह सुनकर उसे शंका हुई कि जब पंच स्कन्ध से परे कोई 'आत्मा या जीव' नहीं है तो ये अर्हत् 'मैं, मेरा' का व्यवहार क्यों करते हैं!

३. "लोके समञ्ञं कुसलो विदित्वा वोहारमत्तेन सो वोहरेय्याति"

जनसाधारण के व्यावहारिक प्रयोग के अनुसार ही वह 'मैं, मेरा' कहता है। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि उसकी दार्शनिक 'आत्म-दृष्टि' हो गई है। 'स्कन्ध' भोजन करते हैं; स्कन्ध बैठते हैं; स्कन्धों का पात्र है; स्कन्धों का चीवर है आदि कहने से व्यवहार नहीं चल सकता। कोई समझेगा भी नहीं। इसीलिए ऐसा न कह लौकिक व्यवहार के अनुसार ही प्रयोग करता है।

[भगवान्—]

जिनका मान प्रहीण हो गया है,
उन्हें कोई गाँठ नहीं,
उनके सारे मान और ग्रन्थियाँ नष्ट हो चुकी हैं,
वह पण्डित तृष्णा से ऊपर उठ जाता है;
'मैं कहता हूँ' ऐसा भी वह कहता है,
'मुझे कहते हैं' ऐसा भी वह कहता है,
(किन्तु) वह लोगों की बोलचाल के कारण ही,
केवल व्यवहार मात्र के लिये ऐसा प्रयोग करता है ॥

§ ६. पज्जोत सुत्त (१. ३. ६)

प्रद्योत

संसार में कितने प्रद्योत हैं,
जिनसे लोक प्रकाशमान होता है ?
पूछने के लिये भगवान् के पास आये,
हम उसे कैसे जानें ?

[भगवान्—]

लोक में चार प्रद्योत हैं,
पाँचवाँ वहाँ नहीं है,
दिन में सूरज तपता है,
रात में चाँद शोभता है,
अग्नि दिन और रात दोनों समय,
जगह-जगह पर रोशनी देती है;
किन्तु सम्बुद्ध सभी प्रकाशों में श्रेष्ठ हैं,
वह आभा अलौकिक होती है[१] ॥

§ ७. सरासुत्त (१. ३. ७)

नाम-रूप का निरोध

संसार की धारा कहाँ पहुँच कर आगे नहीं बहती ?
कहाँ भँवर नहीं चक्कर काटता ?
कहाँ नाम और रूप दोनों,
बिल्कुल ही निरुद्ध हो जाते हैं ?

[भगवान्—]

जहाँ जल, पृथ्वी, अग्नि और वायु प्रतिष्ठित नहीं होते,
वहाँ धारा रुक जाती है,

१. "बुद्ध की आभा क्या है ? ज्ञान, प्रीति, श्रद्धा, या धर्मकथा आदि का जो आलोक है, सभी बुद्धों के प्रादुर्भाव के कारण उत्पन्न होने वाला आलोक बुद्धाभा ही है।"—अट्ठकथा।

वहाँ भँवर नहीं चक्कर काटता,
वहीं नाम और रूप दोनों,
बिल्कुल ही निरुद्ध हो जाते हैं ॥

§ ८. महद्धन सुत्त (१. ३. ८)

तृष्णा का त्याग

महाधन वाले, महाभोग वाले,
देश के अधिपति राजा भी
एक दूसरे की सम्पत्ति पर लोभ करते हैं;
कामों से उनकी तृप्ति नहीं होती ॥
उनके भी लोभ के प्रति उत्सुक बने रहने,
और संसार की धारा में बहते रहने पर,
भला ऐसे कौन होंगे जिनने अनुत्सुक हो,
संसार की तृष्णा को छोड़ दिया हो ?

[भगवान्—]

घर को छोड़, प्रव्रजित हो,
पुत्र, पशु और प्रिय को छोड़,
राग और द्वेष को भी छोड़,
अविद्या को सर्वथा हटा कर,
जो क्षीणाश्रव अर्हत् भिक्षु हैं,
वही लोक में अनुत्सुक हैं ॥

§ ९. चतुचक्क सुत्त (१. ३. ९)

यात्रा कैसे होगी

चार चक्कों वाला, नव दरवाजों वाला,ॐ
अशुचिपूर्ण, लोभ से भरा है ।
हे महावीर ! (मार्ग) कीचड़ हो गया है,
कैसे यात्रा होगी ?

[भगवान्—]

वैरभाव* और लोभ को छोड़,
इच्छा, लोभ, और पापमय विचार को ।
तृष्णा को एकदम जड़ से खोद,
ऐसे यात्रा होगी ॥

ॐ "चार चक्कों वाला' से अर्थ है चार ईर्यापथ (=खड़ा होना, बैठना, सोना और चलना) वाला ।"—अट्ठकथा ।

* नद्धि = उपनाह । "पहले क्रोध होता है, वही आगे बढ़कर वैरभाव (=उपनाह) हो जाता है ।"—अट्ठकथा ।

§ १०. एणिजङ्घ सुत्त (१. ३. १०)

दुःख से मुक्ति

एणि मृग के समान जांघ वाले, कृश, वीर,
अल्पाहारी, लोभ-रहित,
सिंह के समान अकेला चलने वाले, निष्पाप,
कामों में अपेक्षा-भाव जिसके मिट गये हैं,
वैसे आपके पास आकर पूछता हूँ—
दुःख से छुटकारा कैसे हो सकता है ?

[भगवान्—]

संसार में पाँच काम-गुण हैं,
छठाँ मन कहा गया है;
इनमें उत्पन्न होने वाली इच्छाओं को हटा,
इसी प्रकार दुःख से छुटकारा होगा ॥

शक्ति वर्ग समाप्त

चौथा भाग

सतुल्लपकायिक वर्ग

§ १. सब्भि सुत्त (१. ४. १)

सत्पुरुषों का साथ

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

तब, कुछ सतुल्लपकायिक देवता रात बीतने पर अपनी चमक से सारे जेतवन को चमकाते हुये जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़े हो गये।

एक ओर खड़े हो, उनमें से एक देवता भगवान् को यह गाथा बोला:—

> सत्पुरुषों के ही साथ बैठे,
> सत्पुरुषों के ही साथ मिले जुले,
> सत्पुरुषों के अच्छे धर्म जानने से,
> कल्याण होता है, अहित नहीं ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

> सत्पुरुषों के ही साथ बैठे,
> सत्पुरुषों के ही साथ मिले जुले,
> सन्तों के अच्छे धर्म जानने से ही,
> प्रज्ञा प्राप्त होती है, अन्यथा नहीं ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला :—

> ···सन्तों के अच्छे धर्म जानने से,
> शोक में पड़ कर भी शोक नहीं करता ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला :—

> ···सन्तों के अच्छे धर्म जानने से,
> बान्धवों में सबसे अधिक तेज वाला होता है ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला :—

> ···सन्तों के अच्छे धर्म जानने से,
> जीवों की अच्छी गति होती है ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला :—

> ···सन्तों के अच्छे धर्म जानने से,
> सत्त्व बड़े सुख से रहते हैं ॥

तब, दूसरे देवता ने भगवान् से यह कहा— भगवान्! इनमें किसका कहना सबसे ठीक है?

एक-एक ढंग से सभी का कहना ठीक है; तौ भी मेरी ओर से सुनो :—

सत्पुरुषों के साथ बैठे,
सत्पुरुषों के ही साथ मिले जुले,
सन्तों के अच्छे धर्म जानने से,
सभी दुःख से छूट जाता है ॥

भगवान् ने यह कहा। संतुष्ट हो वे देवता भगवान् को अभिवादन और प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गए।

§ २. मच्छरी सुत्त (१. ४. २)

कंजूसी का त्याग

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

तब, कुछ सतुल्लपकायिक देवता रात बीतने पर अपनी चमक से सारे जेतवन को चमकाते हुये जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़े हो गये।

एक ओर खड़े हो, उनमें से एक देवता भगवान् को यह गाथा बोला :—

मात्सर्य से और प्रमाद से,
मनुष्य दान नहीं करता है;
पुण्य की आकांक्षा रखने वाले,
ज्ञानी पुरुष को दान करना चाहिए ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

कंजूस जिसके डर से दान नहीं देता है,
नहीं देने से उसे यह भय लगा ही रहता है;
भूख और प्यास—जिससे कंजूस डरता है,
वह उस मूर्ख को जन्म-जन्मान्तर में लगा रहता है ॥
इसलिये, कंजूसी करना छोड़,
पाप हटाने वाला पुण्य-कर्म दान करे,
परलोक में केवल अपना किया पुण्य ही,
प्राणियों का आधार होता है ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

मरे हुओं में वे नहीं मरते,
जो राह चलते साथियों की तरह,
थोड़ी सी भी चीज़ को आपस में बाँट कर (खाते हैं):
यही सनातन धर्म है ॥
थोड़ा रहने पर भी कितने दान देते हैं,
बहुत रहने पर भी कितने दान नहीं देते;
थोड़ा रहने पर भी जो दान दिया जाता है,
वह हजार दिये गये की भी बराबरी करता है ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

> कठिन से कठिन दान कर देने वाले,
> दुष्कर काम को भी कर डालने वाले का,
> मूर्ख लोग अनुकरण नहीं करते;
> सन्तों की बात आसान नहीं होती ॥
> इसीलिये, सन्तों की और मूर्खों की,
> अलग अलग गति होती है;
> मूर्ख नरक में पड़ते हैं,
> और सन्त स्वर्ग-गामी होते हैं ॥

तब, दूसरे देवता ने भगवान् से पूछा, "भगवन् ! इनमें किसका कहना ठीक है ?"
एक-एक ढंग से सभी का कहना ठीक है; तो भी मेरी ओर से सुनो:—

> वह बड़ा धर्म कमाता है जो बहुत तंगी से रहते भी,
> स्त्री को पोसते हुये अपने थोड़े ही से कुछ दान करता है;
> हजारों दाता के सैकड़ों और हजारों का दान
> वैसे की कल्प भर भी बराबरी नहीं कर सकता ॥

तब, दूसरे देवता ने भगवान् को गाथा में कहा—

> क्यों उनका बड़ा महार्घ दान,
> इसके दान की बराबरी नहीं कर सकता ?
> हजारों दाता के सैकड़ों और हजारों का दान,
> वैसे की कला भर भी बराबरी क्यों नहीं कर सकता ?

तब, भगवान् ने उस देवता को गाथा में कहा:—

> मार, काट, दूसरोंको सता,
> तथा और अनुचित कर्म करनेवाले,
> जो दान करते हैं, उनका वह,
> रुला और मारपीट कर दिया दान,
> शांति से दिये गए दान की बराबरी नहीं कर सकता ॥
> इसीलिये, हजारों दाता के सैकड़ों और हजारों का दान भी,
> वैसे दान की कला भर बराबरी नहीं कर सकता ॥

§ ३. साधु सुत्त (१. ४. ३)

दान देना उत्तम है

श्रावस्ती में।

तब, कुछ सतुल्लपकायिक देवता रात बीतने पर···। एक ओर खड़े हो, उनमें से एक देवता ने भगवान् के सम्मुख यह उदान के शब्द कहे:—

> भगवन् ! दान कर्म सचमुच में बड़ा उत्तम है।
> कंजूसी से और प्रमाद से,

मनुष्यों को दान नहीं दिया जाता;
पुण्य की आकांक्षा रखने वाले,
ज्ञानी पुरुष को दान करना चाहिए ॥

तब, एक दूसरे देवता ने भगवान् के सम्मुख यह उदान के शब्द कहे:—

भगवन् ! दान-कर्म बड़ा उत्तम है,
थोड़े से भी दान देना बड़ा उत्तम है,
कितने थोड़े रहने पर भी दान करते हैं,
बहुत रहने पर भी कितने नहीं देते,
थोड़े में से निकाल कर जो दान दिया जाता है,
वह हजार के दान के बराबर है ॥

तब, एक दूसरे देवता ने भगवान् के सम्मुख उदान के यह शब्द कहे:—

भगवन् ! दान-कर्म बड़ा उत्तम है,
थोड़े से भी दान देना बड़ा उत्तम है,
श्रद्धा से दिया गया दान भी बड़ा उत्तम है,
धर्म से कमाये गये का दान भी बड़ा उत्तम है ॥
जो धर्मानुकूल कमाकर दान देता है,
उत्साह-पूर्वक परिश्रम करके अर्जित कर,
वह यम की वैतरणी को लाँघ,
दिव्य स्थानों को प्राप्त होता है ॥

तब, एक दूसरे देवता ने भगवान् के सम्मुख उदान के यह शब्द कहे:—

भगवन् ! दान-कर्म बड़ा उत्तम है,
थोड़े से भी दान देना बड़ा उत्तम है,
श्रद्धा से दिया गया दान भी बड़ा उत्तम है,
धर्म से कमाये गये का दान भी बड़ा उत्तम है,
और, समझ बूझकर दिया गया दान भी बड़ा उत्तम है॥
समझ बूझ कर दिये गये दान की बुद्ध ने प्रशंसा की है,
संसार में जो दक्षिणा के पात्र हैं,
उनको दिये गये दान का बड़ा फल होता है;
उपजाऊ खेत में जैसे रोपे गये बीज का ॥

तब, एक दूसरे देवता ने भगवान् के सम्मुख उदान के यह शब्द कहे:—

भगवन् ! दान कर्म बड़ा उत्तम है,
थोड़े से भी दान देना बड़ा उत्तम है,
श्रद्धा से दिया गया दान भी बड़ा उत्तम है,
धर्म से कमाये गये का दान भी बड़ा उत्तम है,
समझ-बूझ कर दिया गया दान भी बड़ा उत्तम है,
और, जीवों के प्रति संयम रखना भी बड़ा उत्तम है ॥
जो प्राणियों को बिना कष्ट देते हुये विचरता है,

निन्दा से डरता है, और पाप-कर्म नहीं करता,
पाप के सामने जो डरपोक है वही प्रशंसनीय है, वह सूर नहीं,
सन्त लोग डरते हैं और पाप नहीं करते ॥

तब, एक दूसरे देवता ने भगवान् से पूछा:—

भगवन्! इनमें किसका कहना ठीक है ?
एक-एक ढंग से सभी का कहना ठीक है, तो भी मेरी ओर से सुनो :—
श्रद्धा से दिये गये दान की बड़ी प्रशंसा है,
दान से भी बढ़ कर धर्म का जानना है,
पहले, बहुत पहले जमानों में, सन्त लोग,
प्रज्ञा से निर्वाण तक पा लेते थे ॥

§ ४. नसन्ति सुत्त (१. ४. ४)

काम नित्य नहीं

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

तब कुछ सतुल्लपकायिक देवता···। एक ओर खड़े हो, उनमें से एक ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही—

मनुष्यों में काम नित्य नहीं है,
संसार में लुभाने वाली चीजें हैं जिनमें बझ जाते हैं,
जिनमें पड़ कर मनुष्य भूल जाते हैं,
मृत्यु के राज्य से छूट कर निर्वाण[1] नहीं पाते ॥
इच्छा बढ़ाने से पाप होते हैं,
इच्छा बढ़ाने से दुःख होते हैं,
इच्छा को दबा देने से पाप दब जाता है,
पाप के दब जाने से दुःख भी दब जाता है ॥
संसार के सुन्दर पदार्थ ही काम नहीं हैं,
राग-युक्त मन हो जाना ही पुरुष का काम है;
संसार में सुन्दर पदार्थ वैसे ही पड़े रहते हैं,
किन्तु, पण्डित लोग उनमें इच्छा उत्पन्न नहीं करते ॥
क्रोध को छोड़ दे, मान को बिल्कुल हटा दे,
सारे बन्धनों को काटकर गिरा दे;
नाम-रूप के प्रति अनासक्त रहनेवाले,
त्यागी को दुःख नहीं लगते ॥
कांक्षाओं को छोड़ दिये, मनसूबे नहीं बाँधे,
नाम और रूप के प्रति होनेवाली तृष्णा को काट दिये;
उस गाँठ-कटे, निष्पाप और वितृष्ण को,
खोजते रहने पर भी नहीं पाते,

---

1. अपुनरागमन=निर्वाण, जहाँ से फिर लौटना नहीं है।

देवता और मनुष्य, लोक में या परलोक में,
स्वर्ग में या सभी लोकों में ॥

आयुष्मान् मोघराज ने कहा—

यदि वैसे मुक्त पुरुष को नहीं देख पाये,
देवता और मनुष्य, लोक या परलोक में,
परमार्थ जानने वाले उस नरोत्तम को;
जो उन्हें नमस्कार करते हैं वे धन्य हैं ॥

भगवान् ने कहा—

मोघराज ! वे भिक्षु धन्य हैं,
जो वैसे मुक्त पुरुष को नमस्कार करते हैं;
धर्म को जान, संशय को मिटा,
वे भिक्षु सभी बन्धनों के ऊपर उठ जाते हैं ॥

§ ५. उज्झानसञ्ञी सुत्त (१. ४. ५)

तथागत बुराइयों से परे हैं

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

तब, कुछ उज्झान-संज्ञी देवता रात बीतने पर अपनी चमक से सारे जेतवन को चमका जहाँ भगवान् थे वहाँ आए। आकर आकाश में खड़े हो गये। आकाश में खड़े हो एक देवता ने भगवान् को गाथा में कहा:—

कुछ दूसरा ही होते हुए अपने को,
जो कुछ दूसरा ही बतलाता है,
उस धूर्त तथा ठग का,
जो कुछ भोग-लाभ है वह चोरी से होता है ॥
जो सच में करे वही बोले,
जो नहीं करे वह मत बोले,
बिना करते हुये कहने वालों की,
पण्डित लोग निन्दा करते हैं ॥

[भगवान्—]

यह केवल कहने भर से,
या केवल सुन भर लेने से,
प्राप्त नहीं कर लिया जा सकता है,
जो यह मार्ग इतना कठोर है;
जिससे ज्ञानी पुरुष मुक्त हो जाते हैं,
ध्यान लगाने वाले मार के बन्धन से ॥
उसे ज्ञानी पुरुष कभी नहीं करते,
संसार की गति-विधि जान कर,

प्रज्ञा या पण्डित लोग मुक्त हो जाते हैं,
इस वीहड़ भवसागर को पार कर लेते हैं ॥

तब, उन देवताओं ने पृथ्वी पर उतर भगवान् के चरणों में सिर से प्रणाम् कर भगवान् को कहा:—

भन्ते ! हम लोगों से भारी भूल हो गई। मूर्ख जैसे, मूढ़ जैसे, बेवकूफ जैसे हो कर हम लोगों ने भगवान् को सिखाना चाहा।

भन्ते ! भगवान् हमारे अपराध को क्षमा करें, भविष्य में ऐसी भूल नहीं होगी।

इसपर भगवान् ने मुस्कुरा दिया।

तब, वे देवता बहुत ही चिढ़ कर आकाश में खड़े हो गये। एक देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

अपना अपराध आप स्वीकार करने वालों को,
जो क्षमा नहीं कर देता है,
भीतर ही भीतर कोप रखने वाला, महाद्वेषी,
वह वैर को और भी बाँध लेता है ॥
यदि कोई भी बुराई नहीं हो,
यदि संसार में कोई भूल भी न करे,
और यदि वैर भी शान्त न हो जाय,
तो भला, कौन ज्ञानी बन सकता है ?
बुराई किसमें नहीं है ?
भला, किससे भूल नहीं होती ?
कौन गफलत नहीं कर बैठता ?
कौन पण्डित सदा स्मृतिमान् रहता है ?

[भगवान्—]

जो तथागत बुद्ध हैं,
सभी जीवों पर अनुकम्पा रखते हैं,
उनमें कोई बुराई नहीं रहती,
उनसे कोई भूल भी नहीं होने पाती,
वे कभी भी गफलत नहीं करते,
वही पण्डित सदा स्मृतिमान् रहते ॥
अपना अपराध आप स्वीकार करने वालों को,
जो क्षमा नहीं कर देता है,
भीतर ही भीतर कोप रखने वाला, महाद्वेषी,
उस वैर को और भी बाँध लेता है ॥
ऐसा कहने वाले के प्रति मैं वैर नहीं रखता,
तुम्हारे अपराध को मैं क्षमा कर देता हूँ ॥

§ ६. सद्धा सुत्त (१. ४. ६)

प्रमाद का त्याग

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे।

तब, कुछ सतुल्लपकायिक देवता रात के बीतने पर अपनी चमक से सारे जेतवन को चमकाते हुये, जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े हो, उनमें से एक देवता ने भगवान् को गाथा में कहाः—

जिस पुरुष को सदा श्रद्धा बनी रहती है,
और जो अश्रद्धा में कभी नहीं पड़ता,
उससे उसकी कीर्ति और यशाई होती है,
तथा शरीर छूटने के बाद सीधे स्वर्ग को जाता है॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोलाः—

क्रोध दूर करे, अभिमान को छोड़ दे,
सारे बन्धनों को लाँघ जाये,
नाम और रूप में नहीं फँसने वाले,
उस त्यागी के पास तृष्णा नहीं आती॥

[भगवान्—]

प्रमाद में लगे रहते हैं मूर्ख दुर्बुद्धि लोग,
ज्ञानी पुरुष अप्रमाद की श्रेष्ठ धन के ऐसी रक्षा करता है॥
प्रमाद में मत लगो, काम-राग का साथ मत दो,
प्रमाद रहित हो ध्यान लगाने वाला परम सुख पाता है॥

§ ७. समय सुत्त (१. ४. ७)

भिक्षु-सम्मेलन

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् पाँच सौ सभी अर्हत् भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ शाक्य (जनपद) में कपिलवस्तु के महावन में विहार करते थे। भगवान् और भिक्षु-संघ के दर्शनार्थ दशों लोक के बहुत देवता आ इकट्ठे हुये थे।

तब, शुद्धावास के चार देवताओं के मन में यह हुआ, "यह भगवान् पाँच सौ सभी अर्हत् भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ शाक्य (जनपद) में कपिलवस्तु के महावन में विहार करते हैं। भगवान् और भिक्षु-संघ के दर्शनार्थ दशों लोक के बहुत देवता आ इकट्ठे हुये हैं। तो, हम लोग भी चलें जहाँ भगवान् विराजते हैं, चलकर भगवान् के पास एक एक गाथा कहें।"

तब, वे देवता, जैसे कोई बलवान् पुरुष समेटी बाँह को पसार दे और पसारी बाँह को समेट ले वैसे ही, शुद्धावास लोक में अन्तर्धान हो भगवान् के सामने प्रगट हुये। तब, वे देवता भगवान् को प्रणाम् कर एक ओर खड़े हो गये।

एक ओर खड़े हो, एक देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोलाः—

वन-खण्ड में बड़ी सभा लगी है,
देवता लोग आकर इकट्ठे हुये हैं;
इस धर्म-सभा में हम लोग भी आये हैं,
अपराजित भिक्षुसंघ के दर्शनार्थ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

उन भिक्षुओं ने समाधि लगा ली,
अपने चित्त को पूरा एकाग्र कर दिया,
सारथी के जैसा लगाम को पकड़,
वे ज्ञानी इन्द्रियों को वश में रखते हैं ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

(राग-द्वेष-मोह) के आवरण,
तथा दृढ़ बन्धन को नष्ट कर, वे स्थिर चित्तवाले,
शुद्ध और निर्मल (मार्ग पर) चलते हैं,
होशियार, सिखाये गये तरुण नाग जैसे ॥

तब, दूसरा देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

जो पुरुष बुद्ध की शरण में आ गये हैं,
वे दुर्गति* में नहीं पड़ सकते;
मनुष्य शरीर छोड़ने के बाद,
देव-लोक में उत्पन्न होते हैं ॥

§ ८. सकलिक सुत्त (१. ४. ८)

भगवान् के पैर में पीड़ा, देवताओं का आगमन

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् राजगृह के मद्दकुक्षि नामक मृगदाव में विहार करते थे।

उस समय भगवान् का पैर एक पत्थर के टुकड़े से कुछ कट गया था। भगवान् को बड़ी वेदना हो रही थी—शरीर की वेदना दुःखद, तीव्र, कठोर, परेशान कर देनेवाली। भगवान् स्थिरचित्त से स्मृतिमान् और संप्रज्ञ हो उसे सह रहे थे।

तब भगवान् संघाटी को चौपेत कर बिछवा, दाहिनी करवट सिंह-शय्या लगा, कुछ हटाते हुए† पैर पर पैर रख, स्मृतिमान् और संप्रज्ञ हो लेट गये।

तब सात सौ सतुल्लपकायिक देवता रात बीतने पर अपनी चमक से सारे मद्दकुक्षि को चमकाते हुये जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़ा हो, एक देवता ने भगवान् के पास उदान के यह शब्द कहे:—

अरे! श्रमण गौतम नाग हैं,
जो अपने नाग-बल से युक्त हो,
शारीरिक वेदना, दुःखद, तीव्र, कठोर को,
स्थिरचित्त से स्मृतिमान् और संप्रज्ञ हो सह रहे हैं ॥

तब, दूसरे देवता ने भगवान् के पास उदान के यह शब्द कहे:—

अरे! श्रमण गौतम सिंह के समान हैं। अपने सिंह-बल से युक्त हो शारीरिक वेदना …को स्मृतिमान् और संप्रज्ञ हो स्थिर चित्त से सह रहे हैं।

---

* अपाय-दुर्गति चार हैं—नरक, प्रेतलोक, असुरकाय, तिर्यग् योनि।

† भगवान् लेटते समय पैर की घुट्ठियों को एक दूसरे से थोड़ा-सा हटाकर रखते थे, उसे ही "पादे पादं अच्चाधाय" कहा गया है।

तब, दूसरे देवता ने भगवान् के पास उदान के यह शब्द कहे :—

अरे ! श्रमण गौतम आजानीय हैं ! अपने आजानीय-बल से ···स्थिर-चित्त से सह रहे हैं ।

तब, दूसरे देवता ने भगवान् के पास उदान के यह शब्द कहे :—

अरे ! श्रमण गौतम बेजोड़ हैं । अपने बेजोड़ बल से ···स्थिर-चित्त से सह रहे हैं ।

तब, दूसरे देवता ने भगवान् के पास उदान के यह शब्द कहे:—

अरे ! श्रमण गौतम बड़े भारी भार-वाहक हैं । ···स्थिर-चित्त से सह रहे हैं ।

तब, दूसरे देवता ने भगवान् के पास उदान के यह शब्द कहे:—

अरे ! श्रमण गौतम बड़े दान्त हैं । ···स्थिर-चित्त से सह रहे हैं ।

तब, दूसरे देवता ने भगवान् के पास उदान के यह शब्द कहे:—

समाधि के अभ्यास से इस विमुक्त चित्त को देखो ! न तो उठा है, न दबा है, और न कोई कोशिश करके थामा गया है, किन्तु बड़ा ही स्वाभाविक है । जो ऐसे को पुरुष नाग, सिंह, आजानीय, बेजोड़, भारवाहक, दान्त कहे—सो केवल अपनी मूर्खता से कहता है ।

> पाँच वेद को ब्राह्मण भले ही धारण करें,
> सौ वर्षों तक भले ही तपस्या करता रहे,
> किन्तु उससे चित्त पूरा विमुक्त हो नहीं सकता,
> हीन स्वभाव वाले पार नहीं जा सकते ॥
> तृष्णा से प्रेरित व्रत आदि के फेर में पड़े,
> सौ वर्ष कठोर तपस्या करते हुये भी,
> उनका चित्त पूरा विमुक्त नहीं होता,
> हीन स्वभाव वाले पार नहीं जा सकते ॥
> आत्म-दृष्टि रखने वाले पुरुष को,
> आत्म-संयम नहीं हो सकता,
> असमाहित पुरुष को मुक्ति-भाव नहीं आ सकता,
> जंगल में अकेला प्रमादयुक्त विहार करते हुये,
> कोई मृत्यु के राज्य को पार नहीं कर सकता ॥
> मान छोड़, अच्छी तरह समाहित हो
> सुन्दर चित्त वाला, सभी तरह से विमुक्त,
> सावधान हो जंगल में अकेला विहार करते हुये,
> वह मृत्यु के राज्य के पार चला जाता है ॥

§ ९. पज्जुन्नधीतु सुत्त (१. ४. ९.)

धर्म-ग्रहण से स्वर्ग

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् वैशाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे ।

तब, प्रद्युम्न की बेटी कोकनदा रात बीतने पर अपनी चमक से सारे महावन को चमकाती हुई जहाँ भगवान् थे वहाँ आई, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ी हो गई ।

एक ओर खड़ी वह देवता कोकनदा प्रद्युम्न की बेटी भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोली:—

वैशाली के वन में विहार करते हुये,
सर्वश्रेष्ठ भगवान् बुद्ध को,
मैं कोकनदा प्रणाम् करती हूँ,
कोकनदा प्रद्युम्न की बेटी ॥
मैंने पहले धर्म के विषय में सुना ही था,
जिसको सर्वज्ञ बुद्धने साक्षात् किया है,
आज मैं उसे साक्षात् जान रही हूँ,
मुनि सुगत (=बुद्ध) से उपदेश किया गया ॥
जो कोई इस आर्य धर्म की,
मूर्ख निन्दा करते फिरते हैं,
वे घोर रौरव नरक में पड़ते हैं,
चिर काल तक दुःखों का अनुभव करते ॥
और जो इस आर्य धर्म में
धीरता और शान्ति के साथ आते हैं,
वे मनुष्य-शरीर को छोड़ कर,
देव-लोक में उत्पन्न होते हैं ॥

§ १०. चुल्लपज्जुन्नधीतु सुत्त (१. ४. १०)

बुद्ध धर्म का सार

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् वैशाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे।

तब, छोटी कोकनदा प्रद्युम्न की बेटी रात बीतने पर अपनी चमक से सारे महावन को चमकाती हुई जहाँ भगवान् थे वहाँ आई और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ी हो गई।

एक ओर खड़ी हो वह देवता छोटी-कोकनदा प्रद्युम्न की बेटी भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोली:—

यह मैं आई हूँ, बिजली की चमक जैसी कान्ति वाली,
कोकनदा प्रद्युम्न की बेटी,
बुद्ध और धर्म को नमस्कार करती हुई;
मैंने यह अर्थवती गाथा कही ॥
यद्यपि अनेक ढंग से मैं कह सकती हूँ,
ऐसे (महान्) धर्म के विषय में,
(तथापि) संक्षेप में उसके सार को कहती हूँ,
जहाँ तक मेरी बुद्धि की योग्यता है ॥
सारे संसार में कुछ भी पाप न करे,
शरीर, वचन या मनसे
कामों को छोड़, स्मृतिमान् और संप्रज्ञ,
अनर्थ करनेवाले दुःख को मत बढ़ावे ॥

सतुल्लपकायिक वर्ग समाप्त।

पाँचवाँ भाग

जलता वर्ग

§ १. आदित्त सुत्त (१. ५. १)

लोक में आग लगी है

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

तब, कोई देवता रात बीतने पर अपनी चमक से सारे जेतवन को चमकाते हुये जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया ।

एक ओर खड़ा हो वह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

घर में आग लग जाने पर,
जो अपने असबाब बाहर निकाल लेता है,
वह उसकी भलाई के लिये होता है;
नहीं तो वह वहीं जलकर राख हो जाता है ॥

उसी प्रकार, इस सारे लोक में आग लग गई है,
जरा की आग, और मर जाने की आग,
दान देकर बाहर निकाल लो,
दान दिया गया अच्छी तरह रक्षित रहता है ॥

दान देने से सुख की प्राप्ति होती है,
नहीं देने से उसे ऐसा ही होता है;
चोर चुरा लेते हैं, या राजा हर लेते हैं,
या आग लग जाती है, या नष्ट हो जाता है ॥

और, आखिर में तो सब ही छूट जाता है,
यह शरीर भी, और साथ साथ सारी सम्पत्ति,
इसे जान बूझ कर पण्डित पुरुष,
भोग भी करते हैं और दान भी देते हैं ॥

अपने सामर्थ्य के अनुकूल देकर और भोग कर,
निन्दा रहित हो स्वर्ग में स्थान पाता है ॥

§ २. किं दद सुत्त (१. ५. २)

क्या देने वाला क्या पाता है ?

क्या देने वाला बल देता है ?
क्या देने वाला वर्ण देता है ?

क्या देने वाला सुख देता है ?
क्या देने वाला आँख देता है ?
कौन सब कुछ देने वाला होता है ?
मैं पूछता हूँ, कृपया बतावें ॥

[भगवान्—]

अन्न देने वाला बल देता है,
वस्त्र देने वाला वर्ण देता है,
वाहन देने वाला सुख देता है,
प्रदीप देने वाला आँख देता है,
और, वह सब कुछ देने वाला है,
जो आश्रय (=गृह) देता है,

और, अमृत देने वाला तो वह होता है,
जो एक बार धर्म का उपदेश कर दे ॥

§ ३. अन्न सुत्त (१. ५. ३)

अन्न सबको प्रिय है

एक अन्न ही है जिसे सभी चाहते हैं,
देवता और मनुष्य लोग दोनों;
भला ऐसा कौन-सा प्राणी है,
जिसे अन्न प्यारा न लगता हो ?

जो उस अन्न का श्रद्धा-पूर्वक दान करते हैं,
अत्यन्त प्रसन्न चित्त से,
उन्हीं को वह अन्न प्राप्त होता है,
इस लोक में और परलोक में भी ॥

इसलिये, कंजूसी करना छोड़,
पाप हटाने वाला पुण्य-कर्म दान करे,
परलोक में पुण्य ही (केवल)
प्राणियों का आधार होता है ॥

§ ४. एकमूल सुत्त (१. ५. ४)

एक जड़वाला

एक जड़ वाला, दो मुँह वाला,
तीन मल वाला, पाँच फैलाव वाला,
बारह भँवर वाला समुद्र,
और पाताल, सभी को ऋषि पार कर गये[1] ॥

---

१. "अविद्या तृष्णा की जड़ है, तृष्णा अविद्या की। यहाँ (एक जड़ से) तृष्णा ही अभिप्रेत है। वह तृष्णा शाश्वत और उच्छेद दृष्टि के भेद से दो प्रकार (=मुँह) की होती है। उसमें राग, द्वेष और

§ ५. अनोमनाम सुत्त (१. ५. ५)

सर्व-पूर्ण

अनोम नाम वाले, सूक्ष्म-द्रष्टा,
ज्ञान देने वाले, कामों में अनासक्त,
उन सर्वज्ञ पण्डित को देखो,
आर्य-मार्ग पर चलते हुये महर्षि को ॥

§ ६. अच्छरा सुत्त (१. ५. ६)

राह कैसे कटेगी ?

अप्सराओं के गण से चहल पहल मचा,
पिशाचों के गण से सेवित,
लुभावे में डाल देने वाला[1] वह वन (नन्दन) है,
राह कैसे कटेगी ?[2]

[भगवान्—]

वह मार्ग बड़ा सीधा है,
वह स्थान डर भय से शून्य है[3],
कुछ भी आवाज़ न निकालने वाला रथ है,
जिसमें धर्म के चक्के लगे हैं[4] ॥

ह्री उसकी बचाव है[5],
स्मृति उस पर बिछी चादर है,
धर्म को मैं सारथी बताता हूँ,
सम्यक् दृष्टि आगे आगे दौड़ने वाला (सवार) है ॥

जिसके पास इस प्रकार की सवारी है,
किसी स्त्री के पास या किसी पुरुष के पास,
वह उस पर चढ़कर,
निर्वाण तक पहुँच जाता है ॥

मोह तीन मल होते हैं।''''''। पाँच कामगुण इसके फैलाव हैं''। यह तृष्णा कभी पूरी नहीं होती है, इस अर्थ में समुद्र कही गई है। अध्यात्म और बाहर के बारह आयतन भँवर कहे गये हैं''''''। तृष्णा की गहराई का हद नहीं है, इसलिये पाताल कही गई है।—अट्ठकथा।

१. नन्दनवन। "मोहनं वनं" पालि।

२. **कथं यात्रा भविस्सति**—कैसे छुटकारा होगा, कैसे मुक्ति होगी ?

३. निर्वाण को लक्ष्य कर कहा गया है।''''''अट्ठकथा।

४. [illegible] धर्म-चक्रों से युक्त—अट्ठकथा।

५. जैसे मौलिक रथ में ऊपर बैठे हुए को गिरने से बचाने के लिये लकड़ी का पटरा लगा दिया जाता है, वैसे ही, इस मार्ग के रथ में अध्यात्म और बाह्य होनेवाली ह्री=पाप करने से लज्जा समझनी चाहिये।—अट्ठकथा।

§ ७. वनरोप सुत्त (१. ५. ७)

किसके पुण्य सदा बढ़ते हैं ?

किन पुरुषों के दिन और रात,
सदा पुण्य बढ़ते रहते हैं ?
धर्म पर दृढ़ रहने वाले शील से सम्पन्न,
कौन स्वर्ग जाने वाले हैं ?

[भगवान्—]

बगीचे और उपवन लगाने वाले,
जो लोग पुल बँधवाते हैं,
पौसाला बैठाने वाले, कूँये खुदवाने वाले,
राहगीरों को शरण देने वाले,
उन पुरुषों के दिन और रात,
सदा पुण्य बढ़ते रहते हैं;
धर्म पर दृढ़ रहने वाले, शील से सम्पन्न,
वे ही स्वर्ग जाने वाले हैं ॥

§ ८. इदं हि सुत्त (१. ५. ८)

जेतवन

ऋषियों से सेवित यह शुभ-स्थान जेतवन,
जहाँ धर्मराज (=बुद्ध) वास करते हैं,
मुझमें भारी श्रद्धा उत्पन्न कर देता है ॥

कर्म, विद्या, और धर्म,
शील और उत्तम जीवन।
इन्हीं से मनुष्य शुद्ध होते हैं,
न तो गोत्र से और न धन से ॥

इसलिये, जो पण्डित पुरुष हैं,
अपने परमार्थ को दृष्टि में रख,
ठीक तौर से धर्म कमाते हैं;
इस प्रकार उनका चित्त शुद्ध हो जाता है ॥
सारिपुत्र की तरह प्रज्ञा से,
शील से और मन की शान्ति से,
जो भी भिक्षु पार चला गया है,
यही उसका परम-पद है ॥

§ ९. मच्छेर सुत्त (१. ५. ९)

कंजूसी के कुफल

जो संसार में कंजूस कहे जाते हैं,
मक्खीचूस, चिढ़कर गालियाँ देने वाले,

दूसरों को भी दान देते देख,
जो पुरुष उन्हें बहका देने वाले हैं,
उनके कर्म का फल कैसा होता है ?
उनका परलोक कैसा होता है ?
आप को पूछने के लिये आए,
हम लोग उसे कैसे समझें ?

[भगवान्—]

जो संसार में कंजूस कहे जाते हैं,
मक्खीचूस, चिढ़कर गालियाँ देने वाले,
दूसरों को भी दान देते देख,
जो उन्हें बहका देने वाले हैं,
वे नरक में, तिरश्चीन-योनि में,
या यमलोक में पैदा होते हैं;
यदि वे मनुष्य-योनि में आते हैं,
तो किसी दरिद्र कुल में जन्म लेते हैं,
कपड़ा, खाना, ऐश-आराम, खेल-तमाशा;
उन्हें बड़ी तंगी से मिलते हैं;
मूर्ख किसी दूसरे पर भरोसा करते हैं,
तब उस से भी वे चीजें नहीं मिलतीं,
आँखों के देखते ही देखते उनका यह फल होता है,
परलोक में उनकी बड़ी दुर्गति होती है ॥

[देवता—]

हमने इसे ऐसा जान लिया,
अब हे गौतम ! एक दूसरी बात पूछते हैं—
जो यहाँ मनुष्य-योनि में जन्म लेते हैं,
हिलने-मिलने वाले, खुले दिल वाले,
बुद्ध के प्रति श्रद्धालु और धर्म के प्रति,
संघ के प्रति बड़ा गौरव रखने वाले;
उनके कर्म का फल कैसा होता है ?
उनका परलोक कैसा होता है ?
आप को पूछने के लिये आए,
हम लोग उसे कैसे समझें ?

[भगवान्—]

जो यहाँ मनुष्य-योनि में जन्म लेते हैं,
हिलने-मिलने वाले, खुले दिल वाले,
बुद्ध के प्रति श्रद्धालु, और धर्म के प्रति,
संघ के प्रति बड़ा गौरव रखने वाले;
वे स्वर्ग में शोभित होते हैं,

जहाँ वे जन्म लेते हैं ॥
यदि फिर मनुष्य-योनि में आते हैं,
तो किसी बड़े धनाढ्य कुल में जन्म पाते हैं;
कपड़ा, खाना, ऐश-आराम, खेल-तमाशा,
जहाँ सब मन भर मिलते हैं,
मनचाहे भोगों को पा,
वशवर्ती देवों के ऐसा आनन्द करते हैं;
आँखों के देखते तो यह फल होता है,
और, परलोक में बड़ी अच्छी गति होती है ॥

§ १०. घटीकार सुत्त (१. ५. १०)

बुद्ध धर्म से ही मुक्ति, अन्य से नहीं

[घटीकार देवता—]

अविह लोक में उत्पन्न हुये,
सात भिक्षु विमुक्त हो गये,
राग, द्वेष (और मोह) नष्ट हो गये,
इस भवसागर को पार कर गये ॥
वे कौन थे जो कीचड़ को लाँघ गये,
मृत्यु के उस बड़े दुस्तर राज्य को,
जो मनुष्य के शरीर को छोड़ कर,
सर्वोच्च स्थान को प्राप्त हुये ?
उपक, पलगण्ड और पक्कुसाति ये तीनों,
भद्दिय और खण्डदेव, बाहुरग्गि और पिङ्गिय,
यही लोग मनुष्य-देह को छोड़, सर्वोच्च स्थान को प्राप्त हुये ॥

[भगवान्—]

उनके विषय में तुम बिल्कुल ठीक कहते हो,
जिन्होंने मार के जाल को काट डाला;
वे किसके धर्म को जान कर,
भव-बन्धन तोड़ने में समर्थ हुये ?

[देवता—]

भगवान् को छोड़ कहीं और नहीं,
आपके धर्मको छोड़ कहीं और नहीं;
जिन आपके धर्मको जान कर,
वे भव-बन्धनको तोड़ सके ॥
जहाँ नाम और रूप दोनों,
बिल्कुल ही निरुद्ध हो जाते हैं;
आपके उस धर्मको यहाँ जान,
वे भव-बन्धन को तोड़ सके ॥

[भगवान्—]

तुम बड़ी गम्भीर बातें कर रहे हो,
इसे ठीक जानना कठिन है, ठीक से समझना बड़ा ही कठिन;
भला, तुम किसके धर्म को जानकर,
इस प्रकार की बातें कर रहे हो?

[देवता—]

पहले मैं एक कुम्हार था,
वेहलिंगमें एक घड़ा-साज,
अपने माँ-बाप को पोस रहा था,
(भगवान्) काश्यप का उपासक था ॥
मैथुन धर्म से विरत,
ब्रह्मचारी, पूरा त्यागी,
एक ही गाँव में रहने वाले थे,
पहले मित्र थे ॥
सो, मैं इन्हें जानता हूँ,
विमुक्त हुये सात भिक्षुओं को,
राग, द्वेष (और मोह) नष्ट हो गये हैं,
जो भव-सागर को पार कर चुके हैं ॥

ऐसे ही उस समय आप थे,
जैसे भगवान् कहते हैं.
पहले आप एक कुम्हार थे,
वेहलिंग में एक घड़ा-साज.
इस प्रकार इन पुराने,
मित्रों का साथ हुआ था,
दोनों भावितात्माओं का,
अन्तिम शरीर धारण करने वालों का ॥

आदित्त वर्ग समाप्त ।

छठाँ भाग

जरा वर्ग

§ १. जरा सुत्त (१. ६. १)

पुण्य चुराया नहीं जा सकता

कौन सी चीज़ है जो बुढ़ापा तक ठीक है ?
स्थिरता पाने के लिये क्या ठीक है ?
मनुष्यों का रत्न क्या है ?
क्या चोरों से नहीं चुराया जा सकता ?

शील पालना बुढ़ापा तक ठीक है ?
स्थिरता के लिये श्रद्धा ठीक है ,
प्रज्ञा मनुष्यों का रत्न है,
पुण्य चोरों से नहीं चुराया जा सकता ॥

§ २. अजरसा सुत्त (१. ६. २)

प्रज्ञा मनुष्यों का रत्न है

बुढ़ापा नहीं आने से भी क्या ठीक है ?
कौन सी अधिष्ठित वस्तु ठीक है ?
मनुष्यों का रत्न क्या है ?
क्या चोरों से नहीं चुराया जा सकता ?

शील बुढ़ापा नहीं आने से भी ठीक है,
अधिष्ठित श्रद्धा यही ठीक है,
प्रज्ञा मनुष्यों का रत्न है,
पुण्य चोरों से नहीं चुराया जा सकता ॥

§ ३. मित्त सुत्त (१. ६. ३)

मित्र

राहगीर का क्या मित्र है ?
अपने घर में क्या मित्र है ?
काम पड़ने पर क्या मित्र है ?
परलोक में क्या मित्र है ?

हथियार राहगीर का मित्र है,
माता अपने घर का मित्र है,
सहायक काम आ पड़ने पर,
बार-बार मित्र होता है,
अपने किये जो पुण्य-कर्म हैं,
वे परलोक में मित्र होते हैं ॥

§ ४. वत्थु सुत्त (१. ६. ४)

आधार

मनुष्यों का आधार क्या है ?
यहाँ सबसे बड़ा सखा कौन है ?
किससे सभी जीते हैं ?
पृथ्वी पर जितने प्राणी बसते हैं ॥

पुत्र मनुष्यों का आधार है,
भार्या सबसे बड़ी साथिन है,
वृष्टि होने से सभी जीते हैं,
पृथ्वी पर जितने प्राणी बसते हैं ॥

§ ५. जनेति सुत्त (१. ६. ५)

पैदा होना (१)

मनुष्य को क्या पैदा करता है ?
उसका क्या है जो दौड़ता रहता है ?
कौन आवागमन के चक्कर में पड़ता है ?
उसका सबसे बड़ा भय क्या है ?

तृष्णा मनुष्य को पैदा करती है,
उसका चित्त दौड़ता रहता है,
प्राणी आवागमन के चक्कर में पड़ता है,
दुःख उसका सबसे बड़ा भय है ॥

§ ६. जनेति सुत्त (१. ६. ६)

पैदा होना (२)

मनुष्य को क्या पैदा करता है ?
उसका क्या है जो दौड़ता रहता है ?
कौन आवागमन के चक्कर में पड़ता है ?
किससे छुटकारा नहीं होता है ?

तृष्णा मनुष्य को पैदा करती है,
उसका चित्त दौड़ता रहता है,
प्राणी आवागमन के चक्कर में पड़ता है,
दुःख से उसका छुटकारा नहीं होता ॥

§ ७. जनेति सुत्त (१.६.७)

पैदा होना (३)

मनुष्य को क्या पैदा करता है ?
उसका क्या है जो दौड़ता रहता है ?
कौन आवागमन के चक्कर में पड़ता है ?
उसका आश्रय क्या है ?

तृष्णा मनुष्य को पैदा करती है,
उसका चित्त दौड़ता रहता है,

प्राणी आवागमन के चक्कर में पड़ता है,
कर्म ही उसका आश्रय है ॥

§ ८. उप्पथ सुत्त (१. ६. ८)

बेराह

किस राह को लोग बेराह कहते हैं ?
रात-दिन क्षय होने वाला क्या है ?
ब्रह्मचर्य का मल क्या है ?
बिना पानी का कौन स्नान है ?

राग को लोग बेराह कहते हैं,
आयु रात-दिन क्षय होने वाली है,
स्त्री ब्रह्मचर्य का मल है,
जिसमें सभी प्राणी फँस जाते हैं,
तप और ब्रह्मचर्य यह बिना पानी का स्नान है ॥

§ ९. दुतिया सुत्त (१. ६. ९)

साथी

पुरुष का साथी क्या होता है ?
कौन उस पर नियन्त्रण करता है ?
किसमें अभिरत होकर मनुष्य,
सब दुःखों से मुक्त हो जाता है ?

श्रद्धा पुरुष का साथी होता है,
प्रज्ञा उस पर नियन्त्रण करती है,
निर्वाण में अभिरत होकर मनुष्य,
सब दुःखों से मुक्त हो जाता है ॥

§ १०. कवि सुत्त (१. ६. १०)

कविता

गीत* कैसे होती है ?
उसके व्यञ्जन क्या हैं ?
उसका आधार क्या है ?
गीत का आश्रय क्या है ?

छन्द से गीत होती है,
अक्षर उसके व्यञ्जन हैं,
नाम के आधार पर गीत बनती है,
कवि गीत का आश्रय है ॥

जरा वर्ग समाप्त ।

---

* गाथा ।

सातवाँ भाग

अद्ध वर्ग

§ १. नाम सुत्त (१. ७. १)

नाम

क्या है जो सभी को अपने भीतर रखता है ?
किससे अधिक कुछ नहीं है ?
किस एक धर्म के,
सभी कुछ वश में चले आते हैं ?

नाम सभी को अपने भीतर रखता है,
नामसे अधिक कुछ नहीं है,
नाम ही एक धर्म के,
सभी कुछ वश में चले आते हैं ॥*

§ २. चित्त सुत्त (१. ७. २)

चित्त

किससे लोक नियन्त्रित होता है ?
किस से यह क्षय को प्राप्त होता है ?
किस एक धर्म के,
सभी वश में चले आते हैं ?

चित्त से लोक नियन्त्रित होता है ?
चित्त से ही क्षय को प्राप्त होता है,
चित्त ही एक धर्म के,
सभी वश में चले आते हैं ॥

§ ३. तण्हा सुत्त (१. ७. ३)

तृष्णा

…किस एक धर्म के,
सभी वश में चले आते हैं ?

…तृष्णा ही एक धर्म के,
सभी वश में चले आते हैं ॥

---

* "कोई जीव या चीज ऐसी नहीं है जो नाम से रहित हो। (यहाँ तक कि) जिस वृक्ष या पत्थर का नाम नहीं होता है उसका नाम 'अनामक' (=बे-नामवाला) रख देते हैं।"

—अट्ठकथा।

§ ४. संयोजन सुत्त (१. ७. ४)

बन्धन

लोक किस बन्धन में बँधा है ?
इसका विचरना क्या है ?
किसके प्रहाण होने से,
'निर्वाण' ऐसा कहा जाता है ?
"संसार में स्वाद लेना" यही लोक का बन्धन है,
वितर्क इसका विचरना है,
तृष्णा के प्रहाण होने से,
'निर्वाण' ऐसा कहा जाता है ॥

§ ५. बन्धन सुत्त (१. ७. ५)

फाँस

लोक किस फाँस में फँसा है ?
इसका विचरना क्या है ?
किसके प्रहाण होने से,
सभी फाँस कट जाते हैं ?
"संसार में स्वाद लेना" यही लोक का बन्धन है,
वितर्क इसका विचरना है,
तृष्णा के प्रहाण होने से,
सभी फाँस कट जाते हैं ॥

§ ६. अब्भाहत सुत्त (१. ७. ६)

सताया जाना

लोक किससे सताया जा रहा है ?
किससे घिरा पड़ा है ?
किस तीर से चुभा हुआ है ?
किससे सदा धुँवा रहा है ?
मृत्यु से लोक सताया जा रहा है,
जरा से घिरा पड़ा है,
तृष्णा की तीर से चुभा हुआ है,
इच्छा से सदा धुँवा रहा है ॥

§ ७. उड्डित सुत्त (१. ७. ७)

लाँघा गया

लोक किससे लाँघ लिया गया है ?
किससे घिरा पड़ा है ?
किससे लोक ढँका छिपा है ?
लोक किसमें प्रतिष्ठित है ?

तृष्णा से लोक लाँघ लिया गया है,
जरा से घिरा पड़ा है,
मृत्यु से लोक ढँका छिपा है,
दुःख में लोक प्रतिष्ठित है ॥

§ ८. पिहित सुत्त (१. ७. ८)

छिपा-ढँका

किससे लोक छिपा-ढँका है ?
किसमें लोक प्रतिष्ठित है ?
किससे लोक लाँघ लिया गया है ?
किससे घिरा पड़ा है ?

मृत्यु से लोक ढँका-छिपा है,
दुःखमें लोक प्रतिष्ठित है,
तृष्णासे लोक लाँघ लिया गया है,
जरा से घिरा पड़ा है ॥

§ ९. इच्छा सुत्त (१. ७. ९)

इच्छा

लोक किसमें बझता है ?
किसको दबा कर छूट जाता है ?
किसके प्रहाण होने से,
सभी बन्धन काट देता है ?

इच्छा में लोक बझता है,
इच्छा को दबा कर छूट जाता है,
इच्छा के प्रहाण होने से,
सभी बन्धन काट देता है ॥

§ १०. लोक सुत्त (१. ७. १०)

लोक

किसके होने से लोक पैदा होता है ?
किसमें साथ रहता है ?
लोक किसको लेकर होता है ?
किसके कारण दुःख झेलता है ?

छःक्ष के होने से लोक पैदा होता है,
छः में साथ रहता है,
छः ही को लेकर होता है,
छः के कारण दुःख झेलता है

अट्ठ वर्ग समाप्त ।

क्ष छः आध्यात्मिक आयतन—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन ।

आठवाँ भाग

झत्वा वर्ग

§ १. झत्वा सुत्त (१. ८. १)

नाश

एक ओर खड़ा हो वह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

किसको नाश कर सुख से सोता है ?
किसको नाश कर शोक नहीं करता ?
किस एक धर्म का,
वध करना गौतम बताते हैं ?

क्रोध को नाश कर सुख से सोता है,
क्रोध को नाश कर शोक नहीं करता,
महाविष के मूल क्रोध के,
जो पहले तो अच्छा लगता, हे देवते !
वध की पण्डित लोग प्रशंसा करते हैं,
उसी को नाशकर शोक नहीं करता ॥

§ २. रथ सुत्त (१. ८. २)

रथ

क्या देखकर रथ का आना मालूम होता है ?
क्या देखकर कहीं अग्निका होना जाना जाता है ?
किसी राष्ट्रका चिह्न क्या है ?
कोई स्त्री किससे पहचानी जाती है ?

ध्वजाको देखकर रथका आना मालूम होता है,
धूमको देखकर कहीं अग्निका होना जाना जाता है,
राजा किसी राष्ट्रका चिह्न होता है,
कोई स्त्री अपने पतिसे पहचानी जाती है ॥

§ ३. वित्त सुत्त (१. ८. ३)

धन

संसारमें पुरुषका सबसे श्रेष्ठ वित्त क्या है ?
किसके उपार्जन करने से सुख मिलता है ?
रसों में सबसे स्वादिष्ट क्या है ?
मनुष्यके कैसे जीवनको लोग श्रेष्ठ कहते हैं ?

संसारमें पुरुषका सबसे श्रेष्ठ वित्त श्रद्धा है,
धर्मके उपार्जन करनेसे सुख मिलता है,
रसों में सब से स्वादिष्ट सत्य है,
प्रज्ञापूर्वक जीवन को लोग श्रेष्ठ कहते हैं ॥

§ ४. वुट्ठि सुत्त (१. ८. ४)

वृष्टि

उगने वालों में श्रेष्ठ क्या है ?
गिरने वालों में सब से अच्छा क्या है ?
क्या है घूमते रहने वालों में ?
बोलते रहने वालों में उत्तम क्या है ?

बीज उगने वालों में श्रेष्ठ है,
वृष्टि गिरने वालों में सब से अच्छी है,
गौवें घूमते रहने वालों में,
पुत्र बोलते रहने वालों में उत्तम है[1] ॥

विद्या उगने वालों में श्रेष्ठ है,
गिरने वालों में अविद्या सब से बड़ी है,
भिक्षुसंघ घूमते रहने वालों में,
बुद्ध वक्ताओं में सर्वोत्तम हैं ॥

§ ५. भीत सुत्त (१. ८. ५)

डरना

संसार में इतने लोग डरे हुये क्यों हैं ?
अनेक प्रकार से मार्ग कहा गया है ;
हे महाज्ञानी गौतम ! मैं आप से पूछता हूँ,
कहाँ खड़ा रह परलोक से भय नहीं करे ?

वचन और मन को ठीक रास्ते में लगा,
शरीर से पापाचरण नहीं करते हुये,
अन्न-पान से भरे घर में रहते हुये,
श्रद्धालु, मृदु, बाँट-चूँट कर भोग करनेवाला, हिलना-मिलना,
इन चार धर्मों पर खड़ा रह,
परलोक से कुछ डर न करे ॥

§ ६. न जीरति सुत्त (१. ८. ६)

पुराना न होना

क्या पुराना होता है, क्या पुराना नहीं होता है ?

---

१. "पुत्र का बहुत बोलना माता-पिता को बुरा नहीं लगता।"
—अट्ठकथा।

७ क्या बेराह में ले जाने वाला कहा जाता है ?
धर्म के काम में क्या बाधक होता है ?
क्या रात दिन क्षय को प्राप्त हो रहा है ?
ब्रह्मचर्य का मल क्या है ?
क्या बिना पानी का नहाना है ?
लोक में कितने छिद्र हैं,
जहाँ चित्त स्थिर नहीं होता ?
आपको पूछने के लिये आये,
हम लोग इसे कैसे समझें ?

मनुष्यों का रूप पुराना होता है,
उनके नाम और गोत्र पुराने नहीं होते,
राग बेराह में जाने वाला कहा जाता है,
लोभ धर्म के काम में बाधक होता है,
आयु रात-दिन क्षय को प्राप्त हो रही है,
स्त्री ब्रह्मचर्य का मल है, यहाँ लोग फँस जाते हैं,
तप और ब्रह्मचर्य,
यही बिना पानी का नहाना है,
लोक में छिद्र छः हैं,
जहाँ चित्त स्थिर नहीं होता ॥

आलस्य और प्रमाद,
उत्साह-हीनता, असंयम,
निद्रा और तन्द्रा यही छः छिद्र हैं,
उनका सर्वथा वर्जन कर देना चाहिये ॥

§ ७. इस्सर सुत्त (१. ८. ७)

ऐश्वर्य

संसार में ऐश्वर्य क्या है ?
कौन सा सामान सबसे उत्तम है ?
लोक में शस्त्र का मल क्या है ?
लोक में विनाश का कारण क्या है ?
किसको ले जाने से लोग रोकते हैं ?
ले जाने वाले में कौन प्यारा है ?
फिर भी आते हुये किसका,
पण्डित लोग अभिनन्दन करते हैं ?

संसारमें वश ऐश्वर्य है,
स्त्री सभी सामानसे अच्छी है,
क्रोध लोकमें शस्त्रका मल है,
चोर लोकमें विनाशके कारण हैं,
चोरको ले जानेसे लोग रोकते हैं,

भिक्षु के आनेवालोंमें प्यारा है,
बार-बार आते हुए भिक्षुका,
पण्डित लोग अभिनन्दन करते हैं ॥

§ ८. काम सुत्त (१. ८. ८)

अपनेको न दे

परमार्थकी कामना रखनेवाला क्या नहीं दे ?
मनुष्य किसका परित्याग न करे ?
किस कल्याणको निकाले ?
और किस बुरेको नहीं निकाले ?
परमार्थकी कामना रखनेवाला अपनेको नहीं दे डाले,
मनुष्य अपनेको परित्याग न करे,
कल्याणवचनको निकाले,
बुरे को नहीं निकाले ॥

§ ९. पाथेय्य सुत्त (१. ८. ९)

राह-खर्च

क्या राह-खर्च बाँधता है ?
भोगोंका वास किसमें है ?
मनुष्यको क्या घसीट ले जाता है ?
संसारमें क्या छोड़ना बड़ा कठिन है ?
इतने जीव किसमें बँधे हैं,
जैसे जालमें कोई पक्षी ?
श्रद्धा राह-खर्च बाँधती है,[१]
ऐश्वर्यमें सभी भोग बसते हैं,
इच्छा मनुष्यको घसीट ले जाती है,
संसारमें इच्छा छोड़ना बड़ा कठिन है,
इतने जीव इच्छामें बँधे हैं,
जैसे जालमें कोई पक्षी ॥

§ १०. पज्जोत सुत्त (१. ८. १०)

प्रद्योत

लोक में प्रद्योत क्या है ?
लोक में कौन जागने वाला है ?
प्राणियों में कौन काम में सहायक है,

[१] "श्रद्धा उत्पन्न कर दान देता है, शीलकी रक्षा करता है, उपोसथ कर्म करता है—इसीसे ऐसा कहा गया है।"—अट्ठकथा ।

और उसके चलने का रास्ता क्या है ?
कौन आलसी और उद्योगी दोनों को,
रक्षा करता है, माता जैसे पुत्र को ?
किसके होने से सभी जीवन धारण करते हैं,
जितने प्राणी पृथ्वी पर बसते हैं ?

प्रज्ञा लोक में प्रद्योत है,
स्मृति लोक में जागती रहती है,
प्राणियों में बैल काम में साथ देता है,
और जोत उसके चलने का रास्ता है,
वृष्टि आलसी और उद्योगी दोनों की,
रक्षा करती है, माता जैसे पुत्र की,
वृष्टि के होने से सभी जीवन धारण करते हैं,
जितने प्राणी पृथ्वी पर बसते हैं ॥

§ ११. अरण सुत्त (१. ८. ११)

क्लेश से रहित

लोक में कौन क्लेश से रहित है ?
किसका ब्रह्मचर्य-वास बेकार नहीं जाता ?
कौन इच्छा को ठीक-ठीक समझता है ?
कौन किसी के दास कभी नहीं होते ?
माता पिता और भाई,
किस प्रतिष्ठित को अभिवादन करते हैं ?
किस जाति-हीन पुरुष को,
क्षत्रिय लोग भी प्रणाम करते हैं ?

श्रमण लोक में क्लेश से रहित है,
श्रमणों का ब्रह्मचर्य-वास बेकार नहीं जाता,
श्रमण इच्छा को ठीक समझते हैं,
श्रमण कभी किसी के दास नहीं होते,
प्रतिष्ठा के पात्र श्रमण को अभिवादन करते हैं,
माता, पिता और भाई भी,
जाति-हीन श्रमण को,
क्षत्रिय लोग भी प्रणाम करते हैं ॥

झत्वा वर्ग समाप्त ।

देवता संयुत्त समाप्त

दूसरा परिच्छेद

२. देवपुत्त-संयुत्त

पहला भाग

§ १. कस्सप सुत्त (२. १. १)

भिक्षु-अनुशासन (१)

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

तब, देव-पुत्र काश्यप रात बीतने पर अपनी चमक से सारे जेतवन को चमकाते हुए जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़ा हो काश्यप देवपुत्र भगवान् से बोला—"भगवान् ने भिक्षु को प्रकाशित किया है, किन्तु भिक्षु के अनुशासनको नहीं।"

तो काश्यप! तुम्हीं बताओ जैसा तुमने समझा है।

"अच्छे उपदेश और
श्रमणों का सत्संग,
एकान्त में अकेला वास,
तथा चित्त की शान्ति का अभ्यास करे॥"

काश्यप देवपुत्र ने यह कहा। भगवान् सहमत हुए। तब काश्यप देवपुत्र बुद्ध को सहमत जान, भगवान् को वन्दना और प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ २. कस्सप सुत्त (२. १. २)

भिक्षु-अनुशासन (२)

श्रावस्ती में...।

एक ओर खड़ा हो काश्यप देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

यदि भिक्षु ध्यानी विमुक्त चित्तवाला अपनी हित्ती चाह (=अर्हत्पद) की प्राप्त करना चाहे, तो संसार का उत्पन्न होना और नष्ट होना (स्वभाव) जानकर, पवित्र मनवाला और अनासक्त हो, उसका यह गुण है॥

§ ३. माघ सुत्त (२. १. ३)

किसके नाश से सुख ?

श्रावस्ती में...।

तब माघ देवपुत्र रात बीतने पर अपनी चमक से सारे जेतवन को चमकाते हुये जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़ा हो, माघ देव-पुत्र ने भगवान् को गाथा में कहा—

क्या नाश कर सुख से सोता है ?
क्या नाश कर शोक नहीं करता ?
किस एक धर्म का,
वध करना गौतम को स्वीकार है ?

क्रोध को नाश कर सुख से सोता है,
क्रोध को नाश कर शोक नहीं करता,
आगे अच्छा लगने वाले तथा वृत्र[1] को हराने वाले !
विष के मूल क्रोध का,
वध करना पण्डितों से प्रशंसित है;
उसी को काट कर शोक नहीं करता ॥

§ ४. मागध सुत्त (२. १. ४)

चार प्रद्योत

एक ओर खड़ा हो, मागध देवपुत्र भगवान् से यह गाथा बोला—

लोक में कितने प्रद्योत हैं,
जिनसे लोक प्रकाशित होता है ?
आप को पूछने के लिये आए,
हम लोग उसे कैसे जानें ?

लोक में चार प्रद्योत हैं,
पाँचवाँ कोई भी नहीं,
दिन में सूरज तपता है, रात में चाँद शोभता है,
और आग तो दिन रात वहाँ वहाँ प्रकाश देती है,
सम्बुद्ध तपनेवालों में श्रेष्ठ है,
उसका तेज अलौकिक ही होता है ॥

§ ५. दामलि सुत्त (२. १. ५)

ब्राह्मण कृतकृत्य है

श्रावस्ती में।

तब दामलि देवपुत्र रात बीतने पर अपनी चमक से सारे जेतवन को चमका जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़ा हो दामलि देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

वहाँ अथक परिश्रम से ब्राह्मण को अभ्यास करना चाहिये,
कामों का पूरा प्रहाण करने से फिर जन्म ग्रहण नहीं होता ॥

ब्राह्मण को कुछ करना नहीं रहता,
हे दामलि ! भगवान् ने कहा,
ब्राह्मण को तो जो करना था कर लिया गया होता है,
जब तक कि प्रतिष्ठा नहीं पा लेता ॥
नदियों में जन्तु सब अंगों से तैरने का प्रयत्न करता है,

---

१. वृत्र नामक असुर को हराने वाला, इन्द्र।

किन्तु, अर्गल के ऊपर आकर वैसा कोशिश नहीं करता,
वह तो अब पार कर चुका ॥
दामलि ! ब्राह्मण की यही उपमा है,
क्षीणास्रव, चतुर और ध्यानी की,
जन्म और मृत्यु के अन्त को पाकर,
वह कोशिशें नहीं करता, वह तो पार कर चुका ॥

§ ६. कामद सुत्त (२. १. ६)

सुलभ सन्तोष

एक ओर खड़ा हो, कामद देवपुत्र ने भगवान् को यह कहा—
भगवन् ! यह दुष्कर है, बड़ा ही दुष्कर है।
दुष्कर होने पर भी लोग कर लेते हैं,
हे कामद ! भगवान् बोले—
शैक्ष्य, शीलों के अभ्यासी, स्थिरात्म,
प्रव्रजित को अति सुलभ सन्तोष होता है ॥
भगवन् ! यह सन्तोष बड़ा दुर्लभ है।
दुर्लभ होने पर भी लोग पा लेते हैं,
हे कामद ! भगवान् बोले —
चित्त को शान्त करने में रत,
जिनका दिन और रात,
भावना करने में लगा रहता है ॥
भगवन् ! चित्त का ऐसा लगाना बड़ा कठिन है।
चित्त लगाना कठिन होने पर भी लोग लगा लेते हैं,
हे कामद ! भगवान् बोले—
इन्द्रियों को शान्त करने में रत,
वे मृत्यु के जाल को काट कर,
हे कामद ! पण्डित लोग चले जाते हैं ॥
भगवन् ! दुर्गम है, मार्ग बीहड़ है।
दुर्गम रहे अथवा बीहड़,
हे कामद ! आर्य लोग चले जाते हैं,
अनार्य लोग इस बीहड़ मार्ग में,
सिर के बल गिर पड़ते हैं,
आर्यों के लिये तो मार्ग बराबर है,
आर्य लोग विषम मार्ग में भी बराबर पैर चलते हैं ॥

§ ७. पञ्चालचण्ड सुत्त (२. १. ७)

स्मृति-लाभ से धर्म का साक्षात्कार

एक ओर खड़ा हो पञ्चालचण्ड देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

आत्म-त्याग, ज्ञानी, निरहंकार, श्रेष्ठ, मुनि,
संघ में भी जगह निकाल लेते हैं।

हे पञ्चालचण्ड ! भगवान् बोले—
जिसने स्मृति का लाभ कर लिया,
वे अच्छी तरह समाहित हो,
निर्वाण की प्राप्ति के लिए,
धर्म का साक्षात्कार कर लेते हैं।

§ ८. तायन सुत्त (२. १. ८)

शिथिलता न करे

तब, तायन देवपुत्र, जो पहले जन्म में एक तीर्थङ्कर था, रात बीतने पर अपनी चमक से सारे जेतवन को चमकाते हुये जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया।

एक ओर खड़ा हो, तायन देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

सोता को काट दो, पराक्रम करो,
हे ब्राह्मण ! कामों को दूर करो,
कामों को बिना छोड़े हुए मुनि,
एकाग्रता को नहीं प्राप्त होता ॥
यदि करना है तो करना चाहिये,
उसमें दृढ़ पराक्रम करे,
जो प्रव्रजित अपनी करनी में शिथिल है,
वह और भी अधिक मैल चढ़ा लेता है ॥
एक दम नहीं करना बुरी तरह करने से अच्छा है,
बुरी तरह करने से पीछे अनुताप होता है,
करे तो अच्छी तरह ही करना अच्छा है,
जिसके करने पर पछताया नहीं होता ॥
अच्छी तरह न पकड़ा गया कुश,
जैसे हाथ को ही काट लेता है,
वैसे ही, शिथिलता से ग्रहण किया गया श्रमण-भाव,
नरक को ही ले जानेवाला होता है ॥

जो कुछ शिथिल काम है, जो व्रत संक्लिष्ट है,
बुरा जो ब्रह्मचर्य है, वह अच्छा फल नहीं देता ॥

तायन देवपुत्र ने यह कहा। यह कह, भगवान् को प्रणाम और प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया।

तब, रात बीतने पर भगवान् ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—भिक्षुओ ! इस रात को तायन देवपुत्र, जो पहले जन्म में एक तीर्थङ्कर था, ···मेरा अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया।

एक ओर खड़ा हो, तायन देवपुत्र मेरे सम्मुख यह गाथा बोला—

सोता को काट दो··· ।

भिक्षुओ ! तायन देवपुत्र ने यह कहा। यह कह, मुझे प्रणाम् और प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया। भिक्षुओ ! तायन की गाथाओं को सीखो, उन्हें अभ्यास करो। भिक्षुओ ! तायन की गाथायें बड़ी सार्थ, ब्रह्मचर्य की पहली बातें हैं।

§ ९. चन्दिम सुत्त (२. १. ९)

चन्द्र-ग्रहण

श्रावस्ती में।

उस समय, चन्द्रमा देव पुत्र असुरेन्द्र राहु से पकड़ लिया गया था। तब, चन्द्रमा देवपुत्र भगवान् को स्मरण करते हुये उस समय यह गाथा बोला—

महावीर, बुद्ध ! आप को नमस्कार है,
आप सभी प्रकार से विमुक्त हैं ;
मैं भारी विपत्ति में आ पड़ा हूँ,
सो मुझे आप अपनी शरण दें ॥

तब भगवान् ने चन्द्रमा देवपुत्र के लिए असुरेन्द्र राहु को गाथा में कहा—

अर्हत् बुद्ध की शरण में,
चन्द्रमा चला आया है,
राहु चाँद को छोड़ दो,
बुद्ध सभी के प्रति अनुकम्पा रखते हैं ॥

तब, असुरेन्द्र राहु चन्द्रमा देवपुत्र को छोड़, डरा हुआ-सा जहाँ वेपचित्ति असुरेन्द्र था वहाँ आया और संवेग से भरा, रोयें खड़ा किये, एक ओर खड़ा हो गया।

एक ओर खड़े हुये असुरेन्द्र राहु को वेपचित्ति असुरेन्द्र ने गाथा में कहा—

क्यों इतना डरा-सा हो,
राहु ने चन्द्रमा को छोड़ दिया ?
संवेग से भरा हुआ आकर,
तुम इतने भयभीत क्यों खड़े हो ?

मेरे शिर के सात टुकड़े हो जाँय,
जन्म भर मुझे कभी सुख नहीं मिले,
बुद्ध से आज्ञा पा कर मैं,
यदि चन्द्रमा को नहीं छोड़ दूँ ॥

§ १०. सुरिय सुत्त (२. १. १०)

सूर्य-ग्रहण

उस समय, सूर्य देवपुत्र असुरेन्द्र राहु से पकड़ लिया गया था। तब, सूर्य भगवान् को स्मरण करते हुये उस समय यह गाथा बोला :—

महावीर, बुद्ध ! आपको नमस्कार है,
आप सभी प्रकार से विमुक्त हैं,

मैं भारी विपत्ति में आ पड़ा हूँ,
सो मुझे आप अपनी शरण दें ॥

तब, भगवान् ने **सूर्य** देवपुत्र के लिए असुरेन्द्र राहु को गाथा में कहा—

अर्हत् बुद्ध की शरण में,
सूर्य चला आया है;
हे राहु ! सूर्य को छोड़ दो,
बुद्ध सभी के प्रति अनुकम्पा रखते हैं ॥
जो काले अन्धकार में प्रकाश देता है,
चमकने वाला, मण्डल वाला, उग्र तेज वाला,
आकाश में चलने वाला; उसे राहु ! मत निगलो,
राहु ! मेरे पुत्र सूर्य को छोड़ दो ॥

तब, असुरेन्द्र राहु सूर्य देवपुत्र को छोड़, डरा हुआ-सा जहाँ **वेपचित्ति** असुरेन्द्र था वहाँ आया और संवेग से भरा, रोयें खड़ा किये एक ओर खड़ा हो गया।

एक ओर खड़े असुरेन्द्र राहु को वेपचित्ति असुरेन्द्र ने गाथा में कहा—

क्यों इतना डरा-सा हो,
राहु ने सूर्य को छोड़ दिया ?
संवेग से भरा हुआ आकर,
तुम इतने भयभीत क्यों खड़े हो ॥

मेरे शिर के सात टुकड़े हो जायँ,
जन्म भर मुझे कभी सुख नहीं मिले,
बुद्ध से आज्ञा पाकर मैं,
यदि सूर्य को नहीं छोड़ दूँ ॥

पहला भाग समाप्त।

दूसरा भाग

अनाथपिण्डिक वर्ग

§ १. चन्दिमस सुत्त (२. २. १)

ध्यानी पार जायेंगे

श्रावस्ती में।

तब, चन्दिमस देवपुत्र रात बीतने पर ···जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़ा हो, चन्दिमस देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

वे ही कल्याण को प्राप्त होंगे,
मच्छड़-रहित कछार में पशु के समान;
जो ध्यानों को प्राप्त,
एकाग्र, प्रज्ञावान और स्मृतिमान् हैं॥
वे ही पार जायेंगे,
मछली के समान जाल को काट कर,
जो ध्यानों को प्राप्त,
अप्रमत्त और क्लेश-त्यागी हैं॥

§ २. वेण्डु सुत्त (२. २. २)

ध्यानी मृत्यु के वश नहीं जाते

एक ओर खड़ा हो वेण्डु (= विष्णु) देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

वे मनुष्य सुखी हैं,
जो बुद्ध की उपासना कर,
गौतम के शासन में लग,
अप्रमत्त होकर शिक्षा ग्रहण करते हैं॥

हे वेण्डु! भगवान् बोले—
मेरी शिक्षाओं का जो ध्यानी पालन करते हैं,
यथोचित काल में प्रमाद नहीं करते हुए वे,
मृत्यु के वश में आनेवाले नहीं होते॥

§ ३. दीघलट्ठि-सुत्त (२. २. ३)

भिक्षु-अनुशासन

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे।

तब, दीर्घयष्टि देवपुत्र रात बीतने पर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़ा हो, दीर्घयष्टि देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

यदि भिक्षु ध्यानी, विमुक्त चित्त वाला हो,
और मन की भीतरी चाह (=अर्हत् फल) को प्राप्त करना चाहे,
तो संसार का उत्पन्न होना और नष्ट होना (=भाव) जान कर,
पवित्र मन वाला और अनासक्त हो, उसका यह गुण है ॥[*]

§ ४. नन्दन सुत्त (२. २. ४)

शीलवान् कौन ?

एक ओर खड़ा हो नन्दन देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

हे गौतम ! आप महाज्ञानी को मैं पूछता हूँ,
भगवान् का ज्ञान-दर्शन खुला है;
कैसे को लोग शीलवान् कहते हैं ?
कैसे को लोग प्रज्ञावान् कहते हैं ?
कैसा पुरुष दुःखों के परे रहता है ?
कैसे पुरुष की देवता भी पूजा करते हैं ?

जो शीलवान्, प्रज्ञावान्, भावितात्म,
समाहित, ध्यानरत, स्मृतिमान्,
क्षीणाश्रव, अन्तिम देहधारी सर्वशोक-प्रहीण है ॥
वैसे ही को लोग शीलवान् कहते हैं,
वैसे ही को लोग प्रज्ञावान् कहते हैं,
वैसा ही पुरुष दुःखों के परे हो जाता है,
वैसे ही पुरुष की देवता भी पूजा करते हैं ॥

§ ५. चन्दन सुत्त (२. २. ५)

कौन नहीं डूबता ?

एक ओर खड़ा हो चन्दन देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

रात दिन तत्पर रह,
कौन बाढ़ को तर जाता है ?
अप्रतिष्ठित और अनालम्ब,
गहरे (जल) में कौन डूबता नहीं है ?

जो सदा शील-सम्पन्न,
प्रज्ञावान्, एकाग्र-चित्त,
उत्साहशील तथा संयमी है,
वह दुस्तर बाढ़ को तर जाता है ॥
जो काम संज्ञा से विरत,

---

[*] यही गाथा २. १. २ में भी।

रूप-बन्धन को पार कर गया,
संसार में स्थान नहीं लेता, तथा बने रहने की जिसे इच्छा नहीं रही ;
वही गहरे जल में नहीं डूबता है ॥

§ ६. वासुदत्त सुत्त (२. २. ६)

कामुकता का प्रहाण

एक ओर खड़ा हो सुदत्त देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला :—

जैसे भाला चुभ गया हो,
या शिर के ऊपर आग लग गई हो,
वैसे ही भोग-विलास की इच्छा के प्रहाण के लिये,
स्मृतिमान् हो भिक्षु विचरण करे ॥

§ ७. सुब्रह्म सुत्त (२. २. ७)

चित्त की घबड़ाहट कैसे दूर हो ?

एक ओर खड़ा हो सुब्रह्म देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

यह चित्त सदा घबड़ाया रहता है,
मन सदा उद्वेग से भरा रहता है,
आने वाले कामों का ख्याल कर,
और आये हुये कामों को करने में ॥
मैं पूछता हूँ, आप बतावें कि क्या कोई,
ऐसा (उपाय) है जिससे चित्त घबड़ाता नहीं है ॥

बोध्यङ्ग के अभ्यास,
इन्द्रिय-संवर,
तथा सारे संसार से विरक्त होना छोड़,
मैं किसी दूसरी तरह प्राणियों का कल्याण नहीं देखता हूँ ॥

···सुब्रह्म देवपुत्र वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ ८. ककुध सुत्त (२. २. ८)

भिक्षु को आनन्द और चिन्ता नहीं

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् साकेत के अञ्जनवन मृगदाव में विहार करते थे।

तब, ककुध देवपुत्र ···जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो ककुध देवपुत्र ने भगवान् को यह कहा—

भिक्षु जी, आनन्द तो है ?
आवुस, क्या पाकर ?
भिक्षु जी, तो क्या चिन्ता कर रहे हैं ?
आवुस, भला मेरा क्या बिगड़ा है ?

भिक्षु जी, तो क्या आनन्द भी नहीं कर रहे हैं और न चिन्ता ?
आवुस ! ऐसी ही बात है।

[ककुध—]

भिक्षु जी, न तो आप चिन्तित हैं,
न तो आपको कोई आनन्द है,
अकेला बैठे आप का,
क्या मन उदास नहीं होता ?

[भगवान्—]

हे यक्ष ! न तो मैं चिन्तित हूँ,
न तो मुझे कोई आनन्द है,
अकेला बैठे मेरा मन,
उदास नहीं होता है ॥

[ककुध—]

भिक्षु जी, आप को चिन्ता क्यों नहीं ?
आपको आनन्द भी क्यों नहीं है ?
अकेला बैठे आप का,
मन उदास क्यों नहीं होता ?

[भगवान्—]

चिन्तित पुरुष को ही आनन्द होता है,
आनन्दित पुरुष को ही चिन्ता होती है,
भिक्षु को न चिन्ता है और न आनन्द,
आवुस ! इसे ऐसा ही समझो ॥

[ककुध—]

चिरकाल पर देख रहा हूँ,
मुक्त हुए ब्राह्मण को,
जिस भिक्षु को न चिन्ता है और न आनन्द,
जो भवसागर को पार कर गये हैं ॥

§ ९. उत्तर सुत्त (२. २. ९)

सांसारिक भोग को त्यागे

राजगृह में।

एक ओर खड़ा हो उत्तर देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

जीवन बीत रहा है, आयु थोड़ी है,
बुढ़ापा से बचने का कोई उपाय नहीं,
मृत्यु में यह भय देखते हुये,
सुख लाने वाले पुण्य कर्म करे ॥

[भगवान्—]

जीवन बीत रहा है, आयु थोड़ी है,
बुढ़ापा से बचने का कोई उपाय नहीं,

मृत्यु में वह भय देखते हुये,
सांसारिक भोग छोड़ दे, निर्वाण की खोज में ॥[*]

§ १०. अनाथपिण्डिक सुत्त (२. २. १०)

जेतवन

एक ओर खड़ा हो अनाथपिण्डिक देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

यही वह जेतवन है,
ऋषियों से सेवित,
धर्मराज (=बुद्ध) जहाँ बसते हैं;
मुझ में बड़ी श्रद्धा पैदा करता है ॥
कर्म, विद्या, और धर्म,
शील पालन करना और उत्तम जीवन,
इसी से मनुष्य शुद्ध होते हैं,
न तो गोत्र से और न धन से ॥
इसलिये, पण्डित पुरुष,
अपनी भलाई का ख्याल करते हुये,
अच्छी तरह से धर्म कमाये,
इस तरह वह विशुद्ध होता है ॥
सारिपुत्र की तरह प्रज्ञा से,
शील से और चित्त की शान्ति से,
जो भिक्षु पार चला जाता है,
वही परम-पद पाता है ॥[†]

अनाथपिण्डिक देवपुत्र ने यह कहा। यह कह, भगवान् को अभिवादन और प्रदक्षिणा कर के वहीं अन्तर्धान हो गया।

तब, उस रात के बीतने पर भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—

भिक्षुओ ! आज की रात,…यह देवपुत्र मेरे सम्मुख खड़ा हो यह गाथा बोला—

यही वह जेतवन है…,
वही परम-पद पाता है ॥

…यह कह, मुझे अभिवादन और प्रदक्षिणा करके वहीं अन्तर्धान हो गया।

इतना कहे जाने पर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् को कहा—"भन्ते ! वही अनाथपिण्डिक देवपुत्र हो गया है ? अनाथपिण्डिक गृहपति आयुष्मान् सारिपुत्र के प्रति बड़ा श्रद्धालु था।

ठीक कहा, आनन्द ! जो तर्क से समझा जा सकता है उसे तुमने समझ लिया। आनन्द ! अनाथपिण्डिक ही देवपुत्र हुआ है।

अनाथपिण्डिक वर्ग समाप्त।

---

[*] यही गाथायें १. १. २ में।
[†] यही गाथायें १. ५. ८ में।

तीसरा भाग

नानातीर्थ-वर्ग

§ १. सिव सुत्त (२. ३. १)

सत्पुरुषों की संगति

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

तब, शिव देवपुत्र···एक ओर खड़ा हो भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

सत्पुरुषों के ही साथ रहो,
सत्पुरुषों के ही साथ मिलो-जुलो,
सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,
भला ही होता है, बुरा नहीं ॥
···सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,
ज्ञान का साक्षात्कार करता है, जो दूसरी तरह से नहीं होता ॥
···सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,
शोक के बीच में रह शोक नहीं करता ॥
···सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,
बान्धवों के बीच शोभता है ॥
···सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,
सत्व सुगति को प्राप्त होते हैं ॥
···सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,
सत्व परम-सुख पाते हैं ॥

तब, भगवान् ने शिव देवपुत्र को गाथा में उत्तर दिया—

सत्पुरुषों के ही साथ रहे,
सत्पुरुषों के ही साथ मिले जुले,
सन्तों के ऊँचे धर्म को जान,
सभी दुःखों से छूट जाता है ॥ ⊛

§ २. खेम सुत्त (२. ३. २)

पाप-कर्म न करे

एक ओर खड़ा हो, क्षेम देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

मूर्ख दुर्बुद्धि लोग विचरण करते हैं,

⊛ ये सभी गाथायें १. ४. १ में ।

अपना शत्रु आप ही हो कर,
पाप कर्म किया करते हैं,
जिसका फल बड़ा कटु होता है ॥
उस काम का करना अच्छा नहीं,
जिसको करके अनुताप करना पड़े,
जिसका आँसू के साथ रोते हुए,
फल भोगना पड़ता है ॥
उसी काम का करना अच्छा है,
जिसे करके अनुताप न करना पड़े,
जिसका आनन्द और खुशी खुशी से,
(अच्छा) फल मिलता है ॥
पहले ही उस काम को करे,
जिससे अपना हित होता जाने,
गाड़ीवान् की तरह चिन्ता में न पड़,
धीर पुरुष पूरा पराक्रम करे ॥
जैसे कोई गाड़ीवान्,
समतल पक्की सड़क को छोड़,
ऊँची नीची राह में आ,
धुरा टूट जाने से चिन्ता में पड़ आता है ॥
वैसे ही, धर्म को छोड़,
अधर्म में पड़ आने से,
मूर्ख मृत्यु के मुख में गिर कर,
धुरा टूट जाने वाले जैसा चिन्ता में पड़ आता है ॥

३. सेरि सुत्त (२. ३. ३)

दान का महात्म्य

एक ओर खड़ा हो, सेरी देवपुत्र भगवान् को यह गाथा बोला—

अन्न को तो सभी चाहते हैं,
दोनों देवता और मनुष्य,
भला ऐसा कौन प्राणी है,
जिसको अन्न नहीं भाता हो ?

[भगवान्—]

जो अन्न श्रद्धापूर्वक दान करते हैं,
अत्यन्त प्रसन्न चित्त से,
उन्हीं को अन्न प्राप्त होते हैं,
इस लोक में और परलोक में ॥
इसलिये कंजूसी छोड़, छूट कर खूब दान करे,
पुण्य ही परलोक में प्राणियों का आधार होता है ॥

भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है ! भगवान् ने यह ठीक ही कहा है कि—

जो अन्न श्रद्धापूर्वक दान करते हैं··· ।

भन्ते ! बहुत पहले मैं सेरी नाम का एक राजा था । मैं दानी, दानपति और दान की प्रशंसा करनेवाला था । चारों फाटक पर मेरी ओर से दान दिया जाता था—श्रमण, ब्राह्मण, गरीब, राही, लाचार और भिखमंगों को ।

भन्ते ! तब मैं जनाने में जाता तो वे कहने लगतीं—आप तो दान दे रहे हैं, हम नहीं दे रही हैं । अच्छा होता कि हम लोग भी आप के बलते दान करतीं और पुण्य कमातीं ।

भन्ते ! तब मेरे मन में यह हुआ—मैं दानी, दानपति और दान की प्रशंसा करने वाला हूँ । 'दान दूँगी' ऐसा कहनेवाली स्त्रियों को मैं क्या कहूँ । भन्ते ! तब, मैंने पहले फाटक को उनके लिये छोड़ दिया । वहाँ स्त्रियों की ओर से दान दिया जाने लगा, मेरा दान लौट आता था ।

भन्ते ! तब, मेरे बहाल किये क्षत्रियों ने मेरे पास आकर कहा—महाराज की ओर से दान दिया जाता है और स्त्रियों की ओर से भी दान दिया जाता है, किन्तु हम लोगों की ओर से नहीं । महाराज के बलते हम लोग भी दान दें और पुण्य कमायें ।

...भन्ते ! सो मैंने दूसरे फाटक को उन क्षत्रियों के लिये छोड़ दिया । वहाँ क्षत्रियों की ओर से दान दिया जाने लगा, मेरा दान लौट आता था ।

भन्ते ! तब मेरे सिपाहियों ने... । सो मैंने तीसरे फाटक को उन सिपाहियों के लिये छोड़ दिया... । मेरा दान लौट आता था ।

भन्ते ! तब, ब्राह्मण और गृहपतियों ने... । सो मैंने चौथे फाटक को उन ब्राह्मण और गृहपतियों के लिये छोड़ दिया । ...मेरा दान लौट आता था ।

भन्ते ! तब, लोगों ने मेरे पास आकर यह कहा—अब तो महाराज की ओर से कोई भी दान नहीं दिया जाता है ।

भन्ते ! इस पर मैंने उन लोगों को कहा—लोगो ! बाहर के प्रान्तों से जो आमदनी उठती है उसका आधा राजमहल में ले आओ और आधे को वहीं दान कर दो—श्रमण, ब्राह्मण, गरीब, राही, लाचार और भिखमंगों को ।

भन्ते ! इस प्रकार बहुत दिनों तक दान दे कर मैंने जो पुण्य कमाये हैं उसकी कहीं हद नहीं पाता—इतना पुण्य है, इतना उसका फल है, इतने काल तक स्वर्ग में रहना होगा ।

भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है ! भगवान् ने ठीक ही कहा है—

> जो अन्न श्रद्धा-पूर्वक दान करते हैं,
> अत्यन्त प्रसन्न चित्त से,
> उन्हीं को अन्न प्राप्त होते हैं,
> इस लोक में और परलोक में ॥
> इसलिये, कंजूसी छोड़,
> दूर कर खूब दान करे;
> पुण्य ही परलोक में
> प्राणियों का आधार होता है ॥

§ ४. घटीकार सुत्त (२. ३. ४)

बुद्धधर्म से ही मुक्ति, अन्य से नहीं

एक ओर खड़ा हो घटीकार देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

अचिह लोक में उत्पन्न हुये···,
(देखो १. ५. १०)

§ ५. जन्तु सुत्त (२. ३. ५)

अप्रमादी को प्रणाम्

ऐसा मैंने सुना।

एक समय कुछ भिक्षु हिमवन्त के पास कोशल के जंगलों में विहार करते थे। वे उद्धत, ऐंठ, चपल, बकवादी, बुरी बात निकालने वाले, मूढ़ स्मृति वाले, असंप्रज्ञ, असमाहित, चंचल चित्त वाले, असंयत इन्द्रियों वाले थे।

तब, जन्तु देवपुत्र पूर्णिमा के उपोसथ को जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ आया। आकर उसने उन भिक्षुओं को गाथाओं में कहा—

पहले सुख से रहते थे, भिक्षु गौतम के श्रावक।
लोभ-रहित भिक्षाटन करते थे, लोभ-रहित रहने की जगह।
संसार की अनित्यता जान, उनने दुःखों का अन्त कर लिया॥
अब तो, अपने को बिगाड़, गाँव में जमींदार के ऐसा।
ठूँस कर खाते और पड़ रहते हैं, दूसरों के घर की चीजों के लोभी।
संघ के प्रति हाथ जोड़, इनमें कितनों को प्रणाम् करता हूँ॥
फूटे हुये थे अनाथ जैसे, जैसे मुर्दा फेंका हो वैसे।
जो प्रमत्त होकर रहते हैं, उनके प्रति मैं ऐसा कहता हूँ।
और जो अप्रमाद से विहार करते हैं,
उन्हें मेरा प्रणाम् है॥

§ ६. रोहितस्स सुत्त (२. ३. ६)

लोक का अन्त चलकर नहीं पाया जा सकता, बिना अन्त पाये मुक्ति भी नहीं

श्रावस्ती में।

एक ओर खड़ा हो रोहितस्स देवपुत्र भगवान् से यह बोला—भन्ते! कहाँ न कोई जनमता है, न बूढ़ा होता है, न मरता है, न शरीर छोड़कर फिर उत्पन्न होता है? भन्ते! क्या चल-चलकर लोक का अन्त जाना, देखा या पाया जा सकता है?

आवुस! जहाँ न कोई जनमता है, न बूढ़ा होता है, न मरता है, न शरीर छोड़ कर फिर उत्पन्न होता है; लोक के उस अन्त को चल चलकर जाना, देखा या पाया जाना मैं नहीं बताता।

भन्ते! आश्चर्य है, अद्भुत है! जो भगवान् ने इतना ठीक कहा— ···लोक के उस अन्त को चल-चलकर जाना, देखा या पाया जाना मैं नहीं बताता।

भन्ते! बहुत पहले मैं रोहितस्स नाम का एक ऋषि भोजपुत्र, बड़ा ऋद्धिमान्, आकाश में विचरण करनेवाला था। भन्ते! उस समय मेरी ऐसी गति-शक्ति थी जैसे कोई होशियार तीरन्दाज़,—सिखाया हुआ, जिसका हाथ साफ हो गया है, निपुण, अभ्यासी—एक हल्के तीर को बड़ी आसानी से ताल की छाया तक फेंक दे।

भन्ते उस समय मेरा डेग ऐसा पड़ता था, जैसे पूरब के समुद्र से लेकर पश्चिम के समुद्र तक। भन्ते! तब, मेरे चित्त में यह ख्याल आया—मैं चल-चलकर लोक के अन्त तक पहुँचूँगा।

भन्ते ! सो मैं इस प्रकार की गति से, इस प्रकार के डेग भरते, खाना-पीना छोड़, पाखाना-पेशाब छोड़, सोना और आराम करना छोड़, सौ वर्ष की आयु तक जीता रह बराबर चलते रहकर भी लोक के अन्त को बिना पाये बीच ही में मर गया।

भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है ! जो भगवान् ने इतना ठीक कहा— ···लोक के उस अन्त को चल-चलकर जाना, देखा या पाया जाना मैं नहीं बताता।

आवुस ! मैं कहता हूँ कि—बिना लोक का अन्त पाये दुःखों का अन्त करना सम्भव नहीं है। आवुस ! और यह भी कि—इसी व्याम भर संज्ञा धारण करने वाले कलेवर (= शरीर) में लोक, लोक की उत्पत्ति, लोक का निरोध और लोक के निरोध करने का मार्ग, सभी मौजूद है।

चल-चलकर नहीं पहुँचा जा सकता, लोक का अन्त कभी भी,
और बिना लोक का अन्त पाये, दुःख से छुटकारा नहीं है ॥
इसलिये, बुद्धिमान् लोक को पहिचाने,
लोक के अन्त को पानेवाला, ब्रह्मचर्य धारण करनेवाला,
लोक के अन्त को ठीक से जान,
न लोक की आशा करता है और न परलोक की ॥

§ ७. नन्द सुत्त (२. ३. ७)

समय बीत रहा है

एक ओर खड़ा हो नन्द देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

समय बीत रहा है, रातें निकल रही हैं,···

(देखो १. १. ४)

§ ८. नन्दिविसाल सुत्त (२. ३. ८)

यात्रा कैसे होगी ?

एक ओर खड़ा हो नन्दिविशाल देवपुत्र ने भगवान् को गाथा में कहा—

चार चक्कों वाला, नव दरवाजों वाला,···

(देखो १. ३. ९)

§ ९. सुसिम सुत्त (२. ३. ९)

आयुष्मान् सारिपुत्र के गुण

श्रावस्ती में।

तब, आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् आनन्द को भगवान् ने कहा—आनन्द ! तुम्हें सारिपुत्र सुहाता है न ?

भन्ते ! मूर्ख, दुष्ट, मूढ़ और सनके आदमी को छोड़ कर भला ऐसा कौन होगा जिसे आयुष्मान् सारिपुत्र नहीं सुहायें ! भन्ते ! आयुष्मान् सारिपुत्र महाज्ञानी हैं, महाप्रज्ञ हैं, बड़े पण्डित हैं। आयुष्मान् सारिपुत्र की प्रज्ञा अत्यन्त प्रसन्न है। उनकी प्रज्ञा बड़ी तीव्र है। उनकी प्रज्ञा बड़ी तीक्ष्ण है। उनकी प्रज्ञा में पैठना आसान नहीं। भन्ते ! आयुष्मान् सारिपुत्र बड़े अल्पेच्छ हैं, संतोषी हैं, विवेकी हैं,

अनासक्त हैं, उत्साही हैं, वक्ता हैं, वचन-कुशल हैं, बताने वाले हैं, पाप की निन्दा करने वाले हैं। भन्ते ! मूर्ख, दुष्ट, मूढ़ और सनकी आदमी को छोड़ कर भला ऐसा कौन होगा जिसको आयुष्मान् सारिपुत्र नहीं सुहायें।

आनन्द ! ऐसी ही बात है।···भला ऐसा कौन होगा जिसको सारिपुत्र नहीं सुहाये ! आनन्द ! सारिपुत्र महाज्ञानी है, महाप्रज्ञ है···।

तब, सुसिम देवपुत्र आयुष्मान् सारिपुत्र के गुण कहे जाने के समय देवपुत्रों की बड़ी भारी मण्डली के साथ जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया।

एक ओर खड़ा हो, सुसिम देवपुत्र ने भगवान् को कहा—

भगवान् ! सुगत ! ऐसी ही बात है।···भला ऐसा कौन होगा जिसको आयुष्मान् सारिपुत्र नहीं सुहायें।

भन्ते ! आयुष्मान् सारिपुत्र महाज्ञानी हैं, महाप्रज्ञ हैं···।

तब, सुसिम देवपुत्र की मण्डली ने आयुष्मान् सारिपुत्र के गुण कहे जाने के समय संतुष्ट, प्रमुदित और प्रीति-युक्त हो प्रसन्न कान्ति धारण की। जैसे शुभ, अच्छी जातिवाला, अच्छी तरह काम किया गया, पीले ऊनी कपड़े में लपेट कर रक्खा वैदूर्य मणि भासता है, तपता है और चमकता है—वैसे ही सुसिम देवपुत्र की मण्डली ने···प्रसन्न कान्ति धारण की।

जैसे, अच्छे सोने का आभूषण दक्ष सुवर्णकार से बड़ी कारीगरी के साथ गढ़ा गया, पीले ऊनी कपड़े में लपेट कर रक्खा भासता है, तपता है और चमकता है—वैसे ही सुसिम देवपुत्र की मण्डली ने···प्रसन्न कान्ति धारण की।

जैसे, रात के भिनसारे औषधि-तारका (शुक्र तारा)···वैसे ही सुसिम देवपुत्र की मण्डली ने···प्रसन्न कान्ति धारण की।

जैसे, शरत्काल में बादल के हट जाने और आकाश खुल जाने पर सूरज आकाश में चढ़ सारी अँधियारी को दूर कर के भासता है, तपता है, और चमकता है—वैसे ही सुसिम देवपुत्र की मण्डली ने···प्रसन्न कान्ति धारण की।

तब, सुसिम देवपुत्र ने आयुष्मान् सारिपुत्र के विषय में भगवान् के पास यह गाथा कहा—

> पण्डित और बड़ा ज्ञानी, क्रोध-रहित सारिपुत्र,
> अल्पेच्छ, सुरत, दान्त, ऋषि, जिसने बुद्ध के तेज का लाभ किया है॥

तब, भगवान् ने आयुष्मान् सारिपुत्र के विषय में सुसिम देवपुत्र को गाथा में यह कहा—

> पण्डित और बड़ा ज्ञानी, क्रोध-रहित सारिपुत्र,
> अल्पेच्छ, सुरत, दान्त, अपनी मजदूरी की राह देख रहा है॥

§ १०. नाना तित्थिय सुत्त (२. ३. १०)

नाना तीर्थों के मत, बुद्ध अगुआ

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे।

तब, कुछ दूसरे मतवाले श्रावक देवपुत्र—असम, सहली, निंक, आकोटक, वेटम्बरी और [illegible] बीतने पर अपनी चमक से सारे वेलुवन को चमका जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर खड़े हो गये।

एक ओर खड़ा हो, असम देवपुत्र पूरण कस्सप के विषय में भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

यदि कोई पुरुष मारे या काटे,
या किसी को बर्बाद कर दे—
तो कस्सप उसमें अपना कोई पाप,
या पुण्य नहीं देखते ॥
उनने विश्वस्त बात बताई है,
वे गुरु सम्मान के भाजन हैं ॥

तब, स्हली देवपुत्र **मक्खलि-गोसाल** के विषय में भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

कठिन तपश्चरण और पाप जुगुप्सा से संवृत,
मौन, कलह-त्यागी,
शान्त, बुराइयों से विरत, सत्यवादी,
उन जैसे कभी पाप नहीं कर सकते ॥

तब, निंक देवपुत्र निगण्ठ नातपुत्र के विषय में भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

पाप से घृणा करने वाले, चतुर, भिक्षु,
चारों याम में सुसंवृत रहने वाले,
देखे सुने को कहते हुये,
उनमें भला क्या पाप हो सकता है !

तब, आकोटक देवपुत्र नाना तीर्थों के विषय में भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

पकुध कातियान, निगण्ठ,
और भी जो ये हैं **मक्खलि, पूरण,**
श्रामण्य पाने वाले ये गण के नायक हैं,
ये भला सत्पुरुषों से दूर कैसे हो सकते हैं ?

तब, वेटम्बरी देवपुत्र ने **आकोटक** देवपुत्र को गाथा में कहा—

हुँआ हुँआ कर रोने वाला अदना सियार,
सिंह के समान कभी नहीं हो सकता,
नंगा, झूठा, यह गण का गुरु,
जिसकी चलन में सन्देह किया जा सकता है,
सज्जनों के सरीखा पुरुष नहीं है ॥

तब, पापी मार वेटम्बरी देवपुत्र में पैठ भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

तप और दुष्कर क्रिया करने में जो लगे हैं,
जो उनको विचार पूर्वक पालन करते हैं;
और जो सांसारिक रूप में आसक्त हैं,
देवलोक में मजे उड़ाने वाले,
वे ही लोग परलोक बनाने का,
अच्छा उपदेश देते हैं ॥

तब, भगवान् ने 'यह पापी मार है' जान उसे गाथा में उत्तर दिया—

राजगृह के पहाड़ों में,

विपुल श्रेष्ठ कहा जाता है,
श्वेतों हिमालय में श्रेष्ठ है,
आकाश में चलने वालों में सूरज,
जलाशयों में समुद्र श्रेष्ठ है,
नक्षत्रों में चन्द्रमा,
जैसे हों, देवताओं के साथ सारे लोक में,
बुद्ध ही अनुपम कहे जाते हैं ॥

देवपुत्त संयुत्त समाप्त

---

१. वेभार –अट्ठकथा।

तीसरा परिच्छेद

३. कोसल-संयुत्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १. दहर सुत्त (३. १. १)

चार को छोटा न समझे

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

तब, कोसल-राज प्रसेनजित् जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् के साथ संमोदन कर आवभगत के शब्द समाप्त कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, कोसल-राज प्रसेनजित् ने भगवान् को यह कहा—आप गौतम क्या अनुत्तर पूर्ण-बुद्धत्व पा लेने का दावा नहीं करते ?

महाराज ! यदि कोई किसी को सचमुच सम्यक् कहे तो वह मुझ ही को कह सकता है। महाराज ! मैंने ही उस अनुत्तर पूर्ण-बुद्धत्व का साक्षात्कार किया है।

हे गौतम ! जो दूसरे श्रमण और ब्राह्मण हैं—संघवाले, गणी, गणाचार्य, विख्यात, यशस्वी, तीर्थङ्कर, बहुत लोगों से सम्मानित : जैसे, पूरण-कस्सप, मक्खलि-गोसाल, निगण्ठ नातपुत्र, संजय वेलट्ठि पुत्र, पकुध कच्चायन, अजित केसकम्बली—वे भी ···मुझ से पूछे जाने पर अनुत्तर सम्यक् सम्बुद्धत्व पाने का दावा नहीं करते हैं ! आप गौतम तो आयु में भी छोटे हैं और नये नये प्रव्रजित भी हुए हैं !

महाराज ! चार ऐसे हैं जिनको 'छोटे हैं' समझ अवज्ञा या अपमान करना उचित नहीं। कौन से चार ? (१) क्षत्रिय को 'छोटा है' समझ अवज्ञा या अपमान करना उचित नहीं; (२) साँप को···; (३) आग को···; और (४) भिक्षु को··· । महाराज इन चार को—'छोटे हैं' समझ अवज्ञा या अपमान करना उचित नहीं।

भगवान् ने यह कहा। यह कह कर भगवान् बुद्ध ने फिर भी कहा—

> ऊँचे कुल में उत्पन्न, बड़े, यशस्वी क्षत्रिय को,
> 'छोटा है' जान कम न समझे, उसका कोई अपमान न करे :
> राज्य पाकर क्षत्रिय नरेन्द्र-पद पर आरूढ होता है,
> वह क्रुद्ध होकर राज-शक्ति से अपना बदला ले लेता है,
> इसलिये, अपनी जान की रक्षा करते हुए वैसा करने से बाज आवे ॥
> गाँव में, या जंगल में, कहीं भी जो साँप को देखे,
> 'छोटा है' जान उसे कम न समझे, उसका अनादर न करे,

रंग बिरंग के बड़े तेज साँप विचरते हैं,
असावधान रहने वाले को डँस लेते हैं, कभी पुरुष या स्त्री को,
इसलिये, अपनी जान बचाते हुये वैसा करने से बाज आवे ॥
लपटों में सब कुछ जला देने वाली, काले मार्ग पर चलने वाली आग को,
"छोटा है" जान कम न समझे, कोई उसका अनादर न करे,
जलावन पाकर वह बहुत बड़ी हो जाती है,
धधकर असावधान रहने वाले को जला देती है, स्त्री या पुरुष को,
इसलिये, अपनी जान बचाते हुये वैसा करने से बाज आवे ॥
काले मार्ग पर चलने वाली आग जिस वन को जला देती है,
वहाँ कुछ काल व्यतीत होने पर हरियाली फिर भी लग जाती है ॥
किन्तु, जिसे शीलसम्पन्न भिक्षु अपने तेज से जला देता है,
वह पुत्र, पशु, दायाद या धन कुछ भी नहीं पाता,
निःसन्तान, निर्धन, सिर कटे ताल-वृक्ष-सा हो जाता है ॥
इसलिये, पण्डित पुरुष अपनी भलाई का ख्याल कर,
साँप, आग और यशस्वी क्षत्रिय,
और शीलसम्पन्न भिक्षु के साथ ठीक से पेश आवे ॥

यह कहने पर, कोसलराज प्रसेनजित् भगवान् से बोला—भन्ते! बड़ा ठीक कहा! भन्ते! जैसे उलटे को सीधा कर दे, ढँके को उघार दे, भटके को राह दिखा दे, अँधियारे में तेल-प्रदीप दिखा दे—आँख वाले रूप देख लें—वैसे ही भगवान् ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित कर दिया है। भन्ते! यह मैं भगवान् की शरण जाता हूँ, धर्म की और भिक्षु-संघ की। भन्ते! आज से जन्म भर के लिये मुझ शरणागत को भगवान् उपासक स्वीकार करें।

§ २. पुरिस सुत्त (३. १. २)

तीन अहितकर धर्म

श्रावस्ती में।

तब कोसलराज प्रसेनजित् जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, कोसलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को यह कहा—भन्ते! पुरुष के कितने ऐसे अध्यात्म धर्म उत्पन्न होते हैं जो उसके अहित, दुःख और कष्ट के लिये होते हैं?

महाराज! पुरुष के तीन ऐसे अध्यात्म धर्म उत्पन्न होते हैं जो उसके अहित, दुःख और कष्ट के लिए हैं। कौन कौन? (१) महाराज! पुरुष को लोभ अध्यात्म धर्म उत्पन्न होता है, जो उसके अहित···। (२) महाराज! पुरुष को द्वेष अध्यात्म धर्म···। (३) महाराज! पुरुष को मोह अध्यात्म धर्म...। महाराज! पुरुष के यही तीन ऐसे अध्यात्म धर्म उत्पन्न होते हैं, जो उसके अहित, दुःख और कष्ट के लिए हैं।

लोभ, द्वेष और मोह,
पापचित्त वाले पुरुष को,
अपने ही भीतर उत्पन्न होकर नष्ट कर देते हैं,
जैसे अपना ही फल केले के पेड़ को ॥

§ ३. राजरथ सुत्त (३. १. ३)

सन्त-धर्म पुराना नहीं होता

श्रावस्ती में ।

एक ओर बैठ कोशल-राज प्रसेनजित् ने भगवान् को यह कहा—भन्ते ! क्या ऐसा कुछ है जो जन्म लेकर न पुराना होता हो और न मरता हो ।

महाराज ! ऐसा कुछ नहीं है जो न पुराना होता हो और न मरता हो । महाराज ! जो बड़े-बड़े ऊँचे क्षत्रिय-परिवार के हैं—धनाढ्य, बड़े मालदार, महाभोगवाले, जिनके पास सोना-चाँदी अफरात है, वित्त, उपकरण, धन और धान्य से सम्पन्न—वे भी जन्म लेकर बिना बूढ़े हुए और मरे नहीं रहते ।

महाराज ! जो बड़े ऊँचे ब्राह्मण-परिवार के हैं···वे भी जन्म लेकर बिना बूढ़े हुए और मरे नहीं रहते ।

महाराज ! जो अर्हत् भिक्षु हैं—क्षीणाश्रव, जिनका ब्रह्मचर्य-वास पूरा हो गया है, जिनने जो कुछ करना था कर लिया है, जिनका भार उतर चुका है, जो परमार्थ को प्राप्त हो चुके हैं। जिनका भव-बन्धन कट गया है, परम ज्ञान प्राप्त कर जो विमुक्त हो गये हैं—उनका भी शरीर छूट जाता है और बेकार हो जाता है ।

> बड़े ठाट-बाट के राजा के रथ भी पुराने हो जाते हैं,
> यह शरीर भी बुढ़ापा को प्राप्त हो जाता है,
> सन्तों का धर्म पुराना नहीं होता,
> सन्त लोग सत्पुरुषों से ऐसा कहा करते हैं ॥

§ ४. पिय सुत्त (३. १. ४)

अपना प्यारा कौन ?

श्रावस्ती में ।

एक ओर बैठ, कोशल-राज प्रसेनजित् ने भगवान् को यह कहा—भन्ते ! यहाँ, अकेला बैठ ध्यान करते मेरे मन में ऐसा वितर्क उठा—"किनको अपना प्यारा है और किनको अपना प्यारा नहीं है।" भन्ते ! तब मेरे मन में यह हुआ—"जो शरीर से दुराचार करते हैं, वचन से दुराचार करते हैं, मन से दुराचार करते हैं उनको अपना प्यारा नहीं है।" यदि वे ऐसा कहें भी—"मुझे अपना प्यारा है" तो भी, सचमुच में उनको अपना प्यारा नहीं है ।

सो क्यों ? जो शत्रु शत्रु के प्रति करता है, वही वे अपने प्रति आप करते हैं। इसलिये, उनको अपना प्यारा नहीं है ।

और, जो शरीर से सदाचार करते हैं, वचन से सदाचार करते हैं, मन से सदाचार करते हैं, उनको अपना प्यारा है । यदि वे ऐसा कहें भी—"मुझे अपना प्यारा नहीं है" तो भी सचमुच उनको अपना बड़ा प्यारा है ।

सो क्यों ? जो मित्र मित्र के प्रति करता है, वही वे अपने प्रति आप करते हैं। इसलिए, उनको अपना बड़ा प्यारा है ।

महाराज ! यथार्थ में ऐसी ही बात है । जो शरीर से दुराचार करते हैं··· इसलिए, उनको अपना प्यारा नहीं है । और, जो शरीर से सदाचार करते हैं··· इसलिए, उनको अपना बड़ा प्यारा है ।

> जिसे अपना प्यारा है वह अपने को पाप में मत लगावे,

दुष्कर्म करनेवालों को सुख सुलभ नहीं होता ॥
मनुष्य-शरीर को छोड़ मृत्यु के वश में आ गये का,
भला, क्या अपना होता ! भला वह क्या लेकर जाता है !
क्या उसके पीछे पीछे जाता है, साथ न छोड़ने वाली छाया-जैसे ?
पाप और पुण्य दोनों को मनुष्य यहाँ करता है,
वही उसका अपना होता है और उसी को लेकर वह जाता है,
वही उसके पीछे-पीछे जाता है, साथ न छोड़ने वाली छाया-जैसे ॥
इसलिये कल्याण करे, अपना परलोक बनाते हुये ।
पुण्य ही परलोक में प्राणियों का आधार होता है ॥

§ ५. अत्तरक्खित सुत्त (३. १. ५)

अपनी रखवाली

एक ओर बैठ, कोशल-राज प्रसेनजित् ने भगवान् को यह कहा—भन्ते ! यह, अकेला बैठ ध्यान करते मेरे मन में ऐसा वितर्क उठा, "किनने अपनी रखवाली कर ली है और किनने अपनी रखवाली नहीं की है ?"

भन्ते ! तब मेरे मन में यह हुआ—जो शरीर से दुराचार करते हैं, वचन से दुराचार करते हैं, मन से दुराचार करते हैं, उनने अपनी रखवाली नहीं कर ली है। भले ही उनकी रक्षा के लिये हाथी, रथ और पैदल सेनायें हों, किन्तु तो भी उनकी रखवाली नहीं हुई है।

सो क्यों ? बाहर की ही उनकी रक्षा हुई है, आध्यात्म की नहीं। इसलिये, उनकी अपनी रखवाली नहीं हुई है।

जो शरीर से सदाचार करते हैं···उनने अपनी रखवाली कर ली है। भले ही···पैदल सेनायें न हों, किन्तु तो भी उनकी अपनी रखवाली हो गई है।

सो क्यों ? आध्यात्मिक रक्षा उनकी हो गई है, बाहर की नहीं हुई है। इसलिये, उनकी अपनी रखवाली हो गई है।

महाराज ! यथार्थ में ऐसी ही बात है। जो शरीर से दुराचार करते हैं···इसलिये, उनकी अपनी रखवाली नहीं हुई है और जो शरीर से सदाचार करते हैं···इसलिये, उनकी अपनी रखवाली हो गई है।

शरीर का संयम ठीक है, वचन का संयम ठीक है,
मन का संयम ठीक है, सभी का संयम ठीक है,
पूर्ण संयमी, लज्जावान्, रक्षा कर लिया गया कहा जाता है ॥

§ ६. अप्पक सुत्त (३. १. ६)

निर्लोभी थोड़े ही हैं

श्रावस्ती में।

एक ओर बैठ, कोशलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को कहा—भन्ते यह, अकेला बैठ ध्यान करते मेरे मनमें ऐसा वितर्क उठा—"संसार में बहुत थोड़े ही ऐसे हैं जो बड़े बड़े भोग पा मतवाले नहीं हो जाते हों, मस्त नहीं हो जाते हों, बड़े लोभी नहीं बन जाते हों, लोगों में दुराचरण नहीं करने लग जाते हों, बल्कि संसार में ऐसे ही लोग बहुत हैं जो बड़े-बड़े भोग पा मतवाले हो जाते हैं, मस्त हो जाते हैं, बड़े लोभी बन जाते हैं और लोगों में दुराचरण करने लग जाते हैं।

महाराज ! यथार्थ में ऐसी ही बात है। संसार में बहुत थोड़े ही ऐसे हैं...।

> काम-भोग में आरक्त, कामों के लोभ में अन्धा बने,
> किसी हद की परवाह नहीं करते, मृग जैसे फैलाये जाल की,
> नतीजा कड़ुआ होता है, उसका फल दुःखद होता है ॥

§ ७. अत्थकरण सुत्त (३. १. ७)

कचहरी में झूठ बोलने का फल दुःखद

एक ओर बैठ, कोशलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को यह कहा—"भन्ते ! कचहरी में इन्साफ करते, मैं ऊँचे कुल के क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति,—बड़े धनाढ्य, मालदार, महाभोग वाले, जिनके पास सोना-चाँदी अफरात है, वित्त, उपकरण, धन और धान्य से सम्पन्न—को भी सांसारिक कामों के चलते जान-बूझ कर झूठ बोलते देखता हूँ। भन्ते ! तब, मेरे मन में यह विचार हुआ, "कचहरी करना मेरा बस रहे। अब मेरे अमात्य ही कचहरी लगावें।"

महाराज ! जो ऊँचे कुल के क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति... जान-बूझ कर झूठ बोलते हैं उनका चिरकाल तक अहित और दुःख होगा।

> काम-भोग में आरक्त, कामों के लोभ में अन्धा बने,
> किसी हद की परवाह नहीं करते, मछलियाँ जैसे एक गये जाल की,
> नतीजा कड़ुआ होता है, उसका फल दुःखद होता है ॥

§ ८. मल्लिका सुत्त (३. १. ८)

अपने से प्यारा कोई नहीं

श्रावस्ती में।

उस समय कोशलराज प्रसेनजित् अपनी रानी मल्लिका देवी के साथ महल के ऊपर वाले तल्ले पर गया हुआ था। तब, कोशलराज प्रसेनजित् ने मल्लिका देवी को कहा—मल्लिके ! क्या तुम्हें अपने से भी बढ़ कर कोई दूसरा प्यारा है ?

नहीं महाराज ! मुझे अपने से भी बढ़ कर कोई दूसरा प्यारा नहीं है। क्या आप को महाराज, अपने से भी बढ़ कर कोई दूसरा प्यारा है ?

नहीं मल्लिके ! मुझे भी अपने से बढ़ कर कोई दूसरा प्यारा नहीं है।

तब, कोशलराज प्रसेनजित् महल से उतर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ, कोशलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को यह कहा—

भन्ते ! मैं अपनी रानी मल्लिका देवी के साथ... महल के ऊपर वाले तल्ले पर गया हुआ था।... इस पर मैंने मल्लिका देवी को कहा—नहीं मल्लिके ! मुझे भी अपने से बढ़ कर कोई दूसरा प्यारा नहीं है।

इसे जान, भगवान् के मुँह से उस समय यह गाथा निकल पड़ी—

> सभी दिशाओं में अपने मन को दौड़ा,
> कहीं भी अपने से प्यारा दूसरा कोई नहीं मिला,
> वैसे ही, दूसरों को भी अपना बड़ा प्यारा है,
> इसलिये, अपनी भलाई चाहने वाला दूसरे को मत सतावे ॥

§ ९. यञ्ञ सुत्त (३. १. ९)

पाँच प्रकार के यज्ञ, पीड़ा और हिंसा-रहित यज्ञ ही हितकर

श्रावस्ती में।

उस समय, कोशलराज प्रसेनजित् की ओर से एक महायज्ञ होने वाला था। पाँच सौ बैल, पाँच सौ बछड़े, पाँच सौ बछड़ियाँ, पाँच सौ बकरियाँ और पाँच सौ भेड़ सभी यज्ञ के लिए थून में बँधे थे। जो दास, नौकर और मजदूर थे वे भी लाठी और भय से धमकाये जाकर आँसू गिराते रोते तैयारियाँ कर रहे थे।

तब, कुछ भिक्षु सुबह में पहन और पात्र-चीवर ले श्रावस्ती में पिण्डपात के लिये पैठे। श्रावस्ती में पिण्डाचरण से लौट, भोजन कर लेने पर जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को यह कहा—भन्ते! कोशलराज प्रसेनजित् की ओर से एक महायज्ञ होने वाला है।···आँसू गिराते रोते तैयारियाँ कर रहे हैं।

इसे जान, भगवान् के मुँह से उस समय यह गाथायें निकल पड़ीं—

अश्व-मेध, पुरुष-मेध, सम्यक् पाश, वाजपेय,
निरर्गल और ऐसी ही बड़ी-बड़ी करामातें,
सभी का अच्छा फल नहीं होता है॥

भेड़, बकरे और गौवें तरह-तरह के जहाँ मारे जाते हैं,
सुमार्ग पर आरूढ़ महर्षि लोग ऐसे यज्ञ नहीं बताते हैं॥
जिस यज्ञ में ऐसी शूलें नहीं होतीं हैं, सदा अनुकूल यज्ञ करते हैं,
भेड़, बकरे और गौवें, तरह-तरह के जहाँ नहीं मारे जाते,
सुमार्ग पर आरूढ़ महर्षि लोग ऐसे ही यज्ञ बताते हैं,
बुद्धिमान् पुरुष ऐसा ही यज्ञ करे, इस यज्ञ का महाफल है,
इस यज्ञ करनेवाले का कल्याण होता है, अहित नहीं,
यह यज्ञ महान् होता है, देवता प्रसन्न होते हैं॥

§ १०. बन्धन सुत्त (३. १. १०)

दृढ़ बन्धन

उस समय कोशलराज प्रसेनजित् ने बहुत लोगों को गिरफ्तार करवा लिया था। कितने रस्सी से और कितने सीकड़ से बाँध दिये गये थे।

तब, कुछ भिक्षु सुबह में पहन और पात्र-चीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिए पैठे। श्रावस्ती में भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने पर जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को यह कहा—भन्ते! कोशलराज प्रसेनजित् ने बहुत लोगों को गिरफ्तार करवा लिया है। कितने रस्सी से, और कितने सीकड़ से बाँध दिये गये हैं।

इसे जान, भगवान् के मुँह से उस समय यह गाथायें निकल पड़ीं—

पण्डित लोग उसे दृढ़ बन्धन नहीं कहते,
जो लोहा, लकड़ी या रस्सी का होता है,
मणि और कुण्डलों में जो आरक्त हो जाना है,
स्त्री और पुत्रों के प्रति जो अपेक्षा रहती है,
इसी को पण्डितों ने दृढ़ बन्धन कहा है,
घसीट कर ले जानेवाला, सूक्ष्म और जिसका खोलना कठिन है,
इसे भी काटकर लोग प्रव्रजित हो जाते हैं,
अपेक्षा-रहित हो, काम-सुख को छोड़ ॥

प्रथम वर्ग समाप्त ।

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १. जटिल सुत्त (३. २. १)

ऊपरी रूप-रंग से जानना कठिन

एक समय भगवान् श्रावस्ती में मृगारमाता के पूर्वाराम प्रासाद में विहार करते थे।

उस समय साँझ को ध्यान से उठ भगवान् बाहर निकल कर बैठे थे।

तब कोशल-राज प्रसेनजित् जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

उस समय सात जटिल, सात निगण्ठ, सात नंगे, सात एकशाटिक और सात परिव्राजक, काँख के रोयें और नाखून बढ़ाये, अपने विविध प्रकार के सामान लिए भगवान् के पास से ही गुजर रहे थे।

तब, ···प्रसेनजित् ने आसन से उठ, एक कन्धे पर उपरनी को सँभाल, दाहिने घुटने को जमीन पर टेक जिधर वे सात जटिल··· थे उधर हाथ जोड़कर तीन बार अपना नाम सुनाया—भन्ते ! मैं राजा प्रसेनजित् हूँ।

तब राजा··· उन सात जटिलों के··· निकल जाने के बाद ही जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ राजा··· ने भगवान् को यह कहा—भन्ते ! लोक में जो अर्हत हैं या अर्हत-मार्ग पर आरूढ़ उनमें ये एक हैं।

महाराज ! आपने—जो गृहस्थ, काम-भोगी, बाल-बच्चों में रहनेवाले, काशी के चन्दन को लगाने वाले, माला-गन्ध और उबटन का इस्तेमाल करनेवाले, रुपये-पैसे बटोरने वाले हैं—यह गलत समझ लिया कि ये अर्हत् या अर्हत्-मार्ग पर आरूढ़ हैं।

महाराज ! साथ रहने ही से किसी का शील जाना जा सकता है; सो भी बहुत काल तक रह, ऐसे नहीं; सो भी सदा ध्यान में रखने से, ऐसे नहीं; सो भी प्रज्ञावान् पुरुष से ही अप्रज्ञावान् से नहीं।

महाराज ! व्यवहार ही से किसी की ईमानदारी का पता लगता है; सो भी, बहुत काल के बाद, ऐसे नहीं; सो भी, सदा ध्यान में रखने से, ऐसे नहीं; सो भी, प्रज्ञावान् पुरुष से ही, अप्रज्ञावान् से नहीं।

महाराज ! विपत्ति पड़ने पर ही मनुष्य की स्थिरता का पता लगता है;···अप्रज्ञावान् से नहीं।

महाराज ! बात-चीत करने पर ही मनुष्य की प्रज्ञा का पता लगता है;···अप्रज्ञावान् से नहीं।

भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है ! भगवान् ने ठीक बताया कि—···यह गलत समझ लिया कि ये अर्हत् या अर्हत् के मार्ग पर आरूढ़ हैं। साथ रहने ही से···अप्रज्ञावान् से नहीं।

भन्ते ! ये पुरुष मेरे गुप्तचर हैं, भेदिया हैं; किसी जगह का भेद लेकर आते हैं। उनसे पहले मैं भेद लेकर पीछे वैसा ही समझता-बूझता हूँ।

भन्ते ! अब, ये उस भस्म भभूत को धो, स्नान कर, उबटन लगा, बाल बनवा, उजले वस्त्र पहन, पाँच काम-गुणों का भोग करेंगे।

इसे जान, भगवान् के मुँह से उस समय यह गाथायें निकल पड़ीं—

ऊपरी रंग-रूप से मनुष्य जाना नहीं जाता,
केवल देख कर ही किसी में विश्वास मत करे,
बड़े संयम का भड़क दिखा कर,
दुष्ट लोग भी विचरण किया करते हैं ॥
नकली, मिट्टी का बना भड़कदार कुण्डल के समान,
या लोहे का बना और सोने का पानी चढ़ाया जैसे हो,
कितने वेष बना कर विचरण करते हैं,
भीतर से मैला और बाहर से चमकते ॥

§ २. पञ्चराज सुत्त (३. २. २)

जो जिसे प्रिय है, वही उसे अच्छा है

श्रावस्ती में।

उस समय, प्रसेनजित् प्रमुख पाँच राजाओं के बीच, पाँचों काम-गुणों का भोग करते हुये, यह बात चली—काम-भोगों में सबसे बढ़िया कौन है ?

उनमें से एक ने कहा—रूप काम-भोगों में सबसे बढ़िया है। उनमें से एक ने कहा—शब्द काम-भोगों में सबसे बढ़िया है।···गन्ध···बढ़िया है।···रस···बढ़िया है।···स्पर्श···बढ़िया है। वे राजा एक दूसरे को समझा नहीं सके।

तब, कोशल-राज प्रसेनजित् ने उन राजाओं को कहा—हमलोग चलें। जहाँ भगवान् हैं वहाँ जाकर भगवान् से इस बात को पूछें। जैसा भगवान् बतावें वैसा ही हमलोग समझें।

"बहुत अच्छा" कह, उन राजाओं ने कोशलराज प्रसेनजित् को उत्तर दिया।

तब प्रसेनजित्-प्रमुख वे राजा जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, कोशलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को कहा—भन्ते ! इन पाँच राजाओं के बीच, पाँचों काम-गुणों का भोग करते हुए, यह बात चली—काम-भोगों में सबसे बढ़िया कौन है ? एक ने कहा—रूप···शब्द···गन्ध···रस···स्पर्श···। भन्ते ! सो आप बतावें कि काम-भोगों में सबसे बढ़िया कौन है।

महाराज ! मैं कहता हूँ कि पाँच काम-गुणों में जिसको जो अच्छा लगे उसके लिये वही बढ़िया है। महाराज ! जो रूप एक के लिये अत्यन्त प्रिय होता है, वही रूप दूसरे के लिये अत्यन्त अप्रिय होता है। जिस रूप से एक सन्तुष्ट हो जाता है और उसकी इच्छायें पूरी हो जाती हैं, उस रूप से कहीं बढ़-चढ़कर भी दूसरा रूप उसे नहीं भाता है। वही रूप उसके लिये सर्वोत्तम और अलौकिक होते हैं।

महाराज ! जो शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श एक के लिये अत्यन्त प्रिय···।

उस समय, चन्दनङ्गलिक उपासक उस परिषद् में बैठा था। तब, चन्दनङ्गलिक उपासक अपने आसन से उठ, उपरनी को एक कन्धे पर सँभाल, भगवान् की ओर हाथ जोड़ कर बोला—भगवन् ! मुझे कुछ कहने की इच्छा हो रही है।

भगवान् बोले—तो चन्दनङ्गलिक ! कहो।

तब चन्दनङ्गलिक उपासक ने भगवान् के सम्मुख अनुरूप गाथाओं में उनकी स्तुति की।

जैसे सुन्दर कोकनद पद्म,
—प्रातः काल खिला और सुगन्ध से भरा रहता है,

वैसे ही, उन शोभते हुए अङ्गीरस को देखो,
आकाश में तपते हुये आदित्य के ऐसा ॥

तब, उन पाँच शाक्यों ने चन्द्रनङ्गलिक उपासक को पाँच वस्त्र भेंट किये।
तब, उन पाँच वस्त्रों को चन्द्रनङ्गलिक ने भगवान् की सेवा में अर्पण किया।

§ ३. दोणपाक सुत्त (३. २. ३)

मात्रा से भोजन करे

श्रावस्ती में।

उस समय कोशलराज प्रसेनजित् द्रोण भर भोजन करता था। तब कोशलराज प्रसेनजित् भोजन कर, लम्बी-लम्बी साँस लेते, जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गया।

तब, कोशल-राज प्रसेनजित् को भोजन कर लम्बी-लम्बी साँस लेते देखकर भगवान् के मुँह से उस समय यह गाथा निकल पड़ी—

सदा स्मृतिमान् रहने वाले,
प्राप्त भोजन में मात्रा जानने वाले,
उस मनुष्य की वेदनायें कम होती हैं,
(वह भोजन) आयु को पालता हुआ धीरे-धीरे हजम होता है ॥

उस समय सुदर्शन माणवक राजा···के पीछे खड़ा था।

तब, राजा···ने सुदर्शन माणवक को आमन्त्रित किया—तात सुदर्शन! भगवान् से तुम यह गाथा सीख लो। मेरे भोजन करने के समय यह गाथा पढ़ना। इसके लिये बराबर प्रतिदिन तुम्हें सौ कहापण (=कार्षापण) मिला करेंगे।

"महाराज! बहुत अच्छा" कह, सुदर्शन माणवक ने राजा···को उत्तर दे, भगवान् से···उस गाथा को सीख, राजा के भोजन करने के समय कहा करता—

सदा स्मृतिमान् रहने वाले,
प्राप्त भोजन में मात्रा जानने वाले,
उस मनुष्य की वेदनायें कम होती हैं,
(वह भोजन) आयु को पालता हुआ धीरे-धीरे हजम होता है ॥

तब, राजा···क्रमशः नालि भर ही भोजन करने लगा।

तब, कुछ समय के बाद राजा का शरीर बड़ा सुडौल और गठीला हो गया। अपने गालों पर हाथ फेरते हुये राजा के मुँह से उस समय उदान के यह शब्द निकल पड़े—

अरे!···भगवान् ने दोनों तरह से मुझ पर अनुकम्पा की है—इस लोक की बातों में और परलोक की बातों में भी।

§ ४. पठम सङ्गाम सुत्त (३. २. ४)

लड़ाई की दो बातें, प्रसेनजित् की हार

श्रावस्ती में।

तब मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र ने चतुरङ्गिणी सेना को साज कोशलराज प्रसेनजित् के विरुद्ध काशी पर धावा मार दिया।

---

* अङ्गीरस=अङ्गरस सम्बुद्ध : जिनके अंगों से रश्मियाँ निकलती हैं—अट्ठकथा।

कोशलराज प्रसेनजित् ने सुना कि मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र ने···धावा मार दिया है।

तब कोशलराज प्रसेनजित् भी चतुरङ्गिनी सेना ले काशी में मगधराज अजातशत्रु के सामने आ डटा।

तब दोनों में बड़ी भारी लड़ाई छिड़ गई। उस लड़ाई में मगधराज ने···कोशलराज ···को हरा दिया। हार खा, कोशलराज प्रसेनजित् अपनी राजधानी श्रावस्ती को लौट गया।

तब कुछ भिक्षु सुबह में पहन और पात्र चीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिये पैठे। भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने के बाद जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा—

भन्ते! मगधराज ने···काशी पर धावा मार दिया।···हार खा, कोशलराज प्रसेनजित् अपनी राजधानी श्रावस्ती को लौट आया।

भिक्षुओ! मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र बुरे लोगों से मिलने-जुलने वाला और बुराइयों को ग्रहण करने वाला है। और कोशलराज प्रसेनजित् भले लोगों से मिलने-जुलने वाला और भलाइयों को ग्रहण करने वाला है। भिक्षुओ! किन्तु, हार खाये कोशलराज प्रसेनजित् की यह रात भारी ग़म में बीतेगी।

जीत होने से वैर बढ़ता है,
हारा हुआ ग़म से सोता है;
शान्त हो गया पुरुष सुख से रहता है,
हार-जीत की बातों को छोड़॥

§ ५. दुतिय सङ्गाम सुत्त (३. २. ५)

अजातशत्रु की हार, लुटेरा लूटा जाता है

तब मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र ने चतुरङ्गिनी सेना को साज कोशलराज प्रसेनजित् के विरुद्ध काशी पर धावा मार दिया।

कोशलराज प्रसेनजित् ने सुना कि मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र ने···धावा मार दिया है।

तब, कोशलराज प्रसेनजित् भी चतुरङ्गिनी सेना ले काशी में मगधराज अजातशत्रु के सामने आ डटा।

तब, दोनों में बड़ी भारी लड़ाई छिड़ गई। उस लड़ाई में कोशलराज प्रसेनजित् ने मगधराज··· को हरा दिया और जीता गिरफ्तार भी कर लिया।

इस पर, कोशलराज प्रसेनजित् के मन में यह हुआ—भले ही मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र ने कुछ भी नहीं करने वाले मेरे विरुद्ध कुछ करना चाहा, तो भी तो मेरा भाञ्जा होता है! तो, क्यों न मैं उसकी चतुरङ्गिनी सेना को छीन उसे जीता ही छोड़ दूँ!

तब, कोशलराज ने···मगधराज को···जीता ही छोड़ दिया।

तब, कुछ भिक्षु···भगवान् के पास आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा—

भन्ते! ···तब, कोशलराज प्रसेनजित् ने मगधराज अजातशत्रु को···जीता ही छोड़ दिया।

इसे जान, भगवान् के मुँह से उस समय यह गाथायें निकल पड़ीं—

अपनी मरज़ी भर कोई लूटता है;
किन्तु, जब दूसरे लूटने लगते हैं,
तो वह लूटने वाला लुटा जाता है;

मूर्ख समझता है—हाथ मार लिया !
तभी तक जब तक उसका पाप नहीं फलता है ;
किन्तु, जब पाप अपना नतीजा लाता है,
तब मूर्ख दुःख ही दुःख पाता है ॥
मारने वाले को मारने वाला मिलता है,
जीतने वाले को जीतने वाला मिलता है,
गाली देने वाले को गाली देने वाला, (और)
बिगड़ने वाले को बिगड़ने वाला;
इस तरह, अपने किये कर्म के फेर में पड़,
लूटने वाला लूटा जाता है ॥

§ ६. धीतु सुत्त (३. २. ६)

स्त्रियाँ भी पुरुषों से श्रेष्ठ होती हैं

श्रावस्ती में ।

तब, कोशलराज प्रसेनजित् जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।

तब, कोई आदमी जहाँ कोशलराज प्रसेनजित् था वहाँ गया और कान में फुसफुसा कर बोला—महाराज ! मल्लिका देवी को लड़की पैदा हुई है ।

उसके ऐसा कहने पर कोशलराज का मन गिर गया ।

कोशलराज प्रसेनजित् के मनको गिरा देख, भगवान् के मुँह से उस समय यह गाथायें निकल पड़ीं—

राजन् ! कोई-कोई स्त्रियाँ भी पुरुषों से बढ़ी चढ़ी,
बुद्धिमती, शीलवती, सास की सेवा करने वाली, और पतिव्रता होती हैं,
अतः पालन-पोषण कर ॥
दिशाओं को जीतने वाला महा सूरवीर उससे पुत्र पैदा होता है,
वैसी अच्छी स्त्री का पुत्र राज्य का अनुशासन करता है ॥

§ ७. अप्पमाद सुत्त (३. २. ७)

अप्रमाद के गुण

श्रावस्ती में ।

एक ओर बैठ, कोशलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को कहा—भन्ते ! क्या ऐसा कोई एक धर्म है जो लोक और परलोक दोनों की बात में समान रूप से आवश्यक ठहरता हो ?

हाँ, महाराज ! ऐसा एक धर्म है जो लोक और परलोक दोनों की बात में समान रूप से आवश्यक ठहरता है ।

भन्ते ! वह कौन-सा धर्म है जो लोक और परलोक दोनों की बात में समान रूप से आवश्यक ठहरता है ?

महाराज ! अप्रमाद एक धर्म है जो लोक और परलोक दोनों की बात में समान रूप से आवश्यक ठहरता है । महाराज ! पृथ्वी पर रहनेवाले जितने जीव हैं सभी के पैर हाथी के पैर में चले आते हैं ;

इसीलिए, हाथी का पैर बड़ा होने में सबका अगुआ माना जाता है। महाराज ! इसी तरह, यह एक धर्म लोक और परलोक दोनों की बात में समान रूप से आवश्यक ठहरता है।

आयु, आरोग्य, वर्ण, स्वर्ग, उच्चकुलीनता,
और अधिकाधिक सुख पाने की इच्छा रखने वालों के लिये,
पुण्य कर्मों में पण्डित लोग अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं,
अप्रमत्त पण्डित दोनों अर्थों को पा लेता है,
जो अर्थ लौकिक है और जो अर्थ पारलौकिक है,
अर्थ को जान लेने से वह धीर पुरुष पण्डित कहा जाता है ॥

§ ८. दुतिय अप्पमाद सुत्त (३. २. ८)

अप्रमाद के गुण

श्रावस्ती में।

एक ओर बैठ, कोशलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को कहा। भन्ते ! एकान्त में ध्यान करते मेरे मन में ऐसा वितर्क उठा—भगवान् ने धर्म को बड़ा अच्छा समझाया है। किन्तु, वह भले लोगों के साथ रहने तथा मिलने-जुलने वालों के लिए ही है। बुरे लोगों के साथ रहने तथा मिलने-जुलने वालों के लिए नहीं है।

महाराज ! ठीक में ऐसी ही बात है। मैंने धर्म को बड़ा अच्छा समझाया है। किन्तु वह भले ''।

महाराज ! एक समय मैं शाक्य-जनपद में शाक्यों के एक कस्बे में विहार करता था। तब, आनन्द भिक्षु जहाँ मैं था वहाँ आया और मेरा अभिवादन करके एक ओर बैठ गया। महाराज ! एक ओर बैठ, आनन्द भिक्षु ने मुझे कहा—

"भन्ते ! ब्रह्मचर्य का करीब आधा तो भले लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहने में ही होता है।"

महाराज ! इसपर मैंने आनन्द भिक्षु को कहा—ऐसा मत कहो आनन्द ! ऐसी बात नहीं है। ब्रह्मचर्य का बिल्कुल ही भले लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहने में टिका है। आनन्द ! भले लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहनेवाले भिक्षु से ही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग के विचारपूर्ण अभ्यास करने की आशा की जा सकती है।

आनन्द ! भले लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहने वाला भिक्षु आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का कैसे अभ्यास करता है ?

आनन्द ! भिक्षु विवेक, वैराग्य, निरोध तथा त्याग लाने वाली सम्यक् दृष्टि की भावना करता है; सम्यक् संकल्प की भावना करता है; सम्यक् वाक् की भावना करता है; सम्यक् कर्मान्त की भावना करता है; सम्यक् आजीव की भावना करता है; सम्यक् व्यायाम की भावना करता है; सम्यक् स्मृति की भावना करता है; सम्यक् समाधि की भावना करता है—विवेक-दायक, वैराग्य-दायक, निरोध-दायक तथा त्याग-दायक। आनन्द ! इसी तरह, भले लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहने वाला भिक्षु आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का अभ्यास करता है।

आनन्द ! इस प्रकार, यह समझ लेना चाहिये कि ब्रह्मचर्य का बिल्कुल ही भले लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहने में टिका है।

आनन्द ! मुझ ही भले मित्र (=कल्याण-मित्र) के साथ रह, जन्म ग्रहण करने वाले प्राणी जन्म से मुक्त हो जाते हैं; बूढ़े होने वाले प्राणी बुढ़ापा से मुक्त हो जाते हैं; क्षीण होने वाले प्राणी क्षय से मुक्त हो जाते हैं; मरने वाले प्राणी मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं; शोक करने वाले, रोने-पीटने वाले, दुःख और

बेचैनी में पड़े रहने वाले, परेशानी में पड़े रहने वाले प्राणी शोक···परेशानी से मुक्त हो जाते हैं। आनन्द ! इस प्रकार से जान लेना चाहिये कि ब्रह्मचर्य का बिल्कुल ही भले लोगों के साथ मिलने-जुलने और रहने में टिका है।

महाराज ! इसलिये, आप भी यही सीखें। भले लोगों के साथ ही मिलूँ-जुलूँगा, भले लोगों के साथ ही रहूँगा। महाराज ! इसलिये आप को कुशल-धर्मों में अप्रमाद से रहने के लिये सीखना चाहिये।

महाराज ! आपके अप्रमाद-पूर्वक विहार करने से आपकी रानियों के मन में यह होगा—राजा अप्रमाद-पूर्वक विहार करते हैं; तो हम लोगों को भी अप्रमाद-पूर्वक ही विहार करना चाहिये।

महाराज !···आपके अधीनस्थ क्षत्रियों के भी मन में यह होगा···।

महाराज !···गाँव और शहर वालों के भी मन में यह होगा···।

महाराज ! इस तरह आपके अप्रमाद पूर्वक विहार करने से आप स्वयं संयत रहेंगे, स्त्रियाँ भी संयत रहेंगी तथा आप का खजाना और भण्डार भी संयत रहेगा।

> अधिकाधिक भोगों की इच्छा रखने वालों के लिये,
> पुण्य क्रियाओं में पण्डित लोग अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं,
> अप्रमत्त पण्डित दोनों अर्थों का लाभ करता है,
> इस लोक में जो अर्थ है और जो पारलौकिक अर्थ है,
> धीर पुरुष अपने अर्थ को ही जानने से पण्डित कहा जाता है॥

§ ९. अपुत्तक सुत्त (३. २. ९)

कंजूसी न करें

श्रावस्ती में।

तब कोशलराज **प्रसेनजित्** दुपहरिये में जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे हुये कोशलराज प्रसेनजित् को भगवान् ने कहा—महाराज ! इस दुपहरिये में आप भला कहाँ से आ रहे हैं ?

भन्ते ! यह श्रावस्ती का सेठ गृहपति मर गया है। उस निपूते के धन को राजमहल भेजवा कर मैं आ रहा हूँ। भन्ते ! अस्सी लाख अशर्फियाँ; रुपयों की तो क्या बात ! भन्ते उस सेठ का यह भोजन होता था—वह घोर मट्ठा के साथ खुद्दी का भात खाता था। वह ऐसा कपड़ा पहनता था—तीन जोड़ों का टाट पहनता था। उसकी ऐसी सवारी होती थी—पत्तों की छावनी वाले जर्जर रथ पर निकला करता था।

हाँ महाराज ! ठीक ऐसी ही बात है। महाराज ! बुरे लोग बहुत भोग पा कर भी उससे सुख नहीं उठा सकते हैं न माता पिता को सुख देते हैं, न स्त्री-बच्चों को सुख देते हैं, न नौकर चाकरों को सुख देते हैं, न दोस्त-मुहीबों को सुख देते हैं, न श्रमण-ब्राह्मणों को दान दक्षिणा देते हैं जिससे अच्छी गति हो और स्वर्ग तथा सुख मिले। इस प्रकार, उसके बिना भोग किये धन को या तो राजा ले जाते हैं, या चोर चुरा लेते हैं, या आग जला देती है, या पानी बहा ले जाता है, या अप्रिय लोगों का हो जाता है। महाराज ! ऐसा होने से, बिना भोग किया गया धन बेकार में नष्ट हो जाता है।

महाराज ! कोई निर्जन स्थान में एक बावली हो, स्वच्छ जल वाली, शीतल जल वाली, स्वास्थकर जलवाली, साफ घाटों वाली, रमणीय। उसके जल को न तो कोई आदमी ले जाय, न पीवे, न उससे स्नान करे, न उसको और किसी प्रयोग में कोई लावे। महाराज ! इस तरह उसका जल बिना किसी काम

में आये बेकार ही नष्ट हो जायगा। महाराज ! इसी तरह, बुरे लोग बहुत भोग पाकर भी उससे सुख नहीं उठा सकते···। बिना भोग किया गया धन बेकार में नष्ट हो जाता है।

महाराज ! भले लोग बहुत भोग पाकर उससे स्वयं सुख उठाते हैं, माता-पिता को सुख देते हैं,···श्रमण ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देते हैं···। इस प्रकार, उनके भली भाँति भोग किये धन को न तो राजा ले जाते हैं, न चोर चुरा लेते हैं, न आग···। महाराज ! ऐसा होने से, उनका भली भाँति भोग किया गया धन सफल होता है, बेकार नहीं जाता।

महाराज ! किसी गाँव या कस्बे के पास ही एक बावली हो···रमणीय। उसके जल को आदमी ले जायँ···और प्रयोग में लावें। महाराज ! इस तरह उसका जल काम में आते रहने से सफल होता है बेकार नहीं जाता है। महाराज ! इसी तरह भले लोग बहुत भोग पाकर उससे स्वयं सुख उठाते हैं। माता पिता को सुख देते हैं...। महाराज ! ऐसा होने से उनका भली भाँति भोग किया गया धन सफल होता है, बेकार नहीं जाता।

अ-मनुष्य (=भूत-प्रेत) वाले स्थान में जैसे शीतल जल,
बिना पीया जाकर ही सूख जाता है,
ऐसे ही, बुरे लोग धन पाकर,
न तो अपने भोग करते हैं और न दान देते हैं ॥
जो धीर और विज्ञ पुरुष भोगों को पा,
भोग करता और कामों में लगाता है,
वह उत्तम पुरुष अपने ज्ञाति-समूह का पोषण करके,
निन्दा रहित हो स्वर्ग-स्थान को जाता है ॥

§ १०. दुतिय अपुत्तक सुत्त (३. २. १०)

कंजूसी त्याग कर पुण्य करे

श्रावस्ती में।

तब, कोशलराज प्रसेनजित् दुपहरिये में जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये कोशलराज प्रसेनजित् को भगवान् ने कहा—महाराज ! इस दुपहरिये में भला, आप कहाँ से आ रहे हैं ?

भन्ते ! यह श्रावस्ती का सेठ···सौ लाख अशर्फियाँ, रुपयों की तो बात क्या ?···पत्तों की छावनी वाले जर्जर रथ पर निकला करता था।

महाराज ! ठीक में ऐसी ही बात है। महाराज ! बहुत पहले, उस सेठ ने तगरसिखि नाम के प्रत्येक बुद्ध को भिक्षा दिलवाई थी। "श्रमण को भिक्षा दो" कह, वह उठ कर चला गया। बाद में, उसे पश्चात्ताप होने लगा—अच्छा होता कि नौकर-चाकर ही भिक्षा में दिये गये इस अन्न को खाते। इसके अलावे, उसने धन के लिये अपने भाई के इकलौते पुत्र की हत्या कर डाली थी।

महाराज ! उस सेठ ने तगरसिखि नाम के प्रत्येक बुद्ध को जो भिक्षा दिलवाई थी उस पुण्य के फलस्वरूप उसने सात बार स्वर्ग में जन्म लेकर सुगति पाई। उस पुण्य के क्षीण हो जाने पर उसने सात बार इसी श्रावस्ती में सेठाई की।

महाराज ! भिक्षा देने के बाद, उसे जो पश्चात्ताप हुआ—अच्छा होता कि नौकर चाकर ही भिक्षा में दिये गये इस अन्न को खाते !—उसी के फल-स्वरूप उसका चित्त अच्छे-अच्छे भोजनों की ओर नहीं झुकता है, अच्छे-अच्छे वस्त्रों की ओर नहीं झुकता है, अच्छी-अच्छी सवारियों की ओर नहीं झुकता है, अच्छे-अच्छे पाँच काम-गुणों की ओर नहीं झुकता है।

महाराज ! उस सेठ ने धन के लिए जो अपने भाई के इकलौते पुत्र की हत्या कर डाली थी, उसके फलस्वरूप वह हजारों और लाखों वर्ष तक नरक में पचता रहा। उसी के फलस्वरूप निपूता रहकर उसका धन सातवें बार राज-कोष में चला गया। महाराज! उस सेठ का पुण्य समाप्त हो गया है, और नया भी कुछ संचित नहीं है। महाराज ! आज वह सेठ महा रौरव नरक में पक रहा है।

भन्ते ! इस तरह वह सेठ महा रौरव नरक में उत्पन्न हुआ है ?

हाँ, महाराज ! इस तरह वह सेठ महा रौरव नरक में उत्पन्न हुआ है।

धन, धान्य, चाँदी, सोना,
और भी जो कुछ सामान है,
नौकर, चाकर, मज़दूर तथा और भी दूसरे सहारे रहने वाले हैं,
सब को साथ लेकर नहीं जाना होता है,
सभी को यहीं छोड़ जाना होता है ॥
जो कुछ शरीर से करता है, वचन से या चित्त से,
वही उसका अपना होता है और उसी को लेकर जाता है,
वही उसके पीछे-पीछे आता है, पीछे-पीछे जाने वाली छाया के समान ॥
इसलिये, पुण्य करे, परलोक बनावे,
परलोक में पुण्य ही प्राणियों का आधार होता है ॥

द्वितीय वर्ग समाप्त

तीसरा भाग

तृतीय वर्ग

§ १. पुग्गल सुत्त (३. ३. १)

चार प्रकार के व्यक्ति

श्रावस्ती में ।

तब कोशलराज प्रसेनजित् जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे हुए कोशलराज प्रसेनजित् को भगवान् ने कहा—महाराज ! संसार में चार प्रकार के लोग पाये जाते हैं। कौन से चार प्रकार के ? (१) तम-तम-परायण; (२) तम-ज्योति-परायण; (३) ज्योति-तम-परायण; (४) ज्योति-ज्योति-परायण । महाराज ! कोई पुरुष तम-तम-परायण कैसे होता है ?

महाराज ! कोई पुरुष नीच कुल में पैदा होता है; चण्डाल-कुल में, वेन-कुल में, निषाद-कुल में, रथकार-कुल में, पुक्कुस-कुल में, दरिद्र और बड़ी तंगी से रहनेवाले निर्धन-कुल में। जहाँ खाना-पीना बड़ी तंगी से मिलता है। वह दुर्वर्ण, न देखने लायक, नाटा और मरीज होता है। वह काना, लूला, लँगड़ा या लुंज होता है। उसे अन्न, पान, वस्त्र, सवारी, माला, गंध, विलेपन, शय्या, घर, प्रदीप कुछ नहीं प्राप्त होता है ।

वह शरीर से दुराचरण करता है, वचन से दुराचरण करता है, मन से दुराचरण करता है। इन दुराचरण के कारण यहाँ से मर कर अपाय में पड़ बड़ी दुर्गति को पाता है। महाराज ! जैसे कोई पुरुष एक अन्धकार से निकल कर दूसरे अन्धकार में पड़ता है, एक तम से निकलकर दूसरे तम में पड़ता है, एक खून के मल से निकलकर दूसरे में पड़ता है; वैसी ही गति इस पुरुष की होती है। महाराज ! ऐसे ही कोई पुरुष तम-तम-परायण होता है ।

महाराज ! कोई पुरुष तम-ज्योति-परायण कैसे होता है ?

महाराज ! कोई पुरुष नीच-कुल में पैदा होता है···कुछ नहीं प्राप्त होता है ।

वह शरीर से सदाचार करता है, वचन से सदाचार करता है, मन से सदाचार करता है। इन सदाचार के कारण, यहाँ से मर कर स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त करता है। महाराज ! जैसे कोई पुरुष जमीन से खाट पर चढ़ जाय, खाट से घोड़े की पीठ पर, घोड़े की पीठ से हाथी के हौदे पर, हाथी के हौदे से महल पर; वैसी ही बात इस पुरुष की है। महाराज ! इसी तरह कोई पुरुष तम-ज्योति-परायण होता है ।

महाराज ! कोई पुरुष ज्योति-तम-परायण कैसे होता है ?

महाराज ! कोई पुरुष ऊँचे कुल में उत्पन्न होता है, ऊँचे क्षत्रिय-कुल में, ब्राह्मण-कुल में, गृहपति-कुल में, धनाढ्य, महाधन, महाभोग···वाले कुल में। वह सुन्दर, दर्शनीय, साफ और बड़ा रूपवान् होता है। अन्न-पान···यथेच्छ लाभ करता है।

महाराज ! वह शरीर से दुराचरण करता है···। इन दुराचार के कारण यहाँ से मर कर अपाय में पड़ दुर्गति को प्राप्त होता है।

महाराज ! जैसे कोई पुरुष महल से हाथी के हौदे पर उतर आवे, हाथी के हौदे से घोड़े की पीठ पर, घोड़े की पीठ से खाट पर, खाट से जमीन पर, जमीन से अन्धकार में; वैसी ही बात इस पुरुष की है।···महाराज ! इसी तरह कोई पुरुष ज्योति-तम-परायण होता है।

महाराज ! कैसे कोई पुरुष ज्योति-ज्योति-परायण होता है ?

महाराज ! कोई पुरुष ऊँचे कुल में उत्पन्न होता है···। वह शरीर से सदाचार करता है······ स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त करता है। महाराज ! जैसे कोई पुरुष जमीन से खाट पर चढ़ जाय···महल पर; वैसी ही बात इस पुरुष की है। महाराज ! इसी तरह कोई पुरुष ज्योति-ज्योति-परायण होता है।

महाराज ! संसार में इतने प्रकार के पुरुष होते हैं—

हे राजन् ! (जो कोई) दरिद्र पुरुष, श्रद्धारहित, कंजूस, मक्खीचूस, पाप-संकल्पोंवाला, झूठे मत मानने वाला, पुण्य कर्मों में आदर-रहित होता है, श्रमण, ब्राह्मण, अथवा दूसरे भी याचकों को डाँटता और गालियाँ देता है, क्रोधी, नास्तिक होता है, माँगने वालों को भोजन देते हुए रोकता है।

हे राजन् ! हे जनाधिप ! उस प्रकार का पुरुष तम-तम-परायण है; वह यहाँ से मर के घोर नरक में पड़ता है।

हे राजन् ! (जो कोई) दरिद्र पुरुष श्रद्धालु, कंजूसी-रहित होता है, दान देता है, श्रेष्ठ संकल्पों वाला, अव्यग्र मन वाला पुरुष, श्रमण, ब्राह्मण अथवा दूसरे याचकों को भी उठकर अभिवादन करता है, संयम का अभ्यास करता है, माँगने वालों को भोजन देते हुए मना नहीं करता।

हे राजन् ! उस प्रकार का पुरुष तम-ज्योति-परायण है; वह यहाँ से मर कर स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है।

हे राजन् ! (जो कोई) धनाढ्य पुरुष, श्रद्धारहित, कंजूस होता है, मक्खीचूस, पाप-संकल्पों वाला, झूठे मत मानने वाला, पुण्य कर्मों में आदर-रहित, श्रमण, ब्राह्मण अथवा दूसरे भी याचकों को डाँटता और गालियाँ देता है, क्रोधी, नास्तिक होता है, माँगने वालों को भोजन देते हुए मना कर देता है।

हे राजन् ! उस प्रकार का पुरुष ज्योति-तम-परायण है, वह यहाँ से मर कर घोर नरक में पड़ता है।

हे राजन् ! (जो कोई) धनाढ्य पुरुष, श्रद्धालु, कंजूसी-रहित होता है, दान देता है, श्रेष्ठ संकल्पों वाला, अव्यग्र मन वाला पुरुष, श्रमण, ब्राह्मण अथवा दूसरे याचकों को भी उठ कर अभिवादन करता है, संयम का अभ्यास करता है, माँगने वालों को भोजन देते हुए मना नहीं करता।

हे राजन् ! उस प्रकार का पुरुष ज्योति-ज्योति-परायण है; वह यहाँ से मर कर स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है।

§ २. अय्यका सुत्त (३. ३. २)

मृत्यु नियत है, पुण्य करे

श्रावस्ती में।

एक ओर बैठे हुये कोशलराज प्रसेनजित् को भगवान् ने कहा—महाराज ! इस दुपहरिये में भला, आप कहाँ से आ रहे हैं ?

भन्ते ! मेरी दादी मर गई है। वह बड़ी बूढ़ी, पुरनिया, आयु पूरी हुई, एक सौ बीस साल की थी।

भन्ते ! मेरी दादी मुझे बड़ी प्यारी थी। भन्ते ! हस्ति-रत्न को भी पाना मैं स्वीकार नहीं करूँ यदि मेरी दादी न मरे। भन्ते ! हस्ति-रत्न को भी मैं दे डालूँ यदि मेरी दादी न मरे। भन्ते ! अश्व-रत्न को भी पाना मैं स्वीकार नहीं करूँ यदि मेरी दादी न मरे। भन्ते ! अश्व-रत्न को भी मैं दे डालूँ यदि मेरी दादी न मरे। भन्ते ! अच्छे-अच्छे गाँव···। भन्ते ! जनपद···।

महाराज ! सभी जीव मरण-शील हैं, एक न एक समय उनका मरना अवश्य है, मरने से वे किसी तरह नहीं बच सकते।

भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है ! भगवान् ने बड़ा ही ठीक कहा है—सभी जीव मरण-शील हैं, एक न एक समय उनका मरना अवश्य है, मरने से वे किसी तरह नहीं बच सकते हैं।

हाँ, महाराज ! यथार्थ में ऐसी ही बात है। सभी जीव मरण-शील हैं···।

महाराज ! कुम्हार के जितने घड़े हैं—कच्चे भी और पक्के भी—सभी फूट जाने वाले हैं, एक न एक दिन उनका फूटना अवश्य है, फूटने से वे किसी तरह नहीं बच सकते। महाराज ! बस, ठीक वैसे ही सभी जीव मरण-शील हैं, एक न एक समय उनका मरना अवश्य है, मरने से वे किसी तरह नहीं बच सकते।

> सभी जीव मरेंगे, मृत्यु में ही जीवन का अन्त होता है,
> उनकी गति अपने कर्म के अनुसार होगी, पुण्य-पाप के फल से,
> पाप करने से नरक को, पुण्य करने से सुगति को,
> इसलिये सदा पुण्य कर्म करे, जिससे परलोक बनता है,
> अपना कमाया पुण्य ही प्राणियों के लिये परलोक में आधार होता है॥

३. लोक सुत्त (३. ३. ३)

तीन अहितकर धर्म

श्रावस्ती में।

एक ओर बैठ, कोशलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को कहा—भन्ते ! लोक में कितने धर्म अहित, दुःख तथा कष्ट के लिये उत्पन्न होते हैं ?

महाराज ! तीन धर्म लोक में अहित, दुःख तथा कष्ट के लिये उत्पन्न होते हैं।

कौन से तीन ? महाराज ! लोभ धर्म लोक में अहित, दुःख तथा कष्ट के लिये उत्पन्न होता है। महाराज ! द्वेष धर्म···। महाराज ! मोह धर्म···।

महाराज ! यह तीन धर्म लोक में अहित, दुःख तथा कष्ट के लिये उत्पन्न होते हैं।

> लोभ, द्वेष और मोह, पाप चित्त वाले पुरुष को,
> अपने भीतर ही उत्पन्न होकर नष्ट कर देते हैं,
> जैसे अपना ही फल केले के पेड़ को॥*

§ ४. इस्सत्थ सुत्त (३. ३. ४)

दान किसे दे ? किसे देने में महाफल ?

श्रावस्ती में।

एक ओर बैठ, कोशलराज प्रसेनजित् ने भगवान् को कहा—भन्ते ! किसको दान देना चाहिये ?

---

* यही गाथा ३. १. २ में भी।

महाराज ! जिसके प्रति मन में श्रद्धा हो।

भन्ते ! किसको दान देने से महाफल होता है ?

महाराज ! यह दूसरी बात है कि किसको दान देना चाहिये और यह दूसरी कि किसको दान देने से महाफल होता है। महाराज ! शीलवान् को दिये गये दान का महाफल होता है। दुःशील को दिये गये दान का नहीं।

महाराज ! तो मैं आप को ही पूछता हूँ, जैसा आपको लगे वैसा उत्तर दें।

महाराज ! मान लें, आपको कहीं लड़ाई छिड़ जाय; युद्ध ठन जाय। तब कोई क्षत्रिय-कुमार आपके पास आवे—जिसने युद्ध विद्या नहीं सीखी है, जिसका हाथ साफ नहीं है, अनभ्यस्त, डरपोक, काँप जाने वाला, डर जाने वाला, भाग खड़ा होने वाला। तो, क्या आप उसे नियुक्त करेंगे ? वैसे पुरुष से आपका कुछ प्रयोजन निकलेगा ?

नहीं भन्ते ! उस पुरुष को मैं नहीं नियुक्त करूँगा; वैसे से मेरा कोई प्रयोजन नहीं।

तब कोई ब्राह्मण-कुमार आप के पास आवे···। तब, कोई वैश्य-कुमार, शूद्र-कुमार···।

नहीं भन्ते !···वैसे से मेरा कोई प्रयोजन नहीं।

महाराज ! मान लें, आपको कहीं लड़ाई छिड़ जाय; युद्ध ठन जाय। तब, कोई क्षत्रिय-कुमार आपके पास आवे—जिसने युद्ध विद्या अच्छी तरह सीखी है, जिसका हाथ साफ है, पूरा अभ्यासी, जो कभी न डरे, काँपे नहीं, कभी पीठ न दिखावे। तो क्या आप उसे नियुक्त करेंगे ? वैसे पुरुष से आपका प्रयोजन निकलेगा ?

हाँ, भन्ते ! उस पुरुष को मैं नियुक्त कर लूँगा। वैसे ही पुरुष से तो काम निकलेगा।

तब, कोई ब्राह्मण-कुमार, वैश्य-कुमार, शूद्र-कुमार···। हाँ भन्ते !···वैसे ही पुरुष से तो काम निकलेगा।

महाराज ! ठीक उसी तरह, चाहे जिस किसी कुल से घर से बेघर हो कर प्रव्रजित हुआ हो, वह पाँच अङ्गों से रहित और पाँच अङ्गों से युक्त होता है। उसको दान दिये गये का महाफल होता है।

किन पाँच अङ्गों से वह रहित होता है ? कामच्छन्द से रहित होता है। हिंसा-भाव से रहित होता है। आलस्य से रहित होता है। औद्धत्य-कौकृत्य से रहित होता है। वह इन पाँच अङ्गों से रहित होता है।

किन पाँच अङ्गों से वह युक्त होता है ? अशैक्ष्य शील-स्कन्ध से युक्त होता है। अशैक्ष्य समाधि-स्कन्ध से युक्त होता है। अशैक्ष्य प्रज्ञा-स्कन्ध से युक्त होता है। अशैक्ष्य विमुक्ति-स्कन्ध से युक्त होता है। अशैक्ष्य विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन से युक्त होता है। वह इन पाँच स्कन्धों से युक्त होता है।

इन पाँच अङ्गों से रहित, और पाँच अङ्गों से युक्त (श्रमण) को दिये गये दान का महाफल होता है।

भगवान् ने यह कहा। यह कह कर बुद्ध ने फिर भी कहा—

तीरन्दाजी, बल और वीर्य जिस युवक में हैं,
उसी को राजा युद्ध के लिये नियुक्त करता है,
जाति के कारण कायर को नहीं ॥
वैसे ही, जिस में क्षमाशीलता, सुरत-भाव और धर्म है,
उसी श्रेष्ठ प्रकृति वाले पुरुष को बुद्धिमान् लोग
हीन जाति में भी पैदा होने से पूजते हैं ॥
रम्य आश्रम को बनवावे, पण्डितों को बसावे,
निर्जल वन में कूएँ खुदवावे, बीहड़ जगह में रास्ता बनवावे ॥
अन्न, पान, भोजन, वस्त्र, शयनासन,

सीधे लोगों को श्रद्धा-पूर्वक दान दे,
जैसे, मेघ गड़गड़ाते और सैकड़ों बिजली चमकाते,
बरस कर सभी नीची जगहों को भर देता है,
वैसे ही, श्रद्धालु पण्डित पुरुष भोजन के दान से,
सभी याचकों को खान-पान से भर देता है,
बड़े प्रसन्न चित्त से बाँटता है, 'देओ, देओ' कहता है,
वही इसका गरजना है, बरसते हुए मेघ सा,
वह वर्षा पुण्य की धारा देने वाले पर ही बरसती है ॥

§ ५. पब्बतूपम सुत्त (३. ३. ५)

मृत्यु घेरे आ रही है, धर्माचरण करें

श्रावस्ती में।

एक ओर बैठे हुए कोशलराज प्रसेनजित् को भगवान् ने कहा—महाराज ! कहाँ से आना हो रहा है ?

भन्ते ! राज्य-सम्बन्धी कामों में मैं अभी बेतरह फँसा था। क्षत्रिय, अभिषेक किये गये, ऐश्वर्य के मद से मत्त, सांसारिक काम के लोभ में पड़े, देशों को कब्जा में रखने वाले, बड़े-बड़े राज्यों को जीत कर राज करने वाले राजाओं को बहुत काम रहते हैं।

महाराज ! मान लें, पूरब दिशा से आप का कोई श्रद्धालु और विश्वस्त आदमी आवे और कहे—महाराज ! आप को मालूम हो—मैं पूरब दिशा से आ रहा हूँ, वहाँ मैंने देखा कि एक मेघ के समान महान् पर्वत सभी जीवों को पीसते हुए आ रहा है। महाराज ! आप जैसा उचित समझें वैसा करें।

तब, दूसरा आदमी पच्छिम दिशा से आवे, तीसरा आदमी उत्तर दिशा से आवे, चौथा आदमी दक्खिन दिशा से आवे और कहे···—वहाँ मैंने देखा कि एक मेघ के समान महान् पर्वत सभी जीवों को पीसते हुए आ रहा है। महाराज ! आप जैसा उचित समझें वैसा करें।

महाराज ! मनुष्यों के इस प्रकार नष्ट होने के कारण भय आ पड़ने पर क्या करना होगा ?

भन्ते ! इस प्रकार के··· भय आ पड़ने पर, धर्माचरण, संयम-अभ्यास और पुण्य कर्म के सिवा और क्या किया जा सकता है ?

महाराज ! मैं आपको कहता हूँ, बताता हूँ। महाराज ! (वैसे ही) आप पर जरा और मृत्यु (का पहाड़) चढ़ा आ रहा है। महाराज ! जरा और मृत्यु के इस तरह चढ़ते आने से क्या करना चाहिये ?

भन्ते ! जरा और मृत्यु के इस तरह चढ़ते आने से धर्माचरण, संयम-अभ्यास और पुण्य कर्म के सिवा और क्या किया जा सकता है ?

भन्ते ! क्षत्रिय··· बड़े-बड़े राज्यों को जीत कर राज करने वाले राजाओं को जो हस्ति-युद्ध, अश्व-युद्ध, रथ-युद्ध, पैदल-युद्ध का सामना करना पड़ता है, वह जरा और मृत्यु के चढ़ते आने के सामने क्या चीज है ?

भन्ते ! इस राज-कुल में बड़े-बड़े ऐसे गुणी मन्त्री हैं, जो अपने मन्त्र के बल से आते शत्रुओं को भगा दे सकते हैं। उनका मन्त्र-युद्ध भी जरा और मृत्यु के चढ़ते आने के सामने बेकार है।

भन्ते ! इस राजकुल का खजाना ऊपर नीचे सोना से भरा है; जिस धन से हम आते शत्रुओं को फोड़ दे सकते हैं। यह धन-युद्ध भी जरा और मृत्यु के चढ़ते आने के सामने बेकार है।

भन्ते ! जरा और मृत्यु के इस तरह चढ़ते आने से धर्माचरण··· के सिवा और क्या किया जा सकता है ?

महाराज ! ठीक में ऐसी ही बात है। जरा और मृत्यु के इस तरह चढ़ते आने से धर्माचरण··· के सिवा और क्या किया जा सकता है ?

भगवान् ने यह कहा। यह कह कर बुद्ध ने और भी कहा—

जैसे बड़े-बड़े शैल, गगन-चुम्बी पर्वत,
सभी ओर से आते हों, चारों दिशाओं को पीसते हुए,
वैसे ही, जरा और मृत्यु का प्राणियों पर चढ़ता आता है ॥
क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चण्डाल, पुक्कुस,
कोई भी नहीं छूटता, सभी समान रूप से पीसे जा रहे हैं,
न तो यहाँ हाथियों का दरकार है, न रथ और न पैदल का,
और, न तो उसे मन्त्र से या धन से रोका जा सकता है ॥
इसलिये, पण्डित पुरुष, अपनी भलाई देखते हुये,
बुद्ध, धर्म और संघ के प्रति श्रद्धालु होवे ॥
जो मन-वचन-काय से धर्माचरण करता है,
संसार में उसकी प्रशंसा होती है, मरकर स्वर्ग में आनन्द करता है ॥

कोसल संयुत्त समाप्त

चौथा-परिच्छेद

४. मार-संयुत्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १. तपोकम्म सुत्त (४. १. १)

कठोर तपश्चरण बेकार

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् अभी तुरन्त ही बुद्धत्व लाभ कर उरुवेला में नेरञ्जरा नदी के तट पर अजपाल निग्रोध के नीचे विहार करते थे।

तब एकान्त में ध्यान करते हुये भगवान् के मन में यह वितर्क उठा—उस दुष्कर क्रिया से मैं छूट गया। बड़ा अच्छा हुआ कि मैं अनर्थ करनेवाली उस दुष्कर क्रिया से छूट गया। बड़ा अच्छा हुआ कि स्थिर और स्मृतिमान् रह कर मैंने बुद्धत्व पा लिया।

तब, पापी मार भगवान् के चित्त के वितर्क को अपने चित्त से जान जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला :—

> तुम तप-कर्म से दूर हो,
> जिससे मनुष्य शुद्ध होता है।
> अशुद्ध अपने को शुद्ध समझता है,
> शुद्धि के मार्ग से गिरा हुआ॥

तब भगवान् ने 'यह पापी मार है' जान, गाथा में उत्तर दिया:—

> मुक्ति-लाभ के लिए सभी कठोर तपश्चरण को बेकार जान,
> उससे कुछ मतलब नहीं निकलता है,
> जैसे जमीन पर पड़ी बिना डाल पतवार के नाव॥
> शील, समाधि और प्रज्ञा वाले बुद्धत्व के मार्ग का अभ्यास करते,
> परम शुद्धि को मैंने पा लिया है,
> हे अन्तक! तुम जीत लिये गये॥

तब, पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ, दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ २. नाग सुत्त (४. १. २)

हाथी के रूप में मार का आना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् अभी तुरत ही बुद्धत्व लाभ कर उरुवेला में नेरञ्जरा नदी के तट पर अजपाल निग्रोध के नीचे विहार करते थे।

उस समय भगवान् रात की काली अँधियारी में खुले मैदान में बैठे थे। रिमझिम बूँदें भी पड़ रही थीं।

तब, पापी मार भगवान् को डरा, कँपा और रोंगटे खड़े कर देने की इच्छा से एक बहुत बड़े हाथी का रूप धर कर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। उसका शिर था मानो एक काली चट्टान। उसके दाँत थे मानो झलकती चाँदी। उसकी सूँड़ थी मानो एक विशाल हल।

तब भगवान् ने 'यह पापी मार है' जान गाथा में कहा:—

> इस दीर्घ संसार में अच्छे बुरे रूप धर कर तुम फिरते हो,
> अरे पापी! इसे अब रहने दे; अन्तक! तुम नष्ट हो गये॥

तब, पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ ३. सुभ सुत्त (४. १. ३)

संयमी मार के वश में नहीं आते

उरुवेला में।

उस समय भगवान् रात की काली अँधियारी में खुले मैदान में बैठे थे। रिमझिम बूँदें भी पड़ रही थीं।

तब पापी मार भगवान् को डरा, कँपा रोंगटे खड़े कर देने की इच्छा से जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और तरह-तरह के छोटे बड़े, अच्छे बुरे रूप दिखाने लगा।

तब भगवान् ने 'यह पापी मार है' जान गाथा में कहा—

> इस दीर्घ संसार में अच्छे बुरे रूप धरकर तुम फिरते हो;
> अरे पापी! इसे अब रहने दे; अन्तक! तुम नष्ट हो गये॥
> जो शरीर, वचन और मन से संयत रहते हैं,
> वे मार के वश में नहीं आते, वे मार के फेर में नहीं पड़ते॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ ४. पास सुत्त (४. १. ४)

बुद्ध मार के जाल से मुक्त

ऐसे मैंने सुना।

एक समय भगवान् वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव में विहार करते थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—"भिक्षुओ!"

"भदन्त!" कह कर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! मन को उचित मार्ग में लगा और उचित उत्साह कर मैंने अलौकिक विमुक्ति पायी है, अलौकिक विमुक्ति का साक्षात्कार किया है।

भिक्षुओ ! तुम भी मन को उचित मार्ग में लगा और उचित उत्साह कर अलौकिक विमुक्ति का लाभ करो, अलौकिक विमुक्ति का साक्षात्कार करो।

तब, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और यह गाथा बोला—

> मार के जाल में बँध गये हो,
> जो (जाल) दिव्य और मनुष्य लोक के हैं,
> मार के बंधन से बँधे हो,
> श्रमण ! मुझसे तेरा छुटकारा नहीं ॥

[भगवान्—]

> मार के जाल से मैं मुक्त हूँ,
> जो दिव्य और मनुष्य लोक के हैं,
> मार के बंधन से मुक्त हूँ,
> अन्तक ! तुम जीत लिये गये ॥

तब, पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ ५. पास सुत्त (४. १. ५)

बहुजन के हित-सुख के लिए विचरण

एक समय भगवान् वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाय में विहार करते थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—"भिक्षुओ !"

"भदन्त !" कह कर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! दिव्य लोक और मनुष्य लोक के जितने जाल हैं सभी से मैं मुक्त हूँ। भिक्षुओ ! तुम भी··· जितने जाल हैं सभी से मुक्त हो। भिक्षुओ ! बहुजनों के हित के लिये, बहुजनों के सुख के लिये, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। एक साथ दो मत जाओ। भिक्षुओ ! आदि में कल्याण-(कारक), मध्य में कल्याण-(कारक), अन्त में कल्याण-(कारक) (इस) धर्म का उपदेश करो। अर्थ-सहित = व्यंजन-सहित, पूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो। अल्प दोषवाले भी प्राणी हैं, धर्म के न श्रवण करने से उनकी हानि होगी। (सुनने से वह) धर्म के जानने वाले बनेंगे। भिक्षुओ ! मैं भी जहाँ उरुवेला है, जहाँ सेनानी ग्राम है, वहाँ धर्म-देशना के लिये जाऊँगा।

तब, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और गाथा में बोला—

> सभी जाल में बँधे हो,
> जो (जाल) दिव्य और मनुष्य लोक के हैं,
> बड़े बन्धन में बँधे हो,
> श्रमण ! मुझसे तेरा छुटकारा नहीं ॥

[भगवान्—]

> मैं सभी जाल से मुक्त हूँ,
> जो दिव्य और मनुष्य लोक के हैं,

बड़े बन्धन से मैं छूट चुका,
अन्तक ! तुम जीत लिये गये ॥

§ ६. सप्प सुत्त (४. १. ६)

एकान्तवास से विचलित न हो

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे ।

उस समय भगवान् रात की काली अँधियारी में खुले मैदान में बैठे थे । रिमझिम पानी भी पड़ रहा था ।

तब, पापी मार भगवान् को डरा, कँपा, रोंगटे खड़े कर देने की इच्छा से एक विशाल सर्पराज का रूप धरकर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । जैसे एक बड़े वृक्ष की बनी नाव हो, वैसा उसका शरीर था । जैसे भट्टीवार की चटाई हो, वैसा उसका फण था । जैसे कोशल की बनी (चमकती) थाली हो, वैसी उसकी आँखें थीं । जैसे गड़गड़ाते मेघ से बिजली कड़कती है, वैसे ही उसके मुँह से जीभ लपलपाती थी । जैसे लोहार की भाथी चलने से शब्द होता है वैसे ही उसके साँस लेने और छोड़ने से शब्द होता था ।

तब, भगवान् ने 'यह पापी मार है' जान गाथा में कहा—

जो एकान्तवास का सेवन करता है,
वह आत्मसंयत मुनि श्रेष्ठ है,
सब कुछ त्यागकर वह, वहाँ विचरण करे,
वैसे पुरुष के लिए वह बिल्कुल अनुकूल है ॥
तरह-तरह के जीव विचरते हैं, तरह-तरह के डर पैदा करनेवाले,
बहुत डँस, मच्छर और साँप बिच्छू—
वह एक रोंये को भी नहीं हिलाये,
एकान्तवास करनेवाला महामुनि है ॥
आकाश फट जाय, पृथ्वी काँप जाय,
सभी प्राणी डर जाएँ,
यदि छाती में भाला भी चुभायें,
तो भी बुद्ध सांसारिक वस्तुओं* में आश्रय नहीं करते ॥

तब, पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ, दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ७. सोप्पसि सुत्त (४. १. ७)

वितृष्ण बुद्ध

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे ।

तब, भगवान् बहुत पहर तक खुले मैदान में चंक्रमण करते रहे । रात के भिनसारे पैरों को पखार विहार के भीतर गये । वहाँ दाहिनी करवट सिंह-शय्या लगा कुछ हटाते हुए पैर पर पैर रख, स्मृतिमान् और संयत हो, मन में उत्थान-संज्ञा (= उठने का विचार) ला, लेट गये ।

* उपधि—पञ्चस्कन्ध की उपधियाँ—अट्ठकथा ।

तब, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् से यह गाथा बोला—

क्या सोते हो ? क्यों सोते हो ?
क्यों ऐसा बेखबर सो रहे हो ?
सूना घर पाकर सो रहे हो ?
सूरज उठ आने पर क्यों यह सो रहे हो ?

[भगवान्—]

जिसे फँसा लेने वाली और विष से भरी
तृष्णा कहीं भी बहकाने को नहीं है,
जो सभी उपधियों के मिट जाने से बुद्ध हो गये हैं,
लेटे हैं : रे मार ! इससे तुम्हारा क्या ?

तब, पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ, दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ८. आनन्द सुत्त (४. १. ८)

अनासक्त चिन्तित नहीं

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

तब, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् के पास यह गाथा बोला—

पुत्रों वाला पुत्रों से आनन्द करता है,
वैसे ही गौवों वाला गौवों से आनन्द करता है,
सांसारिक चीजों से ही मनुष्य को आनन्द होता है,
वह आनन्द नहीं करता जिसे कोई चीज नहीं ॥

[भगवान्—]

पुत्रों वाला पुत्रों की चिन्ता में रहता है,
वैसे ही गौवों वाला गौवों की चिन्ता में रहता है,
सांसारिक चीजों से ही मनुष्य को चिन्ता होती है,
वह चिन्ता नहीं करता जिसे कोई चीज नहीं ॥

तब, पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ९. आयुसुत्त (४. १. ९)

आयु की अल्पता

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे ।

वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—

"भिक्षुओ" ।

"भदन्त !" कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! मनुष्यों की आयु थोड़ी है। परलोक जाना (शीघ्र) है। पुण्य कमाना चाहिये, ब्रह्मचर्य पालना चाहिये। जो जन्म लेता है वह मरने से कभी बच नहीं सकता। भिक्षुओ ! जो बहुत जीता है वह सौ वर्ष जीता है; उससे कुछ कम या अधिक।

तब पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् से गाथा में बोला—

मनुष्यों की आयु लम्बी है, सत्पुरुष इसकी परवाह न करे,
दुधपीवे बच्चे की तरह रहे, मृत्यु अभी नहीं आ रही है॥

[भगवान्—]

मनुष्यों की आयु थोड़ी है,
सत्पुरुष इससे खूब सचेत रहे,
शिरपर आग लग गई है ऐसा समझते रहे,
ऐसा कोई समय नहीं जब मृत्यु न चढ़ आवे।

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ १०. आयु सुत्त (४. १. १०)

आयु का क्षय

राजगृह में।

वहाँ, भगवान् बोले—भिक्षुओ ! मनुष्यों की आयु थोड़ी है। परलोक जाना (शीघ्र) है। पुण्य कमाना चाहिये, ब्रह्मचर्य पालना चाहिये। जो जन्म लेता है वह मरने से कभी बच नहीं सकता। भिक्षुओ ! जो बहुत जीता है वह सौ वर्ष जीता है, उससे कुछ कम या अधिक।

तब पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् से गाथा में बोला—

दिन और रात चले नहीं जा रहे हैं,
जीवन (का प्रवाह) कभी रुकता नहीं है,
मनुष्यों के चारों ओर आयु वैसे ही घूमती रहती है;
जैसे हाँक गाड़ी के धुरे के॥

[भगवान्—]

दिन और रात बीते जा रहे हैं,
जीवन (का प्रवाह निर्वाण में) रुक जाता है,
मनुष्यों की आयु क्षीण हो रही है,
छोटी-छोटी नदियों का जैसे बहा पानी॥

तब, पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ, दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

प्रथम वर्ग समाप्त।

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १. पासाण सुत्त (४. २. १)

बुद्धों में चञ्चलता नहीं

एक समय, भगवान् राजगृह में गृद्धकूट पर्वत पर विहार करते थे।

उस समय भगवान् रात की काली अँधियारी में खुले मैदान में बैठे थे। रिमझिम पानी भी पड़ रहा था।

तब, पापी मार भगवान् को डरा, कँपा और रोंगटे खड़े कर देने की इच्छा से जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् के पास ही बड़े-बड़े पत्थरों को लुढ़काने लगा।

तब भगवान् ने 'यह पापी मार है' जान गाथा में कहा—

> चाहे सारे गृद्धकूट पर्वत को ही क्यों न लुढ़का दे,
> बिलकुल विमुक्त बुद्धों में कोई चञ्चलता पैदा नहीं हो सकती।

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ २. सीह सुत्त (४. २. २)

बुद्ध सभाओं में गरजते हैं

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

उस समय भगवान् बड़ी भारी परिषद् के बीच धर्मोपदेश कर रहे थे।

तब पापी मार के मन में यह हुआ—यह श्रमण गौतम बड़ी भारी परिषद् के बीच धर्मोपदेश कर रहा है। तो क्यों न मैं श्रमण गौतम के पास चलकर लोगों के मत को फेर दूँ।

तब पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् से गाथा में बोला—

> सिंह के ऐसा क्यों गरज रहा है, सभा में निडर हो कर,
> तुम से जोड़ लेने वाला मौजूद है; अपने को बड़े विजयी समझे बैठे हो !!

[भगवान्—]

> जो महावीर हैं वे सभाओं में निडर हो कर गरजते हैं,
> बलशाली बुद्ध, जो भवसागर को पार चुके हैं॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ ३. सकलिक सुत्त (४. २. ३)

पत्थर से पैर कटना, तीव्र वेदना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् राजगृह के मद्दकुच्छि मृगदाव में विहार करते थे।

उस समय भगवान् के पैर एक पत्थर के टुकड़े से कट गये थे। भगवान् को बड़ी पीड़ा हो रही थी—शारीरिक, दुःखद, तीव्र, कठोर, कटु, बड़ी बुरी। उसे भगवान् स्थिरता से स्मृतिमान् और संप्रज्ञ हो सह रहे थे।

तब पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् से गाथा में बोला—

इतना मन्द क्यों पड़े हो, क्या किसी विचार में पड़े हो ?
क्या तुम्हारी आवश्यकतायें पूरी नहीं हैं।
अकेला इस एकान्त स्थान में
निद्रालु-सा क्यों लेटे हो ?

[भगवान्—]

मैं मन्द नहीं पड़ा हूँ, न किसी विचार में मग्न हूँ,
मैंने परमार्थ पा लिया है, मेरे शोक हट गये हैं,
अकेला इस एकान्त स्थान में,
सभी जीवों पर अनुकम्पा करने वाला मैं सो रहा हूँ ॥
जिनकी छाती में बाण चुभ गया है,
जो रह-रह कर हृदय को फाड़-सा देता है,
वे बाण खाये भी सो जाते हैं;
तो, सारी वेदनाओं से रहित मैं क्यों न सोऊँ !
जागने में मुझे शंका नहीं, और न मैं सोने से डरता हूँ,
रात या दिन का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं,
संसार में मैं कहीं भी अपनी हानि नहीं देखता,
इसलिये, मैं सो रहा हूँ,
सभी जीवों पर अनुकम्पा करने वाला ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ ४. पतिरूप सुत्त (४. २. ४)

बुद्ध अनुरोध-विरोध से मुक्त

एक समय, भगवान् कोशल में एकशाला नामक ब्राह्मणों के गाँव में विहार करते थे। उस समय भगवान् गृहस्थों की एक बड़ी परिषद् के बीच धर्मोपदेश कर रहे थे।

तब, पापी मार के मन में यह आया—यह श्रमण गौतम गृहस्थों की बड़ी परिषद् के बीच धर्मोपदेश कर रहा है। तो, क्यों न मैं जहाँ श्रमण गौतम है वहाँ चलकर उनके मन को फेर दूँ।

तब पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् से गाथा में बोला—

तुम्हें ऐसा करना युक्त नहीं जो दूसरे को सिखा रहे हो,
ऐसा करते हुये अनुरोध और विरोध में मत फँसो ॥

[भगवान्—]

हित और अनुकम्पा करने वाले बुद्ध,
दूसरे को अनुशासन कर रहे हैं ॥
बुद्ध अनुरोध और विरोध से मुक्त हैं ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ ५. मानस सुत्त (४. २. ५)

इच्छाओं का नाश

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

तब पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् से गाथा में बोला—

आकाश में उड़ने वाला जाल, जो यह मन की उड़ान है।
उससे तुम्हें फँसा लूँगा, श्रमण! मुझसे तेरा छुटकारा नहीं॥

[भगवान्—]

रूप, शब्द, रस, गन्ध और स्पर्श, मन को लुभा लेने वाले;
इनके प्रति मेरी सारी इच्छायें मिट गईं,
अन्तक! तुम जीत लिये गये हो॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ ६. पत्त सुत्त (४. २. ६)

मार का बैल बनकर आना

श्रावस्ती में।

उस समय भगवान् ने पाँच उपादान स्कन्धों के विषय में धर्मोपदेश कर भिक्षुओं को दिखा दिया; बता दिया, लगन लगा दिया, और उनके भावों को जगा दिया। और, भिक्षु लोग भी बड़े ध्यान से मन लगाकर......कान दिये धर्म श्रवण कर रहे थे।

तब पापी मार के मन में यह हुआ—यह श्रमण गौतम पाँच उपादान स्कन्धों के विषय में धर्मोपदेश कर...। तो क्यों न मैं जहाँ श्रमण गौतम हैं वहाँ चलकर उनके मन को फेर दूँ!

उस समय, कुछ पात्र खुले मैदान में पड़े (सूख रहे) थे।

तब, पापी मार एक बैल का रूप धरकर जहाँ वे पात्र पड़े थे वहाँ आया।

तब, एक भिक्षु ने दूसरे भिक्षु से यह कहा—आवुस! कहीं यह बैल पात्रों को तोड़ न दे!

उसके ऐसा कहने पर भगवान् ने उस भिक्षु को कहा—भिक्षु! यह बैल नहीं है। यह पापी मार तुम लोगों के मन को फेरने आया है।

तब भगवान् ने 'यह पापी मार है' जान गाथा में कहा—

रूप, वेदना, संज्ञा, विज्ञान और संस्कार को,
'न यह मैं हूँ, और न यह मेरा है' ऐसा जान,
उसके प्रति विरक्त रहता है;
ऐसे विरक्त, शान्त, सभी बन्धनों से छूटे पुरुष को,
सभी जगह खोजते रहकर भी,
मार-सेना नहीं पा सकती॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ ७. आयतन सुत्त (४. २. ७)

आयतनों में ही भय

एक समय भगवान् वैशाली में महावन की कूटागार शाला में विहार करते थे।

उस समय, भगवान् ने छः स्पर्शायतनों के विषय में धर्मोपदेश कर भिक्षुओं को दिखा दिया···। और, भिक्षु लोग भी···कान दिये धर्म श्रवण कर रहे थे।

तब, पापी मार के मन में यह आया—यह, श्रमण गौतम छः स्पर्शायतनों के विषय में···) तो क्यों न मैं जहाँ श्रमण गौतम है वहाँ चलकर उनके मत को फेर दूँ!

तब, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् के पास ही महा भयोत्पादक शब्द करने लगा—मानो पृथ्वी फट चली।

तब, एक भिक्षु ने दूसरे को कहा—भिक्षु, भिक्षु! मानो पृथ्वी फट चली।

उसके ऐसा कहने पर भगवान् ने उस भिक्षु को कहा—भिक्षु! पृथ्वी फट नहीं रही है। यह मार तुम लोगों के मत को फेर देने के लिये आया है।

तब, भगवान् ने 'यह पापी मार है' जान गाथा में कहा—

> रूप, शब्द, रस, गन्ध, स्पर्श, और भी जितने धर्म हैं,
> संसार में यही भय हैं, इनके पीछे संसार पागल है,
> इनसे ऊपर उठ, बुद्ध का श्रावक स्मृतिमान् हो,
> मार के राज्य को लाँघ, सूर्य के ऐसा चमकता है।

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ ८. पिण्ड सुत्त (४. २. ८)

बुद्ध को भिक्षा न मिली

एक समय भगवान् मगध में पञ्चशाला नामक ब्राह्मणों के ग्राम में विहार करते थे।

उस समय उस ग्राम में युवकों का परस्पर भेंट देने का उत्सव आया हुआ था।

तब, भगवान् सुबह में पहन और पात्र चीवर ले गाँव में भिक्षाटन के लिये पैठे।

उस समय पञ्चशाला ग्राम के ब्राह्मणों पर पापी मार सवार हो गया था—कि जिसमें श्रमण गौतम को भिक्षा न मिलने पावे।

तब, भगवान् जैसे धुले-धुलाये पात्र को लेकर पञ्चशाला ग्राम में भिक्षाटन के लिये पैठे थे, वैसे ही धुले-धुलाये पात्र को लिये लौट गये।

तब, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् से बोला—श्रमण! क्या भिक्षा मिली?

तुम पापी ने वैसा किया जिसमें मुझे भिक्षा नहीं मिले।

भन्ते! तो, भगवान् दूसरी बार पञ्चशाला ग्राम में भिक्षाटन के लिये पैठें। इस बार मैं ऐसा करूँगा जिसमें भगवान् को भिक्षा मिलेगी।

> मार ने बड़ा अपुण्य कमाया, जो बुद्ध से दगा किया,
> रे पापी! क्या समझता है कि मेरे पाप का फल नहीं मिलेगा?

सुख-पूर्वक जीता हूँ, जिस मुझे कुछ अपना नहीं है,
(समाधि-जन्य) प्रीति से संतुष्ट रहूँगा,
जैसे आभास्वर देव ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ ९. कस्सक सुत्त (४. २. ९)

मार का कृषक के रूप में आना

श्रावस्ती में।

उस समय, भगवान् ने निर्वाण-सम्बन्धी धर्मोपदेश कर भिक्षुओं को दिखा दिया···। और, भिक्षु लोग भी···कान दिये धर्म श्रवण कर रहे थे।

तब, पापी मार के मन में यह आया—यह श्रमण गौतम निर्वाण-सम्बन्धी धर्मोपदेश कर···। तो, क्यों न मैं जहाँ श्रमण गौतम हैं वहाँ चलकर उनके मत को फेर दूँ!

तब पापी मार कृषक का रूप धर—एक बड़े हल को कन्धे पर लिये, एक लम्बी ठकुनी लिये, बाल बिखेरे, टाट के कपड़े पहने, पैरों में कीचड़ लगाये, जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् से बोला—'श्रमण! मेरे बैलों को देखा है?'

रे पापी! तुम्हें बैलों से क्या काम?

श्रमण! मेरी ही आँख है, मेरे ही रूप हैं, मेरी ही आँख से जाने जाये वाले विज्ञानायतन हैं। श्रमण! कहाँ जाकर मुझसे छूट सकते हो?

श्रमण! मेरे ही शब्द, गंध, रस, स्पर्श···।

श्रमण! मेरा ही मन है, मेरे ही धर्म हैं, मेरे ही मन-संस्पर्श-विज्ञानायतन हैं। श्रमण! कहाँ जाकर मुझसे छूट सकते हो?

पापी! तेरी ही आँख है, तेरे ही रूप हैं, तेरी ही आँख से जाने जाये वाले विज्ञानायतन हैं। पापी! जहाँ आँख नहीं है, रूप नहीं हैं, आँख से जाने जाये वाले विज्ञानायतन नहीं हैं, वहाँ तेरी गति नहीं है।

···पापी! जहाँ शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं हैं···।

पापी! तेरा ही मन है, तेरे ही धर्म हैं, तेरे ही मन-संस्पर्श-विज्ञानायतन हैं। पापी! जहाँ मन नहीं है, धर्म नहीं हैं, मन-संस्पर्श-विज्ञानायतन नहीं हैं, वहाँ तेरी गति नहीं है।

जो लोग कहते हैं 'यह मेरा है', जिसे लोग कहते हैं 'मेरा है'!
यदि तुम्हारा भी मन वहाँ है, तो हे श्रमण! मुझसे नहीं छूट सकते॥

[भगवान्—]

जिसे लोग कहते हैं वह मेरा नहीं है,
जो लोग कहते हैं वह मैं नहीं हूँ,
रे पापी! इसे ऐसा जान,
मेरे मार्ग को भी तू नहीं देख सकेगा॥

तब, पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ १०. रज्ज सुत्त (४. २. १०)

सांसारिक लाभों की विजय

एक समय, भगवान् कोशल में हिमालय के पास जंगल की एक कुटिया में विहार करते थे।

तब, एकान्त में ध्यान करते समय भगवान् के मन में यह वितर्क उठा—क्या, बिना मारे या मरवाये, बिना जीते या जितवाये, बिना दुःख दिये या दुःख दिलवाये, धर्म-पूर्वक राज्य किया जा सकता है ?

तब, पापी, मार भगवान् के वितर्क को अपने चित्त से जान, जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और बोला—भन्ते ! भगवान् राज्य करें—बिना मारे···धर्म-पूर्वक।

पापी ! तुमने क्या देखकर मुझे ऐसा कहा :—भन्ते ! भगवान् राज्य करें—बिना मारे··· धर्म-पूर्वक।

भन्ते ! भगवान् ने चारों ऋद्धिपाद की भावना कर ली है, उनका अभ्यास कर लिया है, उन पर पूरा अधिकार पा लिया है, उनको सफल बना लिया है, उनका अनुष्ठान कर लिया है, उनका परिचय और प्रयोग कर लिया है। भन्ते ! यदि भगवान् चाहें कि यह पर्वतराज हिमालय सोने का हो जाय, तो भगवान् के केवल अधिष्ठान करने मात्र से सारा सुवर्ण-पर्वत हो जायगा।

[भगवान्···]

> बिल्कुल असली सोने के पर्वत का,
> दुगना भी एक पुरुष के लिये काफी नहीं है,
> यह समझ कर (संसार में) रहे ॥
> जिसके कारण किसने दुःख देख लिया,
> उन कामों की ओर वह कैसे झुकेगा ?
> सांसारिक लाभों को बन्धन जान,
> उन पर विजय पाना सीखे ॥

तब पापी मार 'मुझे भगवान् ने पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो अन्तर्धान हो गया।

द्वितीय वर्ग समाप्त।

तीसरा भाग

तृतीय वर्ग

(ऊपर के पाँच)

§ १. सम्बहुल सुत्त (४. ३. १)

मार का बहकाना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् शाक्य जनपद के शीलावती प्रदेश में विहार करते थे।

उस समय भगवान् के पास ही कुछ अप्रमत्त, आतापी (= क्लेशों को तपाने वाले) और प्रहितात्म (= संयमी) भिक्षु विहार करते थे।

तब, पापी मार ब्राह्मण का रूप धर,—लम्बी जटा बढ़ाये, मृगचर्म ओढ़े, बूढ़ा, बड़ेरी जैसा झुका, घुर-घुर साँस लेते, गूलर का दण्ड लिये—जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ आया। आकर भिक्षुओं से बोला—आप लोगों ने बड़ी छोटी अवस्था में प्रव्रज्या ले ली है, अभी तो आप कुमार ही हैं, आप के केश अभी काले ही हैं, आप की इतनी अच्छी जवानी है, इस चढ़ती उम्र में आपने तो संसार के कामों का स्वाद भी नहीं लिया है। आप मनुष्य के भोगों को भोगें। सामने की बात को छोड़कर मुद्दत में होनेवाली के पीछे मत दौड़ें।

नहीं ब्राह्मण! हम सामने की बात को छोड़कर मुद्दत में होनेवाली के पीछे नहीं दौड़ रहे हैं। ब्राह्मण! हम तो उलटे मुद्दत में होनेवाली बात को छोड़कर सामनेवाली के फेर में हैं। ब्राह्मण! भगवान् ने संसार के कामों को मुद्दत में होनेवाला बतलाया है, दुःख से पूर्ण, परेशानी से भरा; इन कामों में केवल दोष ही दोष हैं। और, यह धर्म सांदृष्टिक (= आँखों के सामने फल देनेवाला), शीघ्र ही सफल होनेवाला (= अकालिको), डंके की चोट पर सच्चा बताया जा सकने वाला (= एहिपस्सिको = जिसके विषय में किसी को कहा जा सकता है—'आओ, देख लो'), मुक्ति के पास ले जानेवाला, विज्ञ पुरुषों से अपने भीतर ही भीतर समझ लिया जानेवाला है।

उनके ऐसा कहने पर पापी मार शिर हिला, जीभ निकाल, ललाट पर तीन सिकोड़न (भ्रूभंग) चढ़ा लाठी टेकता हुआ चला गया।

तब, वे भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को यह कहा—

भन्ते! हम लोग भगवान् के पास ही अप्रमत्त, आतापी, और प्रहितात्म हो विहार कर रहे हैं। तब कोई ब्राह्मण, लम्बी जटा बढ़ाये···आकर बोला—आपने बड़ी छोटी अवस्था में···। सामने की बात को छोड़ कर मुद्दत में होनेवाली के पीछे मत दौड़ें।

भन्ते! इस पर हमने उस ब्राह्मण को उत्तर दिया—नहीं ब्राह्मण! हम सामने की बात को छोड़ कर मुद्दत में होनेवाली के पीछे नहीं दौड़ रहे हैं।···। और यह धर्म सांदृष्टिक···है।

भन्ते! हम लोगों के ऐसा कहने पर वह ब्राह्मण···लाठी टेकता हुआ चला गया।

भिक्षुओ! वह ब्राह्मण नहीं था। वह पापी मार तुम लोगों के मत को फेर देने के लिये आया था।

इसे जान, भगवान् के मुँह से उस समय यह गाथा निकल पड़ी—

> जिसने जिसके कारण दुःख होना जान लिया,
> वह उन कामों की ओर कैसे झुक सकता है ?
> सांसारिक लाभों को बन्धन जान,
> उन पर विजय पाना सीखे ॥

§ २. समिद्धि सुत्त (४. ३. २)

समृद्धि को डराना

एक समय भगवान् शाक्य जनपद में शीलावती प्रदेश में विहार करते थे।

उस समय, आयुष्मान् समृद्धि भगवान् के पास ही अप्रमत्त, आतापी, और प्रहितात्म हो विहार कर रहे थे।

तब एकान्त में ध्यान करते समय आयुष्मान् समृद्धि के मन में यह वितर्क उठा—मेरा बड़ा लाभ हुआ! मेरा बड़ा भाग्य हुआ कि मेरे गुरु अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध हुये। मेरा बड़ा लाभ हुआ! मेरा बड़ा भाग्य हुआ कि मैं इस स्वाख्यात धर्म-विनय में प्रव्रजित हुआ। मेरा बड़ा लाभ हुआ! मेरा बड़ा भाग्य हुआ कि मेरे गुरु-भाई शीलवान् और पुण्यात्मा हैं।

तब पापी मार आयुष्मान् समृद्धि के वितर्क को अपने चित्त से जान, जहाँ आयुष्मान् समृद्धि थे वहाँ आया। आकर, आयुष्मान् समृद्धि के पास ही महाभयोत्पादक शब्द कहने लगा; मानो पृथ्वी फट चली।

तब, आयुष्मान् समृद्धि जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, आयुष्मान् समृद्धि ने भगवान् को कहा—

भन्ते! मैं भगवान् के पास ही अप्रमत्त, आतापी, और प्रहितात्म हो विहार कर रहा हूँ।

भन्ते! तब, एकान्त में ध्यान करते समय मेरे मन में यह वितर्क उठा···। भन्ते! तब, मेरे पास ही एक महाभयोत्पादक शब्द होने लगा; मानो पृथ्वी फट चली।

समृद्धि! यह पृथ्वी नहीं फटी जा रही थी। वह पापी मार तुम्हारे मन को फेर देने के लिए आया था। समृद्धि! आओ, वहीं अप्रमत्त, आतापी और प्रहितात्म होकर विहार करो।

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् समृद्धि भगवान् को उत्तर दे, आसन से उठ, भगवान् को अभिवादन और प्रदक्षिणा कर चले गये।

दूसरी बार भी आयुष्मान् समृद्धि वहीं···विहार करने लगे। दूसरी बार भी, एकान्त में ध्यान करते समय आयुष्मान् समृद्धि के मन में वितर्क उठा···मेरा बड़ा लाभ हुआ! मेरा बड़ा भाग्य हुआ!! कि मेरे गुरु-भाई शीलवान् और पुण्यात्मा हैं।

दूसरी बार भी, पापी मार···गया।···मानो पृथ्वी फट चली।

तब, आयुष्मान् समृद्धि 'यह पापी मार है' जान, गाथा में बोले—

> श्रद्धा से मैं प्रव्रजित हुआ हूँ, घर से बेघर हो,
> स्मृति और प्रज्ञा को मैंने जान लिया, मेरा चित्त समाधिस्थ हो गया,
> जैसी इच्छा हो वैसे रूप दिखाओ,
> उससे मेरा कुछ नहीं बिगड़ सकता ॥

तब, पापी मार 'समृद्धि भिक्षु ने मुझे पहचान लिया' समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ ३. गोधिक सुत्त (४. ३. ३)

गोधिक की आत्महत्या

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे।

उस समय, आयुष्मान् गोधिक ऋषिगिरि के पास कालशिला पर विहार करते थे। तब अप्रमत्त, आतापी और प्रहितात्म होकर विहार करते हुए आयुष्मान् गोधिक ने समाधि से होनेवाली चित्त-विमुक्ति को प्राप्त किया। फिर, आयुष्मान् गोधिक की वह समाधि से होनेवाली चित्त-विमुक्ति टूट गई!

दूसरी बार भी, अप्रमत्त, आतापी और प्रहितात्म होकर विहार करते हुए आयुष्मान् गोधिक ने समाधि से होनेवाली चित्त-विमुक्ति को प्राप्त किया। दूसरी बार भी, आयुष्मान् गोधिक की वह समाधि से होनेवाली चित्त-विमुक्ति टूट गई।

...तीसरी बार भी, आयुष्मान् गोधिक की वह समाधि से होने वाली चित्त-विमुक्ति टूट गई।

...चौथी बार भी, पाँचवीं बार भी, छठीं बार भी, आयुष्मान् गोधिक की वह समाधि होनेवाली चित्त-विमुक्ति टूट गई।

सातवीं बार भी, अप्रमत्त, आतापी और प्रहितात्म होकर विहार करते हुए आयुष्मान् गोधिक ने समाधि से होनेवाली चित्त-विमुक्ति को प्राप्त किया।

तब, आयुष्मान् गोधिक के मन में यह हुआ—छठीं बार तक मेरी समाधि से होनेवाली चित्त-विमुक्ति टूट चुकी है—तो क्यों न मैं आत्महत्या कर लूँ।

तब, पापी मार आयुष्मान् गोधिक के वितर्क को अपने चित्त से जान, जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् से गाथा में बोला—

> हे महावीर! हे महाप्रज्ञ! जो अपनी ऋद्धि से दीप्त हो रहे हैं।
> सभी वैर और भय से मुक्त! सर्वज्ञ! मैं पैरों पर प्रणाम् करता हूँ॥
> हे महावीर! आपका श्रावक, हे मृत्युञ्जय!
> मरने की इच्छा और विचार कर रहा है; हे तेजस्वी! उसे रोकें,
> भगवन्! आपके शासन में लगा कोई श्रावक,
> हे लोक-विख्यात! बिना निर्वाण पाये,
> शैक्ष्य ही होते कैसे मृत्यु को प्राप्त हो जायगा?
> उस समय तक आयुष्मान् गोधिक ने आत्महत्या कर ली थी।
> तब भगवान् 'यह पापी मार है' जान गाथा में बोले—
> धीर पुरुष ऐसे ही करते हैं, जीवन में उनकी आशा नहीं रहती है,
> तृष्णा को जड़ से उखाड़, गोधिक ने निर्वाण पा लिया॥

तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ!! जहाँ ऋषिगिरि के पास कालशिला है वहाँ चल चलो, जहाँ गोधिक कुलपुत्र ने आत्महत्या कर ली है।

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह, उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

तब, कुछ भिक्षुओं के साथ भगवान् जहाँ ऋषिगिरि के पास कालशिला थी वहाँ गये। भगवान् ने दूर ही से आयुष्मान् गोधिक को खाट पर कंधा झुकाये सोये देखा।

उस समय कुछ धुंआता सा, कुछ छाया सा, पूरब की ओर उड़ा जाता था; पश्चिम की ओर उड़ा

जाता था; उत्तर की ओर उड़ा जाता था; दक्षिण की ओर उड़ा जाता था; ऊपर, नीचे, सभी ओर उड़ा जाता था।

तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! देखो, कुछ धुँआसा सा, कुछ छाया सा,...सभी ओर उड़ा जाता है।

भन्ते ! जी हाँ !

भिक्षुओ ! यह पापी मार गोधिक कुलपुत्र के विज्ञान को सभी ओर खोज रहा है—गोधिक कुलपुत्र का विज्ञान कहाँ प्रतिष्ठित है। भिक्षुओ ! गोधिक का विज्ञान कहीं भी प्रतिष्ठित नहीं है; उसने निर्वाण पा लिया है।

तब पापी मार बिल्व-पण्डु वीणा (=जो वीणा पके बेल के समान पीला था) को ले जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और गाथा में बोला—

ऊपर, नीचे और टेढ़े मेढ़े, दिशाओं और अनुदिशाओं में,
मैंने खोज छान कर भी नहीं पाया, वह गोधिक कहाँ गया॥
वह धीर, धृति-सम्पन्न, ध्यानी, सदा ध्यान-रत,
दिन रात लगे रह, जीवन की इच्छा न करते हुये,
मृत्यु की सेना को जीत, पुनर्जन्म न ग्रहण कर,
तृष्णा को जड़ से उखाड़, गोधिक ने परिनिर्वाण पा लिया॥
भारी शोक में पड़, उसकी कांख से वीणा खिसक गई,
इससे वह मार खिन्न हो, वहीं अन्तर्धान हो गया॥

§ ४. सत्तवस्सानि सुत्त (४. ३. ४)

मार द्वारा सात साल पीछा किया जाना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् उरुवेला में नेरञ्जरा नदी के तीर पर अजपाल निग्रोध के नीचे विहार करते थे।

उस समय पापी मार सात साल से भगवान् का पीछा कर रहा था—उनमें कोई दोष निकालने की इच्छा से, किन्तु उसे कभी कोई दोष नहीं मिला।

तब, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् से गाथा में बोला—

क्या चिन्तित सा हो वन में ध्यान करते हो,
क्या तुम्हारा धन नष्ट हो गया है, जिसकी फिक्र कर रहे हो ?
क्या गाँव में तुमने कुछ उत्पात किया है,
कि जिससे लोगों को अपनी भेंट भी नहीं देते ?
क्या तुम्हें किसी से भी यारी नहीं होती ?

[भगवान्—]

शोक के सारे मूल को उखाड़,
बिना उत्पात किये, चिन्ता-रहित हो ध्यान करता हूँ,
जीवन के सभी लोभ और लालच को काट,
हे प्रमत्त लोगों के मित्र ! आतीव-रहित हो ध्यान करता हूँ॥

[मार—]

जिसे कहते हैं 'यह मेरा है', जो कहते हैं 'यह मेरा है',
वहाँ यदि तुम्हारा मन लगा है, तो श्रमण ! मुझसे तेरा छुटकारा नहीं ॥

[भगवान्—]

जिसे लोग कहते हैं वह मेरा नहीं है, जो कहते हैं वह मैं नहीं हूँ,
रे पापी ! ऐसा जान, मेरे मार्ग को भी तू नहीं देख सकेगा ॥

[मार—]

यदि तुम्हें मार्ग का पता लग गया है, क्षेम और अजर-पद-गामी,
तो उस पर अकेला ही जाओ; दूसरों को क्यों सिखाते हो ॥

[भगवान्—]

लोग पूछते हैं कि मृत्यु के राज्य का पार कहाँ है,
जो उस पार जाने को उत्सुक हैं,
उनसे पूछ जाकर मैं बताता हूँ
कि उपाधियों का बिल्कुल अन्त कहाँ है ॥

[मार—]

भन्ते ! किसी गाँव या कस्बे के पास ही एक बावली हो, जिसमें एक केकड़ा रहता हो। तब, कुछ लड़के या लड़कियाँ उस गाँव या कस्बे से निकल कर उस बावली के पास जायँ। जाकर उस केकड़े को पानी से निकाल जमीन पर रख दें। वह केकड़ा जिधर पैर मोड़े उधर ही उसे वे लड़के या लड़कियाँ लकड़ी या पत्थर से पीटें और उसके अंग-प्रत्यंग को तोड़ दें। और, तब वह केकड़ा···फिर भी पानी में बैठने से लाचार हो जाय।

भन्ते ! ठीक वैसे ही, जो मेरे अच्छे बड़े पुष्ट अंग थे सभी को भगवान् ने तोड़ दिया, मरोड़ दिया, नष्ट कर दिया। भन्ते ! अब मैं भगवान् में दोष निकालने के लिये आने में असमर्थ हो गया।

तब, पापी मार भगवान् के सम्मुख यह करुणा-पूर्ण गाथा बोला—

चर्बी जैसे उजले पत्थर को देख,
कौआ झपट्टा मारा,
यह कुछ कोमल चीज होगी,
बड़ी स्वादवाली होगी ॥
वहाँ कोई स्वाद नहीं था,
कौआ उड़ गया ;
पत्थर पर झपटने वाले कौए जैसा,
गौतम को छोड़ मैं भाग जाऊँ ॥

तब पापी मार भगवान् के सम्मुख यह करुणापूर्ण गाथा कह वहाँ से हट कर भगवान् के पास ही जमीन पर पालथी लगा बैठ गया। चुप हो, गूँगा रह, कंधा गिरा, वह जमीन को तिनके से खोदने लगा।

§ ५. मारदुहिता सुत्त (४. ३. ५)

मार कन्याओं की पराजय

तब, तृष्णा, अरति और रगा मार की लड़कियाँ जहाँ पापी मार था वहाँ आईं। आकर पापी मार को गाथा में बोलीं—

तात ! खिन्न क्यों हैं ? किस पुरुष के विषय में शोक कर रहे हैं ?
हम उसे राग के जाल में, जैसे जंगली हाथी को,
बझा कर ले आवेंगी; वह आप के वश में रहेगा ॥

[मार—]

संसार में अर्हत् बुद्ध राग से नहीं लाये जा सकते हैं;
मार के राज्य से जो निकल गये, इसलिये मैं इतना चिन्तित हूँ ॥

तब तृष्णा, अरति और रगा मार की लड़कियाँ जहाँ भगवान् थे वहाँ आईं। आकर भगवान् से बोलीं—श्रमण ! आप के चरणों की सेवा करूँगीं।—किन्तु, भगवान् ने ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वे उपाधि के क्षय हो जाने से अनुत्तर विमुक्ति को पा चुके थे।

तब तृष्णा, अरति, और रगा, मार की लड़कियों ने एक ओर हटकर ऐसी मन्त्रणा की—पुरुषों की चाह तरह तरह की होती हैं। तो हम लोग एक एक सौ कुमारियों के रूप धर लें।

तब···मार की लड़कियाँ एक एक सौ कुमारियों के रूप धर, जहाँ भगवान् थे वहाँ आईं। आकर भगवान् से यह बोलीं—श्रमण ! हम आप के चरणों की सेवा करेंगी।

उसे भी भगवान् ने ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वे उपाधियों के क्षय हो जाने से अनुत्तर विमुक्ति को पा चुके थे।

तब···मार की लड़कियों ने एक ओर हट कर ऐसी मन्त्रणा की—पुरुषों की चाह तरह तरह की होती है। तो हम लोग एक एक सौ, एक बार प्रसव कर चुकने वाली स्त्रियों के रूप, दो बार प्रसव कर चुकने वाली स्त्रियों के रूप, बीच उम्र वाली स्त्रियों के रूप, चढ़ी उम्र वाली स्त्रियों के रूप धर लें।

···उसे भी भगवान् ने ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वे उपाधियों के क्षय हो जाने से अनुत्तर विमुक्ति को पा चुके थे।

तब तृष्णा, अरति, और रगा, मार की लड़कियों ने एक ओर हट कर कहा—हम लोगों के पिता ने ठीक ही कहा थाः—

संसार में अर्हत् बुद्ध राग से नहीं लाये जा सकते हैं;
मार के राज्य से जो निकल गये, इसलिये मैं इतना चिन्तित हूँ ॥

यदि हम लोग किसी श्रमण या ब्राह्मण के पास इस तरह जातीं, जो वीतराग नहीं हुआ है, त उसकी छाती फट जाती, या मुँह से उष्ण रुधिर वमन हो जाता, या पागल हो जाता, या मतवाला हो जाता। जैसे कटी घासें सूख और मुर्झा जाती हैं, वैसे ही वह सूख और मुर्झा जाता।

तब, तृष्णा, अरति और रगा, मार की लड़कियाँ जहाँ भगवान् थे वहाँ आईं। आकर एक ओर खड़ी हो गईं।

एक ओर खड़ी हो, तृष्णा, मार की लड़की, भगवान् से गाथा में बोली—

बड़ा चिन्तित-सा हो वन में ध्यान करते हो,
क्या तुम्हारा धन नष्ट हो गया है, जिसकी फिक्र कर रहे हो ?
क्या गाँव में तुमने कुछ उत्पात किया है,
कि जिससे लोगों को अपनी भेंट भी नहीं देते ?
क्या तुम्हें किसी से भी दोस्ती नहीं होती ?

[भगवान्—]

परमार्थ की प्राप्ति, हृदय की शान्ति,
लुभाने और बहकाने वाले पदार्थों पर विजय पा,
अकेला ध्यान करते हुए सुख का अनुभव करता हूँ,

इसी से लोगों के साथ मिलता-जुलता नहीं हूँ,
मुझे किसी से भी दोस्ती नहीं लगती है ॥

तब, अरति, मार की लड़की भगवान् से गाथा में बोली—

भिक्षु संसार में कैसे विहार करता है ?
पाँच बाढ़ों को पार कर छठें को कैसे पार करता है ?
कैसे ध्यान के अभ्यासी को काम संज्ञायें,
पकड़ नहीं सकतीं, बाहर ही बाहर रहती हैं ?

[भगवान्—]

जिसकी काया शान्त हो गई है, चित्त विमुक्त हो गया है,
जिसे संस्कार नहीं, स्मृतिमान्, बिना घर का,
धर्म को जान अवितर्क ध्यान लगाने वाला,
न क्रोध करता है, न वैर बाँधता है, न मन मारता है ॥
भिक्षु ऐसे ही संसार में विहार करता है,
पाँच बाढ़ों को पार कर छठें को पार करता है,
वैसे ध्यान के अभ्यासी को काम संज्ञायें,
पकड़ नहीं सकतीं, बाहर ही बाहर रहती हैं ॥

तब, मार की लड़की रगा भी भगवान् से गाथा में बोली—

तृष्णा को काट गण और संघ वाला आता है,
और भी बहुत प्राणी आयेंगे,
यह प्रव्रजित बहुत से लोगों को,
मृत्यु-राज से छुड़ा कर पार ले जायगा ॥

बुद्ध उन्हें ले जाते हैं,
तथागत (=बुद्ध) अपने सद्धर्म से,
धर्म से ले जाये जाने वाले,
ज्ञानियों को डाह कैसी !

तब तृष्णा, अरति और रगा, मार की लड़कियाँ जहाँ पापी मार था वहाँ आ[ईं] ;
पापी मार ने उन लोगों को आती देखा। देखकर वह गाथा में बोला—

मूर्ख ! कमल की नाल से पर्वत को मथना चाहा,
पहाड़ को नख से खोदना, लोहे को दाँत से चबाना,
चट्टान को शिर से टकराना, पाताल का अन्त खोजना,
या वृक्ष के ठूँठ को छाती से भिड़ाना चाहा :
हार मान, गौतम को छोड़ चले आओ ॥

चटक मटक से आईं,
तृष्णा, अरति और रगा;
हवा जैसे रूई के फाहे को (बिखेर दे)
बुद्ध ने उन्हें वैसे, बिखेर दिया ॥

तृतीय वर्ग समाप्त ।

पाँचवाँ परिच्छेद

५. भिक्षुणी-संयुत्त

§ १. आलविका सुत्त (५. १)

काम-भोग तीर जैसे हैं

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

तब आलविका भिक्षुणी सुबह में पहन और पात्र चीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिये पैठी। भिक्षाटन से लौट भोजन करने के उपरान्त एकान्त-सेवन के लिये जहाँ अन्धक वन है वहाँ चली गई।

तब पापी मार आलविका भिक्षुणी को डरा, कँपा, और रोंये खड़े कर देने, और शान्ति को तोड़ देने की इच्छा से जहाँ आलविका भिक्षुणी थी वहाँ आया। आकर आलविका भिक्षुणी से गाथा में बोला—

> संसार से छुटकारा नहीं है, एकान्त-सेवन से क्या फायदा !
> सांसारिक कामों का भोग करो, पीछे कहीं पछताना न पड़े ॥

तब आलविका भिक्षुणी के मन में यह हुआ—कौन यह मनुष्य या अमनुष्य गाथा में बोल रहा है ?

तब आलविका भिक्षुणी के मन में यह हुआ—यह पापी मार मुझे डरा, कँपा और रोंये खड़े कर देने, और शान्ति भंग कर देने की इच्छा से गाथा बोल रहा है।

तब आलविका भिक्षुणी 'यह पापी मार है' जान, गाथा में बोली—

> संसार से जो छुटकारा होता है, प्रज्ञा से मैंने उसे पा लिया है,
> प्रमत्त पुरुषों के मित्र, पापी ! तुम उस पद को नहीं जानते ॥
> सांसारिक काम तीर भाले जैसे हैं, जो स्कन्धों को कूटते रहते हैं,
> जिसे तुम काम-भोग कहते हो उसमें मेरी रुचि नहीं रही ॥

तब पापी मार "आलविका भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया" समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ २. सोमा सुत्त (५. २)

स्त्री-भाव क्या करेगा ?

श्रावस्ती में।

तब, सोमा भिक्षुणी सुबह में पहन और पात्र चीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिये पैठी। भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने के बाद दिन के विहार के लिए जहाँ अन्धवन है वहाँ चली गई। अन्धवन में पैठ, एक वृक्ष के नीचे दिन के विहार के लिए बैठ गयी।

तब, पापी मार सोमा भिक्षुणी को डरा, कँपा और रोंगटे खड़े कर देने, तथा समाधि से गिरा देने के विचार से जहाँ सोमा भिक्षुणी थी वहाँ आया। आकर सोमा भिक्षुणी से गाथा में बोला:—

ऋषि लोग जिस पद को पाते हैं उसका पाना बड़ा कठिन है,
दो अंगुल भर प्रज्ञावाली स्त्रियाँ उसे नहीं पा सकती हैं ॥

तब, सोमा भिक्षुणी के मन में यह हुआ—कौन यह मनुष्य या अमनुष्य गाथा में बोल रहा है ?

तब, सोमा भिक्षुणी के मन में यह हुआ—यह पापी मार मुझे डरा, कँपा और रोंगटे खड़े कर देने, तथा समाधि से गिरा देने के विचार से गाथा बोल रहा है ।

तब, सोमा भिक्षुणी "यह पापी मार है" जान गाथा में बोली—

जब चित्त समाहित हो जाता है, ज्ञान उपस्थित रहता है,
और धर्म का पूर्णतः साक्षात्कार हो जाता है, तब स्त्री-भाव क्या करेगा !!
जिस किसी को ऐसा विचार होता है—मैं स्त्री हूँ, अथवा पुरुष हूँ,
अथवा कुछ और ही, उसी से मार ऐसा कह सकता है ॥

तब, पापी मार "सोमा भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया" समझ, दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ३. किसा गौतमी सुत्त (५. ३)

अज्ञानान्धकार का नाश

श्रावस्ती में ।

तब, कृशा-गौतमी भिक्षुणी सुबह में पहन और पात्र चीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिये पैठी ।

भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने के बाद दिन के विहार के लिए जहाँ अन्धवन है वहाँ चली गई । अन्धवन में पैठ, एक वृक्ष के नीचे दिन के विहार के लिये बैठ गई ।

तब, पापी मार···समाधि से गिरा देने के विचार से···गाथा में बोला—

पुत्र-मृत्यु के शोक में पड़ी जैसे, अकेली, रोनी सूरत लिये ;
वन में अकेली बैठ कर क्या किसी पुरुष की खोज में है ?

तब कृशा-गौतमी भिक्षुणी के मन में यह हुआ—···पापी मार···गाथा बोल रहा है ।

तब कृशा-गौतमी ने "यह पापी मार है" जान गाथा में उत्तर दिया—

पुत्र-मृत्यु के शोक से मैं ऊपर उठ चुकी हूँ, पुरुष की खोज भी जाती रही,
न शोक करती हूँ, न रोती हूँ, आवुस ! तुमसे भी अब डर नहीं ॥
संसार में स्वाद लेना छूट चुका, अज्ञानान्धकार हटा दिया गया,
मृत्यु की सेना को जीत, आश्रय-रहित हो विहार करती हूँ ॥

तब पापी मार "कृशा-गौतमी भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया" समझ, दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ४. विजया सुत्त (५. ४)

काम-तृष्णा का नाश

श्रावस्ती में ।

तब विजया भिक्षुणी···[पूर्ववत्] दिन के विहार के लिये बैठ गई ।

तब पापी मार···गाथा में बोला—

कम उम्र वाली तुम सुन्दरी हो, और मैं एक नया कुमार हूँ,

पञ्चाङ्गिक साज से, आओ, हम मौज उड़ावें ॥

तब विजया भिक्षुणी ने "यह पापी मार है" जान गाथा में उत्तर दियाः—

लुभावने रूप, शब्द, रस, गन्ध और स्पर्श,
तुम्हारे ही लिये छोड़ देती हूँ, मार ! मुझे उसकी आवश्यकता नहीं,
इस गंदगी से भरे शरीर से, प्रभङ्गुर और नष्ट हो जाने वाले से,
मेरा मन हटता है, घृणा आती है, मेरी काम-तृष्णा मिट गई है।
जो रूप-लोक या अरूप-लोक का (देवत्व) है,
और जो ध्यान की शान्त अवस्थाएँ हैं सभी में मेरा अज्ञानान्धकार नष्ट हो गया है ॥

तब पापी मार "विजया भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया" समझ, दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ ५. उप्पलवण्णा सुत्त (५. ५)

उत्पलवर्णा की ऋद्धिमता

श्रावस्ती में।

तब उत्पलवर्णा भिक्षुणी···अन्धवन में किसी सुपुष्पित शाल वृक्ष के नीचे खड़ी हो गई।

तब पापी मार···गाथा में बोलाः—

भिक्षुणि ! सुपुष्पित शाल वृक्ष के नीचे तुम अकेली खड़ी हो,
तुम्हारे जैसा सौन्दर्य दूसरा नहीं है, जो यहाँ आई हो,
नादान ! बदमाशों से तुम्हें डर नहीं लगता ?

···तब उत्पलवर्णा भिक्षुणी ने "यह पापी मार है" जान, गाथा में उत्तर दियाः—

वैसे यदि सौ हजार भी बदमाश चले आवें,
तो मैं नहीं डर सकती, मेरा एक रोंआ भी नहीं हिल सकता।
अकेली रह कर भी मार ! तुझ से मुझे भय नहीं ॥
अभी मैं अन्तर्धान हो जा सकती हूँ,
तुम्हारे पेट में घुस जा सकती हूँ,
आँखों के बीच खड़ी रहने पर भी,
तुम मुझे नहीं देख सकते ॥
चित्त के वशीभूत हो जाने पर ऋद्धियाँ भी स्वयं प्राप्त हो जाती हैं,
मैं सभी बन्धनों से मुक्त हूँ, आवुस ! तुमसे मैं नहीं डरती ॥

तब पापी मार "उत्पलवर्णा भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया" समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ ६. चाला सुत्त (५. ६)

जन्म-ग्रहण के दोष

श्रावस्ती में।

तब, चाला भिक्षुणी···दिन के विहार के लिये बैठ गई।

तब, पापी मार जहाँ चाला भिक्षुणी थी वहाँ आया। आकर चाला भिक्षुणी से यह बोलाः—भिक्षुणि ! तुम्हें क्या नहीं रुचता है ?

[मार]

आवुस ! मुझे जन्म ग्रहण करना नहीं रुचता है ।
तुम्हें जन्म ग्रहण करना क्यों नहीं रुचता ?
जन्म लेकर कामों का भोग करता है ।

तुम्हें यह किसने सिखा दिया कि:—हे भिक्षुणि ! तुम्हें जन्म-ग्रहण करना मत रुचे ?

[चाला भिक्षुणी—]

जन्म लेकर मरना होता है, जन्म लेकर दुःख देखता है,
बाँधा जाना, मारा जाना, कष्ट भुगतना; इसी से जन्म नहीं रुचता है ॥
बुद्ध ने धर्म का उपदेश दिया, जन्म-ग्रहण से छूटने को,
सभी दुःख के प्रहाण के लिये; उन्हीं ने मुझे सत्य मार्ग दिखाया ॥
जो जीव रूप के फेर में पड़े हैं, जो अरूप के अधिष्ठान में,
निरोध (=निर्वाण) को न जानते हुये, पुनर्जन्म लेने वाले ॥

तब, पापी मार "चाला भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया" समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ७. उपचाला सुत्त (५. ७)

लोक सुलग-धधक रहा है

श्रावस्ती में ।

तब, उपचाला भिक्षुणी ··· दिन के विहार के लिए बैठ गई ।

तब, पापी मार ··· उपचाला भिक्षुणी से यह बोला:—भिक्षुणि ! तुम कहाँ उत्पन्न होना चाहती है ?

आवुस ! मैं कहीं भी उत्पन्न होना नहीं चाहती ।

[मार—]

त्रयस्त्रिंश, और याम, और तुषित (नामक देव-लोक के) देवता,
निर्माणरति लोक के देवता, वशवर्ती लोक के देवता हैं,
वहाँ चित्त लगाओ, उसका सुख अनुभव कर सकोगी ॥

[उपचाला भिक्षुणी—]

त्रयस्त्रिंश, और याम, और तुषित लोक के देवता,
निर्माणरति लोक के देवता, वशवर्ती लोक के जो देवता :
वे सभी काम के बन्धन से बँधे हैं, फिर भी मार के वश में आते हैं ॥
सारा लोक सुलग रहा है, सारा लोक धधक रहा है,
सारा लोक लहर रहा है, सारा लोक काँप रहा है ॥
जो कम्पित नहीं होता, जो चलायमान नहीं है,
संसारी लोगों की जहाँ पहुँच नहीं है,
जहाँ मार की भी गति नहीं होती,
वहाँ मेरा मन लगा है ॥

तब, पापी मार "उपचाला भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया" समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ८. सीसुपचाला सुत्त (५. ८)

बुद्ध शासन में रुचि

श्रावस्ती में ।

तब, शीर्षोपचाला भिक्षुणी···दिन के विहार के लिए बैठ गई ।

तब, पापी मार···शीर्षोपचाला भिक्षुणी से यह बोला:—

भिक्षुणि ! तुम्हें कौन सम्प्रदाय रुचता है ?

आवुस ! मुझे किसी का भी सम्प्रदाय नहीं रुचता है ।

[मार—]

किस लिए सिर मुड़ा लिया है ? भिक्षुणी-सा मालूम हो रही हो,

कोई सम्प्रदाय तुम्हें नहीं रुचता; क्या भटकती फिरती है ?

[शीर्षोपचाला भिक्षुणी—]

(धर्म से) बाहर रहने वाले सम्प्रदाय के होते हैं,

आत्म-दृष्टि में जिनकी श्रद्धा होती है;

उनके मत मुझे स्वीकार नहीं हैं,

वे धर्म के जानने वाले नहीं हैं ॥

शाक्य-कुल में अवतार लिये हैं,

बुद्ध, जिनकी बराबरी का कोई पुरुष नहीं,

सर्व-विजयी, मार-जित,

जो कहीं भी पराजित नहीं होते,

सर्वथा मुक्त, पूर्ण स्वतन्त्र,

परम-ज्ञानी सब कुछ जानते हैं,

सभी कर्मों के क्षय को प्राप्त,

उपाधियों के क्षय हो जाने से विमुक्त;

वही भगवान् मेरे गुरु हैं,

उन्हीं का शासन मुझे रुचता है ॥

तब पापी मार "शीर्षोपचाला भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया" समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ ९. सेला सुत्त (५. ९)

हेतु से उत्पत्ति और निरोध

श्रावस्ती में ।

तब शैला भिक्षुणी···दिन के विहार के लिये बैठ गई ।

तब पापी मार शैला भिक्षुणी को डरा···देने की इच्छा से···गाथा में बोला:—

किसने इस पुतले को खड़ा किया, पुतले को सिरजने वाला कौन है ?

कहाँ से यह पुतला पैदा हुआ, कहाँ इस पुतले का निरोध हो जाता है ?

तब शैला भिक्षुणी ने "यह पापी मार है" जान गाथा में उत्तर दिया:—

न तो यह पुतला स्वयं खड़ा हो गया है,

न तो इस अंजाल को दूसरे किसी ने लगा दिया है,

हेतु के होने से हो गया है,

हेतु के रुक जाने से रुक जाता (=निरोध हो जाता) है ॥

जैसे किसी बीज को,
खेत में रोप देने से पौधा उग आता है,
पृथ्वी का रस, और तरी, दोनों को पाकर;
वैसे ही, ⁕ स्कन्ध, धातु और छः आयतनों के,
हेतु के होने से हो गया है,
उस हेतु के रुक जाने से निरोध हो जाता है ॥

तब पापी मार "शैला भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया" समझ, दुःखित और खिन्न होकर वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ १०. वजिरा सुत्त (५. १०)

आत्मा का अभाव

श्रावस्ती में।

तब वज्रा भिक्षुणी सुबह में पहन और पात्र चीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिये पैठी।

भिक्षाटन से लौट, भोजन कर चुकने के बाद जहाँ अन्धवन है, वहाँ दिन के विहार के लिये चली गई। अन्धवन में पैठ, एक वृक्ष के नीचे दिन के विहार के लिये बैठ गई।

तब पापी मार वज्रा भिक्षुणी को डरा, कँपा और रोंगटे खड़े कर देने, तथा समाधि से गिरा देने की इच्छा से जहाँ वज्रा भिक्षुणी थी वहाँ आया। आकर वज्रा भिक्षुणी से गाथा में बोला:—

किसने इस प्राणी को बनाया है, प्राणी का बनाने वाला कहाँ है ?
कहाँ से प्राणी पैदा हो जाता है, कहाँ प्राणी का निरोध हो जाता है ?

तब वज्रा भिक्षुणी के मन में यह हुआ—कौन यह मनुष्य या अमनुष्य गाथा में बोल रहा है ?

तब वज्रा भिक्षुणी के मन में यह हुआ—यह पापी मार मुझे डरा, कँपा और रोंगटे खड़े कर देने, तथा समाधि से गिरा देने की इच्छा से गाथा में बोल रहा है।

तब वज्रा भिक्षुणी ने "यह पापी मार है" जान, गाथा में उत्तर दिया:—

"प्राणी" क्या बोल रहे हो,
मार ! तुम मिथ्या आत्म-दृष्टि में पड़े हो,
यह तो केवल संस्कारों का पुञ्ज भर है,
"प्राणी" † यथार्थ में कोई नहीं है ॥
जैसे अवयवों को मिला देने से,
"रथ" ऐसा शब्द आ जाता है,
वैसे ही, (पाँच) स्कन्धों के मिलने से,
कोई 'प्राणी' समझ लिया जाता है ॥
दुःख ही उत्पन्न होता है,
दुःख ही रहता है, और चला जाता है,
दुःख को छोड़ और कुछ नहीं पैदा होता है,
दुःख को छोड़ और किसी का निरोध भी नहीं होता है ॥

तब पापी मार "वज्रा भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया" समझ वहीं अन्तर्धान हो गया।

भिक्षुणी-संयुत्त समाप्त

⁕ पाँच—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, और विज्ञान। † आत्मा।

छठाँ परिच्छेद

६. ब्रह्म-संयुत्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १. आयाचन सुत्त (६. १. १)

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् उरुवेला में अभी तुरत ही बुद्धत्व लाभ कर नेरञ्जरा नदी के तीर पर अजपाल निग्रोध के नीचे विहार करते थे।

तब एकान्त में ध्यान करते भगवान् के मन में यह वितर्क उठा—"मैंने गम्भीर, दुर्दर्शन, दुर्ज्ञेय, शांत, उत्तम, तर्क से अप्राप्य, निपुण, तथा पण्डितों द्वारा जानने योग्य, इस धर्म को पा लिया। यह जनता काम-तृष्णा में रमण करने वाली, काम-रत, काम में प्रसन्न है। काम में रमण करने वाली इस जनता के लिये यह जो कार्य-कारण रूपी प्रतीत्य समुत्पाद है वह दुर्दर्शनीय है। और यह भी दुर्दर्शनीय है जो कि यह सभी संस्कारों का शमन, सभी उपाधियों से मुक्ति, तृष्णा-क्षय, विराग, निरोध (=दुःख-निरोध) वाला निर्वाण। यदि मैं धर्मोपदेश भी करूँ और दूसरे उसको न समझ पावें, तो मेरे लिये यह तरद्दुद और तकलीफ ही होगी।"

उसी समय भगवान् को पहले कभी न सुनी यह अद्भुत गाथायें सूझ पड़ीं—

"यह धर्म पाया कष्ट से, इसका न युक्त प्रकाशना।
नहि राग-द्वेष-प्रलिप्त को है सुकर इसका जानना॥
गंभीर उल्टी-धारयुक्त दुर्दृश्य सूक्ष्म प्रवीण का।
तम-पुंज-छादित रागरत द्वारा न संभव देखना॥"

भगवान् के ऐसा समझने के कारण, उनका चित्त धर्म प्रचार की ओर न झुककर अल्प-उत्सुकता की ओर झुक गया। तब सहम्पति-ब्रह्मा ने भगवान् के चित्त की बात को जानकर ख्याल किया—"लोक नाश हो जायगा रे! जब तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध का चित्त धर्म-प्रचार की ओर न झुक, अल्प-उत्सुकता (=उदासीनता) की ओर झुक जाये।"

(ऐसा ख्याल कर) सहम्पति-ब्रह्मा, जैसे बलवान् पुरुष (बिना परिश्रम) फैली बाँह को समेट ले और समेटी बाँह को फैला दे, ऐसे ही ब्रह्मलोक से अन्तर्धान हो भगवान् के सामने प्रगट हुआ। फिर सहम्पति-ब्रह्मा ने उपरना (=चद्दर) एक कन्धे पर करके, दाहिने जानु को पृथ्वी पर रख, जिधर भगवान् थे उधर हाथ जोड़, भगवान् से कहा—"भन्ते! भगवान् धर्मोपदेश करें। सुगत! धर्मोपदेश करें। अल्प मल वाले भी प्राणी हैं; धर्म न सुनने से वह नष्ट हो जायेंगे। उपदेश करें, धर्म को सुनने वाले भी होवेंगे। सहम्पति-ब्रह्मा ने यह कहा, और यह कहकर यह भी कहा:—

मगध में मलिन चित्तवालों से चिन्तित,
पहले अशुद्ध धर्म पैदा हुआ।

(अब) अमृत का द्वार खुला गया;
विमल (पुरुष) से जाने गये इस धर्म को सुनें ॥
जैसे शैल पर्वत के शिखर पर खड़ा (पुरुष),
चारों ओर जनता को देखे ।
उसी तरह, हे सुमेध ! हे सर्वत्र नेत्र वाले !
धर्म-रूपी महल पर चढ़ सब जनता को देखो ॥
हे शोक रहित ! शोकाकुल जन्मजरा से पीड़ित जनता को देखो,
उठो वीर ! हे संग्रामजित् ! हे सार्थवाह ! उऋण-ऋण !
जग में विचरो, धर्म-प्रचार करो,
भगवन् ! जानने वाले भी मिलेंगे ॥

तब भगवान् ने ब्रह्मा के अभिप्राय को जानकर, और प्राणियों पर दया करके, बुद्ध-नेत्र से लोक का अवलोकन किया। बुद्ध-नेत्र से लोक को देखते हुये भगवान् ने जीवों को देखा, उनमें कितने ही अल्प-मल, तीक्ष्ण-बुद्धि, सुन्दर स्वभाव, शीघ्र समझने योग्य प्राणियों को भी देखा। उनमें कोई कोई परलोक और पाप से भय करते, विहर रहे थे। जैसे उत्पलिनी, पद्मिनी या पुंडरीकिनी में से कितने ही उत्पल, पद्म या पुंडरीक उदक में पैदा हुये, उदक में बढ़े, उदक से बाहर न निकल (उदक के) भीतर ही डूबे पोषित होते हैं। कोई कोई उत्पल (=नीलकमल), पद्म (=रक्तकमल), या पुंडरीक (=श्वेतकमल) उदक में उत्पन्न, उदक में बढ़े (भी) उदक के बराबर ही खड़े होते हैं। कोई कोई उत्पल···उदक से बहुत ऊपर निकल कर, उदक से अलिप्त (हो) खड़े होते हैं। इसी तरह भगवान् ने बुद्ध-चक्षु से लोक को देखा—अल्पमल, तीक्ष्ण-बुद्धि, सुस्वभाव, सुबोध्य प्राणियों को देखा जो परलोक तथा पाप से भय खाते विहार कर रहे थे। देख कर सहम्पति ब्रह्मा से गाथा में कहा—

उनके लिये अमृत का द्वार खुल गया,
जो कानवाले हैं, वे (उसे सुनने के लिए) श्रद्धा छोड़ें[1],
हे ब्रह्मा ! पीड़ा का ख्याल कर,
मैंने मनुष्यों में निपुण, उत्तम, धर्म को नहीं कहा ॥

तब ब्रह्मा सहम्पति—"भगवान् ने धर्मोपदेश के लिये मेरी बात मान ली"—यह जान भगवान् को अभिवादन और प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया।

§ २. गारव सुत्त (६. १. २)

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् अभी तुरत ही बुद्धत्व लाभ कर उरुवेला में नेरञ्जरा नदी के तीर पर अजपाल निग्रोध के नीचे विहार करते थे।

तब एकान्त में ध्यान करते भगवान् के चित्त में ऐसा वितर्क उठा—बिना किसी को ज्येष्ठ माने और उसके प्रति गौरव रखते विहार करना दुःखद है। मैं किस श्रमण या ब्राह्मण को ज्येष्ठ मान, उसका सत्कार और गौरव करते विहार करूँ ?

तब भगवान् के मन में यह हुआ—अपरिपूर्ण शील की पूर्ति के लिये ही किसी दूसरे श्रमण या ब्राह्मण को ज्येष्ठ मान उसका सत्कार और गौरव करते विहार करना चाहिये। किन्तु, मैं—देवताओं के साथ, मार के साथ, ब्रह्मा के साथ, इस सम्पूर्ण लोक में; तथा श्रमण ब्राह्मण देव और मनुष्यवाली

[1] श्रद्धा छोड़ें = कान दें=श्रद्धापूर्वक सुनें।

इस प्रजा में—अपने जैसा किसी दूसरे श्रमण या ब्राह्मण को शीलसम्पन्न नहीं देखता हूँ, जिसे अपना ज्येष्ठ मान उसे सत्कार और गौरव करूँ।

अपरिपूर्ण समाधि की पूर्ति के लिये ही किसी दूसरे श्रमण या ब्राह्मण को ज्येष्ठ मान उसका सत्कार और गौरव करते विहार करना चाहिये।…।

अपरिपूर्ण प्रज्ञा की पूर्ति के लिये ही…।

अपरिपूर्ण विमुक्ति की पूर्ति के लिये ही…।

अपरिपूर्ण विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन के लिये ही किसी दूसरे श्रमण या ब्राह्मण को ज्येष्ठ मानकर उसका सत्कार और गौरव करते विहार करना चाहिये। किन्तु, मैं…अपने जैसा किसी दूसरे श्रमण या ब्राह्मण को विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन से सम्पन्न नहीं देखता हूँ, जिसे अपना ज्येष्ठ मान उसे सत्कार और गौरव करूँ।

तो, अच्छा हो कि मैं अपने संबुद्ध धर्म को ही ज्येष्ठ मान उसे सत्कार और गौरव करते विहार करूँ।

तब, सहम्पति ब्रह्मा भगवान् के वितर्क को अपने चित्त से जान, जैसे—बलवान् पुरुष समेटी बाँह को पसार दे और पसारी बाँह को समेट ले वैसे ही—ब्रह्म-लोक में अन्तर्धान हो भगवान् के सामने प्रगट हुआ।

तब, सहम्पति ब्रह्मा उपरनी को एक कन्धे पर सम्भाल, भगवान् की ओर हाथ जोड़कर यह बोला—

भगवन्! ऐसी ही बात है। भगवन्! ऐसी ही बात है। भन्ते! पूर्व युग के जो अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध हो गये हैं, वे भगवान् भी धर्म को ही ज्येष्ठ मान उसे सत्कार और गौरव करते विहार किया करते थे। भन्ते! भविष्य काल में जो अर्हन् सम्यक् सम्बुद्ध होंगे, वे भगवान् भी धर्म को ही…। इस समय, अर्हन् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् भी धर्म को ही ज्येष्ठ मान उसे सत्कार और गौरव करते विहार करें।

सहम्पति ब्रह्मा ने यह कहा। यह कहकर फिर यह भी कहा:—

भूतकाल में सम्बुद्ध जो हो गये, अनागत में जो बुद्ध होंगे,
और जो अभी सम्बुद्ध हैं, बहुतों के शोक नसानेवाले।
सभी धर्म के प्रति गौरव-शील हो, विहार करते थे और करते हैं,
वैसे ही विहार करेंगे भी, बुद्धों की यही चाल है।
इसलिये, परमार्थ की कामना करनेवाले,
और महत्त्व की आकांक्षा रखनेवाले को,
सद्धर्म का गौरव करना चाहिये,
बुद्धों के उपदेश को स्मरण करते हुये॥

§ ३. ब्रह्मदेव सुत्त (६. १. ३)

आहुति ब्रह्मा को नहीं मिलती

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

उस समय, किसी ब्राह्मणी का ब्रह्मदेव नामक एक पुत्र भगवान् के पास घर से बेघर हो प्रव्रजित हो गया था।

तब, आयुष्मान् ब्रह्मदेव ने अकेला, एकान्त में, अप्रमत्त, आतापी (=क्लेशों को तपानेवाला), और प्रहितात्म हो विहार करते ब्रह्मचर्य के उस अनुत्तर परम-फल को देखते ही देखते स्वयं ज्ञान और

साक्षात् कर लिया जिसके लिये कुलपुत्र सम्यक् घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाते हैं। "जाति क्षीण हो गई, ब्रह्मचर्य-वास सफल हो गया, जो करना था सो कर लिया गया, अब बाद के लिये कुछ नहीं रहा" जान लिया। आयुष्मान् ब्रह्मदेव अर्हतों में एक हुये।

तब, आयुष्मान् ब्रह्मदेव सुबह में पहन और पात्रचीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिये पैठे। श्रावस्ती में बिना कोई घर छोड़े भिक्षाटन करते जहाँ अपनी माता का घर था वहाँ पहुँचे।

उस समय, आयुष्मान् ब्रह्मदेव की माता ब्राह्मणी प्रतिदिन ब्रह्मा को आहुति दे रही थी।

तब, सहम्पति ब्रह्मा के मन में यह हुआ—यह आयुष्मान् ब्रह्मदेव की माता ब्राह्मणी प्रतिदिन ब्रह्मा को आहुति दे रही है। तो, मैं चलकर उसे संवेग उत्पन्न कर दूँ।

तब, सहम्पति ब्रह्मा—जैसे कोई बलवान् पुरुष समेटी बाँह को पसार दे और पसारी बाँह को समेट ले वैसे ही—ब्रह्मलोक में अन्तर्धान हो आयुष्मान् ब्रह्मदेव की माता के घर के सामने प्रगट हुआ।

तब, सहम्पति ब्रह्मा आकाश में खड़ा हो, आयुष्मान् ब्रह्मदेव की माता ब्राह्मणी से गाथाओं में बोला—

हे ब्राह्मणि ! यहाँ से ब्रह्मलोक दूर है,
जिसके लिये प्रतिदिन आहुति दे रही हो,
हे ब्राह्मणि ! ब्रह्मा का तो यह भोजन भी नहीं है,
ब्रह्म-मार्ग को बिना जाने क्यों भटक रही है ॥
हे ब्राह्मणि ! यह तुम्हारा (पुत्र) ब्रह्मदेव,
उपाधियों से मुक्त, देवताओं से भी बढ़ा-चढ़ा,
अपनापन छूटा, भिक्षु, जो किसी दूसरे को नहीं पोसता,
तुम्हारे घर भिक्षा के लिये आया है ॥
सत्कार के योग्य, दुःख-मुक्त, भावितात्मा,
मनुष्य और देवताओं का पूजा-पात्र,
पापों को हटा, संसार से जो लिप्त नहीं होता,
शान्त हो भिक्षाटन कर रहा है ॥
न उसके कुछ पीछे है, और न कुछ आगे,
शान्त, बुझा हुआ, उपायास-रहित, इच्छा-रहित,
रागी और वीतराग सभी के प्रति जिसने दण्ड त्याग दिया है,
वही तुम्हारी आहुति अग्र-पिण्ड को भोग लगावे ॥
क्लेश-रहित®, जिसका चित्त ठंढा हो गया है,
दान्त नाग जैसा स्थिरता से चलनेवाला,
भिक्षु, सुशील, सुविमुक्त चित्त,
वही तुम्हारी आहुति अग्र-पिण्ड को भोग लगावे ॥
उसी के प्रति अटल श्रद्धा से,
दक्षिणा-पात्र के प्रति दक्षिणा का दान कर,
भविष्य में सुख देनेवाला पुण्य कर,
हे ब्राह्मणि ! भारा पार किये मुनि को देखकर ॥

× × ×

® विसेनिभूतो—क्लेश की सेना से विगत—अट्ठकथा।

उसी के प्रति अटल श्रद्धा से,
ब्राह्मणी ने दक्षिणा-पात्र के प्रति दक्षिणा का दान किया।
भविष्य में सुख देनेवाला पुण्य किया,
भवसागर पार किये मुनि को देखकर!

§ ४. बकब्रह्म सुत्त (६. १. ४)

बक ब्रह्मा का मान-मर्दन

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

उस समय बक ब्रह्मा को ऐसी पाप-दृष्टि उत्पन्न हुई थी—यह नित्य है, यह ध्रुव है, यह शाश्वत है, यह अखण्ड है, यह टूटनेवाला नहीं है, यहीं (=ब्रह्मलोक में बना रहता) न पैदा होता है, न पुराना होता है, न समाप्त होता है, न यहाँ से मरकर कहीं दूसरी जगह जन्म ग्रहण करता है, और इससे बढ़कर दूसरी मुक्ति भी नहीं है।

तब, भगवान् बक ब्रह्मा के मन की बात को अपने चित्त से जान,—जैसे कोई बलवान् पुरुष समेटी बाँह को पसार दे और पसारी बाँह को समेट ले वैसे ही—जेतवन में अन्तर्धान हो उस ब्रह्मलोक में प्रगट हुये।

बक ब्रह्मा ने भगवान् को दूर से ही आते देखा। देखकर भगवान् को यह कहा:—

मारिष! पधारें। मारिष! आपका स्वागत हो। मारिष! चिरकाल पर यहाँ पधारने की कृपा की है। मारिष! यह नित्य है···और इससे बढ़कर दूसरी मुक्ति भी नहीं है।

उसके ऐसा कहने पर भगवान् ने बक ब्रह्मा को यह कहा—

शोक है, बक ब्रह्मा अविद्या में पड़ गये हैं। शोक है, बक ब्रह्मा अविद्या में पड़ गये हैं। वे अनित्य रहते हुये भी उसे नित्य कह रहे हैं; अध्रुव रहते हुये भी उसे ध्रुव कह रहे हैं; अशाश्वत रहते हुये भी उसे शाश्वत कह रहे हैं; खण्डवाला होते हुये भी उसे अखण्ड कह रहे हैं; टूटनेवाला होते हुये भी उसे नहीं टूटनेवाला कह रहे हैं; जहाँ पैदा होता है···उसे कह रहे हैं यहाँ पैदा नहीं होता···। इससे बढ़कर भी शान्त मुक्ति (निर्वाण) के होते हुये कह रहे हैं कि इससे बढ़कर दूसरी मुक्ति नहीं है।

हे गौतम! हम बहत्तर (ब्रह्मा) अपने पुण्य-कर्म से,
बड़े अधिकारवाले जाति-जरा से छूटे हैं,
ब्रह्मलोक में उत्पन्न होना ही दुःखों से अन्तिम मुक्ति है;
हमें ही लोग (ईश्वर, कर्त्ता, निर्माता आदि नामों से*) पुकारते हैं।

[भगवान्—]

हे बक! इसकी आयु भी थोड़ी ही है, लम्बी नहीं,
जिस आयु को तुम लम्बी समझ रहे हो।
सैकड़ों, हजारों और करोड़ों वर्ष की,
हे ब्रह्मा! तुम्हारी आयु को मैं जानता हूँ॥
मैं अनन्तदर्शी भगवान् हूँ,
जाति, जरा और शोक से मैं ऊपर उठ गया हूँ।

* अट्ठकथा।

[बक ब्रह्मा—]

मेरा पहला शील और व्रत क्या था ?
आप कहें कि मैं जानूँ ॥

[भगवान्—]

जो तुमने बहुत मनुष्यों को पानी पिलाया था,
जो घाम में हैरान प्यासे थे,
वही पहले का तुम्हारा शील-व्रत था;
सोकर जागे के ऐसा मुझे याद है ॥
जो गंगा के किनारे धार में पकड़कर,
बहे जाते पुरुष को तुमने बचा दिया था,
वही पहले का तुम्हारा शील-व्रत था;
सोकर जागे के ऐसा मुझे याद है ॥
गंगा की धार में ले जायी जाती नाव को,
मनुष्य की लालच से बड़े सर्प-राज के द्वारा,
तुमने बल लगाकर छुड़ा दिया था,
वही पहले का तुम्हारा शील-व्रत था,
सोकर जागे के ऐसा मुझे याद है ॥
मैं कप्प नाम का तुम्हारा शिष्य था,
उसे बड़ा बुद्धिमान् समझा,
वही पहले का तुम्हारा शील-व्रत था,
सोकर जागे के ऐसा मुझे याद है ॥

[बक ब्रह्मा—]

अरे ! आप मेरी इस आयु को जानते हैं,
वैसे ही दूसरे अन्य बातों को भी जानते हैं,
सो यह आप का देदीप्यमान तेज,
ब्रह्मलोक को प्रकाश से भर दे रहा है ॥

§ ५. अपरादिट्ठि सुत्त (६. १. ५)

ब्रह्मा की बुरी दृष्टि का नाश

श्रावस्ती में।

उस समय किसी ब्रह्मा को ऐसी पाप-दृष्टि उत्पन्न हो गई थी—कोई ऐसा श्रमण या ब्राह्मण नहीं है जो यहाँ आ सके।

तब, भगवान्…[पूर्ववत्] उस ब्रह्मलोक में प्रगट हुये।

तब भगवान् उस ब्रह्मा के ऊपर आकाश में बलती आग जैसे पालथी लगाकर बैठ गये।

तब, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन के मन में यह हुआ—भगवान् इस समय कहाँ विहार करते हैं ?

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने अपने अलौकिक विशुद्ध दिव्य-चक्षु से भगवान् को उस ब्रह्मा के ऊपर आकाश में बलती आग जैसे पालथी लगाकर बैठे देखा। देखकर, …जेतवन में अन्तर्धान हो ब्रह्मलोक में प्रगट हुये।

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन उस ब्रह्मा के ऊपर आकाश में जलती आग जैसे पालथी लगा कर पूरब की ओर भगवान् से कुछ नीचे बैठ गये।

तब आयुष्मान् महाकाश्यप के मन में यह हुआ—भगवान् इस समय कहाँ विहार करते हैं ? [पूर्ववत्] ...तब आयुष्मान् महाकाश्यप...दक्खिन की ओर भगवान् से कुछ नीचे बैठ गये। ...[पूर्ववत्] तब, आयुष्मान् महाकप्पिन...पश्चिम की ओर भगवान् से कुछ नीचे बैठ गये। ···तब, आयुष्मान् अनुरुद्ध···उत्तर की ओर भगवान् से कुछ नीचे बैठ गये।

तब, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन उस ब्रह्मा से गाथा में बोले:—

आवुस ! आज भी तुम्हारी वही धारणा है,
जो झूठी धारणा पहले थी ?
देख रहे हो, सबसे बड़े-चढ़े
दिव्य लोक में इस महातेज को ?

[ब्रह्मा—]

मारिष ! आज मेरी वह धारणा नहीं है जो पहले थी,
देख रहा हूँ सबसे बड़े-चढ़े दिव्य लोक में इस महातेज को।
भला आज मैं यह कैसे कह सकता हूँ,
कि मैं नित्य और शाश्वत हूँ॥

तब, भगवान् उस ब्रह्मा को संवेग दिला···ब्रह्मलोक में अन्तर्धान हो जेतवन में प्रगट हुये।

तब, उस ब्रह्मा ने अपने एक साथी को आमन्त्रित किया—सुनो मारिष ! जहाँ आयुष्मान् महामौद्गल्यायन हैं वहाँ जाओ। जाकर, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन से यह कहो—मारिष मौद्गल्यायन ! क्या भगवान् के दूसरे भी श्रावक ऐसे ही ऋद्धिमान् और प्रतापी हैं जैसे आप मौद्गल्यायन, काश्यप, कप्पिन, अनुरुद्ध ?

"मारिष ! बहुत अच्छा" कह, वह साथी उस ब्रह्मा को उत्तर दे, जहाँ आयुष्मान् महामौद्गल्यायन थे वहाँ गया। जाकर, महामौद्गल्यायन से बोला—मारिष मौद्गल्यायन ! क्या भगवान् के दूसरे भी श्रावक ऐसे ही ऋद्धिमान् और प्रतापी हैं जैसे आप मौद्गल्यायन, काश्यप, कप्पिन या अनुरुद्ध ?

तब, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने उसे गाथा में उत्तर दिया—

तीन विद्याओं को जाननेवाले, ऋद्धि-प्राप्त,
चित्त की बातें जाननेवाले,
आश्रव-क्षीण, और अर्हत्
बुद्ध के बहुत श्रावक हैं॥

तब, वह आयुष्मान् महामौद्गल्यायन के कहे का अभिनन्दन और अनुमोदन कर जहाँ वह महा-ब्रह्मा था वहाँ गया। जाकर उस ब्रह्मा से बोला:—

आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने कहा कि—

तीन विद्याओं को जाननेवाले, ऋद्धि-प्राप्त,
चित्त की बातें जाननेवाले,
आश्रव-क्षीण, और अर्हत्
बुद्ध के बहुत श्रावक हैं॥

उसने यह कहा। सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा ने उसके कहे का अभिनन्दन किया।

§ ६. पमाद सुत्त (६. १. ६)

ब्रह्मा को संवेग करना

श्रावस्ती में।

उस समय भगवान् दिन के विहार के लिये ध्यान लगाये बैठे थे।

तब, सुब्रह्मा और शुद्धावास नाम के दो प्रत्येक ब्रह्मा जहाँ भगवान् थे वहाँ आये। आकर एक-एक किवाड़ के सहारे खड़े हो गये।

तब, सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा ने शुद्धावास प्रत्येक ब्रह्मा को यह कहा—मारिष! भगवान् के दर्शन करने का यह समय नहीं है; भगवान् दिन के विहार के लिये ध्यानस्थ हैं। हाँ, फलाना ब्रह्मलोक बड़ा ऋद्धिशाली और सुन्दर है। किन्तु वहाँ का ब्रह्मा प्रमाद-पूर्वक ही विहार करता है। आओ मारिष! जहाँ वह ब्रह्मलोक है वहाँ चलें। चलकर उस ब्रह्मा को संवेग दिलावें।

"मारिष! बहुत अच्छा" कह, शुद्धावास प्रत्येक ब्रह्मा ने सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा को उत्तर दिया।

तब, वे...भगवान् के सामने अन्तर्धान हो उस लोक में प्रगट हुये।

उस ब्रह्मा ने उन ब्रह्माओं को दूर ही से आते देखा। देख, उन ब्रह्माओं को यह कहा:—हे मारिषो! आप कहाँ से पधार रहे हैं?

मारिष! हम लोग उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् के पास से आ रहे हैं। मारिष! आप भी उन...भगवान् की सेवा को चलेंगे?

ऐसा कहने पर, वह ब्रह्मा उस प्रस्ताव का अनादर करते हुये, अपने को हजार गुना बड़ा रूप बना सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा से बोला:—मारिष! मेरी ऋद्धि के इस प्रताप को देखते हैं?

हाँ मारिष! आप की ऋद्धि के इस प्रताप को देखता हूँ।

मारिष! मैं ऐसा ऋद्धिमान् और प्रतापी होते हुये भी किसी दूसरे श्रमण या ब्राह्मण की सेवा को क्यों जाऊँ?

तब, सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा अपने को दो हजार गुना बड़ा रूप बना उस ब्रह्मा से बोला:—मारिष! मेरी ऋद्धि के इस प्रताप को देखते हैं?

हाँ मारिष! आपकी ऋद्धि के इस प्रताप को देखता हूँ।

मारिष! हम और आप से भगवान् ऋद्धि तथा प्रताप में बहुत बढ़े-चढ़े हैं। मारिष! आप उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् की सेवा को चलेंगे?

तब, उस ब्रह्मा ने सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा को गाथा में कहा:—

> तीन (सौ) गरुड़, चार (सौ) हंस,
> और पाँच सौ बाघिन से युक्त मुझ ध्यानी का,
> हे ब्रह्मा! यह विमान जलते के समान,
> उत्तर दिशा में चमक रहा है॥

[सुब्रह्मा—]

> आपका विमान कैसा भी क्यों न जले,
> उत्तर दिशा में चमकते हुये।
> रूप के सदैव विनश्वर स्वभाव को देख,
> उस कारण से पण्डित रूप में रमण नहीं करता॥

तब, सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा और शुद्धावास प्रत्येक ब्रह्मा उस ब्रह्मा को संवेग दिला वहीं अन्तर्धान हो गये।

वह ब्रह्मा दूसरे समय में उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् की सेवा को गया।

§ ७. कोकालिक सुत्त (६. १. ७)

कोकालिक के सम्बन्ध में

श्रावस्ती में।

उस समय, भगवान् दिन के विहार के लिये ध्यानस्थ बैठे थे।

तब, सुब्रह्मा और सुद्धावास नाम के दो प्रत्येक ब्रह्मा जहाँ भगवान् थे वहाँ आये। आकर, एक-एक किवाड़ से लग खड़े हो गये।

तब, सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा कोकालिक भिक्षु को उद्देश्य करके भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

> जिसका थाह नहीं है उसका भला, कौन पण्डितजन थाह लगाने की इच्छा करेगा।
> जिसका पार नहीं है उसका पार लगाने की कोशिश करनेवाले को,
> मैं मूढ़ और पृथक् जन समझता हूँ॥

§ ८. तिस्सक सुत्त (६. १. ८)

तिस्सक के सम्बन्ध में

श्रावस्ती में।

उस समय, भगवान् दिन के विहार के लिये ध्यानस्थ बैठे थे।

तब, सुब्रह्मा और सुद्धावास···एक-एक किवाड़ से लग खड़े हो गये।

तब, सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा कतमोरक-तिस्सक भिक्षु के विषय में भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला:—

> जिसका थाह नहीं है भला, कौन बुद्धिमान् उसका थाह लगाना चाहेगा?
> जिसका पार नहीं है उसका पार लगाने की कोशिश करनेवाले को,
> मैं मूढ़ और प्रज्ञा-विहीन समझता हूँ॥

§ ९. तुदुब्रह्म सुत्त (६. १. ९)

कोकालिक को समझाना

श्रावस्ती में।

तब, तुदु प्रत्येक ब्रह्मा रात बीतने पर अपनी चमक से सारे जेतवन को चमकाते हुये जहाँ कोकालिक भिक्षु था वहाँ आया। आकर आकाश में खड़ा हो कोकालिक भिक्षु से बोला—हे कोकालिक! सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के प्रति चित्त में श्रद्धा लाओ। सारिपुत्र और मौद्गल्यायन बड़े अच्छे भिक्षु हैं।

> आवुस! तुम कौन हो?
> मैं तुदु प्रत्येक ब्रह्मा हूँ।

आवुस! क्या भगवान् ने तुमको अनागामी होना नहीं बताया था! तब, यहाँ कैसे आये? देखो, तुम्हारा यह कितना अपराध है?

> पुरुष के जन्म के साथ ही साथ, उसके मुँह में एक कुठार पैदा होता है।
> उससे अपने ही को काटा करता है, मूर्ख बुरी बातें बोलते हुये॥
> जो निन्दनीय की प्रशंसा करता है,

या उसकी निन्दा करता है जो प्रशंसा-पात्र है,
मुँह से वह पाप कमाता है,
उस पाप के कारण उसे कभी सुख नहीं मिलता ॥
वह दुर्भाग्य छोटा है,
जो जूए में अपना धन खो बैठे,
अपने और अपने सब कुछ के साथ :
सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह है
जो बुद्ध के प्रति कोई अपराध लगावे ॥
सौ, हजार निरर्बुद,
छत्तिस और पाँच अर्बुद तक,
आर्य पुरुष की निन्दा करने वाला नरक में पकता है,
वचन और मन को पाप में लगा ॥

§ १०. कोकालिक सुत्त (६. १. १०)

कोकालिक द्वारा अग्रश्रावकों की निन्दा

श्रावस्ती में।

तब, कोकालिक भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ कोकालिक भिक्षु ने भगवान् को कहा—भन्ते ! सारिपुत्र और मौद्गल्यायन पापेच्छ हैं, पाप-पूर्ण इच्छाओं के वश में पड़े हैं।

इस पर भगवान् ने कोकालिक भिक्षु को कहा—ऐसी बात मत कहना कोकालिक ! ऐसी बात मत कहना कोकालिक ! कोकालिक ! सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के प्रति मन में श्रद्धा लाओ। सारिपुत्र और मौद्गल्यायन बड़े अच्छे हैं।

दूसरी बार भी कोकालिक भिक्षु ने भगवान् को कहा—भन्ते ! भगवान् के प्रति मुझे बड़ी श्रद्धा और बड़ा विश्वास है, किन्तु, सारिपुत्र और मौद्गल्यायन पापेच्छ हैं, पाप-पूर्ण इच्छाओं के वश में पड़े हैं।

दूसरी बार भी भगवान् ने कोकालिक भिक्षु को कहा—···सारिपुत्र और मौद्गल्यायन बड़े अच्छे हैं।

तीसरी बार भी···।

तब, कोकालिक भिक्षु आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम् और प्रदक्षिणा करके चला गया।

वहाँ से जाने के बाद ही, कोकालिक भिक्षु के सारे शरीर में सरसों भर के फोड़े उठ आये।

सरसों भर के हो मूँग भर के हो गये, मटर भर के हो गये, कोलट्ठि भर के हो गये, बैर भर के हो गये, आँवला भर के हो गये, छोटे बेल भर के हो गये, बेल भर के हो गये, बेल भर के हो फूट गये—पीब और लहू की धार चलने लगी।

उसी से कोकालिक भिक्षु की मृत्यु हो गई। मर कर कोकालिक भिक्षु पद्म नामक नरक में उत्पन्न हुआ—सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के प्रति बुरे भाव मन में लाने के कारण।

तब, सहम्पति ब्रह्मा रात बीतने पर अपनी चमक से सारे जेतवन को चमका जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया।

एक ओर खड़ा हो, सहम्पति ब्रह्मा ने भगवान् को यह कहा—भन्ते ! कोकालिक भिक्षु की मृत्यु हो गई। भन्ते ! सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के प्रति मन में बुरे भाव लाने के कारण कोकालिक भिक्षु मर कर पद्म नरक में उत्पन्न हुआ है।

सहम्पति ब्रह्मा ने यह कहा। यह कह, भगवान् को अभिवादन और प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया।

उस रात के बीतने पर भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ! इस रात को सहम्पति ब्रह्मा···।···मुझे अभिवादन और प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया।

तब, किसी भिक्षु ने भगवान् को यह कहा—भन्ते! पद्म नरक में कितनी लम्बी आयु होती है?

भिक्षु! पद्म नरक की आयु बड़ी लम्बी होती है; यह कहा नहीं जा सकता है कि इतने साल, या इतने सौ साल, या इतने हजार साल, या इतने लाख साल।

भन्ते! उसकी कोई उपमा की जा सकती है?

भगवान् बोले—की जा सकती है।

भिक्षु! कोशल के नाप से बीस खारी तिल का कोई भार हो। तब, कोई पुरुष सौ साल हजार साल पर उसमें से एक-एक तिल का दाना निकाल ले। भिक्षु! तो कोशल के नाप से बीस खारी तिल का वह भार इस क्रम से जल्दी घट कर खतम हो जायगा; उतने से भी एक अब्बुद नरक नहीं होता है। भिक्षु! बीस अब्बुद नरक का एक निरब्बुद नरक होता है। बीस निरब्बुद नरक का एक अबब नरक होता है। बीस अबब नरक का एक अटट नरक होता है। बीस अटट नरक का एक अहह नरक होता है। बीस अहह नरक का एक कुमुद नरक होता है। बीस कुमुद नरक का एक सौगन्धिक नरक होता है। बीस सौगन्धिक नरक का एक उत्पल नरक होता है। बीस उत्पल नरक का एक पुण्डरीक नरक होता है। बीस पुण्डरीक नरक का एक पद्म नरक होता है।—हे भिक्षु! इसी पद्म नरक में कोकालिक उत्पन्न हुआ है···।

भगवान् ने यह कहा। इतना कहकर बुद्ध और भी बोले:—

पुरुष के जन्म के साथ ही साथ,
उसके मुँह में एक कुठार पैदा होता है।
उससे अपने ही को काटा करता है,
मूर्ख बुरी बातें बोलते हुये॥
जो निन्दनीय की प्रशंसा करता है,
या उसकी निन्दा करता है जो प्रशंसा-पात्र है,
मुँह से वह पाप कमाता है;
उस पाप से उसे कभी सुख नहीं मिलता॥
यह दुर्भाग्य कम है,
जो जुए में अपना धन हार जाय,
अपने और अपने सब कुछ के साथ:
सब से बड़ा दुर्भाग्य तो यह है
जो बुद्ध के प्रति कोई अपराध लगावे॥
सौ, हजार, निरर्बुद,
छत्तिस और पाँच अर्बुद तक,
आर्य पुरुष की निन्दा करने वाला,
वचन और मन को पाप में लगा॥

प्रथम वर्ग समाप्त।

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग (पञ्चक)

१. सनंकुमार सुत्त (६. २. १.)

बुद्ध सर्वश्रेष्ठ

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह में सर्पिणी नदी के तीर पर विहार करते थे ।

तब, ब्रह्मा सनत्कुमार रात बीतने पर··· एक ओर खड़ा हो, ब्रह्मा सनत्कुमार ने भगवान् के गाथा में कहा—

> मनुष्यों में क्षत्रिय श्रेष्ठ है,
> जात-पात के विचार करने वालों के लिये :
> विद्या और आचरण से सम्पन्न (बुद्ध),
> देवता और मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं ॥

ब्रह्मा सनत्कुमार ने यह कहा । बुद्ध भी इससे सहमत रहे ।

तब, ब्रह्मा सनत्कुमार 'बुद्ध हमसे सहमत हैं' जान, भगवान् को अभिवादन और प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया ।

§ २. देवदत्त सुत्त (६. २. २)

सत्कार से खोटे पुरुष का विनाश

एक समय, भगवान् देवदत्त के तुरत ही जाने के बाद राजगृह के गृद्धकूट पर्वत पर विहार करते थे ।

तब, सहम्पति ब्रह्मा रात बीतने पर···भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया ।

एक ओर खड़ा हो, सहम्पति ब्रह्मा देवदत्त के विषय में भगवान् के सामने यह गाथा बोला:—

> केला का अपना फल ही केले के वृक्ष को नष्ट कर देता है,
> अपना ही फल वेणु को, और नरकट को भी ।
> अपना सत्कार खोटे पुरुष को नष्ट कर देता है,
> जैसे खच्चरी को अपना गर्भ ॥

§ ३. अन्धकविन्द सुत्त (६. २. ३)

संघ-वास का महात्म्य

एक समय भगवान् मगध में अन्धकविन्द में विहार करते थे ।

उस समय, भगवान् रात की काली अँधियारी में खुले मैदान में बैठे थे । रिमझिम वर्षा भी पड़ रहा था ।

तब, सहम्पति ब्रह्मा रात बीतने पर···भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़ा हो, सहम्पति ब्रह्मा भगवान् के सामने यह गाथा बोला:—

दूर, एकान्त स्थान में वास करे।
बन्धनों से मुक्त जीवन बितावे;
यदि वहाँ उसका मन न लगे,
तो संघ में मिल, संयत और स्मृतिमान् होकर रहे।
घर-घर भिक्षाटन करते हुये,
संयतेन्द्रिय, ज्ञानी, स्मृतिमान्,
दूर एकान्त स्थान में वास करे,
भय से छूट, निर्भय, विमुक्त॥
जहाँ भयानक साँप बिच्छू हों,
बिजली कड़कती हो, मेघ गड़गड़ाता हो,
काली अँधियारी वाली रात :
वैसे स्थान में शान्तचित्त भिक्षु बैठता है॥
इसे ठीक में मैंने आँखों देखा है,
लोगों की यह केवल कहावत नहीं है;
एक ही ब्रह्मचर्य में,
हजार ने मृत्यु को जीत लिया॥
पाँच सौ शैक्ष्यों से अधिक,
और दस-दस बार सौ,
सभी स्रोत-आपन्न,
तिरश्चीन योनि में जो नहीं पड़ सकते॥
और जो दूसरे बाकी बचे हैं,
जिन्हें मैं बड़ा पुण्यवान् जानता हूँ,
उनकी गिनती भी नहीं कर सकता,
झूठ कहा जाने के डर से॥

§ ४. अरुणवती सुत्त (६. २. ४)

अभिभू का ऋद्धि-प्रदर्शन

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में···विहार करते थे। तब, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—"हे भिक्षुओ!" "भदन्त!" कह कर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ! पूर्व काल में अरुणवान् नाम का एक राजा था। अरुणवान् राजा की राजधानी का नाम अरुणवती था। भिक्षुओ! अरुणवती राजधानी से लगे अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् शिखी विहार करते थे।

भिक्षुओ! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् शिखी को अभिभू और सम्भव नाम के दो श्रेष्ठ अग्र-श्रावक थे।

भिक्षुओ! तब, भगवान् शिखी ने अभिभू भिक्षु को आमन्त्रित किया—आओ ब्राह्मण! जहाँ एक ब्रह्मलोक है वहाँ चलें, जब तक भोजन का समय भी होगा।

भिक्षुओ ! तब, "भन्ते ! बहुत अच्छा" कह अभिभू भिक्षु ने भगवान् शिखी को उत्तर दिया।

भिक्षुओ ! तब, भगवान् शिखी और अभिभू भिक्षु···अरुणवती राजधानी में अन्तर्धान हो ब्रह्मलोक में प्रगट हुये।

भिक्षुओ ! तब, भगवान् शिखी ने अभिभू भिक्षु को आमन्त्रित किया—हे ब्राह्मण ! इस ब्रह्मसभा में ब्रह्मा और ब्रह्मसभासदों को धर्मोपदेश करो।

भिक्षुओ ! 'भन्ते, बहुत अच्छा' कह, अभिभू भिक्षु ने भगवान् शिखी को उत्तर दे, ब्रह्मसभा में बैठे ब्रह्मा और ब्रह्मसभासदों को धर्मोपदेश कर दिखा दिया, बतला दिया, उत्तेजित और उत्साहित कर दिया।

भिक्षुओ ! किन्तु, ब्रह्मा और ब्रह्मसभासद चिढ़ गये और बुरा मानने लगे—भला यह कैसी बात है कि गुरु बुद्ध के उपस्थित रहते एक शिष्य धर्मोपदेश करे !

भिक्षुओ ! तब, भगवान् शिखी ने अभिभू भिक्षु को आमन्त्रित किया—हे ब्राह्मण ! ब्रह्मा और ब्रह्मसभासद चिढ़ गये और बुरा मानते हैं—भला यह कैसी बात है कि गुरु बुद्ध के उपस्थित रहते एक शिष्य धर्मोपदेश करे ! तो इन्हें जरा अच्छी तरह संवेग दिला दो।

भिक्षुओ ! 'भन्ते, बहुत अच्छा' कह, अभिभू भिक्षु भगवान् शिखी को उत्तर दे, दृश्यमान शरीर से भी धर्मोपदेश करने लगा, अदृश्यमान शरीर से भी···, नीचे के आधे शरीर को दृश्यमान करने पर भी···ऊपर के आधे शरीर को दृश्यमान करने पर भी···

भिक्षुओ ! तब, ब्रह्मा और ब्रह्मसभासद सभी आश्चर्य तथा अद्भुत से भर गये—आश्चर्य है, अद्भुत है ! श्रमण के ऋद्धि-बल और प्रताप !!

तब, अभिभू भिक्षु भगवान् शिखी से बोला—भन्ते ! इस ब्रह्मलोक में रह, जैसे भिक्षु संघ में कह रहा हूँ वैसे ही दस हजार लोकों को अपना स्वर सुना सकता हूँ।

ब्राह्मण ! हाँ, यही मौका है। बस, यही मौका है कि तुम ब्रह्मलोक में रह हजार लोकों में अपनी बात सुनाओ।

भिक्षुओ ! 'भन्ते, बहुत अच्छा' कह, अभिभू भिक्षु ने भगवान् शिखी को उत्तर दे ब्रह्मलोक में खड़े-खड़े इन गाथाओं को कहा—

> उत्साह करो, घर छोड़ कर निकल जाओ,
> बुद्ध के शासन में लग जाओ,
> मृत्यु की सेना को तितर बितर कर दो,
> जैसे हाथी फूस की झोपड़ी को ॥
> जो इस धर्म विनय में प्रमाद-रहित हो विहार करेगा,
> वह संसार में आवागमन को छोड़ दुःखों का अन्त कर देगा ॥

भिक्षुओ ! तब भगवान् शिखी और अभिभू भिक्षु ब्रह्मा और ब्रह्मसभासदों को संवेग दिला··· ब्रह्मलोक में अन्तर्धान हो अरुणवती में प्रगट हुये।

भिक्षुओ ! तब, भगवान् शिखी ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! ब्रह्मलोक से बोलते अभिभू भिक्षु की गाथाओं को तुम ने सुना ?

हाँ भन्ते ! ब्रह्मलोक से बोलते अभिभू भिक्षु की गाथाओं को हमने सुना।

भिक्षुओ ! ब्रह्मलोक से बोलते अभिभू भिक्षु की गाथाओं को जो सुना उन्हें कहो।

भन्ते ! यह सुनाः—

> उत्साह करो, घर छोड़ कर निकल जाओ,
> बुद्ध के शासन में लग जाओ,

मृत्यु की सेना को तितर-बितर कर दो।
जैसे हाथी फूस की झोंपड़ी को ॥…

भिक्षुओ ! ठीक कहा, ठीक कहा ! तुमने ब्रह्मलोक से बोलते अभिभू भिक्षु की गाथाओं को ठीक में सुना।

भगवान् ने यह कहा। संतुष्ट होकर भिक्षुओं ने भगवान् के कहे का अभिनन्दन किया।

§ ५. परिनिब्बान सुत्त (६. २. ५)

महापरिनिर्वाण

एक समय, भगवान् अपने परिनिर्वाण के समय कुशीनारा में मल्लों के शालवन उपवत्तन में दो शाल वृक्षों के बीच विहार करते थे।

तब, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! मैं तुम्हें कह रहा हूँ, "सभी संस्कार नश्वर हैं, अप्रमाद के साथ जीवन के लक्ष्य का सम्पादन करो।" यही बुद्ध का अन्तिम उपदेश है।

तब, भगवान् प्रथम ध्यान में लीन हो गये। प्रथम ध्यान छोड़कर द्वितीय ध्यान में लीन हो गये।…तृतीय, चतुर्थ…ध्यान में लीन हो गये। चतुर्थ ध्यान छोड़कर, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन में लीन हो गये।

नैवसंज्ञानासंज्ञायतन छोड़ आकिंचन्यायतन में लीन हो गये। [क्रमशः]…द्वितीय ध्यान को छोड़ प्रथम ध्यान में लीन हो गये।

प्रथम ध्यान छोड़ द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ ध्यान में लीन हो गये। चतुर्थ ध्यान से उठते ही भगवान् परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये।

भगवान् के परिनिर्वाण को प्राप्त होते ही सहम्पति ब्रह्मा यह गाथायें बोले:—

संसार के सभी जीव एक न एक समय विदा होंगे ही,
किन्तु लोक में जो ऐसे बेजोड़ बुद्ध हैं,
तथागत, बलप्राप्त, और सम्बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये ॥

भगवान् के परिनिर्वाण को प्राप्त होते ही देवेन्द्र शक्र यह गाथा बोले:—

सभी संस्कार अनित्य हैं,
उत्पन्न होना और पुराना हो जाना उनका स्वभाव है,
उत्पन्न होकर निरुद्ध हो जाते हैं,
उनका बिल्कुल शान्त हो जाना ही सुख है ॥

भगवान् के परिनिर्वाण को प्राप्त होते ही आयुष्मान् आनन्द यह गाथा बोले:—

वह समय बड़ा घोर था, रोमांचित कर देनेवाला था,
सभी प्रकार से श्रेष्ठ बुद्ध के परिनिर्वाण को प्राप्त होते ॥

भगवान् के परिनिर्वाण को प्राप्त होते ही आयुष्मान् अनुरुद्ध यह गाथा बोले:—

उन स्थिर-चित्त के समान किसी का जीवन-धारण नहीं था,
अचल परम शान्ति पाने के लिये,
परम बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये ॥
निर्विकार चित्त से वेदनाओं का अन्त कर दिया,
जैसे प्रदीप बुझ जाता है,
वैसे ही उनके चित्त की विमुक्ति हो गई ॥

ब्रह्म-संयुत्त समाप्त।

सातवाँ परिच्छेद

७. ब्राह्मण-संयुत्त

पहला भाग

अर्हत्-वर्ग

§ १. धनञ्जानि सुत्त (७. १. १)

क्रोध का नाश करे

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे।

उस समय, किसी भारद्वाज गोत्र के ब्राह्मण की धनञ्जानि नाम की ब्राह्मणी बुद्ध, धर्म और संघ के प्रति बड़ी श्रद्धावती थी।

तब, धनञ्जानि ब्राह्मणी ने भारद्वाज गोत्र ब्राह्मण के लिये भोजन परोसती हुई आकर तीन बार उदान के शब्द कहे—उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् को नमस्कार हो···।

इस पर, ब्राह्मण ने ब्राह्मणी को कहा—तू ऐसी चण्डालिन औरत है कि जैसे-तैसे मथमुंडे श्रमण के गुण गाती रहती है। रे पापिन् ! तुम्हारे गुरु की मैं बातें बताऊँ !

ब्राह्मण ! देवताओं के साथ, मार के साथ, ब्रह्मा के साथ इस सारे लोक में, किसी भी श्रमण, ब्राह्मण, देव या मनुष्य, को मैं ऐसा नहीं देखती हूँ जो उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् पर दोष लगा सके। ब्राह्मण ! तुम क्या ? चाहो तो उनके पास जाओ, जाकर देख लो।

तब, भारद्वाज गोत्र का ब्राह्मण क्रुद्ध और चिढ़ा हुआ जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर भगवान् का सम्मोदन किया। आवभगत और कुशल-क्षेम के प्रश्न पूछकर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, ब्राह्मण भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोलाः—

किस का नाश कर सुख से सोता है ?
किस का नाश कर शोक नहीं करता ?
किस एक धर्म का,
बध करना, हे गौतम ! आप को रुचता है ?

[भगवान्—]

क्रोध का नाश कर सुख से सोता है,
क्रोध का नाश कर शोक नहीं करता,
विष के मूल स्वरूप क्रोध का,
हे ब्राह्मण ! जो पहले बड़ा अच्छा लगता है,
बध करना उत्तम पुरुषों से प्रशंसित है,
उसी का नाश करके शोक नहीं करता॥

भगवान् के ऐसा कहने पर ब्राह्मण ने कहा—धन्य हो गौतम ! धन्य हो ! हे गौतम ! जैसे उलटे को सल्टा दे, ढँके को उघार दे, भटके को राह बता दे, अन्धकार में तेल-प्रदीप जला दे कि आँखवाले रूपों को देख लें; वैसे ही आप गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म का उपदेश किया। यह मैं आप गौतम की शरण में जाता हूँ, धर्म की और भिक्षु-संघ की। मैं आप गौतम के पास प्रव्रज्या पाऊँ, उपसम्पदा पाऊँ।

भारद्वाज गोत्र के ब्राह्मण ने भगवान् के पास प्रव्रज्या पाई और उपसम्पदा भी पाई।

उपसम्पन्न होने के कुछ ही बाद, आयुष्मान् भारद्वाज ने एकान्त में अप्रमत्त, आतापी और प्रहितात्म हो विहार करते हुये शीघ्र ही उस ब्रह्मचर्य-वास के अन्तिम फल (=निर्वाण) को देखते ही देखते जानकर प्राप्त कर लिया, जिसके लिये कुलपुत्र श्रद्धा-पूर्वक घर से बेघर होकर ठीक से प्रव्रजित होते हैं। "जाति क्षीण हो गई, ब्रह्मचर्य-वास पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया गया, अब कुछ और आगे के लिये बाकी नहीं है"—ऐसा जान लिया।

§ २. अक्कोस सुत्त (७. १. २)

गालियों का दान

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे।

खोटा-मुँह भारद्वाज ब्राह्मण ने सुना कि भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण श्रमण गौतम के पास घर से बेघर हो प्रव्रजित हो गया है। क्रुद्ध और खिन्न हो जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर खोटी-खोटी बातें कहते हुये भगवान् को फटकार बताने और गालियाँ देने लगा।

उसके ऐसा कहने पर, भगवान् उस खोटा-मुँह भारद्वाज ब्राह्मण से बोले। ब्राह्मण ! क्या तुम्हारे यहाँ कोई दोस्त मुहीब या बन्धु-बान्धव पहुना आते हैं या नहीं ?

हाँ गौतम ! कभी-कभी मेरे दोस्त मुहीब या बन्धु-बान्धव मेरे यहाँ पहुना आते हैं।

ब्राह्मण ! क्या तुम उनके लिये खाने-पीने की चीजें भी तैयार करवाते हो ?

हाँ गौतम ! कभी-कभी उनके लिये खाने-पीने की चीजें भी मैं तैयार करवाता हूँ।

ब्राह्मण ! यदि वे किसी कारण से उन चीजों का उपयोग नहीं कर सकते हैं तो चीजें किसको मिलती हैं ?

गौतम ! यदि वे उन चीजों का उपयोग नहीं कर पाते हैं, तो वह चीजें मुझ ही को मिलती हैं।

ब्राह्मण ! इसी तरह, जो तुम कभी भी खोटी बातें न कहनेवाले मुझ को खोटी बातें कह रहे हो; कभी भी क्रुद्ध नहीं होनेवाले मुझ पर क्रुद्ध हो रहे हो; कभी किसी को कुछ ऊँचा-नीचा न कहनेवाले मुझको ऊँचा-नीचा कह रहे हो—उसे मैं स्वीकार नहीं करता। तो ब्राह्मण ! यह बातें तुम ही को मिल रही हैं; तुम ही को मिल रही हैं।

ब्राह्मण ! जो खोटी बातें कहनेवाले को खोटी बातें कहता है, क्रुद्ध होनेवाले पर क्रुद्ध होता है, ऊँचा-नीचा कहनेवाले को ऊँचा-नीचा कहता है—वह आपस का खिलाना-पिलाना कहा जाता है। मैं तुम्हारे साथ आपस का खिलाना-पिलाना नहीं करता। तुम्हारे दिये का मैं उपयोग ही नहीं करता। तो ब्राह्मण ! यह बातें तुम ही को मिल रही हैं, तुम ही को मिल रही हैं।

आप गौतम को तो राजा की सभा तक जानती है—श्रमण गौतम अर्हत् हैं। तब, आप गौतम कैसे क्रोध कर सकते हैं ?

[भगवान्—]

> क्रोध-रहित को क्रोध कैसा, (उसे) जो ऊँचा-नीचा के भाव से परे है,
> दान्त, परम-ज्ञानी, विमुक्त और जिनका चित्त बिल्कुल शान्त हो गया है ॥

उससे उसी की बुराई होती है, जो बदले में क्रोध करता है,
क्रुद्ध के प्रति क्रोध नहीं करनेवाला, अजेय संग्राम जीत लेता है ॥
दोनों को लाभ पहुँचाता है, अपने को भी और दूसरे को भी,
दूसरे को गुस्साया जान जो सावधान होकर शान्त रहता है ॥
दोनों की इलाज करनेवाले उसे, अपनी भी और दूसरे की भी,
लोग 'बेवकूफ' समझते हैं, जिन्हें धर्म का कुछ ज्ञान नहीं ॥

इतना कहने पर, क्रोधी-मुँह भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से बोला—धन्य हैं आप गौतम ! धन्य हैं !

···[पूर्ववत्]। आयुष्मान् भारद्वाज अर्हतों में एक हुये।

§ ३. असुरिन्द सुत्त (७. १. ३)

सह लेना उत्तम है

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे।

असुरेन्द्रक-भारद्वाज ब्राह्मण ने सुना—भारद्वाज-गोत्र ब्राह्मण श्रमण गौतम के पास घर से बेघर हो प्रव्रजित हो गया है। क्रुद्ध और खिन्न होकर वह जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर, खोटी-खोटी बातें कहते हुये भगवान् को फटकार बताने और गालियाँ देने लगा।

उसके ऐसा कहने पर भगवान् चुप रहे।

तब, असुरेन्द्रक-भारद्वाज ब्राह्मण बोल उठा—श्रमण ! तुम्हारी जीत हो गई !! तुम्हारी जीत हो गई !!

[भगवान्—]

मूर्ख अपनी जीत समझ लेता है, मुँह से कठोर बातें कहते हुये,
जीत तो उसी की होती है जो ज्ञानी चुपचाप सह लेता है ॥
उससे उसी की बुराई होती है जो बदले में क्रोध करता है,
क्रुद्ध के प्रति क्रोध नहीं करनेवाला अजेय संग्राम जीत लेता है ॥
दोनों को लाभ पहुँचाता है, अपने को भी और दूसरे को भी,
दूसरे को गुस्साया जान जो सावधान होकर शान्त रहता है ॥
दोनों की इलाज करने वाले उसे, अपनी भी और दूसरे की भी,
लोग "बेवकूफ" समझते हैं, जिन्हें धर्म का कुछ ज्ञान नहीं ॥

भगवान् के ऐसा कहने पर असुरेन्द्रक-भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से बोला—धन्य हैं आप गौतम ! धन्य हैं !!

···[पूर्ववत्]। आयुष्मान् भारद्वाज अर्हतों में एक हुये।

§ ४. बिलङ्गिक सुत्त (७. १. ४)

निर्दोषी को दोष नहीं लगता

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दक-निवाप में विहार करते थे।

बिलङ्गिक-भारद्वाज ब्राह्मण ने सुना—भारद्वाज-गोत्र ब्राह्मण श्रमण गौतम के पास घर से बेघर हो प्रव्रजित हो गया है।

क्रुद्ध और खिन्न होकर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर चुपचाप एक ओर खड़ा हो गया।
तब भगवान् बिलङ्गिक-भारद्वाज के वितर्क को अपने चित्त से जान उसे गाथा में बोले—

> जिसमें कुछ बुराई नहीं है,
> जो शुद्ध और पाप से रहित है,
> उस पुरुष की जो बुराई करता है;
> वह बुराई उसी मूर्ख पर लौट पड़ती है,
> उलटी हवा फेंकी गई जैसे पतली धूल ॥

···[पूर्ववत्]। आयुष्मान् भारद्वाज अर्हतों में एक हुये।

§ ५. अहिंसक सुत्त (७. १. ५)

अहिंसक कौन ?

श्रावस्ती में।

तब, अहिंसक-भारद्वाज ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर भगवान् का सम्मोदन किया; आवभगत और कुशल-क्षेम के प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, अहिंसक-भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से बोला—हे गौतम ! मैं अहिंसक हूँ। हे गौतम ! मैं अहिंसक हूँ।

[भगवान्—]

> जैसा नाम है वैसा ही होवो, तुम सच में अहिंसक ही होवो,
> जो शरीर से, वचन से, और मन से हिंसा नहीं करता,
> वही सच में अहिंसक होता है, जो पराये को कभी नहीं सताता ॥

भगवान् के ऐसा कहने पर अहिंसक भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से बोला—धन्य हैं आप गौतम ! धन्य हैं !

···आयुष्मान् भारद्वाज अर्हतों में एक हुये।

§ ६. जटा सुत्त (७. १. ६)

जटा को सुलझाने वाला

श्रावस्ती में।

तब, जटा-भारद्वाज ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर भगवान् का सम्मोदन किया; आवभगत और कुशल-क्षेम के प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, जटा-भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से गाथा में बोला—

> भीतर में जटा है, बाहर में भी जटा लगी है,
> जटा में सारे प्राणी उलझे हुये हैं,
> सो मैं आप गौतम से पूछता हूँ,
> कौन भला, इस जटा को सुलझा सकता है ?

[भगवान्—]

> प्रज्ञावान् नर शील पर प्रतिष्ठित हो,
> चित्त और प्रज्ञा की भावना करते हुये,

क्लेशों को तपानेवाला बुद्धिमान् भिक्षु,
वही इस जटा को सुलझा सकता है ॥
जिसने राग-द्वेष और अविद्या को हटा दिया है,
जिनके आश्रव क्षीण हो गये हैं, अर्हन्;
उनकी जटा सुलझ चुकी है ॥
जहाँ नाम और रूप बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं,
प्रतिघ और रूप-संज्ञा भी,
वहीं जटा कट जाती है ॥

भगवान् के ऐसा कहने पर जटा-भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से बोला—धन्य हैं आप गौतम ! धन्य हैं !!

…आयुष्मान् भारद्वाज अर्हतों में एक हुये ।

§ ७. सुद्धिक सुत्त (७. १. ७)

कौन शुद्ध होता ?

श्रावस्ती में ।

…एक ओर बैठ, शुद्धिक-भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् के पास यह गाथा बोला—

संसार में कोई ब्राह्मण शुद्ध नहीं होता है,
बड़ा शीलवान् हो तप करते हुये;
जो विद्या और आचरण से युक्त है वही शुद्ध होता है,
और कोई दूसरे लोग नहीं ॥

[भगवान्—]

बड़ा बोलनेवाला कोई जाति से ब्राह्मण नहीं होता है,
(वह) जिसका मन बिल्कुल मैला है, ढोंगी, चालबाज ॥
क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चण्डाल, पुक्कुस,
उत्साही आत्म-संयमी तथा सदा उद्यम में तत्पर रह,
परम शुद्धि को पा लेता है; हे ब्राह्मण ! ऐसा जानो ॥

…[पूर्ववत्—]। आयुष्मान् भारद्वाज अर्हतों में एक हुये ।

§ ८. अग्गिक सुत्त (७. १. ८)

ब्राह्मण कौन ?

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे ।

उस समय अग्गिक-भारद्वाज ब्राह्मण के यहाँ घी के साथ खीर तैयार थी—अग्नि-हवन करने के निमित्त ।

तब, भगवान् सुबह में पहन और पात्र चीवर ले राजगृह में भिक्षाटन के लिये पैठे । राजगृह में घर-घर भिक्षाटन करते क्रमशः जहाँ अग्गिक भारद्वाज ब्राह्मण का घर था वहाँ पहुँचे । पहुँचकर एक ओर खड़े हो गये ।

अग्गिक-भारद्वाज ने भगवान् को भिक्षाटन करते देखा । देखकर भगवान् को गाथा में कहा:—

(जो) तीन वेदों को जाननेवाला, ऊँची जाति का, बड़ा विद्वान्,
तथा विद्या और आचरण से सम्पन्न हो वही इस खीर को खाय ॥

[भगवान्—]

बड़ा बोलनेवाला कोई जाति से ब्राह्मण नहीं होता है,
वह जिसका मन बिल्कुल मैला है, ढोंगी, चालबाज ॥
जो पूर्व-जन्म की बातों को जानता है, स्वर्ग और अपाय को देखता है,
जो आवागमन से छूट गया है, परम-ज्ञानी, मुनि,
इन तीन को जानने के कारण वह ब्राह्मण त्रैविद्य होता है,
विद्या और आचरण से सम्पन्न, वही इस खीर का भोग करे ॥

हे गौतम ! आप भोग लगावें। आप गौतम ब्राह्मण हैं।

[भगवान्—]

धर्मोपदेश करने पर मिला भोजन मुझे स्वीकार नहीं,
हे ब्राह्मण ! ज्ञानियों का यह धर्म नहीं,
बुद्ध धर्मोपदेश के लिये दिये गये को स्वीकार नहीं करते,
ब्राह्मण ! धर्म के रहने पर यही बात होती है ॥
दूसरे अन्न और पान से,
केवली, महर्षि, क्षीणाश्रव,
परम शुद्ध हुये की सेवा करोः
पुण्यार्थी तुम्हारा पुण्य बढ़े ॥

···आयुष्मान् भारद्वाज अर्हतों में एक हुये।

§ ९. सुन्दरिक सुत्त (७. १. ९)

दक्षिणा के योग्य पुरुष

एक समय भगवान् कोशल में सुन्दरिका नदी के तीर पर विहार करते थे।

उस समय सुन्दरिक-भारद्वाज ब्राह्मण सुन्दरिका नदी के तीर पर अग्नि-हवन कर हुतावशेष की परिचर्या कर रहा था।

तब, सुन्दरिक-भारद्वाज···उठ चारों ओर देखने लगा—कौन इस हव्यावशेष को भोग लगावे ?

सुन्दरिक भारद्वाज ने एक वृक्ष के नीचे भगवान् को शिर ढके बैठा देखा। देखकर बायें हाथ से हव्यशेष को और दाहिने हाथ से कमण्डलु को ले जहाँ भगवान् थे वहाँ आया।

तब सुन्दरिक-भारद्वाज के आने की आहट पा भगवान् ने शिर पर से चीवर उतार लिया।

तब, सुन्दरिक भारद्वाज "अरे ! यह मथमुंडा है !! अरे ! यह मथमुंडा है !!" कहता उलटे पाँव लौट जाना चाहा।

तब, सुन्दरिक भारद्वाज के मन में यह हुआ—कितने ब्राह्मण भी माथ मुड़वा लिया करते हैं। तो मैं चलकर उसकी जात पूछूँ।

तब, सुन्दरिक भारद्वाज जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर भगवान् से बोला—आप किस जात के हैं ?

[भगवान्—]

जात मत पूछो, कर्म पूछो,
लकड़ी से भी आग पैदा हो जाती है,

नीच कुलवाले भी धीर मुनि होते हैं,
श्रेष्ठ और लज्जाशील पुरुष होते हैं,
सत्य से दान्त, और संयमी होते हैं,
दुःखों के अन्त को जाननेवाले, ब्रह्मचर्य के फल पाये,
यज्ञोपवीत तुम उसका आवाहन करो।
वह समय पर हवन करता है, दक्षिणा पाने का पात्र ॥

[सुन्दरिक—]

हाँ! मेरा यह यज्ञ किया हुआ हवन किया हुआ सफल हुआ,
कि आप जैसे ज्ञानी मिल गये;
आप जैसों के दर्शन नहीं होने के कारण ही
दूसरे-तीसरे हव्यशेष को खा लिया करते हैं ॥
आप भोग लगावें! आप गौतम ब्राह्मण हैं!

[भगवान्—]

धर्मोपदेश करने पर मिला भोजन मुझे स्वीकार नहीं,
···[पूर्ववत्—]

तो, हे गौतम! यह हव्यशेष मैं किसे दूँ?

हे ब्राह्मण! देवता के साथ···इस लोक में···मैं किसी को नहीं देखता हूँ जो इस हव्यशेष को खाकर पचा ले—बुद्ध या बुद्ध के श्रावक को छोड़। तो, हे ब्राह्मण! या तो तुम इस हव्यशेष को किसी ऐसी जगह छोड़ दो जहाँ घास हरी न हो, या बिना प्राणीवाले किसी जल में बहा दो।

तब, सुन्दरिक भारद्वाज ने उस हव्यशेष को बिना प्राणीवाले किसी जल में बहा दिया।

तब, वह हव्यशेष पानी पर गिरते ही चटचटाते हुये भभक उठा, लहर उठा। जैसे, दिन भर, आग में तपाया लोहे का फार पानी में पड़ते ही चटचटाते हुये भभक उठता है, लहर उठता है, वैसे ही वह हव्यशेष पानी पर पड़ते ही चिड़चिड़ाते हुये भभक उठा, लहर उठा।

तब, सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण कौतूहल से भर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर एक ओर खड़ा हो गया।

एक ओर खड़े हुये सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण को भगवान् ने गाथा में कहा—

हे ब्राह्मण! लकड़ियाँ जला-जलाकर,
अपनी शुद्धि होना मत समझो, यह बाहरी ढोंग भर है।
पण्डित लोग उससे शुद्धि नहीं बताते,
जो बाहरी बनावट से शुद्धि पाना चाहता है ॥
हे ब्राह्मण! मैं लकड़ियाँ जलाना छोड़,
आध्यात्म ज्योति जलाता हूँ,
मेरी आग सदा जलती रहती है, नित्य समाहित रहता हूँ,
मैं अर्हत् हूँ, ब्रह्मचारी हूँ ॥
हे ब्राह्मण! अभिमान तुम्हारे लिये अनाज है,
क्रोध धूँआ, मिथ्या-भाषण राख,
जीभ स्रुवा, हृदय जलाने की जगह,
अपना सुदान्त आत्मा ही ज्योति है ॥
धर्म जलाशय है, शील घाट है,

निर्मल और सज्जनों से प्रशस्त,
जिसमें ज्ञानी पुरुष स्नान करते हैं,
स्वच्छ गात्रवाले पार तर जाते हैं ॥
सत्य, धर्म, संयम तथा ब्रह्मचर्यवाला,
हे ब्राह्मण ! मध्यम मार्ग श्रेष्ठ है,
सुमार्ग पर आ गये लोगों को नमस्कार करो,
उसी नर को मैं धर्मात्मा कहता हूँ ॥

…[पूर्ववत्]। आयुष्मान् भारद्वाज अर्हतों में एक हुये।

§ १०. बहुधीतु सुत्त (७. १. १०)

बैलों की खोज में

एक समय भगवान् कोशल जनपद के एक जंगल में विहार करते थे।

उस समय किसी भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण के चौदह बैल गुम हो गये थे।

तब, वह ब्राह्मण अपने बैलों को खोजता हुआ जहाँ वह जंगल था वहाँ आ निकला। आकर, उस जंगल में भगवान् को आसन लगाये, शिर को सीधा किये, स्मृतिमान् हो बैठे देखा।

देखकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर, भगवान् के पास यह गाथायें बोला—

अवश्य ही, इस श्रमण को चौदह बैल नहीं हैं,
आज छः दिन हुये इसे मालूम नहीं,
इसी से यह श्रमण सुखी है ॥
अवश्य ही, इस श्रमण को तिल-खेत की बर्बादी नहीं होती होगी,
पौधे एक पत्तेवाले, या दो पत्तेवाले होकर,
इसी से यह श्रमण सुखी है ॥
अवश्य ही, इस श्रमण के खाली भण्डार में चूहे,
दण्ड पेल नहीं रहे हैं,
इसी से यह श्रमण सुखी है ॥
अवश्य ही, सात महीनों से इस श्रमण की बिछावन,
पड़ी-पड़ी चीलर और उडीस से भरी पड़ी नहीं है,
इसी से यह श्रमण सुखी है ॥
अवश्य ही, इस श्रमण की सात विधवा लड़कियाँ,
एक बेटेवाली, और दो बेटोंवाली नहीं हैं,
इसी से यह श्रमण सुखी है ॥
अवश्य ही, इस श्रमण को पीली और तिलों से भरे शरीरवाली स्त्री,
नहीं होगी, जो लात मारकर जगाती होगी,
इसी से यह श्रमण सुखी है ॥
अवश्य ही, इस श्रमण को सुबह ही सुबह कर्जदार,
"चुकाओ, कर्जा चुकाओ" कह, नहीं तंग करते होंगे,
इसी से यह श्रमण सुखी है ॥

[भगवान्—]

नहीं ब्राह्मण ! मुझे चौदह बैल नहीं हैं,
आज छः दिन हुये यह भी पता नहीं,
ब्राह्मण ! इसी से मैं सुखी हूँ ॥

[…इसी तरह]

नहीं ब्राह्मण ! मुझे सुबह ही सुबह कर्जदार,
"चुकाओ, कर्जा चुकाओ" कहकर नहीं तंग करते हैं,
ब्राह्मण ! इसी से मैं सुखी हूँ ॥

…[पूर्ववत्] । आयुष्मान् भारद्वाज अर्हतों में एक हुये ।

अर्हत्-वर्ग समाप्त ।

दूसरा भाग

उपासक-वर्ग

§ १. कसि सुत्त (७. २. १)

बुद्ध की खेती

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् मगध में दक्षिणागिरि पर एकनाला नामक ब्राह्मण-ग्राम में विहार करते थे।

उस समय, बोनी के काल पर कृषि-भारद्वाज ब्राह्मण के पाँच सौ हल लग रहे थे।

तब, भगवान् सुबह में पहन और पात्रचीवर ले जहाँ कृषि-भारद्वाज ब्राह्मण का काम लग रहा था वहाँ गये।

उस समय कृषि-भारद्वाज ब्राह्मण की ओर से खाना बाँटा जा रहा था। तब, भगवान् वहाँ जाकर एक ओर खड़े हो गये।

कृषि-भारद्वाज ब्राह्मण ने भगवान् को भिक्षा के लिये खड़ा देखा। देखकर भगवान् से यह बोला—श्रमण ! मैं जोतता और बोता हूँ। मैं जोत-बोकर खाता हूँ। श्रमण ! तुम भी जोतो और बोओ। तुम भी जोत-बोकर खाओ।

ब्राह्मण ! मैं भी जोतता और बोता हूँ। मैं भी जोत-बोकर खाता हूँ।

किंतु, मैं तो आप गौतम के जुए, हल, फार, छकुनी या बैल कुछ नहीं देखता हूँ। इस पर भी आप गौतम कहते हैं—ब्राह्मण ! मैं भी जोतता और बोता हूँ। मैं भी जोत-बोकर खाता हूँ।

तब, कृषि-भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से गाथायें कहा—

> कृषक होने का दावा करते हैं, किंतु आप की खेती मैं नहीं देखता
> कृषक पूछता है, कहें—उस खेती को मैं कैसे जानूँ॥

[भगवान्—]

> श्रद्धा बीज, तप वृष्टि, प्रज्ञा ही मेरा जुआठ और हल है,
> लज्जा हरिस है, मन की जोत है, स्मृति फाल-छकुनी है,
> शरीर और वचन से संयत, भोजन का अंदाज जाननेवाला,
> सत्य की निराई करता हूँ, सौरत्य मेरा विश्राम है,
> वीर्य मेरा लदनी बैल है, जो निर्वाण तक ले जाता है,
> बिना लौटे हुये बढ़ता जाता है, जहाँ जाकर शोक नहीं करता॥
> ऐसी खेती करनेवाला, अमृत की उपज पाता है,
> इस खेती को कर, सभी दुःखों से छूट जाता है॥

आप गौतम भोग लगावें। आप गौतम सचमुच में कृषक हैं; जो आप की खेती में अमृत की उपज होती है।

[भगवान्—]

धर्मोपदेश करने पर मिला भोजन मुझे स्वीकार नहीं,
हे ब्राह्मण ! ज्ञानियों का यह धर्म नहीं,
बुद्ध धर्मोपदेश के लिये दिये गये को स्वीकार नहीं करते,
ब्राह्मण ! धर्म के रहने पर यही बात होती है ॥
दूसरे अन्न और पान से,
केवली, महर्षि, क्षीणाश्रव,
परम बुद्ध हुये की सेवा करो;
पुण्यार्थी तुम्हारा पुण्य बढ़े ॥

ऐसा कहने पर कृषि-भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से बोला—धन्य हैं आप गौतम ! धन्य हैं !! हे गौतम, जैसे उलटे को पलट दे, ढँके को उघार दे, भटके को राह बता दे, या अन्धकार में तेल-प्रदीप जला दे जिसमें आँखवाले रूपों को देख लें, वैसे ही भगवान् गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशा। यह मैं भगवान् गौतम की शरण में जाता हूँ, धर्म की, और संघ की। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।

§ २. उदय सुत्त (७. २. २)

बार-बार भिक्षाटन

श्रावस्ती में।

तब, भगवान् सुबह में पहन और पात्र चीवर ले जहाँ उदय ब्राह्मण का घर था वहाँ पधारे।

तब, उदय ब्राह्मण ने भगवान् के पात्र को भात से भर दिया।

दूसरी बार भी···।

तीसरी बार भी उदय ब्राह्मण ने भगवान् के पात्र को भात से भर कर कहा—श्रमण गौतम बड़े परके हैं, बार-बार आते हैं।

[भगवान्—]

बार-बार लोग बीज बोते हैं,
बार-बार मेघ-राज बरसते हैं,
बार-बार खेतिहर खेत जोतते हैं,
बार-बार देशवालों को उपज होती है ॥
बार-बार याचक याचना करते हैं,
बार-बार दानपति दान देते हैं,
बार-बार दानपति दान देकर,
बार-बार स्वर्ग में स्थान पाते हैं ॥
बार-बार ग्वाले दूध दूहते हैं,
बार-बार बच्चा माँ के पास जाता है,
बार-बार मेहनत-परिश्रम करते हैं,
बार-बार मूर्ख गर्भ में पड़ता है ॥
बार-बार जन्म लेता है और मरता है,
बार-बार लोग श्मशान ले जाते हैं;

पुनर्भव से छूटने के मार्ग को पा,
महा-ज्ञानी बार-बार नहीं जन्म ग्रहण करता है ॥

...[पूर्ववत्]। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।

§ ३. देवहित सुत्त (७. २. ३)

बुद्ध की रुग्णता, दान का पात्र

श्रावस्ती में।

उस समय भगवान् को वात की बीमारी हो गई थी। आयुष्मान् उपवान भगवान् की सेवा में लगे थे।

तब, भगवान् ने आयुष्मान् उपवान को आमन्त्रित किया—उपवान ! सुनो; कुछ गरम पानी ले आओ।

"भन्ते, बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् उपवान भगवान् को उत्तर दे पहन और पात्र चीवर ले जहाँ देवहित ब्राह्मण का घर था वहाँ गये। जाकर चुपचाप एक ओर खड़े हो गये।

देवहित ब्राह्मण ने आयुष्मान् उपवान को चुपचाप एक ओर खड़े देखा। देखकर आयुष्मान् उपवान को गाथा में कहा—

चुपचाप आप खड़े, शिर मुड़ाये, संघाटी ओढ़े,
क्या चाहते, क्या खोजते, क्या माँगने के लिये आये हैं ?

[उपवान—]

संसार के अर्हत्, बुद्ध, मुनि वात-रोग से पीड़ित हैं,
यदि गरम पानी है, तो ब्राह्मण ! मुनि के लिये दो;
पूजनीयों में जो पूज्य, सत्कार-पात्रों में जो सत्कार के पात्र,
तथा आदरणीयों में जो आदरणीय हैं उन्हीं के लिये मैं चाहता हूँ ॥

तब, देवहित ब्राह्मण ने गरम पानी का एक भार और गुड़ की एक पोटली नौकर से मँगवा आयुष्मान् उपवान को दे दिया।

तब, आयुष्मान् उपवान जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर, उन्होंने भगवान् को गरम पानी से नहला, गरम पानी में कुछ गुड़ घोलकर भगवान् को दिया।

तब, भगवान् की तकलीफ कुछ घट गई।

तब देवहित ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर भगवान् का सम्मोदन किया। आव-भगत और कुशल-क्षेम के प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ देवहित ब्राह्मण ने भगवान् को गाथा में कहा—

दान देनेवाला किसे दान दे ? किसको देने का महाफल होता है ?
कैसे यज्ञ करनेवाले की कैसी दक्षिणा सफल होती है ?

[भगवान्—]

पूर्व जन्म की बातों को जिसने जान लिया है,
स्वर्ग और अपाय की बातों को जो समझता है,
जिसकी जाति क्षीण हो गई है,
परम ज्ञान का स्वामी मुनि ;

दान देनेवाला इन्हीं को दान दे,
इन्हीं को देने का महाफल होता है;
ऐसे यज्ञ करनेवाले की,
ऐसी ही दक्षिणा सफल होती है ॥

...। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।

४. महासाल सुत्त (७. २. ४)

पुत्रों द्वारा निष्कासित पिता

श्रावस्ती में।

तब, एक ब्राह्मण बड़ा आदमी गुदड़ी पहन जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर भगवान् का सम्मोदन किया। आवभगत और कुशल-क्षेम के प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे उस ब्राह्मण बड़े आदमी को भगवान् ने कहा—ब्राह्मण! इतनी गुदड़ी क्यों पहने हो?

हे गौतम! मेरे चार बेटे हैं। अपनी स्त्रियों की सलाह से उन्होंने मुझे घर से निकाल दिया है।

तो, हे ब्राह्मण! इन गाथाओं को तुम याद कर सभा खूब लग जाने पर अपने पुत्रों के वहाँ होते उठकर पढ़ना—

जिनके पैदा होने से मुझे बड़ा आनन्द हुआ था,
जिनका बना रहना मेरा बड़ा अभीष्ट था,
वे अपनी स्त्रियों की सलाह से,
हटा देते हैं; कुत्ता जैसे सूअर को ॥
वे नीच और खोटे हैं,
जो मुझे 'दादा जी, दादा जी,' कहकर पुकारते हैं;
बेटे नहीं, राक्षस हैं,
जो मुझे बुढ़ाई में छोड़ रहे हैं ॥
जैसे बेकार बुड्ढे घोड़े को,
दाना मिलना बन्द हो जाता है,
वैसे ही बेटों का यह बूढ़ा बाप,
दूसरों के दरवाजे भीख माँग रहा है ॥
मेरा डण्डा ही यह कहीं अच्छा है,
मगर ये नालायक बेटे नहीं,
जो भड़के बैल को भगा देता है,
और चण्ड कुत्तों को भी;
अँधेरे में पहले पहल वही चलता है,
गहरे का भी थाह लगा देता है,
इसी डण्डे के सहारे,
ठेस लगने पर भी गिरने से बच जाता हूँ ॥

तब वह ब्राह्मण बड़ा आदमी भगवान् के पास इन गाथाओं को सीख सभा खूब जम जाने पर अपने पुत्रों के वहाँ होते उठकर पढ़ने लगा—

> जिनके पैदा होने से मुझे बड़ा आनन्द हुआ था,
> ···[पूर्ववत्]
> इसी डण्डे के सहारे,
> ठेस लगने पर भी गिरने से बच जाता हूँ ॥

तब, उस ब्राह्मण को उसके पुत्रों ने घर ले जा नहला कर प्रत्येक ने थान का जोड़ा भेंट चढ़ाया।

तब, वह ब्राह्मण एक जोड़ा थान लेकर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया।···एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, उस ब्राह्मण ने भगवान् को कहा—हे गौतम ! हम ब्राह्मण आचार्य को आचार्य-दक्षिणा दिया करते हैं। आप गौतम इस आचार्य-दक्षिणा को स्वीकार करें।

भगवान् ने अनुकम्पा कर स्वीकार किया।

···[पूर्ववत्]। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।

§ ५. मानत्थद्ध सुत्त (७. २. ५)

अभिमान न करे

श्रावस्ती में।

उस समय अभिमान-अकड़ नाम का एक ब्राह्मण श्रावस्ती में वास करता था। वह न तो माता को प्रणाम् करता था, न पिता को, न आचार्य को, और न जेठे भाई को।

उस समय भगवान् बड़ी भारी सभा के बीच धर्मोपदेश कर रहे थे।

तब, अभिमान-अकड़ ब्राह्मण के मन में यह हुआ—यह श्रमण गौतम बड़ी भारी सभा के बीच धर्मोपदेश कर रहे हैं। तो, जहाँ श्रमण गौतम हैं वहाँ मैं भी चलूँ। यदि श्रमण गौतम मुझसे कुछ पूछताछ करेंगे तो मैं भी उनसे कुछ बातें करूँगा। यदि श्रमण गौतम मुझसे कुछ पूछताछ नहीं करेंगे तो मैं भी उनसे कुछ न बोलूँगा।

तब, अभिमान-अकड़ ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर चुपचाप एक ओर खड़ा हो गया।

तब, भगवान् ने उससे कुछ पूछताछ नहीं की।

तब, अभिमान-अकड़ ब्राह्मण "यह श्रमण गौतम कुछ नहीं जानते हैं" सोच, लौट जाने के लिये तैयार हुआ।

तब, भगवान् ने अभिमान-अकड़ ब्राह्मण के वितर्क को अपने चित्त से जानकर कहा—

> ब्राह्मण ! अभिमान करना उचित नहीं,
> ब्राह्मण ! जिस उद्देश्य से यहाँ आये थे,
> उसे वैसा कह डालो ॥

तब, अभिमान-अकड़ ब्राह्मण "श्रमण गौतम मेरे चित्त की बातों को जानते हैं" जान, भगवान् के पैरों पर खड़े गिर गया, उनके चरणों को मुँह से चूमने लगा, हाथ से पोंछने लगा, और अपना नाम सुनाने लगा—हे गौतम ! मैं अभिमान-अकड़ हूँ। हे गौतम ! मैं अभिमान-अकड़ हूँ।

तब, सभा में आये सभी लोग आश्चर्य से चकित हो गये। आश्चर्य है रे ! अद्भुत है !! यह अभिमान-अकड़ ब्राह्मण न तो माता को प्रणाम् करता है, न पिता को, न आचार्य को, और न जेठे भाई को : सो श्रमण गौतम के चरणों पर इतना गिर पड़ रहा है।

तब, भगवान् ने अभिमान-अकड्ड ब्राह्मण को यह कहा—ब्राह्मण ! बस करो, उठो, यदि मेरे प्रति तुम्हें श्रद्धा है तो अपने आसन पर बैठो।

तब अभिमान-अकड्ड ब्राह्मण अपने आसन पर बैठकर भगवान् से यह बोला:—

किनके साथ अभिमान न करे ?
किनके प्रति गौरव-भाव रक्खे ?
किनका सम्मान किया करे ?
किनकी पूजा करना अच्छा है ?

[भगवान्—]

माँ, बाप, और बड़े भाई,
और चौथा आचार्य, इनके प्रति अभिमान न करे,
उन्हीं के प्रति गौरव-भाव रक्खे,
उन्हीं का सम्मान किया करे,
उन्हीं की पूजा करना अच्छा है।
अभिमान हटा, अकड़ छोड़ उन अनुत्तर,
अर्हत्, शान्त हुए, कृतकृत्य और अनाश्रव को प्रणाम् करे।

…। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।

§ ६. पच्चनिक सुत्त (७. २. ६)

झगड़ा न करे

श्रावस्ती में।

उस समय झगड़ालू नाम का एक ब्राह्मण श्रावस्ती में वास करता था।

तब झगड़ालू ब्राह्मण के मन में यह हुआ—जहाँ श्रमण गौतम हैं वहाँ मैं चल चलूँ। श्रमण गौतम जो कुछ कहेंगे मैं ठीक उसका उलटा ही कहूँगा।

उस समय भगवान् खुली जगह में टहल रहे थे।

तब झगड़ालू ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर भगवान् के पीछे-पीछे चलते हुये कहने लगा—श्रमण ! धर्म उपदेशें।

[भगवान्—]

जिसका चित्त मैला है, झगड़ा के लिये जो तना है,
ऐसे झगड़ालू के साथ बात करना ठीक नहीं।
जिसने विरोध-भाव और चित्त की उच्छृंखलता को दबा,
द्वेष को बिल्कुल छोड़ दिया है, उसी को कहना उचित है॥

…। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।

§ ७. नवकम्म सुत्त (७. २. ७)

जंगल कट चुका है

एक समय भगवान् कोशल के किसी जंगल में विहार करते थे।

उस समय नवकार्मिक-भारद्वाज ब्राह्मण उस जंगल में लकड़ी चिरवा रहा था।

नवकार्मिक-भारद्वाज ब्राह्मण ने भगवान् को किसी शाल वृक्ष के नीचे आसन लगाये, शरीर सीधा किये, स्मृतिमान् हो बैठे देखा।

देखकर उसके मन में यह हुआ—मैं तो इस जंगल में अपना काम करवाने में लगा हूँ। यह श्रमण गौतम क्या कराने में लगे हैं?

तब नवकार्मिक-भारद्वाज ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर भगवान् से गाथा में बोला—

अपने किस काम में लगे हो, हे भिक्षु, इस शाल-वन में ?
जो इस जंगल में अकेले ही सुख से विहार करते हो ?

[भगवान्—]

जंगल से मेरा कुछ काम नहीं बचा है,
मेरा जंगल कट-छँटकर साफ हो गया,
मैं इस वन में दुःख से छूट परम पद पा,
असन्तोष को छोड़कर अकेला रमता हूँ॥

…आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।

§ ८. कट्ठहार सुत्त (७. २. ८)

निर्जन वन में वास

एक समय भगवान् कोशल के किसी जंगल में विहार करते थे।

उस समय किसी भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण के कुछ कठचुनवे चेले उसी जंगल में गये।

आकर उन्होंने भगवान् को उस जंगल में…स्मृतिमान् हो बैठे देखा। देखकर, जहाँ भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण था वहाँ गये। जाकर भारद्वाज…से बोले…अरे! आप जानते हैं? फलाने जंगल में एक साधु स्मृतिमान् हो बैठा है।

तब, भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण उन लड़कों के साथ जहाँ वह जंगल था वहाँ गया। उसने भी भगवान् को उस जंगल में…स्मृतिमान् हो बैठे देखा। देखकर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर भगवान् से गाथा में बोला—

घोर, भयानक, शून्य, निर्जन अरण्य में पैठ,
निश्चल अचल आसन लगाये,
भिक्षु! बड़ा सुन्दर ध्यान लगाये बैठे हो॥
न जहाँ गीत है न जहाँ बाजा,
ऐसे जंगल में अकेला वनवासी मुनि को देख,
मुझे बड़ी हैरानी हो रही है,
कि वह अकेला जंगल में कैसे प्रसन्नता से रहता है॥
मैं समझता हूँ कि लोकाधिपति के साथ,
अनुत्तर स्वर्ग की कामना से,
आप निर्जन वन में क्यों बस रहे हैं,
ब्रह्मत्व-प्राप्ति के लिए यहाँ तप कर रहे हैं॥

[भगवान्—]

जो कोई आकांक्षा या आनन्द उठता है,
नाना पदार्थों में सदा आसक्त,
इच्छायें, जिनका मूल अज्ञान में है,
सभी का मैंने बिल्कुल त्याग कर दिया है,
तृष्णा और इच्छाओं से रहित मैं अकेला,
सभी धर्मों के सत्य को जाननेवाला,
अनुत्तर और शिव बुद्धत्व को पा,
हे ब्राह्मण ! एकान्त में मैं निर्भीक ध्यान करता हूँ।

…। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।

§ ९. मातुपोसक सुत्त (७. २. ९)

माता-पिता के पोषण में पुण्य

श्रावस्ती में।

तब, मातुपोसक ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर कुशल-क्षेम पूछ एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ मातुपोसक ब्राह्मण ने भगवान् को यह कहा—हे गौतम ! मैं धर्म-पूर्वक भिक्षाटन करता हूँ। धर्म-पूर्वक भिक्षाटन कर माता-पिता का पोषण करता हूँ। हे गौतम ! ऐसा करनेवाला मैं अच्छा करता हूँ या नहीं ?

ब्राह्मण ! अवश्य, ऐसा करनेवाले तुम अच्छा कर रहे हो। ब्राह्मण ! जो धर्म-पूर्वक भिक्षाटन करता है; धर्म-पूर्वक भिक्षाटन कर माता-पिता का पोषण करता है वह बहुत पुण्य कमाता है।

जो मनुष्य माता या पिता को धर्म से पोसता है उसके पण्डित लोग उसकी प्रशंसा करते हैं, मरकर वह स्वर्ग में आनन्द करता है।

…। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।

§ १०. भिक्खक सुत्त (७. २. १०)

भिक्षुक भिक्षु नहीं

श्रावस्ती में।

तब भिक्षुक ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ भिक्षुक ब्राह्मण ने भगवान् को कहा—हे गौतम ! मैं भी भिक्षुक हूँ और आप भी भिक्षुक हैं। हम दोनों में फरक क्या है ?

[भगवान्—]

इसलिये कोई भिक्षु नहीं होता क्योंकि वह भीख माँगता है,
जब तक दोषयुक्त है तब तक वह भिक्षु नहीं हो सकता।
जो संसार के पुण्य और पाप बहाकर,
ज्ञानपूर्वक सच्चे ब्रह्मचर्य का पालन करता है,
वही यथार्थ में भिक्षु कहा जाता है॥

…। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।

§ ११. संगारव सुत्त (७. २. ११)

स्नान से शुद्धि नहीं

श्रावस्ती में।

उस समय संगारव नाम का एक ब्राह्मण उदक-शुद्धिक, उदक से शुद्धि होना माननेवाला, श्रावस्ती में रहता था। साँझ-सुबह उदक में ही पैठा रहता था।

तब आयुष्मान् आनन्द सुबह में पहन और पात्रचीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिये पैठे। भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने के बाद जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् को यह कहा—भन्ते! संगारव ब्राह्मण···साँझ-सुबह उदक ही में पैठा रहता है। भन्ते! अनुकम्पा करके भगवान् जहाँ संगारव का घर है वहाँ चलें।

भगवान् ने चुप रहकर स्वीकार कर लिया।

तब भगवान् सुबह में पहन और पात्र चीवर ले जहाँ संगारव का घर था वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठ गये।

तब संगारव ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर···कुशल-प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे संगारव ब्राह्मण को भगवान् ने कहा—ब्राह्मण! क्या सच में तुम उदक-शुद्धिक हो, उदक से शुद्धि होना मानते हो? साँझ-सुबह उदक में ही पैठे रहते हो?

हाँ गौतम! ऐसी ही बात है।

ब्राह्मण! तुम किस उद्देश्य से उदक-शुद्धिक हो, उदक से शुद्धि होना मानते हो, और साँझ-सुबह उदक में ही पैठे रहते हो?

हे गौतम! दिन भर में मुझसे जो कुछ पाप हो आता है उसे साँझ में नहाकर बहा देता हूँ। और रात भर में जो कुछ पाप हो आता है उसे सुबह में नहाकर बहा देता हूँ। हे गौतम! मैं इसी उद्देश्य से उदक-शुद्धिक हूँ, उदक से शुद्धि होना मानता हूँ, और साँझ-सुबह उदक में पैठा रहता हूँ।

[भगवान्—]

> हे ब्राह्मण! धर्म जलाशय है, शील उसमें उतरने का घाट है,
> बिल्कुल स्वच्छ, सज्जनों से प्रशस्त,
> जिसमें परम ज्ञानी स्नान कर,
> पवित्र गात्रोंवाला हो पार तर जाता है॥

···। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।

§ १२. खोमदुस्सक सुत्त (७. २. १२)

सन्त की पहचान

एक समय भगवान् शाक्य जनपद में खोमदुस्स नामक शाक्यों के कस्बे में विहार करते थे।

तब भगवान् सुबह में पहन और पात्रचीवर ले खोमदुस्स कस्बे में भिक्षाटन के लिये पैठे।

उस समय खोमदुस्स कस्बे के रहनेवाले ब्राह्मण गृहस्थ किसी काम से सभागृह में इकट्ठे थे। रिमझिम पानी भी बरस रहा था।

तब, भगवान् जहाँ वह सभा लगी थी वहाँ गये।

खोमदुस्स कस्बे के रहनेवाले ब्राह्मण गृहस्थों ने भगवान् को दूर ही से आते देखा। देखकर यह कहा—ये मथमुण्डे श्रमण सभा के नियमों को क्या जानेंगे ?

तब, भगवान् ने **खोमदुस्स** कस्बे में रहनेवाले ब्राह्मण गृहस्थों को गाथा में कहा—

> वह सभा सभा नहीं जहाँ सन्त नहीं,
> वे सन्त सन्त नहीं जो धर्म की बात नहीं बतावें,
> राग, द्वेष और मोह को छोड़,
> धर्म को बतानेवाले ही सन्त होते हैं॥

…। आज से जन्म भर के लिये आप गौतम हम लोगों को अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।

उपासक वर्ग समाप्त

ब्राह्मण-संयुत्त समाप्त।

आठवाँ-परिच्छेद

८. वङ्गीश-संयुत्त

§ १. निक्खन्त सुत्त (८. १)

वङ्गीश का दृढ़-संकल्प

ऐसा मैंने सुना।

एक समय आयुष्मान् वङ्गीश अपने उपाध्याय आयुष्मान् निग्रोध-कल्प के साथ आलवी में अग्गालव चैत्य पर विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् वङ्गीश अभी तुरत ही नये प्रव्रजित हुये थे, विहार की देख-रेख करने के लिये छोड़ दिये गये थे।

तब कुछ स्त्रियाँ अलंकृत हो कर आराम में देखने के लिये आई। उन स्त्रियों को देखकर आयुष्मान् वङ्गीश दुःखी हुआ नये; चित्त राग से चंचल हो उठा।

तब आयुष्मान् वङ्गीश के मन में यह हुआ—मेरा बड़ा अलाभ हुआ, लाभ नहीं; मेरा बड़ा दुर्भाग्य हुआ, सुभाग्य नहीं—कि मैं दुःखी गया और मेरा चित्त राग से चंचल हो उठा है। मुझे कौन ऐसा मिलेगा जो मेरे इस मोह को दूर कर चित्त में शान्ति ला दे! तो मैं स्वयं ही अपने इस मोह को दूर कर चित्त में शान्ति ले आऊँ।

तब आयुष्मान् वङ्गीश अपने स्वयं उस मोह को दूर कर चित्त में शान्ति ले आये; और उस समय उनके मुँह से यह गाथायें निकल पड़ीं—

घर से बेघर हो निकल गये मेरे मन में,
ये बुरे और काले वितर्क उठ रहे हैं,
श्रेष्ठजनों के पुत्र, महाधनुर्धर, शिक्षित, दृढ़-धन्वा,
चारों ओर से हजारों बाण चलायें,
यदि इससे भी अधिक स्त्रियाँ आवें,
तो मेरे मन को नहीं डिगा सकेंगी,
अब मैं धर्म में प्रतिष्ठित हो गया॥
मैंने अपने कानों सूर्यकुलोत्पन्न बुद्ध को कहते सुना है,
कि निर्वाण के पाने का मार्ग क्या है,
मेरा मन अब वहीं बँध गया है॥
इस प्रकार विहार करते यदि पापी मार मेरे पास आवेगा,
तो मैं ऐसा करूँगा कि वह मेरे मार्ग को भी नहीं देख सकेगा॥

§ २. अरति सुत्त (८. २)

राग छोड़े

ऐसा मैंने सुना।

एक समय आयुष्मान् वङ्गीश अपने उपाध्याय आयुष्मान् निग्रोध-कल्प के साथ आलवी में अग्गालव चैत्य पर विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् निग्रोध-कप्प भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने के बाद विहार में पैठ जाया करते थे; और साँझ को या दूसरे दिन उसी समय निकला करते थे।

उस समय आयुष्मान् वङ्गीश को मोह चला आया था—राग से चित्त चञ्चल हो उठा था।

तब आयुष्मान् वङ्गीश के मन में यह हुआ—'''[पूर्ववत्]। तो मैं स्वयं ही अपने इस मोह को दूर कर चित्त में शान्ति ले आऊँ।

तब आयुष्मान् वङ्गीश अपने स्वयं उस मोह को दूर कर चित्त में शान्ति ले आये; और उस समय उनके मुँह से ये गाथायें निकल पड़ीं—

> (धर्माचरण में) असंतोष, (कामोपभोग में) संतोष,
> और सारे पाप वितर्कों को छोड़,
> कहीं भी जंगल उगने न दे,
> जंगल को साफ कर खुले में रहनेवाला भिक्षु ॥
> जो पृथ्वी के ऊपर या आकाश में,
> संसार के जितने रूप हैं,
> सभी पुराने होते जाते हैं, अनित्य हैं,
> ज्ञानी पुरुष इसे जानकर विचरते हैं ॥
> सांसारिक भोगों में लोग झुकते हैं,
> देखे, सुने, छुये और अनुभव किये धर्मों के प्रति,
> स्थिर-चित्त जो इनके प्रति इच्छाओं को दूर कर,
> उनमें लिप्त नहीं होता है—उसी को मुनि कहते हैं ॥
> जो साठ मिथ्या धारणायें,
> पृथक् जनों में लगी हैं,
> उनमें जो कहीं नहीं पड़ता है,
> जो दुष्ट बातें नहीं बोलता है, वही भिक्षु है ॥
> पण्डित, बहुत काल से समाहित,
> ठगी न करनेवाला, ज्ञानी, लोभ-रहित,
> जिस मुनि ने शान्त-पद जान,
> निर्वाण को प्राप्त कर लिया है, अपने समय की प्रतीक्षा कर रहा है ॥

§ २. अतिमञ्ञना सुत्त (८. २)

अभिमान का त्याग

एक समय आयुष्मान् वङ्गीश अपने उपाध्याय आयुष्मान् निग्रोध-कप्प के साथ आलवी में अग्गाळव चैत्य पर विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् वङ्गीश अपनी प्रतिभा के अभिमान से दूसरे अच्छे भिक्षुओं की निन्दा करते थे।

तब आयुष्मान् वङ्गीश के मन में यह हुआ, "मेरा बड़ा अलाभ हुआ, लाभ नहीं; मेरा बड़ा दुर्लाभ हुआ, सुलाभ नहीं; कि मैं अपनी प्रतिभा के अभिमान से दूसरे अच्छे भिक्षुओं की निन्दा करता हूँ।"

तब स्वयं अपने चित्त में पश्चात्ताप उत्पन्न कर आयुष्मान् वङ्गीश के मुँह से ये गाथायें निकल पड़ीं—

हे गौतम के श्रावक ! अभिमान छोड़ो,
अभिमान के मार्ग से दूर रहो;
अभिमान के रास्ते में भटककर,
बहुत दिनों तक पश्चात्ताप करता रहा ॥
सारी जनता घमण्ड से चूर है,
अभिमान करनेवाले नरक में गिरते हैं,
बहुत काल तक शोक किया करते हैं,
अभिमानी लोग नरक में उत्पन्न हो ॥
भिक्षु कभी भी शोक नहीं करता है,
मार्ग को जिसने जीत लिया है, सम्यक् प्रतिपन्न,
कीर्ति और सुख का अनुभव करता है,
यथार्थ में ही लोग उसे धर्मदर्शी कहते हैं ॥
इसलिये, मन के मैल को दूर कर, उत्साही बन,
बन्धनों को हटाकर, विशुद्ध,
और अभिमान को बिल्कुल दबा,
शान्त हो ज्ञान-पूर्वक अन्त करता है ॥

§ ४. आनन्द सुत्त (८. ४)

कामराग से मुक्ति का उपाय

एक समय आयुष्मान् आनन्द श्रावस्ती में अनाथ-पिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

तब आयुष्मान् आनन्द सुबह में पहन और पात्रचीवर ले आयुष्मान् वङ्गीश को पीछे किये भिक्षाटन के लिये श्रावस्ती में पैठे।

उस समय आयुष्मान् वङ्गीश के चित्त में मोह हो गया था, राग से चञ्चल हो रहे थे।

तब आयुष्मान् वङ्गीश आयुष्मान् आनन्द से गाथा में बोले—

कामराग से जल रहा हूँ, चित्त मेरा जला जा रहा है,
हे गौतमकुलोत्पन्न भिक्षु ! कृपा कर इसे शान्त करने का उपाय बतावें।

[आयुष्मान् आनन्द—]

मन बहक जाने से तुम्हारा चित्त जल रहा है,
राग उत्पन्न करनेवाले इस आकर्षण को छोड़ दो,
अपने संस्कारों को पराया के ऐसा देखो, दुःख और अनात्म के ऐसा,
इस बड़े राग को बुझा दो, इससे बार-बार मत जलो ॥
चित्त में अशुभ-भावना लाओ, एकाग्र और समाधिस्थ हो,
तुम्हें कायगता स्मृति का अभ्यास होवे, वैराग्य बढ़ाओ ॥
दुःख, अनित्य और अनात्म की भावना करो,
अभिमान और घमण्ड छोड़ दो,
तब, मान के प्रहाण से, शान्त हो विचरोगे ॥

§ ५. सुभासित सुत्त (८. ५)

सुभाषित के लक्षण

श्रावस्ती जेतवन में।

वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—हे भिक्षुओ !

"भदन्त !" कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! चार अङ्गों से युक्त होने पर वचन सुभाषित होता है, दुर्भाषित नहीं; विज्ञों से अनिन्द्य, निन्द्य नहीं। किन चार से ?

भिक्षुओ ! भिक्षु सुभाषित ही बोलता है, दुर्भाषित नहीं; धर्म ही बोलता है, अधर्म नहीं; प्रिय ही बोलता है, अप्रिय नहीं; सत्य ही बोलता है, असत्य नहीं। भिक्षुओ ! इन्हीं चार अङ्गों से युक्त वचन सुभाषित होता है, दुर्भाषित नहीं; विज्ञों से अनिन्द्य होता है, निन्द्य नहीं।

भगवान् यह बोले। इतना कहकर बुद्ध फिर भी बोले—

> सन्तों ने सुभाषित को ही उत्तम कहा है,
> दूसरे—धर्म कहे, अधर्म नहीं,
> तीसरे—प्रिय कहे, अप्रिय नहीं,
> चौथे—सत्य कहे, असत्य नहीं॥

तब, आयुष्मान् वङ्गीश आसन से उठ, उपरनी को एक कन्धे पर सँभाल, भगवान् की ओर हाथ जोड़कर बोले—भगवन् ! मैं कुछ कहना चाहता हूँ। बुद्ध ! मुझे कुछ कहने का अवकाश मिले।

भगवान् बोले—वङ्गीश ! कहो, अवकाश है।

तब, आयुष्मान् वङ्गीश ने भगवान् के सम्मुख अवसर उपयुक्त गाथाओं में स्तुति की—

> उसी वचन को बोले, जिससे अपने को अनुताप न हो,
> और, दूसरों को भी कष्ट न हो, वही वचन सुभाषित है॥
> प्रिय वचन ही बोले, जो सभी को सुहावे,
> जो दूसरों के दोष नहीं निकालता, वही प्रिय बोलता है॥
> सत्य ही सर्वोत्तम वचन है, यह सनातन धर्म है,
> सत्य, अर्थ और धर्म में प्रतिष्ठित सज्जनों ने कहा है॥
> बुद्ध जो वचन कहते हैं, क्षेम और निर्वाण की प्राप्ति के लिये,
> दुःखों को अन्त करने के लिये, वही उत्तम वचन है॥

§ ६. सारिपुत्त सुत्त (८. ६)

सारिपुत्र की स्तुति

एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को धर्मोपदेश कर दिखा दिया···। उनके वचन सभ्य, साफ, निर्दोष और सार्थक थे। और भिक्षु लोग भी बड़े आदर से, मन लगाकर, ध्यानपूर्वक कान दिये सुन रहे थे।

तब, आयुष्मान् वङ्गीश के मन में यह हुआ—यह आयुष्मान् सारिपुत्र धर्मोपदेश··· और, भिक्षु लोग भी···सुन रहे हैं। तो क्यों न मैं आयुष्मान् सारिपुत्र के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में उनकी स्तुति करूँ।

तब आयुष्मान् वङ्गीश आसन से उठ, उपरनी को एक कंधे पर सम्भाल, आयुष्मान् सारिपुत्र की ओर हाथ जोड़कर बोले—आवुस सारिपुत्र ! मैं कुछ कहना चाहता हूँ। आवुस सारिपुत्र ! मुझे कुछ कहने का अवकाश मिले।

आवुस वङ्गीश ! अवकाश है, कहें।

तब आयुष्मान् वङ्गीश ने आयुष्मान् सारिपुत्र के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में उनकी स्तुति की—

> गम्भीरप्रज्ञ, मेधावी, अच्छे और बुरे मार्ग के पहचाननेवाले,
> सारिपुत्र महाप्रज्ञ भिक्षुओं में धर्मोपदेश कर रहे हैं ॥
> संक्षेप से भी उपदेशते हैं, उसका विस्तार भी कह देते हैं,
> सारिका की बोली जैसा मधुर, ऊँची बातें बता रहे हैं ॥
> उस देशना की मधुर वाणी,
> आनन्ददायक, श्रवणीय और सुन्दर है;
> उदग्रचित्त और प्रमुदित हो भिक्षु लोग कान लगाये उसे सुन रहे हैं ॥

§ ७. पवारणा सुत्त (८. ७)

प्रवारणा-कर्म

एक समय भगवान् पाँच सौ केवल अर्हत् भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ श्रावस्ती में मृगार-माता के पूर्वाराम प्रासाद में विहार करते थे।

उस समय पञ्चदशी के उपोसथ पर प्रवारणा के लिये सम्मिलित हुये भिक्षु-संघ के बीच खुले मैदान में भगवान् बैठे थे।

तब भगवान् ने भिक्षु-संघ को शान्त देख भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! मैं प्रवारण करता हूँ—तुमने शरीर या वचन से कोई दोष तो मुझमें नहीं देखे हैं ?

भगवान् के ऐसा कहने पर आयुष्मान् सारिपुत्र आसन से उठ उपरनी को एक कंधे पर सम्भाल भगवान् की ओर हाथ जोड़कर बोले—भन्ते ! हम लोगों ने शरीर या वचन से कुछ बुराई कर भगवान् पर दोष नहीं चढ़ाया है। भन्ते ! भगवान् अनुत्पन्न मार्ग के उत्पन्न करनेवाले हैं, ''न कहे गये मार्ग के कहनेवाले हैं, मार्ग को पहचाननेवाले हैं, मार्ग पर चले हुये हैं। भन्ते ! इस समय आपके श्रावक भी आपके अनुगामी करनेवाले हैं। भन्ते ! मैं भगवान् को प्रवारण करता हूँ—भगवान् ने हममें कोई शारीरिक या वाचसिक दोष तो नहीं देखा है ?

सारिपुत्र ! मैंने शरीर या वचन के दोष करते तुम्हें कभी नहीं पाया है। सारिपुत्र ! तुम पण्डित हो, पुण्यवान् हो, महाप्रज्ञावान् हो, तुम्हारी प्रज्ञा प्रसन्न, सर्वगामी, तीक्ष्ण और अपराजेय है। सारिपुत्र ! जैसे चक्रवर्ती राजा का ज्येष्ठ पुत्र पिता के प्रवर्तित चक्र का सम्यक् प्रवर्तन करता है, वैसे ही तुम मेरे प्रवर्तित अनुत्तर धर्मचक्र का सम्यक् प्रवर्तन करते हो।

भन्ते ! यदि भगवान् हममें कोई शारीरिक या वाचसिक दोष नहीं पाते हैं, तो भगवान् इन पाँच सौ भिक्षुओं में भी कोई दोष नहीं पायेंगे।

सारिपुत्र ! हम इन पाँच सौ भिक्षुओं में भी कोई दोष नहीं पाते हैं। सारिपुत्र ! इन पाँच सौ भिक्षुओं में भी साठ भिक्षु त्रैविद्य, साठ भिक्षु षडभिज्ञ, साठ भिक्षु दोनों भाग से विमुक्त, और दूसरे प्रज्ञाविमुक्त हैं।

तब आयुष्मान् वङ्गीश आसन से उठ, उपरनी को एक कन्धे पर सम्भाल, भगवान् की ओर हाथ जोड़कर बोले—भगवन् ! मैं कुछ कहना चाहता हूँ। बुद्ध ! मुझे कुछ कहने का अवकाश मिले।

भगवान् बोले—वङ्गीश ! अवकाश है, कहो।

तब आयुष्मान् वङ्गीश ने भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में उनकी स्तुति की—

> आज पन्द्रहवीं की विशुद्धि के निमित्त,
> पाँच सौ भिक्षु एकत्रित हुये हैं,
> (दश) मानसिक बन्धनों के काटनेवाले,
> निष्पाप, पुनर्जन्म से मुक्त ॥
> जैसे चक्रवर्ती राजा अमात्यों के साथ,
> चारों ओर घूम आता है,
> समुद्र तक पृथ्वी के चारों ओर,
> वैसे ही, विजित-संग्राम, अनुत्तर नायक की,
> उपासना उनके श्रावक-गण करते हैं,
> त्रैविद्य, मृत्यु को जीतनेवाले ॥
> सभी भगवान् के पुत्र हैं, इसमें कुछ अयुक्ति नहीं है,
> तृष्णारूपी शल्य को काटनेवाले,
> उन सूर्यवंशोत्पन्न बुद्ध को नमस्कार हो ॥

§ ८. परोसहस्स सुत्त (८.८)

बुद्ध-स्तुति

एक समय भगवान् साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के बड़े संघ के साथ श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

उस समय भगवान् ने निर्वाण-सम्बन्धी धर्मोपदेश कर भिक्षुओं को दिखा दिया···। भिक्षु लोग भी बड़े आदर से मन लगाकर ध्यानपूर्वक कान दिये सुन रहे थे।

तब आयुष्मान् वङ्गीश के मन में यह हुआ—यह···भिक्षु लोग भी···कान दिये सुन रहे हैं। तो क्यों न मैं भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में उनकी स्तुति करूँ !

तब आयुष्मान् वङ्गीश आसन से उठ···[पूर्ववत्]।

तब आयुष्मान् वङ्गीश ने भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में उनकी स्तुति की—

> हजार से भी ज्यादा भिक्षु बुद्ध को घेरे हैं,
> जो विरज धर्मोपदेश रहे हैं,
> भय से शून्य निर्वाण के विषय में ॥
> उस विमल धर्म को सुन रहे हैं,
> जिसे सम्यक् सम्बुद्ध बता रहे हैं,
> भिक्षुसंघ के बीच बुद्ध बड़े शोभ रहे हैं ॥
> भगवान् का नाम नाग है, ऋषियों में सातवें* ऋषि हैं,
> महामेघ-सा हो, श्रावकों पर वर्षा कर रहे हैं ॥
> दिन के विहार से निकल बुद्ध के दर्शन की इच्छा से,
> हे महावीर ! मैं वङ्गीश आपका श्रावक चरणों पर, प्रणाम् करता हूँ ॥

वङ्गीश ! तुमने क्या इन गाथाओं को पहले ही बना लिया था अथवा इसी क्षण सूझी हैं ?

---

* विपस्सी बुद्ध से लेकर सातवें ऋषि (= बुद्ध)—अट्ठकथा।

भन्ते ! मैंने इन गाथाओं को पहले ही नहीं बना लिया था इसी क्षण सूझी हैं।

तो वङ्गीश ! और भी कुछ नई गाथायें कहो जिन्हें तुमने पहले कभी नहीं रचा है।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् वङ्गीश भगवान् को उत्तर दे पहले कभी नहीं रची गई नई गाथाओं में भगवान् की स्तुति करने लगे:—

मार के कुमार्ग को जीत,
मन की गाँठों को काटकर विचरते हैं,
बन्धन से मुक्त करनेवाले उन्हें देखो,
स्वच्छन्द, लोगों को (स्मृति प्रस्थान आदि अभ्यास) बाँटते-चुनते ॥
बाढ़ के निस्तार के लिये,
अनेक प्रकार से मार्ग को बताया,
आपके उस अमृत-पद बताने पर,
धर्म के ज्ञानी अजेय हो गये ॥
पैठकर प्रकाश देनेवाले,
उच्च से उच्च उद्देश्य को पार कर आपने देख लिया,
जानकर और साक्षात्कार कर,
सबसे पहले ज्ञान की बातें बताईं ॥
इस प्रकार के धर्मोपदेश करने पर,
धर्म जाननेवालों को प्रमाद कैसा !
इसलिये, उन भगवान् के शासन में,
सदा अप्रमत्त हो नम्रता से अभ्यास करे ॥

§ ९. कोण्डञ्ञ सुत्त (८. ९)

अञ्ञा-कोण्डञ्ञ के गुण

एक समय भगवान् राजगृह में वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् अञ्ञा-कोण्डञ्ञ बहुत काल के बाद जहाँ भगवान् थे वहाँ आये। आकर, भगवान् के पैरों पर सिर टेक, भगवान् के चरणों को मुख से चूमने लगे और हाथ से पोंछने लगे। और, अपना नाम सुनाने लगे—भगवन् ! मैं कोण्डञ्ञ हूँ। बुद्ध ! मैं कोण्डञ्ञ हूँ।

तब, आयुष्मान् वङ्गीश के मन में यह हुआ—यह आयुष्मान् अञ्ञा-कोण्डञ्ञ···अपना नाम सुना रहे हैं···। तो, मैं भगवान् के सम्मुख अञ्ञा-कोण्डञ्ञ की उपयुक्त गाथाओं में प्रशंसा करूँ।

···[पूर्ववत्]

तब, आयुष्मान् वङ्गीश भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में आयुष्मान् अञ्ञा-कोण्डञ्ञ की प्रशंसा करने लगे—

बुद्ध के बताये ज्ञान को जाननेवाले स्थविर, बड़े उत्साही कोण्डञ्ञ,
सुखपूर्वक विहार करनेवाले, परम ज्ञान को पहुँचे हुये,
बुद्ध के शासन में रह, किसी श्रावक से जो कुछ प्राप्त किया जा सकता है,
वह सभी आपको प्राप्त हैं, आपको, जो अप्रमत्त हो अभ्यास करते हैं,
बड़े प्रतापी, त्रैविद्य, दूसरों के चित्त को भी जान जाने वाले,
बुद्ध-श्रावक कोण्डञ्ञ भगवान् के चरणों पर वन्दना कर रहे हैं ॥

§ १०. मोग्गल्लान सुत्त (८. १०)

महामौद्गल्यायन के गुण

एक समय भगवान् पाँच सौ केवल अर्हत् भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ राजगृह में ऋषिगिरि के पास कालशिला पर विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने अपने चित्त से उनके चित्त को विमुक्त और उपाधिरहित हो गया जान लिया।

तब, आयुष्मान् वङ्गीश के मन में यह हुआ—यह भगवान् पाँच सौ केवल अर्हत् भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ राजगृह में ऋषिगिरि के पास कालशिला पर विहार कर रहे हैं। और, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने अपने चित्त से उनके चित्त को विमुक्त और उपाधिरहित हो गया जान लिया। तो, मैं भगवान् के सम्मुख आयुष्मान् महामौद्गल्यायन की उपयुक्त गाथाओं में प्रशंसा करूँ।

···तब, आयुष्मान् वङ्गीश भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में आयुष्मान् महामौद्गल्यायन की प्रशंसा करने लगे—

पहाड़ के किनारे बैठे हुये, दुःख के पार चले गये मुनि को,
श्रावक लोग घेरे हैं, जो त्रैविद्य और मृत्युञ्जय हैं॥
महा ऋद्धि-शाली मौद्गल्यायन अपने चित्त से जान लेते हैं,
इन सभी के विमुक्त और उपाधिरहित हो गये चित्त को॥
इस तरह सभी अंगों से अनेक प्रकार से सम्पन्न,
दुःखों के पार जानेवाले गौतम मुनि की सेवा करते हैं॥

§ ११. गग्गरा सुत्त (८. ११)

बुद्ध-स्तुति

एक समय भगवान् चम्पा में गग्गरा पुष्करिणी के तीर पर—पाँच सौ भिक्षुओं के एक बड़े संघ के, सात सौ उपासकों के, सात सौ उपासिकाओं के, और कई हजार देवताओं के साथ—विहार करते थे। उनमें भगवान् अपनी कान्ति और यश से बहुत शोभ रहे थे।

तब, आयुष्मान् वङ्गीश के मन में यह हुआ— ···उनमें भगवान् अपनी कान्ति और यश से बहुत शोभ रहे हैं। तो, मैं भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में उनकी स्तुति करूँ—

···। तब, आयुष्मान् वङ्गीश भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में उनकी स्तुति करने लगे—

मेघ-रहित आकाश में जैसे चाँद,
अपने निर्मल प्रकाश से शोभता है,
हे बुद्ध ! आप महामुनि भी वैसे ही,
अपने यश से सारे लोक में शोभ रहे हैं॥

§ १२. वङ्गीस सुत्त (८. १२)

वङ्गीश के उद्गार

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

उस समय, आयुष्मान् वङ्गीश अभी तुरत ही अर्हत्-पद या विमुक्ति-सुख की प्राप्ति का अनुभव कर रहे थे। उस समय उनके मुख से ये गाथायें निकल पड़ीं—

पहले केवल कविता करते विचरता रहा, गाँव से गाँव और शहर से शहर,

तब, सम्बुद्ध भगवान् का दर्शन हुआ, मन में बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हुई,
उनने मुझे धर्मोपदेश किया, स्कन्ध, आयतन और धातुओं के विषय में,
उनके धर्म को सुन, मैं घर से बेघर हो प्रव्रजित हो गया।
बहुतों की अर्थसिद्धि के लिए, मुनि ने बुद्धत्व का लाभ किया,
भिक्षु और भिक्षुणियों के लिए, जो नियाम को प्राप्त कर देख लिये हैं॥
आपको मेरा स्वागत हो; बुद्ध के पास मुझे,
तीन विद्यायें प्राप्त हुई हैं; बुद्ध का शासन सफल हुआ॥
पूर्वजन्मों की बात जानता हूँ, दिव्य चक्षु विशुद्ध हो गया है,
त्रैविद्य और ऋद्धिमान् हूँ, दूसरों के चित्त को जानता हूँ॥

वङ्गीश संयुत्त समाप्त॥

नवाँ परिच्छेद

९. वन-संयुत्त

§ १. विवेक सुत्त (९.१)

विवेक में लगना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय कोई भिक्षु कोशल के एक जंगल में विहार करता था।

उस समय वह भिक्षु दिन के विहार के लिये गया बुरे संसारी वितर्कों को मन में ला रहा था।

तब, उस वन में···वास करनेवाला देवता उस भिक्षु पर अनुकम्पा कर, उसकी शुभ कामना से उसे होश में ले आने के लिये, जहाँ वह भिक्षु था वहाँ आया। आकर, भिक्षु से गाथाओं में बोला—

विवेक की कामना से वन में पैठे हो,
किन्तु तुम्हारा मन बाहर भाग रहा है,
दूसरों के प्रति अपनी इच्छा को दबाओ,
और, तब वीतराग होकर सुखी होवो॥
स्मृतिमान् हो मन के मोह को छोड़ो,
सत्पुरुष बनो, जिसकी सभी बड़ाई करते हैं,
नीचे और बुरे,
काम-राग से तुम बहक मत जाओ॥
पक्षी जैसे धूल पड़ जाने पर,
पाँखें फटफटाकर उसे उड़ा देता है,
वैसे ही, उत्साही और स्मृतिमान् भिक्षु,
मन के राग को फटफटाकर झाड़ देता है॥

तब, देवता के ऐसा कहने पर वह भिक्षु सम्भल कर होश में आ गया।

§ २. उपट्ठान सुत्त (९.२)

उठो, सोना छोड़ो

एक समय कोई भिक्षु कोशल के एक जंगल में विहार करता था।

उस समय वह भिक्षु दिन के विहार के लिये गया सो रहा था।

तब, उस वन में वास करनेवाला देवता उस भिक्षु पर अनुकम्पा कर, उसकी शुभ कामना से उसे होश में ले आने के लिये, जहाँ वह भिक्षु था वहाँ आया। आकर, भिक्षु से गाथाओं में बोला—

उठो भिक्षु! क्या सोते हो! तुम्हें सोने से क्या काम?
तीर लगे छटपटाते हुये बेचैन आदमी को भला नींद कैसी?

जिस श्रद्धा से घर से बेघर होकर प्रव्रजित हुये हो,
उस श्रद्धा को जगाओ, नींद के वश में मत पड़ो ॥

[भिक्षु—]

सांसारिक काम अनित्य और अध्रुव हैं, जिनमें मूर्ख लुभाये रहते,
जो स्वच्छन्द और बन्धन से मुक्त है, उस प्रव्रजित को वे क्यों सतायें ?
छन्द-राग के दूर जाने से, अविद्या के सर्वथा हट जाने से,
जिसका ज्ञान शुद्ध हो गया है, उस प्रव्रजित को ये क्यों सतायें ?
विद्या से अविद्या को हटा, आश्रवों के क्षीण हो जाने से,
जो शोक और परेशानी से छूटा है, उस प्रव्रजित को वे क्यों सतावें ?
जो वीर्यवान् और प्रहितात्म है, नित्य दृढ़ पराक्रम करनेवाला है,
निर्वाण की चाह रखनेवाले, उस प्रव्रजित को ये क्यों सतावें ?

§ ३. कस्सपगोत्त सुत्त (९. ३)

बहेलिया को उपदेश

एक समय आयुष्मान् काश्यपगोत्र कोशल के किसी वन-खण्ड में विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् काश्यपगोत्र दिन के विहार के लिये गये हुये एक बहेलिये को उपदेश दे रहे थे।

तब, उस वन में वास करनेवाला देवता···आयुष्मान् काश्यपगोत्र से गाथाओं में बोला:—

प्रज्ञाहीन, मूर्ख, दुर्गम झाड़-पहाड़ में रहनेवाले बहेलिये को,
भिक्षु! बेवक्त उपदेश करते हुये आप मुझे मन्द मालूम होते हैं ॥
सुनता है किन्तु समझता नहीं, आँखें खोलता है किन्तु देखता नहीं,
धर्मोपदेश किये जाने पर मूर्ख अर्थ को नहीं बूझता ॥
काश्यप! यदि आप दस मसाल भी दिखावें,
तो यह रूपों को नहीं देख सकता है;
इसे तो आँख ही नहीं है ॥

देवता के ऐसा कहने पर आयुष्मान् काश्यपगोत्र होश में आकर सँभल गये।

§ ४. सम्बहुल सुत्त (९. ४)

भिक्षुओं का स्वच्छन्द विहार

एक समय कुछ भिक्षु कोशल के किसी वन-खण्ड में विहार करते थे।

तब, तीन महीना वर्षावास बीत जाने पर वे भिक्षु रमत (=चारिका) के लिये चल पड़े।

तब, उस वन में वास करनेवाला देवता उन भिक्षुओं को न देख, विलाप करता हुआ उस समय ये गाथायें बोला—

आज मुझे बड़ा उदास-सा मालूम हो रहा है,
इन अनेक आसनों को खाली देखकर,
वे ऊँची-ऊँची बातें करनेवाले पण्डित,
गौतम के श्रावक कहाँ चले गये ?

उसके ऐसा कहने पर, एक दूसरे देवता ने उसे गाथा में उत्तर दिया—

मगध को गये, कोशल को गये,
और कितने वज्जियों के देश को गये,
छूटे मृग जैसे स्वच्छन्द विचरनेवाले,
बिना घरवाले भिक्षु लोग विहार करते हैं ॥

§ ५. आनन्द सुत्त (९. ५)

प्रमाद न करना

एक समय आयुष्मान् आनन्द कोशल के किसी वन-खण्ड में विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् आनन्द को गृहस्थ लोग बड़े घेरे रहते थे।

तब, उस वन में वास करनेवाला देवता आयुष्मान् आनन्द पर अनुकम्पा कर, उनकी शुभ कामना से उन्हें होश में ले आने के लिये, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ आया। आकर, आयुष्मान् आनन्द से गाथाओं में बोला:—

इस जंगल-झाड़ में आकर,
हृदय में निर्वाण की आकांक्षा से,
हे गौतम श्रावक ! ध्यान करें, प्रमाद मत करें,
इस चहल-पहल से आपका का क्या होना है ?

देवता के ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्द होश में आकर सँभल गये।

§ ६. अनुरुद्ध सुत्त (९. ६)

संस्कारों की अनित्यता

एक समय आयुष्मान् अनुरुद्ध कोशल के किसी वन-खण्ड में विहार करते थे।

तब, त्रयस्त्रिंश लोक की जालिनी नामक एक देवता, जो आयुष्मान् अनुरुद्ध की पहले जन्म में भार्या थी, जहाँ आयुष्मान् अनुरुद्ध थे वहाँ आई। आकर आयुष्मान् अनुरुद्ध से गाथा में बोली:—

उसका ज़रा ख्याल करें जहाँ आपने पहले वास किया था,
त्रयस्त्रिंश देव-लोक में, जहाँ सभी प्रकार के ऐश-आराम थे,
जहाँ आप सदा देवकन्याओं से घिरे रहकर शोभते थे ॥

[अनुरुद्ध—]

अपने ऐश-आराम में लगीं, उन देवकन्याओं को धिक्कार है,
उन जीवों को भी धिक्कार है, जो देवकन्याओं को पाने में लगे हैं ॥

[जालिनी—]

वे सुख को भला, क्या जानें, जिनने नन्दन-वन नहीं देखा !
त्रयस्त्रिंश लोक के यशस्वी, नर और देवों का जो वास है ॥

[अनुरुद्ध—]

मूर्खे, क्या नहीं जानती है, कि अर्हतों ने क्या कहा है ?
सभी संस्कार अनित्य हैं, उत्पन्न और क्षीण होनेवाले,

उत्पन्न होकर निरुद्ध हो जाते हैं, उनका शान्त हो जाना ही सुख है ॥
फिर भी देह धरना नहीं है,
हे जालिनि ! किसी भी देवलोक में,
आवागमन का सिलसिला बन्द हो गया,
पुनर्जन्म अब होने का नहीं ॥

§ ७. नागदत्त सुत्त (९. ७)

देर तक गाँवों में रहना अच्छा नहीं

एक समय नागदत्त कोशल के किसी वन-खण्ड में विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् नागदत्त तड़के ही गाँव में पैठ जाते थे और बड़ा दिन बिताकर लौटते थे।

तब, उस वन में वास करनेवाला देवता आयुष्मान् नागदत्त पर अनुकम्पा कर, उनकी शुभ-कामना से उन्हें होश में ले आने के लिये, जहाँ आयुष्मान् नागदत्त थे वहाँ आया। आकर, आयुष्मान् नागदत्त से गाथाओं में बोला—

नागदत्त ! तड़के ही गाँव में पैठ,
बहुत दिन चढ़ जाने पर लौटते हो,
गृहस्थों से बहुत हिले-मिले विचरते हो,
उनके सुख-दुःख में सुखी दुःखी होते हो ॥
बड़े प्रगल्भ नागदत्त को डरता हूँ,
कुलों में बँधे हुये को,
मत बलवान् मृत्युराज,
अन्तक के वश में पड़ जाना ॥

तब, देवता के ऐसा कहने पर आयुष्मान् नागदत्त सँभलकर होश में आ गये।

§ ८. कुलघरणी सुत्त (९.८)

सह लेना उत्तम है

एक समय कोई भिक्षु कोशल में किसी वन-खण्ड में विहार करता था।

उस समय वह भिक्षु किसी गृहस्थ-कुल में बहुत देर तक बना रहता था।

तब, उस वन में वास करनेवाला देवता उस भिक्षु पर अनुकम्पा कर उसकी शुभ-कामना से उसे होश में ले आने लिये उस कुल की जो कुल-गृहणी थी उसका रूप धर जहाँ वह भिक्षु था वहाँ आया। आकर, भिक्षु से गाथा में बोला—

नदी के तीर पर, सराय में, सभा में, सड़कों पर,
लोग आपस में बातें करते हैं—हमारे-तुम्हारे में क्या भेद है ?

[भिक्षु—]

बातें बहुत फैल गई हैं, तपस्वी को सहनी चाहिये,
उससे लजाना नहीं पड़ेगा, उससे बदनामी नहीं होगी ॥
जो शब्द सुनकर चौंक जाता है, जंगल के मृग जैसे,
उसे लोग लघु-चित्त कहते हैं, उसका व्रत नहीं पूरा होता ॥

§ ९. वज्जिपुत्त सुत्त (९. ९)

भिक्षु जीवन के सुख की स्मृति

एक समय कोई वज्जिपुत्र भिक्षु वैशाली के किसी वन-खण्ड में विहार करता था।

उस समय, वैशाली में सारी रात की जगौती (एक पर्व) हो रही थी।

तब, वह भिक्षु वैशाली में बाजे-गाजे के शब्द को सुनकर पछताते हुये उस समय यह गाथा बोला:—

हम लोग अपने अलग एकान्त जंगल में पड़े हैं,
वन में कटे हुये लकड़ी के कुन्दे की तरह,
आज जैसी रात को भला,
हम लोगों को छोड़ दूसरा कौन अभागा होगा !!

तब, उस वन में वास करनेवाला देवता ··· भिक्षु से गाथा में बोला:—

आप लोग अपने अलग एकान्त जंगल में पड़े हैं,
वन में कटे हुये लकड़ी के कुन्दे की तरह,
आप को देख बहुतों को ईर्ष्या होती है,
स्वर्ग में जानेवालों को देख जैसे नरक में पड़े हुओं को ॥

तब, देवता के ऐसा कहने पर वह भिक्षु सँभलकर होश में आ गया।

§ १०. सज्झाय सुत्त (९. १०)

स्वाध्याय

एक समय कोई भिक्षु कोशल के एक वन-खण्ड में विहार करता था।

उस समय वह भिक्षु—जो पहले स्वाध्याय करने में बड़ा लगा रहता था—उत्सुकता-रहित हो चुपचाप अलग रहा करता था।

तब, उस वन में रहनेवाला देवता उस भिक्षु के धर्म-पठन को न सुन जहाँ वह भिक्षु था वहाँ आया, और गाथा में बोला:—

भिक्षु ! क्यों आप उन धर्मपदों को,
भिक्षुओं से मिलकर नहीं पढ़ा करते हैं !
धर्म को पढ़कर मन में सन्तोष होता है,
बाहरी संसार में भी उसकी बड़ी बड़ाई होती है ॥

[भिक्षु—]

पहले धर्मपदों को पढ़ने की ओर मन जाता था,
जब तक वैराग्य नहीं हुआ,
जब पूरा वैराग्य चला आया,
तो सन्त लोग देखे-सुने आदि पदार्थों को,
जानकर त्याग कर देना कहते हैं ॥

§ ११. अयोनिस सुत्त (९. ११)

उचित विचार करना

एक समय कोई भिक्षु कोशल के किसी वन-खण्ड में विहार करता था।

उस समय, दिन के विहार के लिये गये उस भिक्षु के मन में पाप-विचार उठने लगे, जैसे:—काम-विचार, व्यापाद-विचार, विहिंसा-विचार।

तब, उस वन-खण्ड में रहनेवाला देवता उस भिक्षु पर अनुकम्पा कर, उसकी शुभेच्छा से, उसको होश में ले आने के लिये, जहाँ वह भिक्षु था वहाँ गया। आकर भिक्षु से गाथाओं में बोला—

> वेठीक मनन करने से, आप बुरे विचारों में पड़े हैं,
> इन बुरे वितर्कों को छोड़, उचित विचार मन में लावें।
> बुद्ध, धर्म, संघ में श्रद्धा रख, शील का पालन करते हुये,
> बड़े आनन्द और प्रीतिसुख का अवश्य लाभ करोगे,
> उस आनन्द को पा दुःखों का अन्त कर दोगे॥

देवता के ऐसा कहने पर वह भिक्षु होश में आकर सँभल गया।

§ १२. मज्झन्तिक सुत्त (९. १२)

जंगल में मंगल

एक समय कोई भिक्षु कोशल के किसी वन-खण्ड में विहार करता था।

तब, उस वन में वास करनेवाला देवता जहाँ वह भिक्षु था वहाँ आया। आकर, भिक्षु से यह गाथा बोलाः—

> इस बीच दुपहरिये में, जब पक्षी घोंसले में छिप गये हैं,
> सारा जंगल झाँय-झाँय कर रहा है, सो मुझे डर सा लगता है॥

[भिक्षु—]

> इस बीच दुपहरिये में, जब पक्षियाँ घोंसले में छिप गये हैं,
> सारा जंगल झाँय झाँय कर रहा है, सो मुझे बड़ी प्रीति होती है॥

§ १३. पाकतिन्द्रिय सुत्त (९. १३)

दुराचार के दुर्गुण

एक समय कुछ भिक्षु कोशल के किसी वन-खण्ड में विहार करते थे। वे बड़े उद्धत, उद्दण्ड, चपल,बकवादी, बुरी बातें करनेवाले, मन्द, असम्प्रज्ञ, असमाहित, विभ्रान्तचित्त और दुराचारी थे।

तब, उस वन में वास करनेवाला देवता, उन भिक्षुओं पर अनुकम्पा कर उनकी शुभेच्छा से उन्हें होश में ले आने के लिए जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ आया। आकर उन भिक्षुओं से गाथा में बोलाः—

[देखो २. २. § ५.]

§ १४. पदुमपुप्फ सुत्त (९. १४)

विना दिये पुष्प सूँघना भी चोरी है

एक समय कोई भिक्षु कोशल के किसी वन-खण्ड में विहार करता था।

उस समय वह भिक्षु भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने के बाद पुष्करिणी में पैठकर एक पद्म को सूँघ रहा था।

तब, उस वन में रहनेवाला देवता ··· [पूर्ववत्] भिक्षु से गाथा में बोलाः—

> जो इस वारिज पुष्प को चोरी से सूँघ रहे हो,
> सो एक प्रकार की चोरी ही है, मारिष ! आप गन्ध-चोर हैं॥

[भिक्षु—]

न कुछ ले जाता हूँ, न कुछ नष्ट करता हूँ, दूर ही से मैं फूल सूँघता हूँ,
तब मुझे कोई गन्ध-चोर कैसे कह सकता है ?
जो भिसों को उखाड़ देता है, पुण्डरीकों को खा जाता है,
जो ऐसा काम करता है, उसे यह क्यों नहीं कहते ॥

[देवता—]

अत्यन्त लोभ में पड़ा मनुष्य धाई के कपड़े जैसा गन्दा है,
वैसे को कहना बेकार है, हाँ, आपको अलबत्ता कह सकता हूँ;
निष्पाप, नित्य पवित्रता की खोज करनेवाले पुरुष का,
बाल की नोंक भर भी पाप बड़े बादल के ऐसा मालूम होता है ॥

[भिक्षु—]

अरे ! यक्ष ने मुझे जान लिया, इसी से मुझ पर अनुकम्पा कर रहा है,
यक्ष ! फिर भी मुझे बरजना जब ऐसा करते देखना ॥

[देवता—]

मैं आपकी नौकरी नहीं करता, न आपसे मुझे कोई वेतन मिलता है,
भिक्षु, आप स्वयं जान लें, जिससे सुगति मिले ॥

··· भिक्षु होश में आकर सँभल गया।

वन-संयुत्त समाप्त।

दसवाँ परिच्छेद

१०. यक्ष-संयुत्त

§ १. इन्दक सुत्त (१०. १)

पैदाइश

एक समय भगवान् राजगृह में इन्द्रकूट पर्वत पर इन्द्रक यक्ष के भवन में विहार करते थे।

तब, इन्द्रक यक्ष जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर, भगवान् से गाथा में बोला:—

रूप जीव नहीं है, ऐसा बुद्ध कहते हैं,
तो, यह शरीर कैसे पाता है?
यह अस्थिपिण्ड कहाँ से आता है?
यह गर्भाग्नि में कैसे पड़ जाता है?

[भगवान्—]

पहले कलल होता है, कलल से अब्बुद होता है,
अब्बुद से पेशी पैदा होता है, पेशी फिर घन हो जाता है,
घन से फूटकर केश, लोम और नख पैदा हो जाते हैं,
जो कुछ अन्न, पान या भोजन को माता खाती है,
उसी से उसका पोषण होता है—माता की कोख में पड़े हुए मनुष्य का॥

§ २. सक्क सुत्त (१०. २)

उपदेश देना बन्धन नहीं

एक समय भगवान् राजगृह में गृद्धकूट पर्वत पर विहार करते थे।

तब शक्र नाम का एक यक्ष जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर भगवान् से गाथा में बोला—

जिनकी सभी गाँठें कट गई हैं, स्मृतिमान् और विमुक्त हुए,
आप श्रमण को यह अच्छा नहीं, कि दूसरों को उपदेश देते फिरें॥

[भगवान्—]

शक्र! किसी तरह भी किसी का संवास हो जाता है,
तो, ज्ञानी पुरुष के मन में उसके प्रति अनुकम्पा हो आती है,
प्रसन्न मन से जो दूसरे को उपदेश देता है,
उससे वह बन्धन में नहीं पड़ता, अपनी अनुकम्पा अपने में जो पैदा होती है॥

§ ३. सूचिलोम सुत्त (१०. ३)

सूचिलोम यक्ष के प्रश्न

एक समय भगवान् गया में टङ्कितमञ्च पर सूचिलोम यक्ष के भवन में विहार करते थे।

उस समय खर और सूचिलोम नाम के दो यक्ष भगवान् के पास ही से गुजर रहे थे।

तब, खर यक्ष सूचिलोम यक्ष से बोला—अरे ! यह श्रमण है !

श्रमण नहीं, नकली श्रमण है। तो, जानना चाहिये कि यह सचमुच में श्रमण है या ढोंगी है।

तब, सूचिलोम यक्ष जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर, भगवान् से अपने शरीर को टकरा देना चाहा।

भगवान् ने अपने शरीर को खींच लिया।

तब, सूचिलोम यक्ष भगवान् से बोला—श्रमण ! मुझसे डर गये क्या ?

आवुस ! तुमसे मैं डरता नहीं; किन्तु तुम्हारा स्पर्श अच्छा नहीं।

श्रमण ! मैं तुमसे प्रश्न पूछूँगा। यदि उसका उत्तर तुम नहीं दे सके तो तुम्हें बदहवास कर दूँगा, तुम्हारी छाती को चीर दूँगा, या पैर पकड़कर गङ्गा के पार फेंक दूँगा।

आवुस ! मैं ···सारे लोक में किसी को ऐसा नहीं देखता हूँ जो मुझे बदहवास कर दे, मेरी छाती को चीर दे, या पैर पकड़कर मुझे गङ्गा के पार फेंक दे। किन्तु तो भी, जो चाहे प्रश्न पूछ सकते हो।

[यक्ष—]

राग और द्वेष कैसे पैदा होते हैं ?
उदासी, मन का लगना और भय से रोंगटे खड़ा हो आना :
इसका क्या कारण है ?
मन के वितर्क कहाँ से उठकर खींच ले जाते,
जैसे कौये को पकड़कर लड़के लोग ?

[भगवान्—]

राग और द्वेष यहीं से पैदा होते हैं,
उदासी, मन का लगना··· का कारण यही है,
मन के वितर्क यहीं से उठकर खींच ले जाते हैं,
जैसे कौये को पकड़कर लड़के लोग ॥
स्नेह में पड़कर अपने में पैदा होनेवाले,
जैसे बरगद की शाखायें,
कामों में पसरकर फैली,
जंगल में मालुवा लता के समान ॥
जो उसके उत्पत्ति-स्थान को जान लेते हैं,
वे उसका दमन करते हैं, हे यक्ष ! सुनो,
वे इस दुस्तर धारा को पार कर जाते हैं,
जिसे पहले नहीं तरा था; उनका पुनर्जन्म नहीं होता ॥

§ ४. मणिभद्द सुत्त (१०. ४)

स्मृतिमान् का सदा कल्याण होता है

एक समय भगवान् मगध में मणिमालक चैत्य पर मणिभद्र यक्ष के भवन में विहार करते थे।

तब, मणिभद्र यक्ष जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर, भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

स्मृतिमान् का सदा कल्याण होता है, स्मृतिमान् को सुख होता है,
वही श्रेष्ठ है जो स्मृतिमान् है, और, वही वैर से छूट जाता है ॥

[भगवान्—]

स्मृतिमान् का सदा कल्याण होता है, स्मृतिमान् को सुख होता है,
वही श्रेष्ठ है जो स्मृतिमान् है, वह वैर से बिल्कुल छूट नहीं जाता ॥
जिसका मन दिन-रात अहिंसा में लगा रहता है,
सभी जीवों के प्रति जो सदा मैत्री-भावना करता रहता है,
उसे किसी के साथ वैर नहीं रह जाता ॥

§ ५. सानु सुत्त (१०. ५)

उपोसथ करनेवाले को यक्ष नहीं पीड़ित करते

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।
उस समय, किसी उपासिका का सानु नामक पुत्र यक्ष से पकड़ लिया गया था।
तब, वह उपासिका रोती हुई उस समय यह गाथा बोली—

मैंने अर्हतों की पूजा की, मैंने अर्हतों की बात सुनी,
वह मैं आज देखती हूँ—यक्ष लोग सानु पर सवार हैं ॥
चतुर्दशी, पञ्चदशी, पक्ष की अष्टमी,
और, प्रातिहार्य पक्ष को, अष्टांग व्रत पालती हुई,
उपोसथ व्रत रखती हुई, अर्हतों की बात सुननेवाली,
वह मैं आज देखती हूँ, सानु पर यक्ष सवार हैं ॥

[यक्ष—]

चतुर्दशी, पञ्चदशी, पक्ष की अष्टमी,
और प्रातिहार्य पक्ष को, अष्टांग व्रत पालने,
उपोसथ व्रत रखने, तथा ब्रह्मचर्य पालनेवालों के साथ,
यक्ष लोग छेड़-छाड़ नहीं करते,
अर्हत् लोग यही कहते हैं ॥
प्रबुद्ध सानु को यक्षों की इस बात को कह दो,
पाप-कर्म मत करना, प्रगट या छिपकर,
यदि पाप-कर्म करोगे या करते हो,
तो तुम्हें दुःख से कभी मुक्ति नहीं हो सकती,
चाहे कितना भी दौड़ो या कूदो-फाँदो ॥

[सानु—]

माँ ! पुत्र के मर जाने से मातायें रोती हैं,
अथवा यदि जीते पुत्र को नहीं देख सकती हों,
माँ ! मुझे जीते देखती हुई भी,
क्योंकर मेरे लिये रो रही हो ?

[माता—]

पुत्र के मर जाने से मातायें रोती हैं,
अथवा, यदि जीते पुत्र को नहीं देख सकती हों,
और उसके लिये भी जो जीत कर लौट आता है,

पुत्र, उसके लिये भी रोते हैं,
जो मरकर फिर भी जी उठता है,
हे तात ! तुम एक विपत्ति से निकलकर दूसरी में पड़ना चाहते हो,
एक नरक से निकल कर दूसरे में गिरना चाहते हो,
आगे बढ़ो, तुम्हारा कल्याण हो,
किसे हम कष्ट दें ?
जलते हुए से कुशलपूर्वक निकले हुये को,
क्या तुम फिर भी जला देना चाहते हो ?

§ ६. पियङ्कर सुत्त (१०. ६)

पिशाच-योनि से मुक्ति के उपाय

एक समय आयुष्मान् अनुरुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् अनुरुद्ध रात के भिनसारे उठकर धर्मपदों को पढ़ रहे थे।

तब, प्रियङ्कर माता यक्षिणी अपने पुत्र को यों ठोंक रही थी—

मत शोर मचाओ, हे प्रियङ्कर !
भिक्षु धर्मपदों को पढ़ रहा है,
यदि हम धर्मपदों को जानें
और आचरण करें तो हमारा हित होगा,
जीवों के प्रति संयम रक्खें,
जान-बूझकर झूठ मत बोलें,
और इस पिशाच-योनि से मुक्त हो जावें॥

§ ७. पुनब्बसु सुत्त (१०. ७)

धर्म सबसे प्रिय

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

उस समय भगवान् भिक्षुओं को निर्वाण सम्बन्धी धर्मोपदेश ···कर रहे थे। भिक्षु भी ···कान दिये सुन रहे थे।

तब, पुनर्वसु-माता यक्षिणी अपने पुत्र को यों ठोंक रही थी—

उत्तरिके ! चुप रहो, पुनर्वसु ! चुप रहो,
कि मैं श्रेष्ठ गुरु भगवान् बुद्ध के धर्म को सुन सकूँ॥
भगवान् सभी गाँठ से छूटनेवाले निर्वाण को कह रहे हैं,
इस धर्म में मेरी श्रद्धा बढ़ी बढ़ रही है॥
संसार में अपना पुत्र प्यारा होता है, अपना पति प्यारा होता है,
मुझे इस धर्म की खोज उससे भी बढ़कर प्यारी है॥
कोई पुत्र, पति या प्रिय दुःखों से मुक्त नहीं कर सकता,
जैसे धर्म-श्रवण जीवों को दुःखों से मुक्त कर देता है॥
दुःख से भरे संसार में, जरा और मरण से लगे,

जरा और मरण से मुक्ति के लिए जिस धर्म का उदय हुआ है,
उस धर्म को सुनना चाहता हूँ : पुनर्वसु ! चुप रहो ॥

[पुनर्वसु—]

माँ ! मैं कुछ न बोलूँगा, उत्तरा भी चुप है,
तुम धर्म-श्रवण करो, धर्म का सुनना सुख है,
सद्धर्म को जान, हे माँ ! हम दुःख को हटा देंगे ॥
अन्धकार में पड़े देवता और मनुष्यों में सूरज के समान,
परमेश्वर भगवान् बुद्ध ज्ञानी धर्मोपदेश करते हैं ॥

[माता—]

मेरी कोख से पैदा हुये तुम पण्डित पुत्र धन्य हो,
मेरा पुत्र बुद्ध के शुद्ध धर्म पर श्रद्धा रखता है ॥
पुनर्वसु ! सुखी रहो, आज मैं ऊपर उठ गई,
आर्य-सत्यों का दर्शन हो गया,
उत्तरे ! तुम भी मेरी बात सुनो ॥

§ ८. सुदत्त सुत्त (१०. ८)

अनाथपिण्डिक द्वारा बुद्ध का प्रथम दर्शन

एक समय भगवान् राजगृह के शीतवन में विहार करते थे।

उस समय अनाथपिण्डिक गृहपति किसी काम से राजगृह में आया हुआ था।

अनाथपिण्डिक गृहपति ने सुना कि संसार में बुद्ध उत्पन्न हुये हैं। उसी समय वह भगवान् के दर्शन के लिये लालायित हो गया।

तब, अनाथपिण्डिक गृहपति के मन में ऐसा हुआ—आज चलकर भगवान् को देखने का अच्छा समय नहीं है। कल उचित समय पर उनके दर्शन को चलूँगा। बुद्ध को याद करते-करते सो गया। 'सुबह हो गया' समझ, रात में तीन बार उठ गया।

तब, अनाथपिण्डिक गृहपति जहाँ शिवथिक-द्वार (श्मशान का फाटक) था वहाँ गया। अमनुष्यों ने द्वार खोल दिया।

तब, अनाथपिण्डिक गृहपति के नगर से निकलने पर प्रकाश हट गया और अँधेरा छा गया। भय से वह स्तम्भित हो गया, उसके रोंगटे खड़े हो गये। वहाँ से फिर लौट जाने की इच्छा होने लगी।

तब, शीवक यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से ही शब्द सुनाने लगा।

सौ घोड़े, सौ हाथी, सौ घोड़ोंवाला रथ,
मोती-माणिक्य के कुण्डल पहने लाख कन्यायें;
ये सभी तुम्हारे इस एक डेग के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं हैं ॥
गृहपति ! आगे बढ़ो, गृहपति ! आगे बढ़ो,
तुम्हारा आगे बढ़ना ही अच्छा है, पीछे हटना नहीं ॥

तब, अनाथपिण्डिक गृहपति के सामने से अन्धकार हट गया और प्रकाश फैल गया। सारा भय··· शान्त हो गया।

दूसरी बार भी···

तीसरी बार भी अनाथपिण्डिक के सामने से प्रकाश हट गया और अन्धकार छा गया। भय से वह स्तम्भित हो गया, उसके रोंगटे खड़े हो गये। वहाँ से फिर लौट जाने की इच्छा होने लगी। तीसरी बार भी शीवक यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से ही शब्द सुनाने लगा।

…[पूर्ववत्]

तुम्हारा आगे बढ़ना ही अच्छा है, पीछे हटना नहीं॥

तब, अनाथपिण्डिक गृहपति के सामने से अन्धकार हट गया और प्रकाश फैल गया। सारा भय…शान्त हो गया।

तब, अनाथपिण्डिक शीतवन में जहाँ भगवान् थे वहाँ गया।

उस समय भगवान् रात के भिनसारे उठकर खुली जगह में टहल रहे थे।

भगवान् ने अनाथपिण्डिक गृहपति को दूर ही से आते देखा। देखकर, टहलने से रुक गये और बिछे आसन पर बैठ गये। बैठकर, भगवान् ने अनाथपिण्डिक गृहपति को यह कहा—सुदत्त! यहाँ आओ।

अनाथपिण्डिक ने यह देख कि भगवान् मुझे नाम लेकर पुकार रहे हैं, खड़े उनके चरणों पर गिर यह कहा—भन्ते! भगवान् ने तो सुखपूर्वक सोया?

[भगवान्—]

सदा ही सुख से सोता है, जो निष्पाप और विमुक्त है,
जो कामों में लिप्त नहीं होता, उपाधिरहित हो जो शान्त हो गया है,
सभी आसक्तियों को काट, हृदय के क्लेश को दबा,
शान्त हो गया सुख से सोता है, चित्त की शान्ति पाकर॥

§ ९. सुक्का सुत्त (१०. ९)

शुक्रा के उपदेश की प्रशंसा

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दक-निवाप में विहार करते थे।

उस समय शुक्रा भिक्षुणी बड़ी भारी सभा के बीच धर्मोपदेश कर रही थी।

तब, एक यक्ष शुक्रा भिक्षुणी के धर्मोपदेश से अत्यन्त संतुष्ट हो सड़क से सड़क और चौराहा से चौराहा घूम-घूमकर यह गाथा बोल रहा था।

राजगृह के लोगो! क्या कर रहे हो,
दारू पीकर मस्त बने जैसे?
शुक्रा भिक्षुणी के उपदेश नहीं सुनते,
जो अमृत-पद को बखान रही है,
उस अप्रतिवाणीय, बिना सेचे ओज से भरे,
(अमृत को) ज्ञानी लोग पीते हैं,
राही जैसे मेघ के जल को॥

§ १०. सुक्का सुत्त (१०. १०)

शुक्रा को भोजन-दान की प्रशंसा

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे।

उस समय कोई उपासक शुक्रा भिक्षुणी को भोजन दे रहा था।

तब, शुक्रा भिक्षुणी पर अत्यन्त श्रद्धा रखनेवाला एक यक्ष सड़क से सड़क और चौराहा से चौराहा घूम-घूम कर यह गाथा बोल रहा था।

बहुत भारी पुण्य कमाया,
इस प्रज्ञावान् उपासक ने,
जो शुक्रा को भोजन दिया,
उसे जो सारी ग्रन्थियों से विमुक्त हो गई है॥

§ ११. चीरा सुत्त (१०. ११)

चीरा को चीवर-दान की प्रशंसा

···वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे।

उस समय कोई उपासक चीरा भिक्षुणी को चीवर दे रहा था। तब, चीरा भिक्षुणी पर अत्यन्त श्रद्धा रखनेवाला एक यक्ष सड़क से सड़क और चौराहा से चौराहा घूम-घूम कर यह गाथा बोल रहा था।

बहुत भारी पुण्य कमाया,
इस प्रज्ञावान् उपासक ने,
जो चीरा को चीवर दिया,
उसे जो सारी ग्रन्थियों से विमुक्त हो गई है॥

§ १२. आलवक सुत्त (१०. १२)

आलवक-दमन

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् आलवी में आलवक यक्ष के भवन में विहार करते थे।

तब, आलवक यक्ष भगवान् से बोला—श्रमण ! निकल जा।

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह भगवान् निकल गये।

श्रमण ! भीतर चले आओ !

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह भगवान् भीतर चले आये।

दूसरी बार भी···।

तीसरी बार भी···।

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह भगवान् भीतर चले आये।

चौथी बार भी आलवक यक्ष बोला—श्रमण ! निकल जा।

आवुस ! मैं नहीं निकलता। तुम्हें जो करना है करो।

श्रमण ! मैं तुमसे प्रश्न पूछूँगा। यदि उत्तर नहीं दे सके तो तुम्हें बदहवास कर दूँगा, छाती चीर दूँगा, या पैर पकड़ कर गङ्गा के पार फेंक दूँगा।

आवुस ! सारे लोक में···मैं किसी को नहीं देखता जो मुझे बदहवास कर दे, मेरी छाती चीर दे, या पैर पकड़कर मुझे गंगा के पार फेंक दे। किन्तु, तुम्हें जो पूछना है मजे में पूछ सकते हो।

[यक्ष—]

पुरुष का सर्वश्रेष्ठ धन क्या है ?
क्या बटोरा हुआ सुख देता है ?
रसों में सबसे स्वादिष्ट क्या है ?
कैसा जीना श्रेष्ठ कहा जाता है ?

[भगवान्—]

श्रद्धा पुरुष का सर्वश्रेष्ठ धन है,
प्रयोग हुआ धर्म सुख देता है,
सत्य रसों में सबसे स्वादिष्ट है,
प्रज्ञा-पूर्वक जीना श्रेष्ठ कहा जाता है ॥

[यक्ष—]

बाढ़ को कैसे पार कर जाता है ?
समुद्र को कैसे तर जाता है ?
कैसे दुःखों का अन्त कर देता है ?
कैसे परिशुद्ध हो जाता है ?

[भगवान्—]

श्रद्धा से बाढ़ को पार कर जाता है,
अप्रमाद से समुद्र को तर जाता है,
वीर्य से दुःख का अन्त कर देता है,
प्रज्ञा से परिशुद्ध हो जाता है ॥

[यक्ष—]

कैसे प्रज्ञा का लाभ करता है ?
धन को कैसे कमा लेता है ?
कैसे कीर्ति प्राप्त करता है ?
मित्रों को कैसे अपना लेता है ?
इस लोक से परलोक जाकर,
कैसे शोक नहीं करता ?

[भगवान्—]

निर्वाण की प्राप्ति के लिये अर्हन् और धर्म पर श्रद्धा रख,
अप्रमत्त और विचक्षण पुरुष उनकी शुश्रूषा कर प्रज्ञा लाभ करता है ।
अनुकूल काम करनेवाला, परिश्रमी, उत्साही धन कमाता है,
सत्य से कीर्ति प्राप्त करता है, देकर मित्रों को अपना लेता है,
ऐसे ही इस लोक से परलोक जाकर शोक नहीं करता ॥
जिस श्रद्धालु गृहस्थ के ये चारों धर्म होते हैं,
सत्य, दम, धृति और त्याग वही परलोक जाकर शोक नहीं करता ॥
हाँ, तुम जाकर दूसरे श्रमण और ब्राह्मणों को भी पूछो,
कि क्या सत्य, दम, त्याग और क्षान्ति से बढ़कर कुछ और भी है ?

[यक्ष—]

अब भला, दूसरे श्रमण ब्राह्मणों को क्यों पूछूँ !
आज हमने जान लिया, कि पारलौकिक परमार्थ क्या है,
मेरे कल्याण के लिये ही बुद्ध आलवी में पधारे,
आज हमने जान लिया कि किसको देने का महाफल होता है ॥
सो मैं गाँव से गाँव, और शहर से शहर विचरूँगा,
बुद्ध और उनके धर्म के महत्त्व को नमस्कार करते ॥

इन्द्रक वर्ग समाप्त

यक्ष-संयुत्त समाप्त

ग्यारहवाँ परिच्छेद

११. शक्र-संयुत्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

देवासुर-संग्राम, परिश्रम की प्रशंसा

§ १. सुवीर सुत्त (११. १. १)

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—हे भिक्षुओ !

"भदन्त !" कहकर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! पूर्वकाल में असुरों ने देवों पर चढ़ाई की। तब, देवेन्द्र शक्र ने सुवीर देवपुत्र को आमन्त्रित किया—तात ! ये असुर देवों पर चढ़ाई कर रहे हैं। तात सुवीर ! जाओ उनका सामना करो। भिक्षुओ ! तब, "भदन्त ! बहुत अच्छा" कह सुवीर देवपुत्र ने शक्र को उत्तर दे, गफ़लत किये रहा।

भिक्षुओ ! दूसरी बार भी···

भिक्षुओ ! तीसरी बार भी देवेन्द्र शक्र ने सुवीर देवपुत्र को···। सुवीर देवपुत्र गफ़लत किये रहा।

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र सुवीर देवपुत्र को गाथा में बोला—

> बिना अनुष्ठान और परिश्रम किये जहाँ सुख की प्राप्ति हो जाती है,
> सुवीर ! तुम वहीं चले जाओ, मुझे भी वहीं ले चलो ॥

[सुवीर—]

> आलसी, काहिल, जिससे कुछ भी नहीं किया जाता,
> वैसे मुझे हे शक्र ! सभी कामों में सफल होने का वर दें ॥

[शक्र—]

> जहाँ आलसी, काहिल, अत्यन्त सुख पाता है,
> सुवीर ! तुम वहीं चले जाओ, मुझे भी वहीं ले चलो ॥

[सुवीर—]

> हे देवश्रेष्ठ शक्र ! कर्म छोड़, जिस सुख को पा,
> शोक और परेशानी से छूट जाऊँ, ऐसा वर दें ॥

[शक]—

> यदि कर्म को छोड़कर कोई कभी नहीं जीता है,
> तो निर्वाण ही का मार्ग है, सुवीर ! तुम वहाँ जाओ,
> मुझे भी वहाँ ले चलो ॥

भिक्षुओ ! वह देवेन्द्र शक्र अपने पुण्य के प्रताप से त्रयस्त्रिंश देवों पर ऐश्वर्य या राज्य करते हुये उत्साह और वीर्य का प्रशंसक है। भिक्षुओ ! तुम भी, ऐसे स्वाख्यात धर्म-विनय में प्रव्रजित हो उत्साह-पूर्वक बड़े साहस से परिश्रम करो अप्राप्त की प्राप्ति के लिये, नहीं पहुँचे स्थान पर पहुँचने के लिये, नहीं साक्षात्कार किये का साक्षात्कार करने के लिये; इसी में तुम्हारी शोभा है।

२. सुसीम सुत्त (११. १. २)

परिश्रम की प्रशंसा

श्रावस्ती जेतवन में।

वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—हे भिक्षुओ !

"भदन्त !" कहकर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले :—भिक्षुओ ! पूर्वकाल में असुरों ने देवों पर चढ़ाई की। तब, देवेन्द्र शक्र ने **सुसीम** देवपुत्र को आमन्त्रित किया "[शेष पूर्ववत्]

§ ३. धजग्ग सुत्त (११. १. ३)

देवासुर-संग्राम, त्रिरत्न का माहात्म्य

श्रावस्ती जेतवन में।

···भगवान् बोले—भिक्षुओ ! पूर्वकाल में एक बार देवासुर-संग्राम छिड़ गया था।

भिक्षुओ ! तब, देवेन्द्र शक्र ने त्रयस्त्रिंश लोक के देवों को आमन्त्रित किया—हे मारिषो ! यदि रण-क्षेत्र में आप लोगों को डर लगने लगे, आप स्तम्भित हो जायँ, आपके रोंगटे खड़े हो जायँ, तो उस समय मेरे ध्वजाग्र का अवलोकन करें। मेरे ध्वजाग्र का अवलोकन करते ही आपका सारा भय जाता रहेगा। यदि मेरे ध्वजाग्र को नहीं देख सकें तो देवराज प्रजापति के ध्वजाग्र का अवलोकन करें।···

यदि देवराज प्रजापति के ध्वजाग्र को नहीं देख सकें तो देवराज वरुण के ध्वजाग्र को···।

···देवराज ईशान के ध्वजाग्र का अवलोकन करें। इनके ध्वजाग्र का अवलोकन करते ही आपका सारा भय जाता रहेगा।

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र के, देवराज प्रजापति, वरुण, या ईशान के ध्वजाग्र का अवलोकन करने से कितनों का भय जा भी सकता था और कितनों का नहीं भी जा सकता था।

सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि देवेन्द्र शक्र अवीतराग, अवीतद्वेष, अवीतमोह, भीरु, स्तम्भित हो जानेवाला, घबड़ाकर भाग जानेवाला था।

भिक्षुओ ! किन्तु, मैं तुम से कहता हूँ। भिक्षुओ ! यदि वन में गये, शून्यागार में बैठे, या वृक्ष-मूल के नीचे बैठे तुम्हें भय लगे···, तो उस समय मेरा स्मरण करो—ऐसे भगवान् अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, विद्या और चरण से सम्पन्न, सुगति को प्राप्त, लोकविद्, अनुत्तर, पुरुषों को दमन करने में सारथी के तुल्य, देवताओं और मनुष्यों में बुद्ध, भगवान् हैं।

भिक्षुओ ! मेरा स्मरण करने ही तुम्हारा सारा भय···चला जायगा।

यदि मेरा नहीं तो धर्म का स्मरण करो—भगवान् का धर्म स्वाख्यात (=अच्छी तरह वर्णित), सांदृष्टिक (= देखते ही देखते फल देनेवाला), अकालिक (=बिना देरी के सफल होनेवाला), किसी को भी आँख में खारा उतरनेवाला, निर्वाण तक ले जानेवाला और विज्ञों के द्वारा अपने भीतर ही भीतर जाना जाने योग्य है।

भिक्षुओ ! धर्म का स्मरण करते ही तुम्हारा सारा भय···चला जायगा।

यदि धर्म का नहीं तो संघ का स्मरण करो—भगवान् का श्रावक-संघ सुप्रतिपन्न (=अच्छे मार्ग पर आरूढ़) है, ऋजुप्रतिपन्न (=सीधे मार्ग पर आरूढ़) है, ज्ञान के मार्ग पर आरूढ़ है, उचित ढंग से मार्ग पर आरूढ़ है जो यह पुरुषों का चार जोड़ा, आठ पुरुष हैं*। यही भगवान् का श्रावक-संघ निमन्त्रण करने के योग्य है, सत्कार करने के योग्य है, दान देने के योग्य है, प्रणाम् करने के योग्य है, संसार का अनुत्तर पुण्य-क्षेत्र है।

भिक्षुओ ! संघ का स्मरण करते ही तुम्हारा सारा भय चला जायगा।

सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध, वीतराग, वीतद्वेष, वीतमोह, अभय और दृढ़ हैं।

भगवान् ने यह कहा। यह कहकर बुद्ध ने फिर भी कहा—

अरण्य में, या वृक्ष के नीचे, हे भिक्षुओ ! या शून्यागार में,
सम्बुद्ध का स्मरण करो, तुम्हारा भय नहीं रहने पायगा॥
लोकश्रेष्ठ नरोत्तम बुद्ध का यदि स्मरण न करो,
तो मोक्षदायक सुदेशित धर्म का स्मरण करो॥
मोक्षदायक सुदेशित धर्म का यदि स्मरण न करो,
तो अनुत्तर पुण्य-क्षेत्र संघ का स्मरण करो॥
भिक्षुओ ! इस प्रकार बुद्ध, धर्म, या संघ के स्मरण से,
भय, स्तम्भित हो जाना, या रोमाञ्च सभी चला जायगा॥

§ ४. वेपचित्ति सुत्त (११. १. ४)

क्षमा और सौजन्य की महिमा

श्रावस्ती जेतवन में।

···भगवान् बोले—भिक्षुओ ! पूर्वकाल में देवासुर-संग्राम छिड़ गया था।

तब, असुरेन्द्र वेपचित्ति ने असुरों को आमन्त्रित किया—मारिसो ! यदि इस देवासुर-संग्राम में असुरों की जीत और देवों की हार हो जाय, तो देवेन्द्र शक्र को हाथ, पैर और पाँच बन्धनों से बाँधकर असुरपुर में मेरे पास ले आओ।

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र ने भी त्रयस्त्रिंश लोक के देवों को आमन्त्रित किया—मारिसो ! यदि इस देवासुर-संग्राम में देवों की जीत और असुरों की हार हो जाय, तो असुरेन्द्र **वेपचित्ति** को पाँच बन्धनों से बाँधकर सुधर्मा सभा में मेरे पास ले आओ।

भिक्षुओ ! उस संग्राम में देवों की जीत और असुरों की हार हुई।

भिक्षुओ ! तब, देवों ने असुरेन्द्र **वेपचित्ति** को गले में पाँचवाँ बन्धन डाल **सुधर्मा**-सभा में देवेन्द्र शक्र के पास ले आया।

भिक्षुओ ! वेपचित्ति असुरेन्द्र गले में पाँचवें बन्धन से बँधे रह देवेन्द्र शक्र की **सुधर्मा**-सभा में पैठते और वहाँ से निकलते असभ्य कड़े वचनों से गालियाँ देता था।

तब, भिक्षुओ ! **मातलि-संग्राहक** ने देवेन्द्र शक्र को गाथा में कहा—

* स्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत् मार्ग तथा फल को प्राप्त ही चार जोड़ा एवं आठ पुरुष हैं।

हे शक्र ! क्या आपको डर लगता है ?
क्या अपने को कमजोर देखकर सह रहे हैं ?
अपने सामने ही वेपचित्ति के,
इन कड़े-कड़े शब्दों को सुनकर भी !

[शक्र—]

न भय से और न कमजोरी से, मैं वेपचित्ति की बातें सह रहा हूँ,
मेरे जैसा कोई विज्ञ ऐसे मूर्ख से क्या मुँह लगाने जाय !

[मातलि—]

मूर्ख और भी बढ़ जाते हैं, यदि उन्हें दबा देनेवाला कोई नहीं होता है,
इसलिये, अच्छी तरह दण्ड दे, और मूर्ख को रोक दे ॥

[शक्र—]

मूर्ख को रोकने का मैं यही सबसे अच्छा उपाय समझता हूँ,
जो दूसरे को गुस्साया जान, स्मृतिमान् रह शान्त रहे ॥

[मातलि—]

हे वासव ! आपका यह सह लेना मैं बुरा समझता हूँ,
क्योंकि, मूर्ख इससे समझने लग जायगा,
कि मेरे भय ही से यह सह रहे हैं,
मूर्ख और भी चढ़ता जाता है,
जैसे बैल भाग जानेवाले पर ॥

[शक्र—]

उसकी इच्छा, यदि वह यह समझे या नहीं,
कि मैं उससे डरकर उसकी बातें सह रहा हूँ,
अपने को उचित मार्ग पर रखना ही परमार्थ है,
क्षमा कर देने से बढ़कर कोई दूसरा गुण नहीं ॥
जो अपने बली होकर दुर्बल की बातें सहता है,
उसी को सर्वोच्च क्षान्ति कहते हैं,
दुर्बल तो सदा ही सहता रहता है ॥
वह बली निर्बल कहा जाता है,
जिसका बल मूर्खों का बल है,
धर्मात्मा के बल की निन्दा करनेवाला कोई नहीं है ॥
जो क्रुद्ध के प्रति क्रुद्ध होता है, वह उसकी बुराई है,
क्रुद्ध के प्रति क्रोध न करनेवाला, दुर्जेय संग्राम जीत लेता है ॥
दोनों का हित करता है, अपना भी और पराये का भी,
दूसरे को जो क्रुद्ध जान, सावधान हो शान्त रहता है ॥
अपने और पराये दोनों का इलाज करनेवाले उसे,
धर्म न जाननेवाले पुरुष 'मूर्ख' समझते हैं ॥

भिक्षुओ ! वह देवेन्द्र शक्र अपने पुण्य के प्रताप से त्रयस्त्रिंश पर ऐश्वर्य पा, राज्य करते हुये क्षान्ति और सौजन्य का प्रशंसक है। भिक्षुओ ! तुम भी ऐसे स्वाख्यात धर्म-विनय में प्रव्रजित हो क्षमा और सौजन्य का अभ्यास करते शोभो।

§ ५. सुभासित जय सुत्त (११. १. ५)

सुभाषित

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! पूर्व काल में एक बार देवासुर-संग्राम छिड़ गया था।

तब, असुरेन्द्र वेपचित्ति ने देवेन्द्र शक्र को यह कहा—हे देवेन्द्र ! शुभ वचन बोलनेवाले की ही जीत हो।

हाँ वेपचित्ति ! शुभ वचन बोलनेवाले की ही जीत हो।

भिक्षुओ ! तब, देवों और असुरों ने मध्यस्थ चुने—वही सुभाषित या दुर्भाषित का फैसला करेंगे।

भिक्षुओ ! तब, असुरेन्द्र वेपचित्ति ने देवेन्द्र शक्र को यह कहा—हे देवेन्द्र ! कोई गाथा कहें।

भिक्षुओ ! उसके ऐसा कहने पर देवेन्द्र शक्र ने असुरेन्द्र वेपचित्ति को यह कहा—हे वेपचित्ति ! आप ही बड़े देव हैं, आप ही पहले कोई गाथा कहें।

भिक्षुओ ! इस पर, असुरेन्द्र वेपचित्ति यह गाथा बोला—

> मूर्ख और भी बढ़ जाते हैं, यदि उन्हें दबा देनेवाला कोई नहीं होता है,
> इसलिये अच्छी तरह दण्ड दे, धीर मूर्ख को रोक दे ॥

भिक्षुओ ! असुरेन्द्र वेपचित्ति के यह गाथा कहने पर असुरों ने उसका अनुमोदन किया; किन्तु देव सब चुपचाप रहे।

भिक्षुओ ! तब, असुरेन्द्र वेपचित्ति ने देवेन्द्र शक्र को यह कहा—हे देवेन्द्र ! अब आप कोई गाथा कहें।

भिक्षुओ ! उसके ऐसा कहने पर देवेन्द्र शक्र यह गाथा बोला—

> मूर्ख को रोकने का मैं यही सबसे अच्छा उपाय समझता हूँ,
> जो दूसरे को गुस्साया जान, सावधानी से शान्त रहे ॥

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र के यह गाथा कहने पर देवों ने उसका अनुमोदन किया; किन्तु सब असुर चुपचाप रहे।

भिक्षुओ ! तब, देवेन्द्र शक्र ने असुरेन्द्र वेपचित्ति को यह कहा—वेपचित्ति ! आप कोई गाथा कहें।

[वेपचित्ति—]

> हे वासव ! आपका सह लेना मैं बुरा समझता हूँ,
> क्योंकि, मूर्ख इससे समझने लग जायगा,
> कि मेरे भय ही से यह सह रहे हैं;
> मूर्ख और भी चढ़ता आता है,
> जैसे बैल भाग आनेवाले पर ॥

भिक्षुओ ! असुरेन्द्र वेपचित्ति के यह गाथा कहने पर असुरों ने उसका अनुमोदन किया; किन्तु देव चुप रहे।

भिक्षुओ ! तब, असुरेन्द्र वेपचित्ति ने देवेन्द्र शक्र को यह कहा—हे देवेन्द्र ! अब आप कोई गाथा कहें।

भिक्षुओ ! उसके ऐसा कहने पर देवेन्द्र शक्र ने इन गाथाओं को कहा—

उसकी इच्छा, यदि वह यह समझे या नहीं,

…[देखो: पूर्व सूत्र]

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र के गाथायें कहने पर देवों ने उनका अनुमोदन किया; किन्तु, सब असुर चुपचाप रहे।

भिक्षुओ ! तब, देवों और असुरों के मध्यस्थ ने यह फैसला दिया—

वेपचित्ति असुरेन्द्र ने जो गाथायें कही हैं, सो धर-पकड़ और मार की बातें हैं, झगड़ा और तकरार बढ़ानेवाली हैं।

और, देवेन्द्र शक्र ने जो गाथायें कही हैं, सो धर-पकड़ और मार की बातें नहीं हैं; झगड़ा और तकरार बढ़ानेवाली नहीं हैं।

देवेन्द्र शक्र की सुभाषित से जीत हुई।

भिक्षुओ ! इस तरह, देवेन्द्र शक्र की सुभाषित से जीत हुई थी।

§ ६. कुलावक सुत्त (११. १. ६)

धर्म से शक्र की विजय

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! पूर्वकाल में एक बार देवासुर-संग्राम छिड़ गया था।

भिक्षुओ ! उस संग्राम में असुरों की जीत और देवों की हार हुई थी।

भिक्षुओ ! हार खाकर, देव उत्तर की ओर भाग चले और असुरों ने उनका पीछा किया।

भिक्षुओ ! तब, देवेन्द्र शक्र मातलि-संग्राहक से गाथा में बोला—

हे मातलि ! सेमर वृक्ष में लगे घोंसले,
रथ के धुरे से कहीं कुच न जायँ,
असुरों के हाथ पड़कर भले ही प्राण चले जायँ,
किन्तु, इन पक्षियों के घोंसले कुच जाने न पायें॥

भिक्षुओ ! "जैसी आज्ञा" कह मातलि ने शक्र को उत्तर दे हजार सीधे हुये घोड़ोंवाले रथ को लौटाया।

भिक्षुओ ! तब, असुरों के मन में यह हुआ—अरे ! देवेन्द्र शक्र का…रथ लौट रहा है। मालूम होता है कि देव असुरों से फिर भी युद्ध करना चाहते हैं। अतः डरकर वे असुरपुर में पैठ गये।

भिक्षुओ ! इस तरह, देवेन्द्र शक्र की धर्म से जीत हुई थी।

§ ७. न दुब्भि सुत्त (११. १. ७)

धोखा देना महापाप है

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! पूर्वकाल, एकान्त में ध्यान करते समय देवेन्द्र शक्र के मन में यह वितर्क उठा—जो मेरे शत्रु हैं उन्हें भी मुझे धोखा देना नहीं चाहिये।

भिक्षुओ ! तब, असुरेन्द्र वेपचित्ति देवेन्द्र शक्र के वितर्क को अपने चित्त से जान, जहाँ देवेन्द्र शक्र था वहाँ आया।

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र ने असुरेन्द्र वेपचित्ति को दूर ही से आते देखा। देखकर, असुरेन्द्र वेपचित्ति से कहा—वेपचित्ति ! ठहरो, तुम गिरफ्तार हो गये।

मारिष ! आपके चित्त में जो अभी भी उसे मत छोड़ें।
वेपचित्ति ! धोखा कभी देने का सौगन्ध मत खो।

[वेपचित्ति—]

जो झूठ बोलने से पाप लगता है,
जो सन्तों की निन्दा करने से पाप लगता है,
मित्र से द्रोह करने का जो पाप है,
अकृतज्ञता से जो पाप लगता है,
उसे वही पाप लगे,
हे सुजा के पति ! जो तुम्हें धोखा दे॥

§ ८. विरोचन असुरिन्द सुत्त (११. १. ८)

सफल होने तक परिश्रम करना

श्रावस्ती में।

उस समय भगवान् दिन के विहार के लिये बैठे ध्यान कर रहे थे।

तब, देवेन्द्र शक्र और असुरेन्द्र वैरोचन जहाँ भगवान् थे वहाँ आये। आकर, एक-एक किवाड़ से लगे खड़े हो गये।

तब, असुरेन्द्र वैरोचन भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

पुरुष तब तक परिश्रम करता जाय,
जब तक उद्देश्य सफल न हो जाय,
सफल होने से ही उद्देश्य का महत्त्व है,
वैरोचन ऐसा कहता है॥

[शक्र—]

पुरुष तब तक परिश्रम करता जाय,
जब तक उद्देश्य सफल न हो जाय,
सफल होने से ही उद्देश्य का महत्त्व है,
क्षान्ति से बढ़कर दूसरी कोई चीज़ नहीं॥

[वैरोचन—]

सभी जीव के कुछ न कुछ अर्थ हैं,
जहाँ-जहाँ अपनी शक्ति-भर,
अत्यावश्यक भोजन तो सभी प्राणियों का है,
सफल होने से ही उद्देश्य का महत्त्व है,
वैरोचन ऐसा कहता है॥

[शक्र—]

सभी जीव के कुछ न कुछ अर्थ हैं,
जहाँ-जहाँ अपनी शक्ति भर,
अत्यावश्यक भोजन तो सभी प्राणियों का है,
सफल होने से ही उद्देश्य का महत्त्व है,
क्षान्ति से बढ़कर दूसरी कोई चीज़ नहीं॥

§ ९. आरञ्ञकइसि सुत्त (११.१.९)

शील की सुगन्ध

श्रावस्ती में

भिक्षुओ ! पूर्वकाल में कुछ···शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषि वन-प्रदेश में पर्ण-कुटी बनाकर रहते थे।

भिक्षुओ ! तब, देवेन्द्र शक्र और असुरेन्द्र वेपचित्ति दोनों जहाँ वे शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषि थे वहाँ गये।

भिक्षुओ ! तब, असुरेन्द्र वेपचित्ति बड़े लम्बे जूते पहने, तलवार लटकाये, ऊपर छत्र डुलवाते, अग्र-द्वार से आश्रम में पैठ उन शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषियों का अनादर करते हुये पार हो गया।

भिक्षुओ ! और, देवेन्द्र शक्र जूते उतार, तलवार दूसरों को दे, छत्र रखवा, द्वार से आश्रम में पैठ उन शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषियों के सम्मुख सम्मान-पूर्वक हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

भिक्षुओ ! तब, उन शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषियों ने देवेन्द्र शक्र को गाथा में कहा—

चिरकाल से व्रत पालने वाले ऋषियों की गन्ध,
शरीर से निकलकर हवा के साथ जाती है,
हे सहस्रनेत्र ! यहाँ से हट जा,
हे देवराज ! ऋषियों की गन्ध बुरी होती है॥

[शक्र—]

चिरकाल से व्रत पालनेवाले ऋषियों की गन्ध,
शरीर से निकलकर हवा के साथ भले ही जाय,
शिर पर धारण किये सुगन्धित फूलों की माला की तरह,
भन्ते ! इस गन्ध की हमको चाह बनी रहती है,
देवों को यह गन्ध कभी अखर नहीं सकती है॥

§ १०. समुद्दकइसि सुत्त (११. १. १०)

जैसी करनी वैसी भरनी

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! पूर्वकाल में कुछ शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषि समुद्र-तट पर पर्ण-कुटी बनाकर रहते थे।

भिक्षुओ ! उस समय देवासुर-संग्राम छिड़ा हुआ था।

भिक्षुओ ! तब, उन शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषियों के मन में यह हुआ—देव धार्मिक हैं, असुर अधार्मिक हैं। असुरों से हम लोगों को भी भय हो सकता है। तो, हम लोग असुरेन्द्र सम्बर के पास चलकर अभयवर माँग लें।

भिक्षुओ ! तब, वे ऋषि—जैसे कोई बलवान् पुरुष समेटी बाँह को पसार दे और पसारी बाँह को समेट ले वैसे—समुद्र के तट उन पर्ण-कुटी में अन्तर्धान हो असुरेन्द्र सम्बर के सामने प्रकट हुये।

भिक्षुओ ! तब, उन ऋषियों ने असुरेन्द्र सम्बर को गाथा में कहा—

ऋषि लोग सम्बर के पास आये हैं, अभय-दक्षिणा का याचन करते हैं,
जैसी इच्छा वैसा दो, अभय या भय॥

[सम्बर—]

ऋषियों को अभय नहीं है, जिन दुष्टों की सेवा शक्र किया करता है,
अभय-वर माँगनेवाले आप लोगों को मैं भय ही देता हूँ ॥

[ऋषि—]

अभय-वर माँगनेवाले, हमको भय ही दे रहे हो,
तुम्हारे इस दिये को हम स्वीकार करते हैं, तुम्हारा भय कभी न मिटे ॥
जैसा बीज रोपता है, वैसा ही फल पाता है,
पुण्य करनेवालों का कल्याण और पाप करनेवालों का अकल्याण होता है,
जैसा बीज बो रहे हो, फल भी वैसा ही पाओगे ॥

भिक्षुओ ! तब, वे शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषि असुरेन्द्र सम्बर को शाप दे—जैसे कोई बलवान् पुरुष ···—असुरेन्द्र सम्बर के सम्मुख अन्तर्धान हो समुद्र के तट पर पर्ण-कुटियों में प्रकट हुये।

भिक्षुओ ! उन ऋषियों के शाप से असुरेन्द्र सम्बर रात में तीन बार चौंक-चौंककर उठता है।

प्रथम वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १. पठम वत सुत्त (११.२.१)

शक्र के सात व्रत, सत्पुरुष

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र अपने मनुष्य-जन्म में सात व्रतों का पालन किया करता था, जिनके पालन करने के कारण शक्र इस इन्द्र-पद पर आरूढ़ हुआ है।

कौन से सात व्रत ?

(१) जीवन-पर्यन्त माता-पिता का पोषण करूँगा; (२) जीवन-पर्यन्त कुल के जेठों का सम्मान करूँगा; (३) जीवन-पर्यन्त मधुर भाषण करूँगा; (४) जीवन-पर्यन्त कभी किसी की चुगली नहीं करूँगा; (५) जीवन-पर्यन्त संकीर्णता और कंजूसी से रहित हो गृहस्थ-धर्मका पालन करूँगा, त्याग-शील, खुले हाथोंवाला, दान-रत, दूसरों की माँगें पूरी करनेवाला, और बाँट-चूटकर भोग करने वाला होऊँगा। ···(६) जीवन-पर्यन्त सत्यवादी रहूँगा; और (७) जीवन-पर्यन्त क्रोध नहीं करूँगा। यदि कभी क्रोध उत्पन्न हो गया तो उसे शीघ्र ही दबा दूँगा।

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र अपने मनुष्य-जन्म में इन्हीं सात व्रतों का पालन किया करता था, जिनके पालन करने के कारण वह इस इन्द्र-पद पर आरूढ़ हुआ है।

> माता-पिता का जो पोषण करता है, कुल के जेठों का जो आदर करता है,
> जो मधुर और नम्र भाषण करता है, जो चुगली नहीं खाता,
> जो कंजूसी से रहित होता है, सत्यवक्ता, क्रोध को दबाता है;
> त्रयस्त्रिंश लोक के देव, उसी को सत्पुरुष कहते हैं॥

§ २. दुतिय वत सुत्त (११.२.२)

इन्द्र के सात नाम और उसके व्रत

श्रावस्ती जेतवन में।

वहाँ, भगवान् भिक्षुओं से बोले:—भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र अपने पहले मनुष्य-जन्म में मघ नामक एक माणवक था। इसी से उसका नाम **मघवा** पड़ा।

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र अपने पहले मनुष्य-जन्म में पुर (=शहर)-पुर में दान देता था। इसी से उसका नाम **पुरिन्दद** पड़ा।

भिक्षुओ !···सत्कार-पूर्वक दान दिया करता था। इसी से उसका नाम **शक्र** पड़ा।

भिक्षुओ !···आवास का दान दिया था। इसी से उसका नाम **वासव** पड़ा।

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र सहस्र बातों के मुहूर्त को एक बार ही सोच लेता है। इसी से उसका नाम **सहस्राक्ष** पड़ा।

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र को पहले सुजा नाम की असुरकन्या भार्या थी। इसी से उसका नाम सुजम्पति पड़ा।

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र त्रयस्त्रिंश देवलोक का ऐश्वर्य या राज्य करता रहा। इसी से उसका नाम देवेन्द्र पड़ा।

···[शेष, सात व्रतों का वर्णन पूर्व-सूत्र के समान]

§ ३. ततिय वत सुत्त (११. २. ३)

इन्द्र के नाम और व्रत

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् वैशाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे।

तब, महालि लिच्छवी जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, महालि लिच्छवी भगवान् से बोला:—भन्ते ! भगवान् ने देवेन्द्र शक्र को देखा है ?

हाँ महालि ! मैंने देवेन्द्र शक्र को देखा है।

भन्ते ! अवश्य, वह कोई दूसरा शक्र का वेश बनाकर आया होगा। भन्ते ! देवेन्द्र शक्र को कोई नहीं देख सकता है।

महालि ! मैं शक्र को जानता हूँ; और उन धर्मों को भी जानता हूँ जिनके पालन करने से वह इन्द्र-पदपर आरूढ़ हुआ है।

···[शक्र के भिन्न नामों का वर्णन § २ के समान; और सात व्रतों का वर्णन § १ समान]

§ ४. दलिद्द सुत्त (११. २. ४)

बुद्ध-भक्त दरिद्र नहीं

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे।

वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया "हे भिक्षुओ !"

"भदन्त !" कहकर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! पूर्वकाल में इसी राजगृह में एक नीच कुल का दुःखिया दरिद्र पुरुष वास करता था। उसे बुद्ध के उपदिष्ट धर्म-विनय में बड़ी श्रद्धा हो गई। उसने शील, विद्या, त्याग, और प्रज्ञा का अभ्यास किया। इसके फलस्वरूप, शरीर छोड़ कर मर जाने के बाद वह त्रयस्त्रिंश देवलोक में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त हुआ। वह दूसरे देवों से वर्ण और यश में बढ़ा रहता था।

भिक्षुओ ! इस से त्रयस्त्रिंश के देव कुढ़ते थे, बिगड़ते थे, और उसकी खिल्ली उड़ाते थे। बड़ा आश्चर्य है ! बड़ा अद्भुत है !! यह देवपुत्र अपने मनुष्य-जन्म में एक नीच कुल का दुखिया दरिद्र पुरुष था। वह शरीर छोड़कर मर जाने के बाद त्रयस्त्रिंश देवलोक में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त हुआ। वह दूसरे देवों से वर्ण और यश में बढ़ा चढ़ा रहता है।

भिक्षुओ ! तब, देवेन्द्र शक्र ने त्रयस्त्रिंश लोक के देवों को आमन्त्रित किया—मारिषो ! आप इस देवपुत्र से मत कुढ़ें। अपने मनुष्य जन्म में इस देवपुत्र को बुद्ध के उपदिष्ट धर्म-विनय में बड़ी श्रद्धा हो गई थी। उसने शील, विद्या, त्याग और प्रज्ञा का अभ्यास किया। इसी के फलस्वरूप शरीर छोड़कर मर जाने के बाद वह त्रयस्त्रिंश देवलोक में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त हुआ। वह दूसरे देवों से वर्ण और यश में बढ़ा-चढ़ा रहता है।

भिक्षुओ ! त्रयस्त्रिंश लोक के देवों को समझाते हुए देवेन्द्र शक्र यह गाथायें बोला—

बुद्ध में जिसकी श्रद्धा अचल और सुप्रतिष्ठित है,
जिसके शील अच्छे हैं, पण्डित लोगों से प्रशंसित ॥
संघ में जिसे श्रद्धा है, जिसकी समझ सीधी है,
वह दरिद्र नहीं कहा जा सकता, उसी का जीवन सार्थक है ॥
इसलिए श्रद्धा-शील, प्रसाद और धर्मदर्शन में,
पण्डित लग जावे, बुद्धों के उपदेश का स्मरण करते ॥

§ ५. रामणेय्यक सुत्त (११. २. ५)

रमणीय स्थान

श्रावस्ती जेतवन में।

तब, देवेन्द्र शक्र जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया।

एक ओर खड़ा हो, देवेन्द्र शक्र भगवान् से बोला—भन्ते ! कौन जगह रमणीय है ?

[भगवान्—]

आराम-चैत्य वन-चैत्य सुनिर्मित पुष्करिणी,
मनुष्य की रमणीयता के सोलहवाँ भाग भी नहीं हैं ॥
गाँव में या जंगल में, नीची जगह में या समतल पर,
जहाँ अर्हन् विहार करते हैं वहीं रमणीय जगह है ॥

§ ६. यजमान सुत्त (११.२.६)

सांघिक दान का महात्म्य

एक समय भगवान् **राजगृह** में **गृध्रकूट** पर्वत पर विहार करते थे।

तब, देवेन्द्र शक्र जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया।

एक ओर खड़ा हो देवेन्द्र शक्र भगवान् से गाथा में बोला—

जो मनुष्य यज्ञ करते हैं,
पुण्य की अपेक्षा रखने वाले,
औपाधिक पुण्य करने वालों का,
दिया हुआ कैसे महाफलप्रद होता है ?

[भगवान्—]

चार मार्ग-प्राप्त* और चार फल-प्राप्त†
यही ऋजुभूत संघ है, प्रज्ञा, शील और समाधि से युक्त ॥
जो मनुष्य यज्ञ करते हैं,
जो पुण्य की अपेक्षा रखने वाले हैं,

* स्रोतापत्ति-मार्ग, सकृदागामी-मार्ग, अनागामी-मार्ग, अर्हत्-मार्ग।
† स्रोतापत्ति-फल, सकृदागामी-फल, अनागामी-फल, अर्हत्-फल।

उन औपधिक पुण्य करने वालों को,
संघ के लिए दिये गये दान का महाफल होता है ॥

§ ७. वन्दना सुत्त (११. २. ७)

बुद्ध-वन्दना का ढंग

श्रावस्ती जेतवन में

उस समय भगवान् दिन के विहार के लिये समाधि लगाये बैठे थे।

तब, देवेन्द्र शक्र और सहम्पति ब्रह्मा जहाँ भगवान् थे वहाँ आये। आकर, एक-एक किवाड़ से लगे खड़े हो गये।

तब, देवेन्द्र शक्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला—

हे वीर, विजितसंग्राम ! उठें,
आपका भार उतर चुका है, आप पर कोई ऋण नहीं,
इस लोक में विचरण करें,
आपका चित्त बिल्कुल निर्मल है,
जैसे पूर्णिमा की रात को चाँद ॥

देवेन्द्र ! बुद्ध की वन्दना इस प्रकार नहीं की जाती है। देवेन्द्र ! बुद्ध की वन्दना ऐसे करनी चाहिये।

हे वीर, विजितसंग्राम ! उठें,
परम-गुरु, ऋण-मुक्त ! लोक में विचरें,
भगवान् धर्म का उपदेश करें,
समझनेवाले भी मिलेंगे ॥

§ ८. पठम सक्कनमस्सना सुत्त (११. २. ८)

शीलवान् भिक्षु और गृहस्थों को नमस्कार

श्रावस्ती जेतवन में।

…भगवान् यह बोले—भिक्षुओ ! पूर्वकाल में देवेन्द्र शक्र ने मातलि-संग्राहक को आमन्त्रित किया। भद्र मातलि ! हजार सिखाये हुये घोड़ों से जोते मेरे रथ को तैयार करो। बगीचे की सैर करने के लिये निकलना चाहता हूँ।

'महाराज ! जैसी आज्ञा' कह, मातलि-संग्राहक ने देवेन्द्र शक्र को उत्तर दे,…रथ को तैयार कर सूचना दी—मारिष ! रथ तैयार है, अब आप जो चाहें।

भिक्षुओ ! तब देवेन्द्र शक्र वैजयन्त प्रासाद से उतरते हुये हाथ जोड़कर सभी दिशाओं को प्रणाम् करने लगा।

भिक्षुओ ! तब, मातलि-संग्राहक देवेन्द्र शक्र से गाथा में बोला—

आपको त्रैविद्य लोग नमस्कार करते हैं, और संसार के सभी राजे,
उतने बड़े प्रतापी, चारों महाराज भी,
भला ऐसा वह कौन जीव है,
हे शक्र ! जिसे आप नमस्कार कर रहे हैं ॥

[शक—]

मुझे त्रैविद्य लोग नमस्कार करते हैं, और संसार के सभी राजे,
और, उतने बड़े प्रतापी, चारों महाराज भी ॥
मैं उन शीलसम्पन्नों को जो चिरकाल से समाहित हैं,
जो ठीक से प्रव्रजित हो चुके हैं, नमस्कार करता हूँ,
जो ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कर रहे हैं ॥
जो पुण्यात्मा गृहस्थ हैं, शीलवन्त उपासक लोग,
धर्म से अपनी स्त्री को पोसते हैं; हे मातलि ! मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ ॥

[मातलि—]

लोक में वे बड़े महान् हैं, शक्र ! जिन्हें आप नमस्कार करते हैं,
मैं भी उन्हें नमस्कार करूँगा, वासव ! आप जिन्हें नमस्कार करते हैं।

मघवा ऐसा कह कर,
देवराज सुजम्पति,
सभी ओर नमस्कार कर,
वह प्रमुख रथ पर सवार हुआ ॥

§ ९. दुतिय सक्कनमस्सना सुत्त (११. २. ९)

सर्वश्रेष्ठ बुद्ध को नमस्कार

श्रावस्ती जेतवन में।

…[पूर्ववत्]

हे भिक्षुओ ! तब, देवेन्द्र शक्र वैजयन्त प्रासाद से उतरते हुए हाथ जोड़कर भगवान् को नमस्कार कर रहा था।

भिक्षुओ ! तब, मातलि-संग्राहक देवेन्द्र शक्र से गाथा में बोला—

जिस आपको हे वासव ! देव और मनुष्य नमस्कार करते हैं,
भला, ऐसा वह कौन जीव है; हे शक्र ! जिसे आप नमस्कार करते हैं ?

[शक्र—]

जो अभी सम्यक् सम्बुद्ध, देवताओं के साथ इस लोक में,
अनोम सत्थक जो बुद्ध हैं, मातलि ! उन्हीं को नमस्कार करता हूँ ॥
जिनका राग, द्वेष, और अविद्या मिट चुकी है,
जो क्षीणाश्रव अर्हत् हैं, हे मातलि ! उन्हीं को नमस्कार करता हूँ ॥
जिसने रागद्वेष को दबा, अविद्या को हटा दिया है,
जो अप्रमत्त शैक्ष्य हैं, सावधानी से अभ्यास कर रहे हैं,
हे मातलि ! मैं उन्हीं को नमस्कार कर रहा हूँ ॥

[मातलि—]

लोक में वे बड़े महान् हैं, शक्र ! जिन्हें आप नमस्कार करते हैं,
मैं भी उन्हें नमस्कार करूँगा, वासव ! आप जिन्हें नमस्कार करते हैं ॥

मघवा ऐसा कह कर,
देवराज सुजम्पति,
भगवान् को नमस्कार कर,
वह प्रमुख रथ पर सवार हुआ ॥

§ १०. ततिय सक्कनमस्सना सुत्त (११. २. १०)

भिक्षु-संघ को नमस्कार

श्रावस्ती जेतवन में।

भगवान् बोले—...।

भिक्षुओ ! तब, देवेन्द्र शक्र वैजयन्त प्रासाद से उतरते हुये हाथ जोड़कर भिक्षु-संघ को नमस्कार करता था।

भिक्षुओ ! तब, मातलि-संग्राहक देवेन्द्र शक्र से गाथा में बोला—

उलटे आपको यही लोग नमस्कार करते,
गन्दे शरीर धारण करने वाले ये पुरुष,
कुणप में जो डूबे रहते हैं,[1]
भूख और प्यास से जो परेशान रहते हैं ॥
हे वासव ! उन बेघर वालों में क्या गुण देखते हैं ?
ऋषियों के आचार कहें, आपकी बात मैं सुनूँगा ॥

[शक्र—]

हे मातलि ! इसीलिये मैं इन बेघर वालों की ईर्ष्या करता हूँ।[2]

जिस गाँव को ये छोड़ते हैं, बिना किसी अपेक्षा के चल देते हैं,
कोठी में ये कुछ जमा नहीं करते, न हाँड़ी में और न तौला में,
दूसरों से तैयार किये गये को पाते हैं, वे सुव्रत उसी से गुजारा करते हैं,
अच्छी बातों की मन्त्रणा करने वाले ये धीर, चुप, शान्त रहने वाले ॥
देवों को असुरों से विरोध है, मातलि ! मनुष्यों (को भी विरोध है),
किन्तु, ये विरोध करने वालों में भी विरोध नहीं करते,
हिंसा छोड़ शान्त रहते हैं, लेने वाले संसार में बिना कुछ लिये,
हे मातलि ! मैं उन्हीं को नमस्कार करता हूँ ॥

...[शेष पूर्ववत्]

द्वितीय वर्ग समाप्त

---

१. माता की कोख में जो दस महीने पड़े रहते हैं—अट्ठकथा।
२. पिहयन्ति=क्या गुण देख कर ईर्ष्या करते हैं।

तीसरा भाग

तृतीय वर्ग

शक्र-पञ्चक

§ १. झत्वा सुत्त (११. ३. १)

क्रोध को नष्ट करने से सुख

श्रावस्ती जेतवन में।

तब, देवेन्द्र शक्र जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया।

एक ओर खड़ा हो, देवेन्द्र शक्र भगवान् से गाथा में बोला—

क्या नष्ट कर सुख से सोता है, क्या नष्ट कर शोक नहीं करता ?
किस एक धर्म का वध करना गौतम को जँचता है ?

[भगवान्—]

क्रोध को नष्ट कर सुख से सोता है, क्रोध को नष्ट कर शोक नहीं करता,
हे वासव ! पहले मीठा लगने वाले विष के मूल क्रोध का,
वध करना पण्डितों से प्रशंसित है, उसी को नष्ट कर शोक नहीं करता ॥

§ २. दुब्बण्णिय सुत्त (११. ३. २)

क्रोध न करने का गुण

श्रावस्ती जेतवन में।

…भगवान् बोले—भिक्षुओ ! पूर्वकाल में कोई बौना बदरूप यक्ष देवेन्द्र शक्र के आसन पर बैठा।

भिक्षुओ ! उससे त्रयस्त्रिंश लोक के देव कुढ़ते थे, खिसकते थे, और उसकी खिल्ली उड़ाते थे—आश्चर्य है ! अद्भुत है !! कि यह बौना बदरूप यक्ष देवेन्द्र शक्र के आसन पर बैठा है।

भिक्षुओ ! जैसे जैसे त्रयस्त्रिंश लोक के देव कुढ़ते गये, वैसे वैसे वह यक्ष अभिरूप=दर्शनीय=सुन्दर होता गया।

भिक्षुओ ! तब, त्रयस्त्रिंश लोक के देव जहाँ देवेन्द्र शक्र था वहाँ आये, और यह बोले—

मारिष ! यह कोई दूसरा बौना बदरूप यक्ष आप के आसन पर बैठा है। मारिष ! सो उससे त्रयस्त्रिंश लोक के देव कुढ़ते, खिसकते हैं, और उसकी खिल्ली उड़ाते हैं—आश्चर्य है ! अद्भुत है !! कि यह बौना बदरूप यक्ष देवेन्द्र शक्र के आसन पर बैठा है। मारिष ! जैसे-जैसे त्रयस्त्रिंश लोक के देव कुढ़ते…हैं, वैसे-वैसे वह यक्ष अभिरूप=दर्शनीय=सुन्दर होता जाता है।

मारिष ! तो क्या यह कोई क्रोध-भक्ष यक्ष है ?

भिक्षुओ ! तब, देवेन्द्र शक्र जहाँ वह क्रोध-भक्ष यक्ष था वहाँ गया। जाकर, उसने उपरनी को

एक कन्धे पर सँभाल, दक्षिण जानु को पृथ्वी पर टेक, क्रोध-भक्ष यक्ष की ओर हाथ जोड़कर तीन बार अपना नाम सुनाया—

मारिष ! मैं देवेन्द्र शक्र हूँ...।

भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र जैसे-जैसे अपना नाम सुनाता गया, वैसे-वैसे वह यक्ष अधिकाधिक बदरूप और बौना होता गया। बौना और बदरूप हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

भिक्षुओ ! तब, देवेन्द्र शक्र अपने आसन पर बैठ त्रयस्त्रिंश के देवों को शान्त करते हुए यह गाथा बोला—

मेरा चित्त जल्दी घबड़ा नहीं जाता है,
भँवर में पड़कर मैं बहक नहीं जाता हूँ।
मेरे क्रोध किये बहुत जमाना बीत गया,
मुझमें अब क्रोध रह नहीं गया ॥
न क्रोध करता और न कठोर वचन कहता हूँ,
और न अपने गुण को गाता फिरता हूँ,
मैं अपने को संयम में रखता हूँ
अपना परमार्थ देखते हुए ॥

§ ३. माया सुत्त (११. ३. ३)

सम्बरी माया

श्रावस्ती में।

...भगवान् बोले—भिक्षुओ ! पूर्वकाल में एक बार असुरेन्द्र वेपचित्ति रोग-ग्रस्त बड़ा बीमार हो गया था।

भिक्षुओ ! तब, देवेन्द्र शक्र जहाँ असुरेन्द्र वेपचित्ति था वहाँ उसकी खोज खबर लेने गया।

भिक्षुओ ! असुरेन्द्र वेपचित्ति ने देवेन्द्र शक्र को दूर ही से आते देखा। देखकर देवेन्द्र शक्र से बोला—हे देवेन्द्र ! मेरी इलाज करें।

वेपचित्ति ! मुझे सम्बरी माया (=जादू) कहो।

मारिष ! तो मैं असुरों से सलाह कर लूँ।

भिक्षुओ ! तब, असुरेन्द्र वेपचित्ति असुरों से सलाह करने लगा—मारिषो ! क्या मैं देवेन्द्र शक्र को सम्बरी माया बता दूँ ?

नहीं मारिष ! आप देवेन्द्र शक्र को सम्बरी माया मत बतावें।

भिक्षुओ ! तब, असुरेन्द्र वेपचित्ति देवेन्द्र शक्र से गाथा में बोला—

हे मघवा, शक्र, देवराज, सुजम्पति !
माया (=जादू) करने से घोर नरक मिलता है,
सैकड़ों वर्ष तक सम्बर के ऐसा ॥

§ ४. अच्चय सुत्त (११. ३. ४)

अपराध और क्षमा

श्रावस्ती में।

उस समय दो भिक्षुओं में कुछ अनबन हो गया था। उनमें एक भिक्षु ने अपना अपराध समझ

लिया। तब, वह भिक्षु दूसरे भिक्षु के पास अपना अपराध स्वीकार कर क्षमा माँगने गया। किन्तु, वह भिक्षु क्षमा नहीं करता था।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा—

भन्ते! दो भिक्षुओं में कुछ अनबन···।

भिक्षुओ! दो प्रकार के मूर्ख होते हैं। (१) जो अपने अपराध को अपराध के तौर पर नहीं देखता है; और (२) जो दूसरे को अपराध स्वीकार कर लेने पर क्षमा नहीं कर देता है। भिक्षुओ! यही दो प्रकार के मूर्ख होते हैं।

भिक्षुओ! दो प्रकार के पण्डित होते हैं: (१) जो अपने अपराध को अपराध के तौर पर देख लेता है; (२) जो दूसरे को अपराध स्वीकार कर लेने पर क्षमा कर देता है। भिक्षुओ! यही दो प्रकार के पण्डित होते हैं।

भिक्षुओ! पूर्वकाल में देवेन्द्र शक्र ने त्रयस्त्रिंश लोक के दो देवों का निपटारा करते हुए यह गाथा कहा था—

> क्रोध तुम्हारे अपने वश में होवे,
> तुम्हारी मिलाई में कोई धक्का लगने न पावे,
> जो निन्दा करने के योग्य नहीं उसकी निन्दा मत करो,
> आपस की चुगली मत खाओ,
> क्रोध नीच पुरुष को,
> पर्वत के ऐसा चूर-चूर कर देता है॥

§ ५. अक्रोधन सुत्त (११. ३. ५)

क्रोध का त्याग

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

···भगवान् बोले—भिक्षुओ! पूर्वकाल में देवेन्द्र शक्र ने **सुधर्मा सभा** में दो त्रयस्त्रिंश देवों के कलह का निपटारा करते हुए यह गाथा कहा था—

> तुम्हें क्रोध दबा मत दे,
> क्रोध करनेवाले पर क्रोध मत करो,
> अक्रोध और अविहिंसा,
> पण्डित पुरुषों में सदा बसती है;
> क्रोध नीच पुरुष को,
> पर्वत के ऐसा चूर-चूर कर देता है॥

शक्र-पञ्चक समाप्त

सगाथा-वर्ग समाप्त।

दूसरा खण्ड

निदान वर्ग

पहला परिच्छेद

१२. अभिसमय-संयुत्त

पहला भाग

बुद्ध वर्ग

§ १. देसना सुत्त (१२. १. १)

प्रतीत्य समुत्पाद

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—हे भिक्षुओ !

"भदन्त !" कह कर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! प्रतीत्य समुत्पाद का उपदेश करूँगा । उसे सुनो, अच्छी तरह मन में लाओ; मैं कहता हूँ ।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! प्रतीत्यसमुत्पाद क्या है ? भिक्षुओ ! अविद्या के होने से संस्कार होते हैं। संस्कारों के होने से विज्ञान होता है। विज्ञान के होने से नामरूप होते हैं। नामरूप के होने से षडायतन होता है। षडायतन के होने से स्पर्श होता है। स्पर्श के होने से वेदना होती है। वेदना के होने से तृष्णा होती है। तृष्णा के होने से उपादान होता है। उपादान के होने से भव होता है। भव के होने से जाति होती है। जाति के होने से जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, बेचैनी और परेशानी होती हैं। इस तरह, सारे दुःख-समूह का समुदय होता है। भिक्षुओ ! इसी को प्रतीत्य समुत्पाद कहते हैं।

उस अविद्या के बिल्कुल हट और रुक जाने से संस्कार होने नहीं पाते। संस्कारों के रुक जाने से विज्ञान होने नहीं पाता। विज्ञान के रुक जाने से नामरूप होने नहीं पाते। नामरूप के रुक जाने से षडायतन होने नहीं पाता। षडायतन के रुक जाने से स्पर्श होने नहीं पाता। स्पर्श के रुक जाने से वेदना नहीं होती। वेदना के रुक जाने से तृष्णा होने नहीं पाती। तृष्णा के रुक जाने से उपादान होने नहीं पाता। उपादान के रुक जाने से भव होने नहीं पाता। भव के रुक जाने से जाति होने नहीं पाती। जाति के रुक जाने से न जरा, न मरण, न शोक, न रोना-पीटना, न दुःख, न बेचैनी और न तो परेशानी होती है। इस तरह, यह सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

भगवान् यह बोले। संतुष्ट होकर भिक्षुओं ने भगवान् के कहे का अभिनन्दन किया।

§ २. विभङ्ग सुत्त (१२. १. २)

प्रतीत्य-समुत्पाद की व्याख्या

श्रावस्ती में।

…भगवान् बोले—भिक्षुओ ! प्रतीत्य-समुत्पाद का विभाग करके उपदेश करूँगा। उसे सुनो, अच्छी तरह मन में लाओ; मैं कहता हूँ।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! प्रतीत्य समुत्पाद क्या है ? भिक्षुओ ! अविद्या के होने से संस्कार होते हैं।...[पूर्ववत्] इस तरह, सारे दुःख-समूह का समुदय होता है।

भिक्षुओ ! और, जरा-मरण क्या है ? जो उन-उन जीवों के उन-उन योनियों में बूढ़ा हो जाना, पुरनिया हो जाना, दाँतों का टूट जाना, बाल सफेद हो जाना, झुर्रियाँ पड़ जानी, उमर का खात्मा, और इन्द्रियों का शिथिल हो जाना है; इसी को कहते हैं 'जरा'।

जो उन-उन जीवों के उन-उन योनियों से खिसक पड़ना, टपक पड़ना, फट जाना, अन्तर्धान हो जाना, मृत्यु, मरण, कज़ा कर जाना, स्कन्धों का छिन्न-भिन्न हो जाना, चोला को छोड़ देना है; इसी को कहते हैं 'मरण'। ऐसी यह है जरा, और ऐसा यह है मरण। भिक्षुओ ! इसी को जरामरण कहते हैं।

भिक्षुओ ! जाति क्या है ? जो उन-उन जीवों के उन-उन योनियों में जन्म लेना, पैदा हो जाना, चला आना, अंकुर प्रगट हो जाना, स्कन्धों का प्रादुर्भाव, आयतनों का प्रतिलाभ करना है; भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं जाति।

भिक्षुओ ! भव क्या है ? भिक्षुओ ! भव तीन प्रकार के होते हैं। (१) काम-भव (=काम-लोक में बना रहना), (२) रूप-भव (=रूप-लोक में बना रहना) और (३) अरूप-भव (अरूप-लोक में बना रहना)। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं 'भव'।

भिक्षुओ ! उपादान क्या है ? उपादान चार प्रकार के हैं। (१) काम-उपादान, (२) (मिथ्या) दृष्टि-उपादान, (३) शीलव्रत-उपादान और (४) आत्मवाद-उपादान। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं "उपादान"।

भिक्षुओ ! तृष्णा क्या है ? भिक्षुओ ! तृष्णा छः प्रकार की हैं। (१) रूप-तृष्णा, (२) शब्द-तृष्णा, (३) गन्ध-तृष्णा, (४) रस-तृष्णा, (५) स्पर्श-तृष्णा, और धर्म-तृष्णा। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं "तृष्णा"।

भिक्षुओ ! वेदना क्या है ? भिक्षुओ ! वेदना छः प्रकार की है। (१) चक्षु के संस्पर्श से होनेवाली वेदना, (२) श्रोत्र के संस्पर्श से होनेवाली वेदना, (३) घ्राण के संस्पर्श से होनेवाली वेदना, (४) जिह्वा के संस्पर्श से होनेवाली वेदना, (५) काया के संस्पर्श से होनेवाली वेदना, और (६) मन के संस्पर्श से होनेवाली वेदना। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं "वेदना"।

भिक्षुओ ! स्पर्श क्या है ? भिक्षुओ ! स्पर्श छः प्रकार के हैं। (१) चक्षु-संस्पर्श, (२) श्रोत-संस्पर्श, (३) घ्राण संस्पर्श, (४) जिह्वा-संस्पर्श, (५) काया-संस्पर्श, और (६) मन-संस्पर्श। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं "स्पर्श"।

भिक्षुओ ! षडायतन क्या है ? (१) चक्षु-आयतन, (२) श्रोत्र-आयतन, (३) घ्राण-आयतन, (४) जिह्वा-आयतन, (५) काया आयतन, और (६) मन-आयतन। भिक्षुओ ! इन्हीं को कहते हैं "षडायतन"।

भिक्षुओ ! नामरूप क्या है ? वेदना, संज्ञा, चेतना, स्पर्श, और मन में कुछ लाना। इसे 'नाम' कहते हैं। चार महाभूतों को लेकर जो रूप होते हैं, इसे "रूप" कहते हैं। इस तरह यह नाम हुआ, और यह रूप हुआ। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं नामरूप।

भिक्षुओ ! विज्ञान क्या है ? भिक्षुओ ! विज्ञान छः प्रकार के होते हैं। (१) चक्षु-विज्ञान, (२) श्रोत्र-विज्ञान, (३) घ्राण-विज्ञान, (४) जिह्वा-विज्ञान, (५) काय-विज्ञान, और (६) मनोविज्ञान। भिक्षुओ! इसी को कहते हैं "विज्ञान"।

भिक्षुओ ! संस्कार क्या है ? भिक्षुओ ! संस्कार तीन प्रकार के हैं। (१) काय-संस्कार, (२) वाक्-संस्कार, (३) चित्त-संस्कार। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं "संस्कार"।

भिक्षुओ ! अविद्या क्या है ? भिक्षुओ ! जो दुःख को नहीं जानता है, जो दुःख-समुदय को नहीं

जानता है, जो दुःख-निरोध को नहीं जानता है, और जो दुःख निरोध-गामिनी प्रतिपदा को नहीं जानता है। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं "अविद्या"।

भिक्षुओ ! इसी अविद्या के होने से संस्कार होते हैं।

...[पूर्ववत्]। इस तरह सारे दुःख-समूह का समुदय होता है।

उस अविद्या के बिल्कुल हट और रुक जाने से संस्कार होने नहीं पाते।...[पूर्ववत्] इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

§ ३. पटिपदा सुत्त (१२. १. ३)

मिथ्या-मार्ग और सत्य-मार्ग

श्रावस्ती में।

...भगवान् बोले—भिक्षुओ ! मिथ्या-मार्ग क्या है और सत्य-मार्ग क्या है इसका मैं उपदेश करूँगा। उसे सुनो, अच्छी तरह मन में लाओ; मैं कहता हूँ।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया :

भगवान् बोले—

भिक्षुओ ! मिथ्या-मार्ग क्या है ? भिक्षुओ ! अविद्या के होने से संस्कार होते हैं।...इस प्रकार, सारे दुःख-समूह का समुदय होता है। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं 'मिथ्या-मार्ग'।

भिक्षुओ ! सत्य-मार्ग क्या है ? उस अविद्या के बिल्कुल हट और रुक जाने से संस्कार होने नहीं पाते।...इस प्रकार, सारा दुःख-समूह रुक जाता है। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं 'सत्य-मार्ग'।

§ ४. विपस्सी सुत्त (१२. १. ४)

विपस्सी बुद्ध को प्रतीत्य समुत्पाद का ज्ञान

क

श्रावस्ती में।

...भगवान् बोले—भिक्षुओ ! अर्हत सम्यक्-सम्बुद्ध भगवान् विपस्सी को बुद्धत्व-लाभ करने के पहले...बोधिसत्व रहते हुये मन में यह हुआ—हाय ! यह लोक कैसे घोर दुःख में पड़ा है !! पैदा होता है, बूढ़ा होता है, मर जाता है, मर कर फिर जन्म ले लेता है। और, जरामरण के इस दुःख का छुटकारा नहीं जानता है। अहो ! कब मैं जरामरण के इस दुःख का छुटकारा जान लूँगा ?

भिक्षुओ ! तब बोधिसत्व विपस्सी के मन में यह हुआ—किसके होने से जरामरण होता है, जरामरण का हेतु क्या है ?

भिक्षुओ ! तब, बोधिसत्व विपस्सी को अच्छी तरह चिन्तन करने पर प्रज्ञा का उदय हो गया। जाति के होने से जरामरण होता है, जाति ही जरामरण का हेतु है।

भिक्षुओ ! तब, बोधिसत्व विपस्सी के मन में यह हुआ—किसके होने से जाति होती है, जाति का हेतु क्या है ? भिक्षुओ ! तब, बोधिसत्व विपस्सी को अच्छी तरह चिन्तन करने पर प्रज्ञा का उदय हो गया। भव के होने से जाति होती है, भव ही जाति का हेतु है।

...किसके होने से भव होता है, भव का हेतु क्या है ?......उपादान के होने से भव होता है, उपादान भव का हेतु है।

……किसके होनेसे उपादान होता है, उपादान का हेतु क्या है ?……तृष्णा के होने से उपादान होता है, तृष्णा ही उपादानका हेतु है।

……किसके होनेसे तृष्णा होती है, तृष्णा का हेतु क्या है ?……वेदनाके होनेसे तृष्णा होती है, वेदना ही तृष्णा का हेतु है।

……किसके होनेसे वेदना होती है, वेदनाका हेतु क्या है ?……स्पर्शके होनेसे वेदना होती है, स्पर्श ही वेदनाका हेतु है।

……किसके होनेसे स्पर्श होता है, स्पर्शका हेतु क्या है ?……षडायतनके होनेसे स्पर्श होता है, षडायतन ही स्पर्शका हेतु है।

……किसके होनेसे षडायतन होता है, षडायतनका हेतु क्या है ?……नामरूपके होनेसे षडायतन होता है, नामरूप ही षडायतन का हेतु है।

…किसके होने से नामरूप होता है, नामरूप का हेतु क्या है ?…विज्ञानके होनेसे नामरूप होता है, विज्ञान ही नामरूपका हेतु है।

…किसके होने से विज्ञान होता है, विज्ञान का हेतु क्या है ?…संस्कारों के होनेसे विज्ञान होता है, संस्कार ही विज्ञान का हेतु है।

…किसके होने से संस्कार होते हैं, संस्कारों का हेतु क्या है ?…अविद्या के होने से संस्कार होते हैं, अविद्या ही संस्कार का हेतु है।

…इस तरह, अविद्याके होनेसे संस्कार होते हैं। संस्कारोंके होने से विज्ञान है।… इस प्रकार सारे दुःख-समूह का समुदय होता है।

भिक्षुओ! 'समुदय, समुदय'—ऐसा बोधिसत्व विपस्सी को पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु उत्पन्न हो गया, ज्ञान उत्पन्न हो गया, प्रज्ञा उत्पन्न हो गई, विद्या उत्पन्न हो गई, आलोक उत्पन्न हो गया।

ख

भिक्षुओ! तब, बोधिसत्व विपस्सी के मन में यह हुआ—किसके नहीं होने से जरामरण नहीं होता है, किसके रुक जाने से जरामरण रुक जाता है?

भिक्षुओ! तब, बोधिसत्व विपस्सी को अच्छी तरह चिन्तन करने पर प्रज्ञा का उदय हो गया। जाति के नहीं होने से जरामरण नहीं होता है, जाति के रुक जाने से जरामरण रुक जाता है।

…[प्रतिलोम-प्रश्न से पूर्ववत्]

भिक्षुओ! तब, बोधिसत्व विपस्सी को अच्छी तरह चिन्तन करने पर प्रज्ञा का उदय हो गया। अविद्या के नहीं होने से संस्कार नहीं होते हैं, अविद्या के रुक जाने से संस्कार रुक जाते हैं।

सो, अविद्या के रुक जाने से संस्कार रुक जाते हैं। संस्कारों के रुक जाने से विज्ञान रुक जाता है।

…इस प्रकार, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

भिक्षुओ! "रुक जाना, रुक जाना"—ऐसा बोधिसत्व विपस्सी को पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु उत्पन्न हो गया, ज्ञान उत्पन्न हो गया, प्रज्ञा उत्पन्न हो गई, विद्या उत्पन्न हो गई, आलोक उत्पन्न हो गया।

सातों बुद्धों के साथ ऐसा ही समझ लेना चाहिए।

§ ५. सिखी सुत्त (१२. १. ५)

सिखी बुद्ध को प्रतीत्य समुत्पाद का ज्ञान

भिक्षुओ! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान सिखी को बुद्धत्व लाभ करने के पहले…[पूर्ववत्]

§ ६. वेस्सभू सुत्त (१२. १. ६)

वैश्वभू बुद्ध को प्रतीत्य समुत्पाद का ज्ञान

भिक्षुओ !···भगवान् वेस्सभू को···।

§ ७–९. सुत्त-त्तय (१२. १. ७–९)

तीन बुद्धों को प्रतीत्य समुत्पाद का ज्ञान

भिक्षुओ ! ···भगवान् ककुसन्ध, कोणागमन, काश्यप को बुद्धत्व लाभ करने के पहले···।

§ १०. गोतम सुत्त (१२. १. १०)

प्रतीत्य समुत्पाद-ज्ञान

क

भिक्षुओ ! मेरे बुद्धत्व-लाभ करने के पहले, बोधिसत्व रहते हुये, मन में यह हुआ . [पूर्ववत्]

भिक्षुओ ! 'समुदय, समुदय'—ऐसा मुझे पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु उत्पन्न हो गया, ज्ञान उत्पन्न हो गया, प्रज्ञा उत्पन्न हो गई, विद्या उत्पन्न हो गई, आलोक उत्पन्न हो गया।

ख

[...प्रतिलोम-वश]

भिक्षुओ ! 'रुक जाना, रुक जाना'—ऐसा मुझे पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में...आलोक उत्पन्न हो गया।

बुद्ध-वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

आहार वर्ग

§ १. आहार सुत्त (१२. २. १)

प्राणियों के आहार और उनकी उत्पत्ति

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

...भगवान् बोले—भिक्षुओ ! जनमे प्राणियों की स्थिति के लिये, या जन्म लेने वालों के अनुग्रह के लिये चार आहार* हैं।

कौन से चार ? (१) कौर वाला—स्थूल या सूक्ष्म, (२) स्पर्श, (३) मन की चेतना (= Volition), और (४) विज्ञान। भिक्षुओ ! जनमे प्राणियों की स्थिति के लिये, या जन्म लेने वालों के अनुग्रह के लिये यही चार आहार हैं।

भिक्षुओ ! इन चार आहारों का निदान क्या है, = समुदय क्या है = वे कैसे पैदा होते हैं=उनका प्रभव क्या है ?

इन चार आहारों का निदान तृष्णा है, समुदय तृष्णा है। वे तृष्णा से पैदा होते हैं। उनका प्रभव तृष्णा है।

भिक्षुओ ! तृष्णा का निदान क्या है ? समुदय क्या है ? वह कैसे पैदा होती है ? उसका प्रभव क्या है ? तृष्णा का निदान वेदना है, समुदय वेदना है। वह वेदना से पैदा होती है। उसका प्रभव वेदना है।

...वेदना का निदान स्पर्श है...।

...स्पर्श का निदान षडायतन है...।

...षडायतन का निदान नामरूप है...।

...नामरूप का निदान विज्ञान है...।

...विज्ञान का निदान संस्कार है...।

...संस्कारों का निदान अविद्या है...।

भिक्षुओ ! इस तरह, अविद्या के होने से संस्कार होते हैं। संस्कारों के होने से विज्ञान होता है। ...इस तरह, सारे दुःख-समूह का समुदय होता है।

उस अविद्या के बिल्कुल हट और रुक जाने से संस्कार रुक जाते हैं। ...इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

§ २. फग्गुन सुत्त (१२. २. २)

चार आहार और उनकी उत्पत्तियाँ

श्रावस्ती में।

...भगवान् बोले—भिक्षुओ ! जनमे प्राणियों की स्थिति के लिये, या जन्म लेने वालों के लिये चार आहार हैं।

* उनके हेतु से अपना फल आहरण करते हैं, इसलिये वे आहार कहे जाते हैं—अट्ठकथा।

...[पूर्ववत्]

भिक्षुओ ! यहाँ चार आहार हैं।

ऐसा कहने पर आयुष्मान् मोलिय-फग्गुन भगवान् से बोले—भन्ते ! विज्ञान-आहार का कौन आहार करता है ?

भगवान् बोले—ऐसा पूछना ही गलत है। मैं यह नहीं कहता कि कोई आहार करता है। यदि मैं ऐसा कहता कि कोई आहार करता है तो अलबत्ता यह प्रश्न पूछा जा सकता था कि—भन्ते ! कौन आहार करता है ? किन्तु, मैं तो ऐसा नहीं कहता। मेरे ऐसा नहीं कहने पर, तुम यदि पूछते कि—भन्ते ! इस विज्ञान-आहार से क्या होता है ?—तो हाँ, ठीक प्रश्न होता।

और, तब उसका उपयुक्त उत्तर होता—

विज्ञान-आहार आगे पुनर्जन्म होने का हेतु है। उसके होने से षडायतन होता है। षडायतन के होने से स्पर्श होता है।

भन्ते ! कौन स्पर्श करता है ?

भगवान् बोले—ऐसा पूछना ही गलत है। मैं यह नहीं कहता कि कोई स्पर्श करता है। यदि मैं ऐसा कहता कि कोई स्पर्श करता है तो अलबत्ता यह प्रश्न पूछा जा सकता था कि—भन्ते ! कौन स्पर्श करता है ? किंतु, मैं तो ऐसा नहीं कहता। मेरे ऐसा कहने पर, तुम यदि पूछते कि—भन्ते ! क्या होने से स्पर्श होता है ?—तो हाँ, ठीक प्रश्न होता।

और, तब उसका उपयुक्त उत्तर होता—षडायतन के होने से स्पर्श होता है। स्पर्श के होने से वेदना होती है।

भन्ते ! कौन वेदना का अनुभव करता है ?

भगवान् बोले—ऐसा पूछना ही गलत है। मैं यह नहीं कहता कि कोई वेदना का अनुभव करता है। यदि मैं ऐसा कहता कि कोई वेदना का अनुभव करता है तो अलबत्ता यह प्रश्न पूछा जा सकता था कि—भन्ते ! कौन वेदना का अनुभव करता है ? किंतु, मैं तो ऐसा कहता ही नहीं। मेरे ऐसा नहीं कहने पर, तुम यदि पूछते कि—भन्ते ! किसके होने से वेदना होती है ?—तो हाँ, ठीक प्रश्न होता।

और, तब उसका उपयुक्त उत्तर होता—स्पर्श के होने से वेदना होती है। वेदना के होने से तृष्णा होती है।

भन्ते ! कौन तृष्णा करता है ?

भगवान् बोले—ऐसा पूछना ही गलत है। मैं यह नहीं कहता कि कोई तृष्णा करता है। यदि मैं ऐसा कहता कि कोई तृष्णा करता है तो अलबत्ता यह प्रश्न पूछा जा सकता था कि—भन्ते ! कौन तृष्णा करता है ? किंतु मैं तो ऐसा नहीं कहता। मेरे ऐसा नहीं कहने पर, तुम यदि पूछते कि—भन्ते ! किसके होने से तृष्णा होती है ?—तो हाँ, ठीक प्रश्न होता।

और, तब उसका उपयुक्त उत्तर होता—वेदना के होने से तृष्णा होती है। तृष्णा के होने से उपादान होता है।

भन्ते ! कौन उपादान (= किसी वस्तु को पाने या छोड़ने के लिये उत्साह) करता है ?

भगवान् बोले—यह पूछना ही गलत है।...तृष्णा के होने से उपादान होता है। उपादान के होने से भव होता है।...

इस तरह, सारे दुःख-समूह का समुदय होता है।

हे फग्गुन ! इन छः स्पर्शायतनों के बिल्कुल रुक जाने से स्पर्श होने नहीं पाता। स्पर्श के रुक जाने से वेदना नहीं होती। वेदना के रुक जाने से तृष्णा नहीं होती। तृष्णा के रुक जाने से उपादान

नहीं होता। उपादान के रुक जाने से भव नहीं होता। भव के रुक जाने से जन्म नहीं होता। जन्म के रुक जाने से जरामरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, बेचैनी, परेशानी सभी रुक जाते हैं।

इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

§ ३. पठम समणब्राह्मण सुत्त (१२. २. ३)

यथार्थ नाम के अधिकारी श्रमण-ब्राह्मण

श्रावस्ती में।

भगवान् बोले—भिक्षुओ! जो श्रमण या ब्राह्मण जरामरण को नहीं जानते, जरामरण के हेतु को नहीं जानते, जरामरण का रुक जाना नहीं जानते, जरामरण के रोकने का मार्ग नहीं जानते; जाति···; भव···; उपादान···; तृष्णा···; वेदना···; स्पर्श···; षडायतन···; नामरूप···; विज्ञान···; संस्कार··· के रोकने का मार्ग नहीं जानते हैं—वह श्रमण या ब्राह्मण यथार्थ में अपने नाम के अधिकारी नहीं हैं। न तो वे आयुष्मान् श्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को अपने सामने जानकर, साक्षात् कर, या प्राप्त कर विहार करते हैं···।

भिक्षुओ! और, जो श्रमण या ब्राह्मण जरामरण को जानते हैं,···संस्कार···के रोकने का मार्ग जानते हैं—वह श्रमण या ब्राह्मण यथार्थ में अपने नाम के अधिकारी हैं। वे आयुष्मान् श्रमण-भाव या ब्राह्मण-भाव को···प्राप्त कर विहार करते हैं।

§ ४. दुतिय समणब्राह्मण सुत्त (१२. २. ४)

परमार्थ के जानकार श्रमण-ब्राह्मण

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ! जो श्रमण या ब्राह्मण इन धर्मों को नहीं जानते हैं, इन धर्मों के हेतु को नहीं जानते हैं, इन धर्मों का रुक जाना नहीं जानते हैं, इन धर्मों के रोकने के मार्ग को नहीं जानते हैं वे किन धर्मों के रोकने के मार्ग को नहीं जानते हैं?

जरामरण को नहीं जानते हैं, जरामरण के हेतु को नहीं जानते हैं, जरामरण का रुक जाना नहीं जानते हैं, जरामरण के रोकने के मार्ग को नहीं जानते हैं। जाति···; भव···; उपादान···; तृष्णा···; वेदना···; स्पर्श···; षडायतन···; नामरूप···; विज्ञान···; संस्कार को नहीं जानते हैं, संस्कार के हेतु को नहीं जानते हैं, संस्कार का रुक जाना नहीं जानते हैं, संस्कार के रोकने के मार्ग को नहीं जानते हैं।

भिक्षुओ! न तो उन श्रमणों में श्रमणत्व है, और न ब्राह्मणों में ब्राह्मणत्व; न तो वे आयुष्मान् श्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को अपने सामने जानकर, साक्षात् कर, या प्राप्त कर विहार करते हैं।

भिक्षुओ! जो श्रमण या ब्राह्मण इन धर्मों···के रोकने के मार्ग को जानते हैं वे किन धर्मों···के रोकने के मार्ग को जानते हैं?

जरामरण···; जाति···; भव···; उपादान···; तृष्णा···; वेदना···; स्पर्श···; षडायतन···; नामरूप···; विज्ञान···; संस्कार···के रोकने के मार्ग को जानते हैं।

भिक्षुओ! यथार्थतः उन श्रमणों में श्रमणत्व है; और ब्राह्मणों में ब्राह्मणत्व; वे आयुष्मान् श्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को अपने सामने जानकर, साक्षात् कर, और प्राप्त कर विहार करते हैं।

§ ५. कच्चानगोत्त सुत्त (१२. २. ५)

सम्यक् दृष्टि की व्याख्या

श्रावस्ती में।

तब, आयुष्मान् कात्यायनगोत्र जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् कात्यायनगोत्र भगवान् से बोले:—भन्ते ! जो लोग 'सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-दृष्टि' कहा करते हैं वह 'सम्यक्-दृष्टि' है क्या ?

कात्यायन ! संसार के लोग दो अविद्याओं में पड़े हैं—(१)अस्तित्व की अविद्या में, और (२) नास्तित्व की अविद्या में।

कात्यायन ! लोक के समुदय का यथार्थ-ज्ञान प्राप्त करने से लोक में जो नास्तित्व-बुद्धि है वह मिट जाती है। कात्यायन ! लोक में जो अस्तित्व-बुद्धि है वह मिट जाती है।

कात्यायन ! यह संसार तृष्णा, आसक्ति और ममत्व के मोह में बेतरह जकड़ा है। सो, (आर्य-श्रावक) उस तृष्णा, आसक्ति, मन के लगाने, ममत्व और मोह में नहीं पड़ता है; आत्म-भाव में नहीं बँधता है। जो उत्पन्न होता है दुःख ही उत्पन्न होता है, जो रुक जाता है वह दुःख ही रुक जाता है। न मन में कोई कांक्षा रखता है, और न कोई संशय। उसे अपने भीतर ही ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। कात्यायन ! इसी को सम्यक्-दृष्टि कहते हैं।

कात्यायन ! 'सभी कुछ विद्यमान है' यह एक अन्त है; 'सभी कुछ शून्य है' यह दूसरा अन्त है। कात्यायन ! बुद्ध इन दो अन्तों को छोड़ सत्य को मध्यम प्रकार से बताते हैं।

अविद्या के होने से संस्कार होते हैं···। इस तरह, सारे दुःख-समूह का समुदय होता है।

उसी अविद्या के बिल्कुल हट और रुक जाने से संस्कार होने नहीं पाते···। इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

§ ६. धम्मकथिक सुत्त (१२. २. ६)

धर्मोपदेशक के गुण

श्रावस्ती में।

तब, कोई भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला—भन्ते ! लोग 'धर्मकथिक, धर्मकथिक' कहा करते हैं। सो 'धर्मकथिक' के क्या गुण हैं ?

भिक्षु ! जो जरामरण के निर्वेद =विराग= निरोध का उपदेश करता है वही अलबत्ता धर्मकथिक कहा जा सकता है।

भिक्षु ! जो जरामरण के निर्वेद =विराग= निरोध के लिये प्रतिपन्न है वही अलबत्ता 'धर्मानुधर्म-प्रतिपन्न' कहा जा सकता है।

भिक्षु ! जो जरामरण के निर्वेद=विराग=निरोध हो जाने से विमुक्त हो गया है, वही अलबत्ता देखते ही देखते निर्वाण पा लेने वाला भिक्षु कहा जा सकता है।

भिक्षु ! जो जाति···; भव···; उपादान···; तृष्णा···; वेदना···; स्पर्श··· षडायतन···; नाम-रूप···; विज्ञान···; संस्कार···; अविद्या के निर्वेद=विराग=निरोध का उपदेश करता है वही अलबत्ता धर्मकथिक कहा जा सकता है।

भिक्षु ! जो अविद्या के निर्वेद=विराग=निरोध के लिये प्रतिपन्न है वही अलबत्ता 'धर्मानुधर्म प्रति-पन्न' कहा जा सकता है।

भिक्षु ! जो जरामरण के निर्वेद =विराग =निरोध हो जाने से विमुक्त हो गया है, वही अलबत्ता देखते ही देखते निर्वाण पा लेने वाला भिक्षु कहा जा सकता है।

§ ७. अचेल सुत्त (१२. २. ७)

प्रतीत्य समुत्पाद, अचेल काश्यप की प्रव्रज्या

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे।

क

तब, भगवान् सुबह में पहन और पात्रचीवर ले राजगृह में भिक्षाटन के लिये पैठे।

नंगा साधु काश्यप ने भगवान् को दूर ही से आते देखा। देखकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया और भगवान् का सम्मोदन किया; तथा आवभगत और कुशलक्षेम के प्रश्न पूछ कर एक ओर खड़ा हो गया।

एक ओर खड़ा हो, नंगा साधु काश्यप भगवान् से बोला—आप गौतम से मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ; क्या आप उसे सुन कर उत्तर देने को तैयार हैं?

काश्यप! यह प्रश्न पूछने का उचित अवसर नहीं है; अभी नगर में भिक्षाटन के लिये पैठा हूँ।

दूसरी बार भी...।

तीसरी बार भी...।

काश्यप!...अभी नगर में भिक्षाटन के लिये पैठा हूँ।

इस पर, नंगा साधु काश्यप भगवान् से बोला—आप गौतम से मैं कोई बड़ी बात नहीं पूछना चाहता हूँ।

काश्यप! तो पूछो जो पूछना चाहते हो।

ख

हे गौतम! क्या दुःख अपना स्वयं किया* होता है?

काश्यप! ऐसी बात नहीं है।

हे गौतम! तो, क्या दुःख पराये का किया होता है?

काश्यप! ऐसी बात नहीं है।

हे गौतम! तो, क्या दुःख अपने स्वयं और पराये के भी करने से होता है?

काश्यप! ऐसी बात नहीं है।

हे गौतम! यदि दुःख अपने स्वयं और पराये के भी करने से नहीं होता है तो क्या अकारण ही अकस्मात् चला आता है।

काश्यप! ऐसी बात नहीं है।

हे गौतम! तो क्या दुःख है ही नहीं?

नहीं काश्यप! दुःख है।

तो पता चलता है कि आप गौतम दुःख को जानते समझते नहीं हैं।

काश्यप! ऐसी बात नहीं है कि मैं दुःख को जानता समझता नहीं हूँ। काश्यप! मैं दुःख को सचतः जानता और समझता हूँ।

---

*सयंकतं = जीव का अपना स्वयं किया हुआ।

"हे गौतम ! क्या दुःख अपना स्वयं किया होता है?" पूछे जाने पर आप कहते हैं, "काश्यप ! ऐसी बात नहीं है।"

"...आप कहते हैं, "काश्यप ! मैं दुःख को सचमुच जानता और समझता हूँ।

भगवान् मुझे बतावें कि दुःख क्या है; भगवान् मुझे उपदेश करें कि दुःख क्या है ?

काश्यप ! 'जो करता है वही भोगता है' ख्याल कर, यदि कहा जाय कि दुःख अपना स्वयं किया होता है तो शाश्वत-वाद हो जाता है।

काश्यप ! 'दूसरा करता है और दूसरा भोगता है' ख्याल कर, यदि संसार के फेर में पड़ा हुआ मनुष्य कहे कि दुःख पराये का किया होता है तो उच्छेद-वाद हो जाता है।

कात्यायन ! बुद्ध इन दो अन्तों को छोड़ सत्य को मध्यम प्रकार से बताते हैं। अविद्या के होने से संस्कार होते हैं...। इस तरह, सारे दुःख-समूह का समुदय होता है।

उसी अविद्या के बिलकुल हट और रुक जाने से संस्कार होने नहीं पाते...। इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

ग

भगवान् के ऐसा कहने पर नंगा साधु काश्यप भगवान् से बोला—धन्य हैं ! भन्ते, आप धन्य हैं !! जैसे उलटे को सुलट दे...वैसे भगवान् ने अनेक प्रकार से धर्म का उपदेश किया। मैं भगवान् की शरण जाता हूँ, धर्म की और भिक्षुसंघ की। भन्ते ! मैं भगवान् के पास प्रव्रज्या पाऊँ, और उपसम्पदा पाऊँ।

काश्यप ! जो दूसरे मत के साधु इस धर्मविनय में प्रव्रज्या और उपसम्पदा चाहते हैं उन्हें चार मास का परिवास* लेना पड़ता है। इस चार मास के परिवास बीतने पर यदि भिक्षुओं को रुचता है तो उसे प्रव्रजित और उपसम्पदा देकर भिक्षु बना देते हैं। किन्तु, हमें व्यक्ति की विभिन्नता मालूम है।

भन्ते ! यदि, जो दूसरे मत के साधु इस धर्मविनय में प्रव्रज्या और उपसम्पदा चाहते हैं उन्हें चार मास का परिवास लेना पड़ता है; इस चार मास के परिवास बीतने पर यदि भिक्षुओं को रुचता है तो उसे प्रव्रज्या और उपसम्पदा देकर भिक्षु बनाते हैं,—तो मैं चार साल का परिवास लेता हूँ, चार साल के परिवास बीतने पर यदि भिक्षुओं को रुचे तो मुझे प्रव्रज्या और उपसम्पदा देकर भिक्षु बना दें।

नंगा साधु काश्यप ने भगवान् के पास प्रव्रज्या पायी, और उपसम्पदा पायी।

घ

उपसम्पदा पाने के कुछ ही समय बाद आयुष्मान् काश्यप अकेला, एकान्त में अप्रमत्त, आतापी (=क्लेशों को तपाने वाला) और प्रहितात्म हो विहार करते हुये शीघ्र ही उस अनुत्तर ब्रह्मचर्य के परम फल को इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात् कर, और प्राप्त कर विहार करने लगे जिसके लिये कुलपुत्र श्रद्धा-पूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाते हैं। जाति क्षीण हो गई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ करना बाकी नहीं है—ऐसा जान लिया।

आयुष्मान् काश्यप अर्हतों में एक हुये।

---

* परिवास—इस अवधि में प्रव्रज्या-मार्गी को सेवा-टहल करते हुये भिक्षुओं के साथ रहना होता है। जब भिक्षु उसकी दृढ़ता, आचरण, व्यवहार आदि से संतुष्ट हो जाते हैं तो उसे प्रव्रजित करते हैं।

§ ८. तिम्बरुक सुत्त (१२. २. ८)

सुख-दुःख के कारण

श्रावस्ती में।

तब, तिम्बरुक परिव्राजक जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर, भगवान् का सम्मोदन किया और आवभगत तथा कुशलक्षेम के प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ कर तिम्बरुक परिव्राजक भगवान् से बोला—

हे गौतम ! क्या सुख-दुःख अपने आप* हो जाता है ?

भगवान् बोले—तिम्बरुक ! ऐसी बात नहीं है।

हे गौतम ! तो क्या सुख-दुःख किसी दूसरे के करने से होता है ?

भगवान् बोले—तिम्बरुक ! ऐसी बात नहीं है।

हे गौतम ! तो क्या सुख-दुःख अपने आप भी हो जाता है, और दूसरे के करने से भी होता है ?

भगवान् बोले—तिम्बरुक ! ऐसी बात नहीं है।

हे गौतम ! तो, क्या सुख-दुःख न अपने आप और न दूसरे के करने से किन्तु अकारण ही हठात् हो जाता है ?

भगवान् बोले—तिम्बरुक ! ऐसी बात नहीं है।

हे गौतम ! तो क्या सुख-दुःख है ही नहीं ?

तिम्बरुक ! ऐसी बात नहीं है कि सुख-दुःख नहीं है, सुख-दुःख तो है ही।

तो, पता चलता है कि आप गौतम सुख-दुःख को जानते बूझते नहीं हैं।

तिम्बरुक ! ऐसी बात नहीं है कि मैं सुख-दुःख को नहीं जानता बूझता। तिम्बरुक ! मैं सुख-दुःख को सच्चतः जानता बूझता हूँ।

………तो, हे गौतम ! मुझे बतावें कि सुख-दुःख क्या है। हे गौतम ! मुझे सुख-दुःख का उपदेश करें।

तिम्बरुक ! 'जो वेदना है वही (सुख-दुःख की) अनुभूति कराने वाला है' समझ कर तुमने कहा कि सुख-दुःख अपने आप हो जाता है। मैं ऐसा नहीं बताता।

तिम्बरुक ! 'वेदना दूसरी ही है, और (सुख-दुःख की) अनुभूति कराने वाला दूसरा ही' समझ कर तुमने कहा कि सुख-दुःख दूसरे का किया होता है। मैं ऐसा भी नहीं बताता।

तिम्बरुक ! बुद्ध इन दो अन्तों को छोड़ मध्यम रीति से सत्य का उपदेश करते हैं।

अविद्या के होने से संस्कार होते……। इस तरह, सारे दुःख-समूह का समुदय होता है।

उसी अविद्या के बिल्कुल हट और रुक जाने से……सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

……हे गौतम ! आज से जन्म भर मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।

§ ९. बालपण्डित सुत्त (१२. २. ९)

मूर्ख और पण्डित में अन्तर

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! अविद्या में पड़, तृष्णा, बढ़ाते रहने से ही मूर्ख जनों का चोला खड़ा रहता है। और, यह चोला बाहर और भीतर से नाम-रूप (=पञ्च स्कन्ध) ही है। सो दो-दो (=इन्द्रिय और उसका विषय)

* सयंकतं = स्वयं वेदना ही सुख-दुःख की अनुभूति का कारण होना।

के होने से स्पर्श होता है। यह छः आयतन हैं जिनसे स्पर्श कर मूर्ख सुख-दुःख का अनुभव करता है। अथवा, इन (छः आयतनों) में किसी एक से।

भिक्षुओ! अविद्या से ध्य, तृष्णा के रहते रहने से ही पण्डित जनों का भी चोला खड़ा रहता है। और, यह चोला बाहर और भीतर से नाम-रूप (=पञ्च स्कन्ध) ही है। सो, दो दो के होने से स्पर्श होता है। यह छः आयतन हैं जिनसे स्पर्श कर मूर्ख सुख-दुःख का अनुभव करता है। अथवा, इनमें किसी एक से।

भिक्षुओ! तब, मूर्ख और पण्डित में क्या अन्तर=भेद होता है?

भन्ते! भगवान् ही धर्म के गुरु, नायक और उपदेष्टा हैं। भन्ते! अच्छा होता कि भगवान् ही इस प्रश्न को खुलासा करते। भगवान् से सुन कर भिक्षु धारण करेंगे।

तो, भिक्षुओ! सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ।

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ! जिस अविद्या और तृष्णा के हेतु मूर्ख जनों का चोला खड़ा रहता है, वह अविद्या और तृष्णा उनकी क्षीण हुई नहीं होती है। सो क्यों? भिक्षुओ! क्योंकि दुःख का बिल्कुल क्षय कर देने के लिये मूर्ख ने ब्रह्मचर्य नहीं पाला। इसलिये मूर्ख एक चोला छोड़कर दूसरा धरता है। इस तरह चोला धरते रह, वह जाति, जरामरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, बेचैनी, परेशानी से नहीं छूटता है। दुःख से नहीं छूटता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

भिक्षुओ! जिस अविद्या और तृष्णा के हेतु पण्डित जनों का चोला खड़ा रहता है, वह अविद्या और तृष्णा उनकी क्षीण हो गई होती है। सो क्यों? भिक्षुओ! क्योंकि दुःख का बिल्कुल क्षय कर देने के लिये पण्डित ने ब्रह्मचर्य का पालन किया है। इसलिये, पण्डित एक चोला छोड़ कर दूसरा नहीं धरता इस तरह फिर चोला न धर, वह जाति, जरामरण, शोक-रोना पीटना, दुःख बेचैनी, परेशानी से छूट जाता है। दुःख से छूट जाता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

भिक्षुओ! यही ब्रह्मचर्य पालन न करने और करने का अन्तर=भेद मूर्ख और पण्डित में होता है।

§ १०. पच्चय सुत्त (१२. २. १०)

प्रतीत्य समुत्पादकी व्याख्या

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ! मैं प्रतीत्यसमुत्पाद और प्रतीत्य समुत्पन्न धर्मों का उपदेश करूँगा। उसे सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ।

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह, भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ! प्रतीत्य समुत्पाद क्या है? भिक्षुओ! बुद्ध अवतार लें या नहीं, (यह तो सर्वदा सत्य रहता है कि) जनमने पर बूढ़ा होता है और मर जाता है (= जाति के प्रत्यय से जरा-मरण होता है)। प्रकृति का यह नियम है कि एक धर्म के होने से दूसरा होता है; उसे बुद्ध भली भाँति बूझते और जानते हैं। उसे भली भाँति बूझ और जानकर बताते हैं = उपदेश करते हैं = जताते हैं = सिद्ध करते हैं = खोल देते हैं = विभाग कर देते हैं = साफ करते हैं; और कहते हैं—

देखो! भिक्षुओ! जाति के होने से जरामरण होता है। भव के होने से जाति होती है। उपादान के होने से भव होता है। तृष्णा के होने से उपादान होता है। वेदना के होने से तृष्णा होती है। स्पर्श के होने से वेदना होती है। षडायतन के होने से स्पर्श होता है। नामरूप के होने से षडायतन होता है। विज्ञान के होने से नामरूप होता है। संस्कारों के होने से विज्ञान होता है। अविद्या के होने से संस्कार होते हैं।—बुद्ध का अवतार हो या नहीं यह नियम सदा बना रहता है।

प्रकृति का यह नियम है कि एक धर्म के होने से दूसरा होता है; उसे बुद्ध भली भाँति बूझते और जानते हैं। भली भाँति बूझ और जानकर बताते हैं = उपदेश करते हैं···और कहते हैं—

देखो! भिक्षुओ! अविद्या के होने से संस्कार होते हैं। भिक्षुओ! इसकी सारी सत्यता इसी हेतु—नियम पर निर्भर है।

भिक्षुओ! प्रतीत्य समुत्पन्न धर्म क्या हैं? भिक्षुओ! जरामरण अनित्य है, संस्कृत है, प्रतीत्य समुत्पन्न है, क्षय होनेवाला है, व्यय होनेवाला है, छोड़ दिया जा सकता है, रोक दिया जा सकता है।

भिक्षुओ! जाति...! भव...! उपादान...! तृष्णा...! वेदना...! स्पर्श...! षडायतन...! नाम-रूप...! विज्ञान...! संस्कार...! अविद्या अनित्य है, संस्कृत है, प्रतीत्य समुत्पन्न है, क्षय होने वाली है, व्यय होने वाली है, छोड़ दी जा सकती है, रोक दी जा सकती है। भिक्षुओ! इन्हीं को प्रतीत्य समुत्पन्न धर्म कहते हैं।

भिक्षुओ! आर्यश्रावक को यह प्रतीत्य समुत्पाद (का नियम) और प्रतीत्य समुत्पन्न धर्म अच्छी तरह समझ कर स्पष्टतः साक्षात् कर लिये गये होते हैं।

वह पूर्वान्त की मिथ्यादृष्टि में नहीं रहता है, कि—मैं भूतकाल में था, मैं भूतकाल में नहीं था, भूतकाल में क्या था, भूतकाल में मैं कैसा था, भूतकाल में मैं क्या होकर क्या हो गया था?

वह अपरान्त की मिथ्यादृष्टि में भी नहीं रहता है, कि—मैं भविष्य में होऊँगा, मैं भविष्य में नहीं होऊँगा, भविष्य में क्या होऊँगा, भविष्य में कैसा होऊँगा, भविष्य में क्या होकर क्या हो जाऊँगा।

वह प्रत्युत्पन्न (=वर्तमान काल) को लेकर भी अपने भीतर संशय नहीं करता—मैं हूँ, मैं नहीं हूँ, मैं क्या हूँ, मैं कैसा हूँ, मेरा जीव कहाँ से आया है, और कहाँ जायगा।

सो क्यों? भिक्षुओ! क्योंकि आर्यश्रावक को यह प्रतीत्य समुत्पाद और प्रतीत्य समुत्पन्न धर्म अच्छी तरह समझ कर स्पष्टतः साक्षात् कर लिये गये होते हैं।

आहार-वर्ग समाप्त।

तीसरा भाग

दशबल-वर्ग

§ १. पठम दसबल सुत्त (१२. ३. १)

बुद्ध सर्वोत्तम कहलाने के अधिकारी

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! बुद्ध दशबल और चार वैशारद्य से युक्त हो सर्वोत्तम कहलाने के अधिकारी हैं। सभा में सिंह-नाद करते हैं, ब्रह्मचक्र को प्रवर्तित करते हैं।

यह रूप है, यह रूप का उगना है, यह रूप का लय हो जाना है। यह वेदना है···। यह संज्ञा है···। यह संस्कार है···। यह विज्ञान है, यह विज्ञान का उगना है, यह विज्ञान का लय हो जाना है।

सो, एक के होने से दूसरा होता है, एक के उगने से दूसरा उग जाता होता है। एक के नहीं होने से दूसरा नहीं होता है, एक के रुक जाने से दूसरा रुक जाता है।

जो अविद्या के होने से संस्कार होते हैं···। इस तरह सारे दुःख-समूह का समुदय हो जाता है।

उसी अविद्या के बिल्कुल हट और रुक जाने से···। इस तरह, सारा दुःख समूह रुक जाता है।

§ २. दुतिय दसबल सुत्त (१२. ३. २)

प्रव्रज्या की सफलता के लिए उद्योग

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! बुद्ध दशबल और चार वैशारद्य से युक्त हो···[ऊपर वाले सूत्र की पुनरावृत्ति] इस तरह, सारा दुःख समूह रुक जाता है।

भिक्षुओ ! मैंने धर्म को साफ साफ कह दिया है=समझा दिया है=खोल दिया है=प्रकाशित कर दिया है=छेदन काट दिया है।

भिक्षुओ ! ऐसे···धर्म में श्रद्धा से प्रव्रजित हुये कुलपुत्र का वीर्य करना सफल होता है।—चाम, नाड़ी, और हड्डियाँ ही भले शरीर में रह जायँ, मांस और लोहित भले ही सूख जायँ—किन्तु, जो पुरुष के उत्साह, पुरुष के वीर्य और पुरुष के पराक्रम से पाया जा सकता है उसे बिना प्राप्त किये उद्योग से मुँह नहीं मोड़ूँगा।

भिक्षुओ ! काहिल पुरुष पाप-धर्मों में पड़कर दुःख पूर्ण जीता है; महान् परमार्थ से हाथ धो बैठता है। भिक्षुओ ! और, वीर्यवान् पुरुष पाप-धर्मों से बचा रह, आनन्द-पूर्वक विहार करता है; महान् परमार्थ को पूरा कर लेता है।

भिक्षुओ ! हीन से अग्र की प्राप्ति नहीं होती, अग्र से ही अग्र की प्राप्ति होती है। भिक्षुओ ! ब्रह्मचर्य पालन करने की श्रद्धा लाओ, सामने बुद्ध मौजूद हैं। इसलिये, हे भिक्षुओ ! वीर्य करो, अप्राप्त की प्राप्ति के लिये, नहीं पहुँचे हुये स्थान पर पहुँचने के लिये, कभी देखी नहीं गई चीज़ को साक्षात् करने के लिये।

इस तरह, तुम्हारी प्रव्रज्या खाली नहीं जायगी, बल्कि सफल और सिद्ध होगी। जिनका दान किया चीवर, पिण्डपात, शयनासन, ग्लानप्रत्यय भोग करोगे उन्हें बड़ा पुण्य प्राप्त होगा।

भिक्षुओ! तुम्हें इसी तरह सीखना चाहिये। भिक्षुओ! अपने हित को ध्यान में रखते हुये सावधान हो उद्योग करो। दूसरों के हित को भी ध्यान में रखते हुये सावधान हो उद्योग करो।

§ ३. उपनिशा सुत्त (१२. ३. ३)

आश्रव-क्षय, प्रतीत्य समुत्पाद

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ! मैं जानते और देखते हुये ही आश्रवों के क्षय करने का उपदेश करता हूँ, बिना जाने और देखे नहीं।

भिक्षुओ! क्या जान और देखकर आश्रवों का क्षय होता है? यह रूप है, यह रूप का उगना है, यह रूप का लय हो जाना है। यह वेदना, संज्ञा, संस्कार···। यह विज्ञान है, यह विज्ञान का उगना है, यह विज्ञान का लय हो जाना है। भिक्षुओ! इसे ही जान और देखकर आश्रवों का क्षय होता है।

भिक्षुओ! क्षय होने पर जो क्षय होने का ज्ञान होता है उसे भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

भिक्षुओ! क्षय होने के ज्ञान का हेतु क्या है? विमुक्ति ही हेतु है—ऐसा कहना चाहिये। भिक्षुओ! विमुक्ति को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

भिक्षुओ! विमुक्ति का हेतु क्या है? वैराग्य हेतु है—ऐसा कहना चाहिये। भिक्षुओ! वैराग्य को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

भिक्षुओ! वैराग्य का हेतु क्या है? संसार की बुराइयों को देख उससे भय करना (=निर्विदा) हेतु है—ऐसा कहना चाहिये। भिक्षुओ! मैं इस भय करने को भी सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

भिक्षुओ! इस भय करने का हेतु क्या है? उसका हेतु यथार्थज्ञानदर्शन है—ऐसा कहना चाहिये। भिक्षुओ! यथार्थज्ञानदर्शन को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

भिक्षुओ! यथार्थज्ञानदर्शन का हेतु क्या है? उसका हेतु समाधि है—ऐसा कहना चाहिये। भिक्षुओ! समाधि को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

भिक्षुओ! समाधि का हेतु क्या है? उसका हेतु सुख है—ऐसा कहना चाहिये। भिक्षुओ! सुख को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

भिक्षुओ! सुख का हेतु क्या है? उसका हेतु शान्ति (=प्रश्रब्धि) है—ऐसा कहना चाहिये। भिक्षुओ! शान्ति को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

भिक्षुओ! शान्ति का हेतु क्या है? उसका हेतु प्रीति है—ऐसा कहना चाहिये। भिक्षुओ! प्रीति को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

भिक्षुओ! प्रीति का हेतु क्या है? उसका हेतु प्रमोद है—ऐसा कहना चाहिये। भिक्षुओ! प्रमोद को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

भिक्षुओ! प्रमोद का हेतु क्या है? उसका हेतु श्रद्धा है—ऐसा कहना चाहिये। भिक्षुओ! श्रद्धा को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

भिक्षुओ! श्रद्धा का हेतु क्या है? उसका हेतु दुःख है—ऐसा कहना चाहिये। भिक्षुओ! दुःख को भी मैं सहेतुक बताता हूँ, अहेतुक नहीं।

भिक्षुओ ! दुःख का हेतु क्या है ? उसका हेतु जाति है—ऐसा कहना चाहिये। भिक्षुओ ! जाति को भी मैं सहेतुक बताता हूँ अहेतुक नहीं।

भिक्षुओ ! जाति का हेतु ''भव है''।
भिक्षुओ ! भव का हेतु''उपादान है''।
भिक्षुओ ! उपादान का हेतु''तृष्णा है''।
भिक्षुओ ! तृष्णा का हेतु''वेदना है''।
भिक्षुओ ! वेदना का हेतु''स्पर्श है''।
भिक्षुओ ! स्पर्श का हेतु''षडायतन है''।
भिक्षुओ ! षडायतन का हेतु''नामरूप है''।
भिक्षुओ ! नामरूप का हेतु''विज्ञान है''।
भिक्षुओ ! विज्ञान का हेतु''संस्कार है''।
भिक्षुओ ! संस्कार का हेतु''अविद्या है।

भिक्षुओ ! इस तरह अविद्या के होने से संस्कार, संस्कार के होने से विज्ञान, ''नामरूप, ''षडायतन, ''स्पर्श, ''वेदना, ''तृष्णा, ''उपादान, ''भव, '' जाति, '' दुःख, दुःख के होने से श्रद्धा, ''प्रमोद, ''प्रीति, ''प्रश्रब्धि, ''सुख, ''समाधि, ''यथार्थ ज्ञान-दर्शन, ''संसार-भीति, ''वैराग्य, '' वैराग्य से विमुक्ति होती है, विमुक्ति से आश्रवों के क्षय होने का ज्ञान हो आता है।

भिक्षुओ ! जैसे पहाड़ के ऊपर मूसलधार वृष्टि होने से, जल नीचे की ओर बह कर पर्वत, कन्दरा प्रदर, शाखा सभी को भर देता है। इन्हें भर जाने से नाले बह निकलते हैं। नालों के भर जाने से झीलियाँ भर जाती हैं। झीलियों के भर जाने से, छोटी-छोटी नदियाँ भर जाती हैं। छोटी-छोटी नदियों के भर जाने से बड़ी-बड़ी नदियाँ भर जाती हैं। बड़ी-बड़ी नदियों के भर जाने से समुद्र सागर भी भर जाते हैं।

भिक्षुओ ! इसी तरह, अविद्या के होने से संस्कार, संस्कार के होने से विज्ञान, ''नामरूप, ''षडायतन, ''स्पर्श, ''वेदना, ''तृष्णा, ''उपादान, ''भव, '' जाति, ''दुःख, ''श्रद्धा, ''प्रमोद, ''प्रीति, ''प्रश्रब्धि, ''सुख, ''समाधि, ''यथार्थ ज्ञान-दर्शन, ''संसार-भीति, वैराग्य, वैराग्य के होने से विमुक्ति और विमुक्ति के होने से क्षय होने का ज्ञान।

§ ४. अञ्ञतित्थिय सुत्त (१२. ३. ४)

दुःख प्रतीत्य समुत्पन्न है

राजगृह के वेलुवन में।

तब, आयुष्मान् **सारिपुत्र** सुबह में पहन और पात्रचीवर ले भिक्षाटन के लिये राजगृह में पैठे।

तब, आयुष्मान् **सारिपुत्र** के मन में ऐसा हुआ—अभी राजगृह में भिक्षाटन करने के लिये कुछ सवेरा है; तो मैं चलूँ जहाँ अन्य तैर्थिक परिव्राजकों का आराम है।

तब, आयुष्मान् **सारिपुत्र** जहाँ अन्य तैर्थिक परिव्राजकों का आराम था वहाँ गये, जाकर उनका सम्मोदन किया और कुशल क्षेम के प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् **सारिपुत्र** को वे अन्य तैर्थिक परिव्राजक बोले—आवुस **सारिपुत्र** ! कुछ श्रमण और ब्राह्मण कर्मवादी हैं जो दुःख को अपना स्वयं किया हुआ बताते हैं। आवुस **सारिपुत्र** ! ऐसे भी कुछ श्रमण और ब्राह्मण कर्मवादी हैं जो दुःख को दूसरे का किया हुआ बताते हैं। आवुस **सारिपुत्र** ! ऐसे भी कुछ श्रमण और ब्राह्मण कर्मवादी हैं जो दुःख को अपना स्वयं किया हुआ और दूसरे का भी किया हुआ बताते हैं।

आवुस सारिपुत्र ! और, ऐसे भी कितने श्रमण और ब्राह्मण कर्मवादी हैं जो दुःख को न अपना स्वयं किया हुआ और न दूसरे का किया हुआ, किन्तु अकारण हठात् हो गया बताते हैं।

आवुस सारिपुत्र ! इस विषय में श्रमण गौतम का क्या कहना है ? क्या कह कर हम श्रमण गौतम के सिद्धान्त को यथार्थतः बता सकते हैं, जिससे श्रमण गौतम के सिद्धान्त में हम उलटा-पुलटा न कर दें; उनके धर्म के अनुकूल कहें; और, जिसके कहने से कोई सहधार्मिक निन्द्य-स्थान को न प्राप्त हो जाय।

आवुस ! भगवान् ने दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न बतलाया है। किसके प्रत्यय से (=होने से) ? स्पर्श के प्रत्यय से। ऐसा ही कह कर आप भगवान् के सिद्धान्त को यथार्थतः बता सकते हैं, जिससे भगवान् के सिद्धान्त में आप उलटा-पुलटा न कर दें; उनके धर्म के अनुकूल कहें,…।

आवुस ! जो कर्मवादी श्रमण या ब्राह्मण दुःख को अपना स्वयं किया हुआ बताते हैं वह भी स्पर्श के प्रत्यय ही से होता है। जो कर्मवादी श्रमण या ब्राह्मण दुःख को अपना स्वयं किया हुआ और दूसरे का भी किया हुआ बताते हैं वह भी स्पर्श के प्रत्यय ही से होता है। जो कर्मवादी श्रमण या ब्राह्मण दुःख को न अपना स्वयं किया हुआ और न दूसरे का किया हुआ, किन्तु अकारण हठात् हो गया बतलाते हैं, वह भी स्पर्श के प्रत्यय ही से होता है।

आवुस ! जो कर्मवादी श्रमण या ब्राह्मण दुःख को अपना स्वयं किया हुआ बताते हैं, वे बिना स्पर्श के ही कुछ अनुभव कर लें—ऐसा सम्भव नहीं।…। जो श्रमण या ब्राह्मण…दुःख को अकारण हठात् हो गया बताते हैं, वे भी बिना स्पर्श के ही कुछ अनुभव कर लें—ऐसा सम्भव नहीं।

ख

आयुष्मान् आनन्द ने अन्य तैर्थिक परिव्राजकों के साथ आयुष्मान् सारिपुत्र को कथा-संलाप करते सुना।

तब, आयुष्मान् आनन्द भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने पर जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् को अन्य तैर्थिक परिव्राजकों के साथ आयुष्मान् सारिपुत्र का जो कुछ कथा-संलाप हुआ था उसे ज्यों का त्यों कह सुनाया।

ठीक है आनन्द ! सारिपुत्र ने ठीक ही समझाया है। मैंने दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न (हेतु के होने से उत्पन्न होनेवाला) बताया है। किसके प्रतीत्य से (=होने से) ? स्पर्श के प्रत्यय से। ऐसा ही कहकर कोई भी मेरे उपदेश को यथार्थतः बता सकता है, ऐसा कहनेवाला मेरे सिद्धान्त में कुछ उलटा पुलटा नहीं करता है। ऐसा कहनेवाला कोई सहधार्मिक बातचीत में निन्द्य-स्थान को नहीं प्राप्त करता है।

आनन्द ! जो कर्मवादी श्रमण या ब्राह्मण दुःख को…बताते हैं, वह भी स्पर्श के प्रत्यय ही से होता है।

आनन्द ! जो कर्मवादी श्रमण या ब्राह्मण दुःख को…बताते हैं, वे बिना स्पर्श के ही कुछ अनुभव कर लें ऐसा सम्भव नहीं।

आनन्द ! एक समय मैं इसी राजगृह के वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार कर रहा था। आनन्द ! तब, मैं सुबह में पहन और पात्रचीवर ले भिक्षाटन के लिए राजगृह में पैठा। आनन्द ! तब, मेरे मन में यह हुआ—अभी राजगृह में भिक्षाटन करने के लिए बड़ा सवेरा है; तो मैं जहाँ अन्य तैर्थिक परिव्राजकों का आराम है वहाँ चलूँ।

आनन्द ! तब, मैं जहाँ अन्य तैर्थिक परिव्राजकों का आराम था वहाँ गया, और उनका सम्मोदन किया; तथा कुशल क्षेम के प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया।

आनन्द ! एक ओर बैठने पर अन्य तैर्थिक परिव्राजकों ने मुझसे पूछा......।

···[वही प्रश्नोत्तर जो आयुष्मान् सारिपुत्र के साथ कहा गया है।]

भन्ते, आश्चर्य है ! अद्भुत है !! कि एक ही पद से सारा अर्थ कह दिया गया। भन्ते ! यदि वही अर्थ विस्तार से कहा जाता तो बड़ा गम्भीर होता, देखने में अत्यन्त गहरा मालूम पड़ता।

तो, आनन्द ! तुम इसे कहो।

ग

भन्ते ! यदि मुझसे कोई पूछे—आवुस आनन्द ! जरामरण का निदान क्या है, समुदय क्या है, उत्पत्ति क्या है, उद्गम क्या है ?—तो मैं ऐसा उत्तर दूँ :—आवुस ! जरामरण का निदान जाति है, समुदय जाति है, उत्पत्ति जाति है, उद्गम जाति है। भन्ते ! ऐसे पूछे जाने से मैं ऐसा ही उत्तर दूँ।

···जाति का निदान भव है···।

···भव का निदान उपादान है···।

··· उपादान का निदान तृष्णा है···।

···तृष्णा का निदान वेदना है ।

···वेदना का निदान स्पर्श है···।

भन्ते ! यदि मुझ से कोई पूछे—आवुस आनन्द ! स्पर्श का निदान क्या है···?—तो मैं ऐसा उत्तर दूँ—आवुस ! स्पर्श का निदान षडायतन है···। आवुस ! इन्हीं छः स्पर्शायतनों के बिल्कुल रुक जाने से स्पर्श का होना रुक जाता है। स्पर्श के रुक जाने से वेदना नहीं होती। वेदना के रुक जाने से तृष्णा नहीं होती। तृष्णा के रुक जाने से उपादान नहीं होता। उपादान के रुक जाने से भव नहीं होता। भव के रुक जाने से जाति नहीं होती। जाति के रुक जाने से जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, बेचैनी, परेशानी सभी रुक जाते हैं। इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है। भन्ते ! ऐसे पूछे जाने से मैं ऐसा ही उत्तर दूँ।

§ ५. भूमिज सुत्त (१२. ३. ५)

सुख-दुःख सहेतुक हैं

श्रावस्ती में।

क

तब, आयुष्मान् भूमिज संध्या समय ध्यान से उठ, जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ गये, और···कुशलक्षेम के प्रश्न पूछकर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् भूमिज आयुष्मान् सारिपुत्र से बोले—आवुस सारिपुत्र ! कुछ श्रमण और ब्राह्मण कर्मवादी हैं जो सुख-दुःख को अपना स्वयं किया हुआ मानते हैं। ···जो सुख-दुःख को दूसरे का किया हुआ मानते हैं। ···जो सुख-दुःख को अपना स्वयं किया हुआ और दूसरे का किया हुआ मानते हैं। ···जो सुख-दुःख को···अकारण हठात् उत्पन्न हो गया मानते हैं।

आवुस सारिपुत्र ! इस विषय में भगवान् का क्या कहना है ? क्या कह कर हम भगवान् के सिद्धान्त को यथार्थतः बता सकते हैं, जिससे हम भगवान् के सिद्धान्त में कुछ उलटा-पुलटा न कर दें; उनके धर्म के अनुकूल कहें; और, जिसके कहने से कोई सहधार्मिक वार्तालाप में निन्दा-स्थान को न प्राप्त हो जाय।

आवुस ! भगवान् ने सुख-दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न बताया है। किसके प्रतीत्य से ? स्पर्श के प्रतीत्य से। ऐसा ही कहने वाला भगवान् के सिद्धान्त को यथार्थतः बताता है······।

आवुस ! जो कर्मवादी श्रमण या ब्राह्मण सुख-दुःख को···अकारण हठात् उत्पन्न हो गया मानते हैं वह भी स्पर्श के होने ही से होता है।

···वे बिना स्पर्श के ही कुछ अनुभव कर लें—ऐसा सम्भव नहीं।

ख

आयुष्मान् आनन्द ने आयुष्मान् भूमिज के साथ आयुष्मान् सारिपुत्र के कथासंलाप को सुना।

तब, आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् को आयुष्मान् भूमिज के साथ आयुष्मान् सारिपुत्र का जो कथासंलाप हुआ था सभी ज्यों का त्यों कह सुनाया।

ठीक है आनन्द ! सारिपुत्र ने बड़ा ठीक समझाया। आनन्द ! मैंने सुख-दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न बताया है। किसके प्रतीत्य से ? स्पर्श के प्रतीत्य से। ऐसा कहने वाला मेरे सिद्धान्त को यथार्थतः बताता है······।

आनन्द ! जो कर्मवादी श्रमण या ब्राह्मण सुख-दुःख को···अकारण हठात् उत्पन्न हो गया मानते हैं वह भी स्पर्श के होने ही से होता है।

···वे बिना स्पर्श के ही कुछ अनुभव कर लें ऐसा सम्भव नहीं।

आनन्द ! शरीर से कोई कर्म करने पर कर्म की चेतना (=will) के हेतु से अपने में सुख-दुःख उत्पन्न होता है। आनन्द ! कोई वचन बोलने पर वाक्चेतना के हेतु से अपने में सुख-दुःख उत्पन्न होता है। आनन्द ! मन से कुछ वितर्क करने पर मनश्चेतना के हेतु से अपने में सुख-दुःख उत्पन्न होता है।

आनन्द ! चाहे अविद्या के कारण जो स्वयं कायसंस्कार इकट्ठा करता है, उसके प्रत्यय से उसे अपने में सुख-दुःख उत्पन्न होता है। आनन्द ! चाहे, जो दूसरे ही कायसंस्कार इकट्ठा करते हैं, उसके प्रत्यय से भी उसे अपने में सुख-दुःख उत्पन्न होता है। आनन्द ! चाहे जान बूझकर जो कायसंस्कार इकट्ठा करता है, उसके प्रत्यय से उसे अपने में सुख-दुःख उत्पन्न होता है। आनन्द ! चाहे बिना जाने बूझे जो कायसंस्कार इकट्ठा करता है, उसके प्रत्यय से उसे अपने में सुख-दुःख उत्पन्न होता है।

आनन्द ! चाहे स्वयं जो वाक्संस्कार इकट्ठा करता है, उसके प्रत्यय से उसे अपने में सुख-दुःख उत्पन्न होता है।

आनन्द ! चाहे स्वयं जो मनःसंस्कार···।···

आनन्द ! इन छः धर्मों में अविद्या लगी हुई है। अविद्या के बिल्कुल हट और रुक जाने से वह कर्म नहीं होता है, जिससे उसे सुख-दुःख उत्पन्न हों। वह वचन, वह मन के वितर्क नहीं होते हैं, जिनसे उसे सुख-दुःख उत्पन्न हों।

उसे वह क्षेत्र ही नहीं रहता है, आधार ही नहीं रहता है, आयतन नहीं रहता, हेतु नहीं रहता; जिसके प्रत्ययसे उसे अपने में सुख-दुःख उत्पन्न हों।

§ ६. उपवान सुत्त (१२. ३. ६)

दुःख समुत्पन्न है

श्रावस्ती में।

तब, आयुष्मान् उपवान जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, आयुष्मान् उपवान भगवान् से बोले—

भन्ते ! कितने श्रमण या ब्राह्मण हैं जो दुःख को स्वयं अपना किया हुआ बताते हैं।···दूसरे का किया···।···स्वयं अपना किया हुआ भी और दूसरे का किया भी···।···न स्वयं अपना किया हुआ और न दूसरे का किया हुआ, किंतु अकारण हठात् उत्पन्न···।

भन्ते ! इस विषय में भगवान् का क्या कहना है ?···

उपवान ! मैंने दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न बताया है। किसके प्रत्ययसे ? स्पर्शके प्रत्ययसे।···

उपवान ! जो दुःख को···अकारण हठात् उत्पन्न हुआ मानते हैं, वह भी स्पर्श के होने से ही होता है।

उपवान !···वे बिना स्पर्श के ही कुछ अनुभव कर लें—ऐसा सम्भव नहीं।

§ ७. पच्चय सुत्त (१२. ३. ७)

कार्य-कारणका सिद्धान्त

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! अविद्याके होनेसे संस्कार होते हैं।···। इस तरह, सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है।

भिक्षुओ ! जरामरण क्या है ? जो उन उन जीवोंके उन उन योनियोंमें बूढ़ा हो जाना, पुरनिया हो जाना, दाँतोंका टूट जाना, बाल सफेद हो जाना, झुर्रियाँ पड़ जानी, उमरका खातमा और इन्द्रियोंका शिथिल हो जाना, इसीको कहते हैं जरा। जो उन उन जीवोंके उन उन योनियोंसे खिसक पड़ना, टपक पड़ना, कट जाना, अन्तर्धान हो जाना, मृत्यु, मरण, कज़ा कर जाना, स्कन्धोंका छिन्न भिन्न हो जाना, चोलाको छोड़ देना है। इसी को कहते हैं मरण। ऐसी यह जरा और ऐसा यह मरण। भिक्षुओ ! इसीको कहते हैं जरामरण।

जाति के समुदयसे जरामरणका समुदय होता है। जातिके निरोधसे जरामरणका निरोध होता है। यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग जरामरणके निरोधका उपाय है। आर्य-अष्टांगिक मार्ग है—(१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वाक्, (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यक् आजीव, (६) सम्यक् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति, (८) सम्यक् समाधि।

भिक्षुओ ! जाति, भव, उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, षडायतन, नामरूप, विज्ञान, संस्कार क्या है ?

[देखो—पहला भाग § २ (२)]

अविद्या के समुदय से संस्कार का समुदय होता है। अविद्या के निरोध से संस्कार का निरोध होता है। यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग संस्कार के निरोध करने का उपाय है······।

भिक्षुओ ! जो आर्यश्रावक इस प्रत्यय को जानता है, प्रत्यय के समुदय को जानता है, प्रत्यय के निरोध को जानता है, प्रत्यय की निरोधगामिनी प्रतिपदा को जानता है—वही आर्य-श्रावक दृष्टिसम्पन्न कहा जाता है, दर्शनसम्पन्न भी, सद्धर्म को प्राप्त भी, सद्धर्म को देखने वाला भी, शैक्ष्य-ज्ञान से युक्त भी, शैक्ष्य-विद्या से युक्त भी, धर्म के स्रोत में आ गया भी, निर्वेधिकप्रज्ञ भी, अमृत के द्वार पर पहुँच कर खड़ा हुआ भी।

§ ८. भिक्खु सुत्त (१२. ३. ८)

कार्य-कारणका सिद्धान्त

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! यहाँ, भिक्षु जरामरण को जानता है। जरामरण के समुदय को जानता है, जरामरण के निरोध को जानता है। जरामरण की निरोध-गामिनी-प्रतिपदा को जानता है···।

जाति को जानता है···। भव को जानता है···। उपादान को जानता है···। तृष्णा को जानता है···। वेदना को जानता है···। स्पर्श को जानता है···। षडायतन को जानता है···। नामरूप को जानता है···। विज्ञान को जानता है···। संस्कार को जानता है···।

भिक्षुओ ! जरामरण क्या है ? [ऊपर के सूत्र ऐसा]

§ ९. पठम समणब्राह्मण सुत्त (१२. ३. ९)

परमार्थज्ञाता श्रमण-ब्राह्मण

श्रावस्ती में।

क

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण जरामरण···, जाति···, भव···, उपादान···, तृष्णा···, वेदना···, स्पर्श···, षडायतन···, नामरूप···, विज्ञान···, संस्कार को नहीं जानते हैं, संस्कार के समुदय को नहीं जानते हैं, संस्कार के निरोध को नहीं जानते हैं, संस्कार की निरोधगामिनी प्रतिपदा को नहीं जानते हैं—उन श्रमणों की न तो श्रमणों में गिनती होती है, और न ब्राह्मणों की ब्राह्मणों में। वे आयुष्मान् इसी जन्म में श्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को स्वयं जान, साक्षात् कर, और प्राप्त कर विहार नहीं करते।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण जरामरण···संस्कार···की निरोधगामिनी प्रतिपदाको जानते हैं—इन्हीं श्रमणोंकी श्रमणोंमें गिनती होती है, और ब्राह्मणोंकी ब्राह्मणोंमें। वे आयुष्मान् इसी जन्ममें श्रमण या ब्राह्मणके परमार्थको स्वयं जान, साक्षात् कर, और प्राप्त कर विहार करते हैं।

§ १०. दुतिय समणब्राह्मण सुत्त (१२. ३. १०)

संस्कार-पारंगत श्रमण ब्राह्मण

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण जरामरण···, जाति···, ···संस्कारको नहीं जानते हैं, ···समुदय को नहीं जानते हैं, ···निरोधको नहीं जानते हैं, ···निरोधगामिनी प्रतिपदाको नहीं जानते हैं—वे जरामरण ···संस्कारोंको पारकर लेंगे, ऐसा सम्भव नहीं।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण जरामरण···संस्कारको जानते हैं, ···समुदयको जानते हैं, ···निरोधको जानते हैं, ···निरोधगामिनी प्रतिपदाको जानते हैं—वे जरामरण···संस्कारोंको पार कर लेंगे—ऐसा हो सकता है।

दशबल वर्ग समाप्त

———

चौथा भाग

कलार क्षत्रिय वर्ग

§ १. भूतमिदं सुत्त (१२. ४. १)

यथार्थ ज्ञान

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराममें विहार करते थे।

क

वहाँ, भगवान्ने आयुष्मान् सारिपुत्र को आमन्त्रित किया—सारिपुत्र! अजित के प्रश्न पूछनेमें यह कहा गया था—

> जिन्होंने धर्म जान लिया है, जो इस शासन में सीखने योग्य हैं,
> उनके ज्ञान और आचार कहें, हे मारिष! मैं पूछता हूँ॥

सारिपुत्र! इस संक्षेप से कहे गये का कैसे विस्तार से अर्थ समझना चाहिये?

इस पर आयुष्मान् सारिपुत्र चुप रहे।

दूसरी बार भी···।

तीसरी बार भी···आयुष्मान् सारिपुत्र चुप रहे।

ख

सारिपुत्र! यह हो गया, तुम देखो। सारिपुत्र! यह बीत गया, तुम देखो।

भन्ते! यह हो गया, इसे यथार्थतः सम्यक् प्रज्ञा से देखता है। यह हो गया—इसे यथार्थतः सम्यक् प्रज्ञा से देखकर, उसके निर्वेद = विराग = निरोध के लिये यत्नवान् होता है। उसे आहार के हेतु से होते सम्यक् प्रज्ञा से देखता है। इसे आहार के हेतु से होते सम्यक् प्रज्ञा से यथार्थतः देख, आहार के सम्भव के निर्वेद = विराग = निरोध के लिये यत्नवान् होता है। उसके आहार के निरोध से जो हो गया है उसका भी निरोध होना यथार्थतः सम्यक् प्रज्ञा से जान निरोध धर्म के निर्वेद = विराग = निरोध = अनुपादान से विमुक्त हो जाता है। भन्ते! धर्म इसी तरह जाना जाता है।

भन्ते! अजित के प्रश्न पूछने में जो यह कहा गया था—

> जिन्होंने धर्म···॥

इस संक्षेप से कहे गये का मैं ऐसे ही विस्तार से अर्थ समझता हूँ।

ग

ठीक है, सारिपुत्र, ठीक है!! ······निर्वेद=विराग=निरोध=अनुपादान से विमुक्त हो जाता है। [ऊपर जो कहा गया है उसी की पुनरुक्ति]

§ २. कलार सुत्त (१२. ४. २)

प्रतीत्य समुत्पाद, सारिपुत्र का सिंहनाद

श्रावस्ती में।

क

तब, भिक्षु कलारक्षत्रिय जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ आया। आकर आयुष्मान् सारिपुत्र का सम्मोदन किया, तथा कुशल-क्षेम के प्रश्न पूछ कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, भिक्षु कलारक्षत्रिय आयुष्मान् सारिपुत्र से बोला—

आवुस सारिपुत्र! भिक्षु मोलियफग्गुन चीवर छोड़ गृहस्थ हो गया है। इस आयुष्मान् ने इस धर्मविनय में आश्वासन नहीं पाया।

क्या आप आयुष्मान् सारिपुत्र ने इस धर्मविनय में आश्वासन पाया है।

आवुस! इसमें मुझे कुछ संदेह नहीं है।

आवुस! भविष्यकाल में।

आवुस! इसको मुझे विचिकित्सा नहीं है।

तब, भिक्षु कलारक्षत्रिय आसन से उठ जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, भिक्षु कलारक्षत्रिय भगवान् से बोला, "भन्ते! सारिपुत्र ने जान लिया है कि जाति क्षीण हो गई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ बाकी नहीं बचा है—ऐसा मैं जानता हूँ।"

तब, भगवान् ने किसी भिक्षु को आमन्त्रित किया—हे भिक्षु! सुनो, जाकर सारिपुत्र को कहो कि बुद्ध तुम्हें बुला रहे हैं।

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह, वह भिक्षु भगवान् को उत्तर दे, जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ गया और बोला—आवुस सारिपुत्र! आपको बुद्ध बुला रहे हैं।

"आवुस! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् सारिपुत्र उस भिक्षु को उत्तर दे जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये।

ख

एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् सारिपुत्र को भगवान् ने कहा—सारिपुत्र! क्या तुमने सचमुच जानकर ऐसा कहा है, कि मैं जानता हूँ कि जाति क्षीण हो गई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया?

भन्ते! मैंने इन बातोंको इस तरह नहीं कहा है।

सारिपुत्र! जिस किसी तरहकी कुलपुत्र दूसरेको कहे, किन्तु कहा हुआ तो कहा हुआ ही हुआ।

भन्ते! तभी तो मैं कहता हूँ कि मैंने इन बातोंको इस तरह नहीं कहा है।

सारिपुत्र! यदि तुमसे कोई पूछे—आवुस सारिपुत्र! क्या जान और देखकर अपने दूसरोंको कहा कि, "जाति क्षीण हो गई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ बाकी नहीं बचा है—ऐसा मैंने जान लिया है?"—तो तुम क्या उत्तर दोगे?

भन्ते! यदि मुझे कोई ऐसा पूछे तो मैं यह उत्तर दूँ:—आवुस! जिस निदान (= हेतु) से जाति होती है उस निदानके क्षय हो जानेसे मैंने जान लिया कि उसका भी क्षय हो गया। यह जानकर

मैंने जान लिया कि—जाति क्षीण हो गई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ बाकी नहीं बचा।

सारिपुत्र ! यदि तुमसे कोई ऐसा पूछे—आवुस सारिपुत्र ! जातिका क्या निदान है,=क्या उत्पत्ति है,=क्या प्रभव है ?—तो तुम क्या उत्तर दोगे ?

भन्ते ! यदि मुझे कोई ऐसा पूछे तो मैं यह उत्तर दूँ:—आवुस ! जातिका निदान भव है।

'''भवका निदान उपादान है।

'''उपादानका निदान तृष्णा है।

तृष्णाका निदान वेदना है।

सारिपुत्र ! यदि तुमसे कोई ऐसा पूछे—आवुस सारिपुत्र ! क्या जान और देख लेने से आपको किसी वेदनाके प्रति आसक्ति नहीं होती है ?—तो तुम क्या उत्तर दोगे ?

भन्ते ! यदि मुझे कोई ऐसा पूछे तो मैं यह उत्तर दूँ—आवुस ! वेदनायें तीन हैं। कौन सी तीन ? (१) सुखा वेदना, (२) दुःखा वेदना, (३) अदुःख-सुखा वेदना। आवुस ! यह तीनों वेदनायें अनित्य हैं। "जो अनित्य है वह दुःख है" जान, किसी वेदना के प्रति मुझे आसक्ति नहीं होती है।

ठीक कहा है, सारिपुत्र, ठीक कहा है ! इसे संक्षेप में यों भी कहा जा सकता है—जितने अनुभव (=वेदना) हैं, सभी दुःख ही हैं।

सारिपुत्र ! यदि तुम से कोई पूछे—किस विमोक्ष के आधार पर आपने दूसरों को कहा कि जाति क्षीण हो गई''', ऐसा मैंने जान लिया ?—तो तुम क्या उत्तर दोगे ?

भन्ते ! यदि मुझे कोई ऐसा पूछे तो मैं यह उत्तर दूँ—आवुस ! भीतर की गाँठों से मैं छूट गया, सारे उपादान क्षीण हो गये; मैं ऐसा स्मृतिमान् होकर विहार करता हूँ कि आश्रव आने नहीं पाते और अपना भी निरादर नहीं होता।

ठीक कहा है, सारिपुत्र, ठीक कहा है ! इसे संक्षेप में यों भी कहा जा सकता है—श्रमणों ने जिन आश्रवों का निर्देश किया है उनमें मुझे संदेह भला नहीं है, वे मेरे में प्रहीण हो चुके, मुझे विचिकित्सा भी नहीं रही।

यह कह, भगवान् आसन से उठ विहार में पैठ गये।

ग

भगवान् के जाने के बाद ही आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—

आवुसो ! भगवान् ने जो मुझे पहला प्रश्न पूछा था वह मुझे विदित नहीं था, इसीलिये कुछ शैथिल्य हुआ। जब भगवान् ने मेरे पहले प्रश्न का अनुमोदन कर दिया, तब मेरे मन में हुआ—

यदि भगवान् मुझे भिन्न-भिन्न शब्दों में भिन्न-भिन्न प्रकार से दिन भर इसी विषय में पूछते रहें तो मैं दिन भर भिन्न-भिन्न शब्दों में भिन्न-भिन्न प्रकार से उन्हें संतोषजनक उत्तर देता रहूँ।

यदि भगवान्'''रातभर, रात दिन, दो रात दिन, तीन, चार, पाँच, छः, सात रात दिन इसी विषयमें पूछते रहें तो मैं'''उत्तर देता रहूँ।

घ

तब, भिक्षु कलारक्षत्रिय आसनसे उठ, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, और भगवान्का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ कलारक्षत्रिय भिक्षु भगवान्‌से बोला—भन्ते ! आयुष्मान् सारिपुत्र ने सिंहनाद किया है कि, आवुसो !···यदि भगवान्···सात रातदिन···इसी विषयमें पूछते रहें तो मैं···उत्तर देता रहूँ।

हे भिक्षु ! सारिपुत्रने (प्रतीत्य समुत्पाद) धर्मको पूरा-पूरा समझ लिया है। यदि मैं···सात रात दिन भी···इसी विषयमें पूछता रहूँ तो वह···उत्तर देता रहेगा।

§ ३. पठम ञाणवत्थु सुत्त (१२. ४. ३)

ज्ञानके विषय

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! मैं ४४ ज्ञानके विषयोंका उपदेश करूँगा। उसे सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! ज्ञानके ४४ विषय कौनसे हैं ?

जरामरणका ज्ञान, जरामरणके समुदयका ज्ञान, जरामरणके निरोधका ज्ञान, जरामरणकी निरोध-गामिनी प्रतिपदा का ज्ञान।

५—८ जातिका···।

९—१२ भव···।

१३—१६ उपादान···।

१७—२० तृष्णा···।

२१—२४ वेदना···।

२५—२८ स्पर्श···।

२९–३२ षडायतन···।

३३–३६ नामरूप···।

३७–४० विज्ञान···।

४१. संस्कार का ज्ञान, ४२. संस्कार के समुदय का ज्ञान, ४३. संस्कार के निरोध का ज्ञान, और ४४. संस्कार की निरोधगामिनी प्रतिपदा का ज्ञान।

भिक्षुओ ! यही ४४ ज्ञान के विषय कहे जाते हैं।

भिक्षुओ ! जरामरण क्या है ?···[देखो बुद्धवर्ग, पहला भाग, § २ (२)]

भिक्षुओ ! जाति के समुदय से जरामरण का समुदय होता है; जाति के निरोध से जरामरण का निरोध होता है। जरामरण की निरोधगामिनी प्रतिपदा यही अष्टांगिक मार्ग है, जो कि (१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वाक् (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यक् आजीव, (६) सम्यक् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति, (८) सम्यक् समाधि।

भिक्षुओ ! जो आर्य श्रावक इस तरह जरामरण को जान लेता है, जरामरण के समुदय को जान लेता है, जरामरण के निरोध को जान लेता है, जरामरण की निरोधगामिनी प्रतिपदा को जान लेता है; यही उसका धर्म-ज्ञान है। जो इस धर्म को देख लेता है, जान लेता है, पहुँच चुकता है, प्राप्त कर लेता है, यथार्थतः अवगाहन कर लेता है, वही अतीत और अनागत में नेतृत्व ग्रहण करता है।

अतीत काल में जिन श्रमण या ब्राह्मण ने जरामरण को···जाना है, उनने इसी तरह जाना है जैसा मैं कह रहा हूँ।

भविष्य में जो श्रमण या ब्राह्मण जरामरण को···जानेंगे, वे इसी तरह जानेंगे जैसा मैं कह रहा हूँ। यह परम्परा का ज्ञान है।

भिक्षुओ ! जिन आर्य श्रावकों को (१) धर्म का ज्ञान, और (२) परम्परा का ज्ञान परिशुद्ध हो जाता है, वे आर्य श्रावक दृष्टि-सम्पन्न कहे जाते हैं, दर्शन सम्पन्न, धर्म में पहुँचे हुये, धर्मद्रष्टा, शैक्ष्य ज्ञान से युक्त, शैक्ष्य विद्या से युक्त, धर्म-स्रोतापन्न, आर्य निर्वेधिकप्रज्ञ, और अमृत के द्वार पर पहुँच कर खड़े होने वाले कहे जाते हैं।

भिक्षुओ ! जाति..., भव..., उपादान..., तृष्णा..., वेदना..., स्पर्श..., षडायतन..., नाम-रूप..., विज्ञान..., संस्कार...।

§ ४. दुतिय आणवत्थु सुत्त (१२. ४. ४)

ज्ञान के विषय

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! मैं ७७ ज्ञान के विषयों का उपदेश करूँगा। उसे सुनो...।

भिक्षुओ ! ७७ ज्ञान के विषय कौन से हैं ?

(१) जाति के प्रत्यय से जरामरण होने का ज्ञान, (२) जाति के नहीं होने से जरामरण के नहीं होने का ज्ञान, (३) अतीत काल में भी जाति के प्रत्यय से जरामरण हुआ करता था इसका ज्ञान, (४) अतीत काल में भी जाति के नहीं होने से जरामरण नहीं होता था इसका ज्ञान, ५-६ भविष्य में भी,... और (७) जिन धर्मों की स्थिति का ज्ञान है वे भी क्षय होने वाले, व्यय होने वाले, छूटने वाले और रुक जाने वाले हैं—इसका ज्ञान।

२. भव के प्रत्यय से जाति होने का ज्ञान...।
३. उपादान के प्रत्यय से भव...।
४. तृष्णा के प्रत्यय से उपादान...।
५. वेदना के प्रत्यय से तृष्णा...।
६. स्पर्श के प्रत्यय से वेदना...।
७. षडायतन के प्रत्यय से स्पर्श...।
८. नामरूप के प्रत्यय से षडायतन...।
९. विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप...।
१०. संस्कार के प्रत्यय से विज्ञान...।
११. अविद्या के प्रत्यय से संस्कारों के होने का ज्ञान...।

भिक्षुओ ! यही ७७ ज्ञान के विषय कहे गये हैं।

§ ५. पठम अविज्जा पच्चया सुत्त (१२. ४. ५)

अविद्या ही दुःखों का मूल है

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! अविद्या के प्रत्यय (=होने) से संस्कार होते हैं। संस्कारों के प्रत्यय से विज्ञान होता है... इस तरह, सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है।

ऐसा कहने पर एक भिक्षु ने भगवान् को यह कहा—

भन्ते ! जरामरण क्या है; और जरामरण किसको होता है ?

भगवान् बोले—ऐसा पूछना ही गलत है। भिक्षु ! जो ऐसा कहे कि "जरामरण क्या है; और जरामरण किसको होता है", अथवा जो ऐसा कहे कि "जरामरण दूसरी ही चीज है, और दूसरे ही को यह

जरामरण होता है" तो इन दोनों का अर्थ एक है, केवल शब्द ही भिन्न हैं। भिक्षु ! जो जीव है वही शरीर है, या जीव दूसरा है और शरीर दूसरा—ऐसी दृष्टि रखनेवाले का ब्रह्मचर्यवास सफल नहीं हो सकता है। भिक्षु ! इन दोनों अन्तों को छोड़ बुद्ध मध्य से धर्म का उपदेश करते हैं, कि जाति के प्रत्यय से जरामरण होता है।

भन्ते ! जाति क्या है, और किसकी जाति होती है ?

भगवान् बोले—ऐसा पूछना ही गलत है।... [जैसा ऊपर कहा गया है] भिक्षु ! इन दोनों अन्तों को छोड़ बुद्ध मध्य से धर्म का उपदेश करते हैं, कि भव के प्रत्यय से जाति होती है।

...उपादान के प्रत्यय से भव।

...तृष्णा के प्रत्यय से उपादान।

...वेदना के प्रत्यय से तृष्णा।

...स्पर्श के प्रत्यय से वेदना।

...षडायतन के प्रत्यय से स्पर्श।

...नामरूप के प्रत्यय से षडायतन।

...विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप।

...संस्कारों के प्रत्यय से विज्ञान।

...अविद्या के प्रत्यय से संस्कार।

भिक्षु ! उसी अविद्या के बिल्कुल हट और रुक जाने से जो कुछ भी गड़बड़ी और उलटी पलटी है, कि—जरामरण क्या है और जरामरण होता है किसको; अथवा, जरामरण दूसरी चीज है और किसी दूसरे को जरामरण होता है; अथवा, जो जीव है वही शरीर है, और जीव दूसरा है और शरीर दूसरा—सभी हट जाती हैं, निर्मूल हो जाती हैं, फिर भी उगने लायक नहीं रहती हैं।

जाति...संस्कार... सभी हट जाती हैं...।

§ ६. दुतिय अविज्जा पच्चया सुत्त (१२. ४. ६)

अविद्या ही दुःखों का मूल है

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! अविद्या के प्रत्यय से संस्कार होते हैं।...। इस तरह, सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है।

भिक्षुओ ! यदि कोई पूछे कि जरामरण क्या है, और जरामरण होता किसको है। अथवा, यह कि जरामरण कुछ दूसरी ही चीज है और किसी दूसरे ही चीज को जरामरण होता है; तो भिक्षुओ, दोनों का एक ही अर्थ है।

भिक्षुओ ! जो जीव है वही शरीर है; अथवा जीव दूसरा है और शरीर दूसरा—ऐसी मिथ्यादृष्टि होने से ब्रह्मचर्य वास नहीं हो सकता है।

भिक्षुओ ! इन दोनों अन्तों को छोड़ बुद्ध मध्य से धर्म का उपदेश करते हैं...।

भिक्षुओ ! यदि कोई पूछे कि जाति क्या है...।

...भव क्या है...।

...उपादान क्या है...।

...तृष्णा क्या है...।

...वेदना क्या है...।

...स्पर्श क्या है...।

···षडायतन क्या है···।

···नामरूप क्या है···।

···विज्ञान क्या है···।

···संस्कार क्या है···। भिक्षुओ ! इन दोनों अन्तों को छोड़ बुद्ध मध्य से धर्म का उपदेश करते हैं; कि, अविद्या के प्रत्यय से संस्कार होते हैं।

भिक्षुओ ! उसी अविद्या के बिल्कुल हट और रुक जाने से जो कुछ गड़बड़ी और उलटी पलटी है, कि—जरामरण क्या है, और जरामरण होता है किसको; अथवा, जरामरण दूसरी चीज है···—सभी हट जाती है।

जाति···संस्कार···सभी हट जाती हैं।

§ ७. न तुम्ह सुत्त (१२. ४. ७)

शरीर अपना नहीं

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! यह काया न तुम्हारी अपनी है, और न दूसरे किसी की। भिक्षुओ ! यह पूर्व कर्मों के फलस्वरूप, चेतना और वेदना से युक्त, प्रत्ययों के होने से उत्पन्न है।

भिक्षुओ ! आर्यश्रावक इसे ठीक प्रतीत्यसमुत्पाद का ही ठीक से मनन करता है।

इस तरह, इसके होने से यह होता है, इसके उत्पाद से यह उत्पन्न हो जाता है। इसके नहीं होने से यह नहीं होता है, इसके निरोध से यह निरुद्ध हो जाता है।

अविद्या के प्रत्यय से संस्कार···।

उसी अविद्या के बिल्कुल हट और रुक जाने से···।

§ ८. पठम चेतना सुत्त (१२. ४. ८)

चेतना और संकल्प के अभाव में मुक्ति

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! जो चेतना करता है, किसी काम को करने का संकल्प करता है, किसी काम में लग जाता है, वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आलम्बन होता है। विज्ञान के बने रहने से, बढ़ते रहने से, भविष्य में बार-बार जन्म लेता है। भविष्य में बार-बार जन्म लेने से जरामरण, शोक··· बना रहता है। इस तरह, सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है।

भिक्षुओ ! जो चेतना नहीं करता है, संकल्प नहीं करता है, किन्तु काम में लग जाता है, वह भी विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आलम्बन होता है। विज्ञान के बने रहने, बढ़ते रहने से, भविष्य में बार-बार जन्म लेता है। भविष्य में बार-बार जन्म लेने से जरामरण शोक··· बना रहता है। इस तरह, सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है।

भिक्षुओ ! जो चेतना नहीं करता है, संकल्प नहीं करता है, और न किसी काम में लगता है, वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आलम्बन नहीं होता है। विज्ञान के बने नहीं रहने से, बढ़ते नहीं रहने से भविष्य में बार-बार जन्म नहीं लेता है। भविष्य में जन्म नहीं होने से जरामरण, शोक··· से छूट जाता है। इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

§ ९. दुतिय चेतना सुत्त (१२. ४. ९)

चेतना और संकल्प के अभाव में मुक्ति

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! जो चेतना करता है, संकल्प करता है, किसी काम में लग जाता है, वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आलम्बन होता है। आलम्बन होने से विज्ञान जमा रहता है। विज्ञान के जमे रहने और बढ़ते रहने से नाम-रूप उगते रहते हैं।

नाम-रूप के होने से षडायतन होता है। षडायतन के होने से स्पर्श होता है।···वेदना।···तृष्णा।···उपादान।···भव।···जाति।···जरामरण···।

भिक्षुओ ! जो चेतना नहीं करता है, संकल्प नहीं करता है, किन्तु काम में लगा रहता है, वह विज्ञान की स्थिति में बनाये रखने का आलम्बन होता है। आलम्बन होने से विज्ञान जमा रहता है। विज्ञान के जमे रहने और बढ़ते रहने से नाम-रूप उगते रहते हैं।

···जरामरण···सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है।

भिक्षुओ ! जो चेतना नहीं करता, संकल्प नहीं करता, और न उसमें लगा रहता है, वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आलम्बन नहीं होता है। आलम्बन नहीं होने से विज्ञान सहारा नहीं पाता। विज्ञान के सहारा न पाने से नाम-रूप नहीं उगते।

नाम-रूप के रुक जाने से षडायतन नहीं होता···। इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

§ १०. ततिय चेतना सुत्त (१२. ४. १०)

चेतना और संकल्प के अभाव में मुक्ति

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! जो चेतना करता है, संकल्प करता है, किसी काम में लग जाता है, वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आलम्बन होता है। आलम्बन होने से विज्ञान जमा रहता है।

विज्ञान के जमे रहने और बढ़ने से झुकाव (=नति) होता है। झुकाव होने से भविष्य में गति होती है। भविष्य में गति होने से मरना-जीना होता है। मरना-जीना होने से जाति, जरामरण,···। इस तरह सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है।

भिक्षुओ ! जो चेतना नहीं करता, संकल्प नहीं करता, किन्तु किसी काम में लगा रहता है, वह भी विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आलम्बन होता है। ···इस तरह सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है।

भिक्षुओ ! जो चेतना नहीं करता, संकल्प नहीं करता, काम में नहीं लगा रहता, वह विज्ञान की स्थिति बनाये रखने का आलम्बन नहीं होता है। आलम्बन नहीं होने से विज्ञान जमा नहीं रहता है और बढ़ने नहीं पाता।

विज्ञान के न जमे रहने और न बढ़ते रहने से झुकाव (=नति) नहीं होता है। झुकाव नहीं होने से भविष्य में गति भी नहीं होती। गति नहीं होने से जीना-मरना नहीं होता।···सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

कलार क्षत्रिय वर्ग समाप्त।

पाँचवाँ भाग

गृहपति वर्ग

§ १. पठम पञ्चवेरभय सुत्त (१२. ५. १)

पाँच वैर-भय की शान्ति

श्रावस्ती में ।

क

तब, अनाथपिण्डिक गृहपति जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे हुए अनाथपिण्डिक गृहपति से भगवान् बोले—गृहपति ! जब आर्य श्रावक के पाँच वैर-भय शान्त हो जाते हैं; चार स्रोतापत्ति के अंगों से युक्त हो जाता है; आर्य-ज्ञान प्रज्ञा से अच्छी तरह देख और समझ लिया गया होता है, तो वह यदि चाहे तो अपने को ऐसा कह सकता है—मेरा निरय क्षीण हो गया, मेरी तिरश्चीन-योनि क्षीण हो गई, मेरी प्रेत-योनि क्षीण हो गई, मेरा अपाय और दुर्गति में पड़ना क्षीण हो गया । मैं स्रोतापन्न हो गया हूँ; मैं मार्ग से च्युत नहीं हो सकता; परम ज्ञान को प्राप्त कर लेना मेरा निश्चय है ।

कौन से पाँच वैर भय-शान्त हो जाते हैं ?

गृहपति ! जो प्राणी-हिंसा है; प्राणी-हिंसा करने से जो इसी जन्म में, या दूसरे जन्म में भय और वैर बढ़ाता है; चित्त में दुःख और दौर्मनस्य भी बढ़ाता है; सो भय और वैर प्राणी-हिंसा से विरत रहने वाले को शान्त हो जाते हैं ।

गृहपति !···सो भय और वैर चोरी करने से विरत रहने वाले को शान्त हो जाता है ।

गृहपति !···सो भय और वैर मिथ्याचार···, मृषा भाषण···, नशीली वस्तुओं के सेवन करने से विरत रहने वाले को शान्त हो जाता है ।

यही पाँच वैर-भय शान्त हो जाते हैं ।

ख

किन चार स्रोतापत्ति के अंगों से युक्त होता है ?

गृहपति ! जो आर्य-श्रावक बुद्ध के प्रति अचल श्रद्धालु होता है--वे भगवान् अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, विद्याचरण से सम्पन्न, सुगति को पाये, लोकविद्, अनुत्तर, पुरुषों को दमन करने वाले, देवता और मनुष्यों को राह दिखाने वाले भगवान् बुद्ध !

गृहपति ! जो आर्य-श्रावक धर्म के प्रति अचल श्रद्धालु होता है—भगवान् का धर्म स्वाख्यात है, सांदृष्टिक है, (=इसी जन्म में फल देने वाला है), अकालिक (=बिना देरी के फल देने वाला है), लोगों को बुला बुला कर दिखाया जानेवाला है (=एहिपस्सिक), निर्वाण तक ले जाने वाला है, विज्ञों के द्वारा अपने भीतर ही (=प्रत्यात्म) अनुभव किया जानेवाला है ।

गृहपति ! जो आर्य-श्रावक संघ के प्रति अचल श्रद्धालु होता है—भगवान् का श्रावक संघ सुमार्ग पर आरूढ है, सीधे मार्ग पर आरूढ है, ज्ञान के मार्ग पर आरूढ है, अच्छी तरह से मार्ग पर आरूढ है। जो यह पुरुषों का चार जोड़ा, आठ जने, यही भगवान् का श्रावक-संघ है। यही श्रावक-संघ निमंत्रित करने के योग्य है, सत्कार करने के योग्य है, दान देने के योग्य है, प्रणाम् करने के योग्य है, लोक का अनुत्तर पुण्य-क्षेत्र है।

सुन्दर शीलों से युक्त होता है; अखण्ड, अछिद्र, अमल, निर्दोष, छुटा हुआ, विज्ञों से प्रशंसित, समाधि के अनुकूल शीलों से।

इन चार स्रोतापत्ति के अंगों से युक्त होता है।

प्रज्ञा से अच्छी तरह देखा और जाना इसका आर्य-ज्ञान क्या है ?

गृहपति ! आर्य-श्रावक प्रतीत्यसमुत्पाद की ही ठीक से भावना करता है। इसके होने से यह होता है'''इस तरह, सारा दुःख-समुदाय रुक जाता है।

यहीं प्रज्ञा से अच्छी तरह देखा और जाना इसका आर्य-ज्ञान होता है।''''' '''

§ २. दुतिय पञ्चवेरभय सुत्त (१२. ५. २)

पाँच वैर-भय की शान्ति

श्रावस्ती में।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ'''।

भगवान् बोले— '''[ऊपर वाले सूत्र के समान ही]।

§ ३. दुक्ख सुत्त (१२. ५. ३)

दुःख और उसका लय

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! मैं दुःख के समुदय और लय हो जाने के विषय में उपदेश करूँगा। उसे सुनो'''।

क

भिक्षुओ ! दुःख का समुदय क्या है ?

चक्षु और रूपों के होने से चक्षु-विज्ञान पैदा होता है। तीनों का मिलना स्पर्श है। स्पर्श के होने से वेदना'''। भिक्षुओ ! इसी तरह दुःख का समुदय होता है।

श्रोत्र और शब्दों के होने से'''। घ्राण और गन्धों के होने से'''। जिह्वा और रसों के होने से'''। काया और स्प्रष्टव्यों के होने से'''।

मन और धर्मों के होने से मनोविज्ञान पैदा होता है। तीनों का मिलना स्पर्श है। स्पर्श के होने से वेदना होती है'''। भिक्षुओ ! यही दुःख का समुदय है।

ख

भिक्षुओ ! दुःख का लय हो जाना (अस्तंगमः) क्या है ?

चक्षु और रूपों के होने से चक्षुर्विज्ञान पैदा होता है। तीनों का मिलना स्पर्श है। स्पर्श के होने से वेदना होती है। वेदना के होने से तृष्णा होती है।

उसी तृष्णा को बिल्कुल हटा और रोक देने से उपादान नहीं होता। उपादान के रुक जाने से भव नहीं होता।···। इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

भिक्षुओ! यही दुःख का लय हो जाना है।

श्रोत्र और शब्द···मन और धर्मों के होने से···। इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।···

§ ४. लोक सुत्त (१२. ५. ४)

लोक की उत्पत्ति और लय

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ! लोक के समुदय और लय हो जाने के विषय में उपदेश करूँगा।···

क

भिक्षुओ! लोक का समुदय क्या है?

चक्षु और रूपों के होने से···[पूर्ववत्] भिक्षुओ! यही लोक का समुदय है।

ख

···भिक्षुओ! यही लोक का लय हो जाना है।

§ ५. आतिका सुत्त (१२. ५. ५)

कार्य-कारण का सिद्धान्त

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् आतिक में गिञ्जकावसथ में विहार कर रहे थे।

क

तब, एकान्त में ध्यान करते हुये भगवान् ने इस प्रकार धर्म का उपदेश दिया—

चक्षु और रूपों के होने से चक्षुविज्ञान पैदा होता है। तीनों का मिलना स्पर्श है। स्पर्श के होने से वेदना होती है। वेदना के होने से तृष्णा होती है···। इस तरह सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है।

श्रोत्र और शब्दों के होने से···, मन और धर्मों के होने से···।

चक्षु और रूपों के होने से चक्षुविज्ञान पैदा होता है। तीनों का मिलना स्पर्श है। स्पर्श के होने से वेदना होती है। वेदना के होने से तृष्णा होती है।

उसी तृष्णा के बिल्कुल हट और रुक जाने से उपादान नहीं होता। उपादान के रुक जाने से भव नहीं होता।···इस तरह सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

श्रोत्र और शब्दों के होने से···, मन और धर्मों के होने से···।

ख

उस समय कोई भिक्षु भगवान् के पास खड़ा होकर सुन रहा था।

भगवान् ने उसे पास में खड़ा हो सुनते देखा। देखकर, उस भिक्षु को कहा—भिक्षु ! तुमने सुना जिस प्रकार मैंने धर्म को कहा ?

भन्ते ! जी हाँ।

भिक्षु ! इसी प्रकार धर्म को सीखो। भिक्षु ! इसी प्रकार धर्म को पूरा करो। भिक्षु ! इसी प्रकार वह धर्म अर्थवान् होता है। ब्रह्मचर्य-वास का यह मूल-उपदेश है।

§ ६. अञ्ञतर सुत्त (१२. ५. ६)

मध्यम मार्ग का उपदेश

श्रावस्ती में।

तब, कोई ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर,···कुशल क्षेम के प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ कर वह ब्राह्मण भगवान् से बोला—हे गौतम ! क्या जो करता है वही भोगता है ?

ब्राह्मण ! ऐसा कहना कि 'जो करता है वही भोगता है' एक अन्त है।

हे गौतम ! क्या करता है कोई दूसरा और भोगता है कोई दूसरा ?

हे ब्राह्मण ! ऐसा कहना कि, "करता है कोई दूसरा और भोगता है कोई दूसरा" दूसरा अन्त है। ब्राह्मण ! इन दोनों अन्तों को छोड़ बुद्ध मध्यम से धर्म का उपदेश करते हैं।

अविद्या के होने से संस्कार होते हैं···।

उसी अविद्या के बिल्कुल हट और रुक जाने से···।

ऐसा कहने पर वह ब्राह्मण भगवान् से बोला—···मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।

§ ७. जानुस्सोणि सुत्त (१२. ५. ७)

मध्यम-मार्ग का उपदेश

श्रावस्ती में।

तब, जानुश्रोणि ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और कुशल क्षेम के प्रश्न पूछ कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, जानुश्रोणि ब्राह्मण भगवान् से बोला—हे गौतम ! क्या सभी कुछ है ?

हे ब्राह्मण ! ऐसा कहना कि "सभी कुछ है" एक अन्त है।

हे गौतम ! क्या सभी कुछ नहीं है ?

हे ब्राह्मण ! ऐसा कहना कि, "सभी कुछ नहीं है" दूसरा अन्त है। ब्राह्मण ! इन दोनों अन्तों को छोड़ बुद्ध मध्यम मार्ग से ···[ऊपर के सूत्र जैसा]

§ ८. लोकायत सुत्त (१२. ५. ८)

लौकिक मार्गों का त्याग

श्रावस्ती में।

तब, लोकायतिक ब्राह्मण···एक ओर बैठ, भगवान् से बोला—हे गौतम ! क्या सभी कुछ है ?

हे ब्राह्मण ! ऐसा कहना कि, "सभी कुछ है" पहली लौकिक बात है।

हे गौतम ! क्या सभी कुछ नहीं है ?

हे ब्राह्मण ! ऐसा कहना कि, "सभी कुछ नहीं है" दूसरी लौकिक बात है।

हे गौतम ! क्या सभी कुछ एकत्व (=अद्वैत) है ?

हे ब्राह्मण ! ऐसा कहना कि "सभी कुछ एकत्व ही है" तीसरी लौकिक बात है।

हे गौतम ! क्या सभी कुछ नाना है ?

हे गौतम ! "सभी कुछ नाना है" ऐसा कहना चौथी लौकिक बात है। ब्राह्मण ! इन अन्तों को छोड़ बुद्ध मध्यम से… ।

§ ९. पठम अरियसावक सुत्त (१२. ५. ९)

आर्यश्रावक को प्रतीत्यसमुत्पाद में सन्देह नहीं

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक को ऐसा संदेह नहीं होता—पता नहीं कि क्या होने से क्या होता है ? किसके उत्पन्न होने से क्या उत्पन्न होता है ? किसके होने से संस्कार होते हैं ?…किसके होने से जरामरण होता है ?

भिक्षुओ ! पंडित आर्यश्रावक को यह ज्ञान तो प्राप्त ही होता है—इसके होने से यह होता है… जाति के होने से जरामरण होता है। यह जानता है कि लोक का समुदय इस प्रकार होता है।

भिक्षुओ ! पंडित आर्यश्रावक को ऐसा संदेह नहीं होता—पता नहीं, किसके रुक जाने से क्या नहीं होता ?…किसके रुक जाने से जरामरण नहीं होता ?

भिक्षुओ ! पंडित आर्यश्रावक को तो यह प्रतीत्य समुत्पाद का ज्ञान प्राप्त ही होता है—इसके रुक जाने से यह नहीं होता…जाति के रुक जाने से जरामरण नहीं होता है। वह जानता है कि लोक का निरोध इस प्रकार है।

भिक्षुओ ! क्योंकि वह लोक के समुदय और निरुद्ध होने को यथार्थतः जानता है, इसीलिये आर्यश्रावक दृष्टिसम्पन्न कहा जाता है…………।

§ १०. दुतिय अरियसावक सुत्त (१२. ५. १०)

आर्यश्रावक को प्रतीत्यसमुत्पाद में सन्देह नहीं

…[ऊपर वाले सूत्र के समान ही]

गृहपति वर्ग समाप्त।

छठाँ भाग

वृत्त वर्ग

§ १. परिविमंसा सुत्त (१२. ६. १)

सर्वशः दुःख-क्षय के लिए प्रतीत्यसमुत्पाद का मनन

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ !

'भदन्त !' कहकर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! सर्वशः दुःख के क्षय के लिये विचार करते हुए भिक्षु कैसे विचार करे ?

भन्ते ! धर्म के आधार, नायक तथा अधिष्ठाता भगवान् ही हैं। अच्छा होता कि भगवान् ही इस कहे हुये का अर्थ बताते। भगवान् से सुन कर भिक्षु धारण करेंगे।

तो, भिक्षुओ ! सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले :—भिक्षुओ ! भिक्षु विचार करते हुये विचार करता है—जो जरामरण इत्यादि अनेक प्रकार से नाना दुःख लोक में उत्पन्न होते हैं, उनका निदान क्या है, समुदय क्या है, उत्पत्ति क्या है, प्रभव क्या है ? किसके होने से जरामरण होता है ? किसके नहीं होने से जरामरण नहीं होता है ?

विचार करते हुये वह इस प्रकार जान लेता है—जो जरामरण इत्यादि अनेक प्रकार से नाना दुःख लोक में उत्पन्न होते हैं, उनका निदान जाति है···। जाति के होने से जरामरण होता है। जाति के नहीं होने से जरामरण नहीं होता है।

वह जरामरण को जान लेता है, जरामरण के समुदय, निरोध,···प्रतिपदा को जान लेता है। वह इस प्रकार धर्म के सच्चे मार्ग पर आरूढ़ हो जाता है।

भिक्षुओ ! यह भिक्षु सर्वशः दुःख-क्षय के लिये, जरामरण के निरोध के लिये प्रतिपन्न होता है।

इसके बाद भी विचार करते हुये विचार करता है—भव···, उपादान···, तृष्णा···, वेदना···, स्पर्श ··, षडायतन···, नामरूप···, विज्ञान ··, संस्कार का निदान क्या है···?

वह विचार करते हुये वह जान लेता है···संस्कार का निदान अविद्या है···। अविद्या के होने से संस्कार होते हैं। अविद्या के नहीं होने से संस्कार नहीं होते हैं।

वह संस्कारों को जान लेता है, समुदय, निरोध,···प्रतिपदा को जान लेता। इस प्रकार वह धर्म के सच्चे मार्ग पर आरूढ़ होता है ···।

भिक्षुओ ! अविद्या में पड़ा हुआ पुरुष पुण्य-कर्म करता है; तब, पुण्य का विज्ञान उसे होता है। अपुण्य (= पाप) कर्म करता है, तब, अपुण्य का विज्ञान उसे होता है। वह अचल-कर्म (=आनञ्ज)* करता है, तब, अचल फलदायी विज्ञान उसे होता है।

---

* चार अरूप समापत्तियाँ आनञ्ज (=अचल-कर्म) कही जाती हैं।

भिक्षुओ ! जब भिक्षु की अविद्या प्रहीण हो जाती है और विद्या उत्पन्न होती है, तो वह न तो पुण्य—कर्म करता है न पाप-कर्म, और न अचल-कर्म (कोई भी संस्कार नहीं होने देता है)। कोई भी संस्कार न करते, कोई चेतना न करते, लोक में कहीं भी आसक्त नहीं होता है। सर्वथा अनासक्त होने से उसे कहीं भय नहीं होता, वह अपने भीतर ही निर्वाण पा लेता है। जाति क्षीण हो गई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ बाकी नहीं है—ऐसा जान लेता है।

यदि उसे सुख-वेदना का अनुभव होता है तो जानता है कि यह अनित्य है, चाहने योग्य नहीं है, स्वाद लेने योग्य नहीं है। यदि उसे दुःख-वेदना, अदुःख-असुख वेदना'' तो जानता है कि यह अनित्य है'''।

यदि उसे सुख-वेदना, दुःख-वेदना, या अदुःख-असुख वेदना होती है तो उसमें वह आसक्त नहीं होता।

जब वह ऐसा अनुभव करता है कि काया का या जीवन का अन्त हो रहा है तो वह उस बात से सचेत रहता है। शरीर छूटने और जीवन का अन्त हो जाने पर सारी वेदनायें यहीं शान्त, बेकार और ठंडी हो जायेंगी। शरीर छूट जाते हैं—ऐसा जानता है।

भिक्षुओ ! जैसे, कुम्हार के आँवा से निकाल कर गरम बर्तन कोई ऊपर रख दे तो उसकी सारी गर्मी निकल जाती है और बर्तन ठंढा हो जाता है, वैसे ही'''शरीर छूट जाते हैं—ऐसा जानता है।

भिक्षुओ ! तो क्या क्षीणाश्रव भिक्षु पुण्य, अपुण्य या अचल संस्कार इकट्ठा करेगा ?

नहीं भन्ते !

सर्वशः संस्कारों के न होने से, संस्कारों का निरोध हो जाने से, उसे विज्ञान होगा ?

नहीं भन्ते !

'''सर्वशः जाति के न होने से, जाति का निरोध हो जाने से, उसे जरामरण होगा ?

नहीं भन्ते !

ठीक है, भिक्षुओ, ठीक है ! ऐसी ही बात है, अन्यथा नहीं। भिक्षुओ ! इस पर श्रद्धा करो, सन्देह छोड़ो, कांक्षा और विचिकित्सा को हटाओ। यही दुःखों का अन्त है।

§ २. उपादान सुत्त (१२. ६. २)

सांसारिक आकर्षणों में बुराई देखने से दुःख का नाश

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! संसार के आकर्षक धर्मों में आसक्त होने से तृष्णा बढ़ती है। तृष्णा के होने से उपादान होता है।'''इस तरह, सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है।

भिक्षुओ ! आग की भारी ढेर में दस, बीस, तीस, या चालीस भार लकड़ियाँ भी देकर कोई जला दे। कोई पुरुष रह रह कर यदि उसमें सूखी घास डालता रहे, गोंयठे डालता रहे, लकड़ियाँ डालता रहे, तो सभी जल जाती हैं। भिक्षुओ ! इसी तरह, कोई महा अग्निस्कन्ध आहार पकड़े रहने के कारण बराबर जलता रहेगा।

भिक्षुओ ! ठीक उसी तरह, संसार के आकर्षक धर्मों में आसक्त होने से तृष्णा बढ़ती है। तृष्णा के होने से उपादान होता है।'''इस तरह, सारा दुःख समूह उठ खड़ा होता है।

भिक्षुओ ! संसार के आकर्षक धर्मों में बुराई ही बुराई देखने से तृष्णा रुक जाती है। तृष्णा रुक जाने से उपादान रुक जाता है।'''इस तरह, सारा दुःखसमूह रुक जाता है।

भिक्षुओ ! '''यदि कोई पुरुष रह-रह कर उस अग्नि-स्कन्ध में सूखी घासें न डाले, गोंयठे न

डाले, लकड़ियाँ न डाले, तो वह अग्निस्कन्ध पहले के आहार समाप्त हो जाने और नये न पाने के कारण बुझ कर ठंढा हो जायगा।

भिक्षुओ! उसी प्रकार, संसार के आकर्षक धर्मों में बुराई ही बुराई देखने से···सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

§ ३. पठम सञ्ञोजन सुत्त (१२. ६. ३)

आस्वाद-त्याग से तृष्णा का नाश

श्रावस्ती में।

बन्धन में डालनेवाले धर्मों में आस्वाद लेते हुए विहार करने से तृष्णा बढ़ती है। तृष्णा के होने से उपादान होता है।···इस तरह, सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है।

भिक्षुओ! तेल और बत्ती के होने से (उनके प्रत्यय से) तेल-प्रदीप जलता रहता है; उस प्रदीप में कोई पुरुष रह रह कर तेल डालता जाय और बत्ती उसकाता जाय, तो वह आहार पाते रहने से बहुत काल तक जलता रहेगा।

भिक्षुओ! वैसे ही, बन्धन में डालने वाले धर्मों में आस्वाद लेते हुये विहार करने से तृष्णा बढ़ती है। तृष्णा के होने से उपादान होता है।···इस तरह, सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है।

···भिक्षुओ!···उस प्रदीप में कोई पुरुष रह रह कर न तो तेल डाले और न बत्ती उसकाये, तो वह प्रदीप पहले के सभी आहार समाप्त हो जाने पर नये न पाने के कारण बुझ जायगा।

भिक्षुओ! वैसे ही, बन्धन में डालने वाले धर्मों में बुराई ही बुराई देखते हुये विहार करने से तृष्णा नहीं बढ़ती है।···इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

§ ४. दुतिय सञ्ञोजन सुत्त (१२. ६. ४)

आस्वाद-त्याग से तृष्णा का नाश

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ! तेल और बत्ती के होने से तेल-प्रदीप जलता रहता है। कोई पुरुष उस प्रदीप में रह रह कर तेल डालता जाय, और बत्ती उसकाता जाय, तो वह आहार पाते रहने से बहुत काल तक जलता रहेगा।

···[ऊपर के सूत्र जैसा]

§ ५. पठम महारुक्ख सुत्त (१२. ६. ५)

तृष्णा महावृक्ष है

श्रावस्ती में

भिक्षुओ! संसार के आकर्षक धर्मों में आसक्त होने से तृष्णा बढ़ती है। तृष्णा के होने से उपादान···।

भिक्षुओ! कोई महावृक्ष हो। उसके जो मूल नीचे या अगल बगल फैले हों, सभी ऊपर रस भेजते हों। इस तरह, वह महावृक्ष आहार पाते रहने के कारण चिरकाल तक रह सकता है।

भिक्षुओ! वैसे ही, संसार के आकर्षक धर्मों में···।

भिक्षुओ! कोई महावृक्ष हो। तब, कोई पुरुष कुदाल और टोकरी लेकर आवे। वह उस वृक्ष के मूल को काटे, मूल को काट कर उसके नीचे सुरंग खोद दे, और वृक्ष के सभी मूलसोई को काट कर निकाल दे। वह वृक्ष को काट कर टुकड़े-टुकड़े कर दे। फिर, टुकड़ों को भी चीर डाले। चीर कर, छोटी चैली

निकाल दे। चैली को धूप और हवा में सुखा कर जला दे। जला कर कोयला बना दे। कोयले और राख को या तो हवा में उड़ा दे या नदी की धार में बहा दे। भिक्षुओ ! इस तरह वह महावृक्ष उन्मूल हो जाय, उसका फिर प्ररोह नहीं हो।

भिक्षुओ ! वैसे ही, संसार के आकर्षक धर्मों में केवल बुराई देखने से तृष्णा रुक जाती है। तृष्णा के रुक जाने से उपादान नहीं होता है।···। इस तरह सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

§ ६. दुतिय महारुक्ख सुत्त (१२. ६. ६)

तृष्णा महावृक्ष है

श्रावस्ती में।

···[ऊपर के सूत्र जैसा]

§ ७. तरुण सुत्त (१२. ६. ७)

तृष्णा तरुणवृक्ष के समान है

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! बन्धन में डालने वाले धर्मों में आस्वाद देखते हुये विहार करने से तृष्णा बढ़ती है। तृष्णा के होने से उपादान होता है।···

भिक्षुओ ! कोई तरुणवृक्ष हो। कोई पुरुष समय समय पर उसके थाल को फुलका बनाता रहे, मांद देता रहे, और पानी पटाता रहे। भिक्षुओ ! इस प्रकार वह वृक्ष आहार पाकर फुनगे, बढ़े और खूब फैल जाय।

भिक्षुओ ! वैसे ही,···आस्वाद देखते हुये विहार करने से तृष्णा बढ़ती है···।

भिक्षुओ ! कोई तरुणवृक्ष हो। तब, कोई पुरुष कुदाल और टोकरी लेकर आवे···।

भिक्षुओ ! वैसे ही, बन्धन में डालनेवाले धर्मों में बुराई ही बुराई देखते हुये विहार करने से तृष्णा नहीं बढ़ती। तृष्णा के रुक जाने से उपादान नहीं होता···। इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

§ ८. नामरूप सुत्त (१२. ६. ८)

सांसारिक आस्वाद-दर्शन से नामरूप की उत्पत्ति

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! बन्धन में डालने वाले धर्मों में आस्वाद देखते हुये विहार करने से नाम-रूप उठते हैं।

···[महावृक्ष की उपमा देकर ऊपर वाले सूत्र के समान]

§ ९. विञ्ञाण सुत्त (१२. ६. ९)

सांसारिक आस्वाद-दर्शन से विज्ञान की उत्पत्ति

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! बन्धन में डालने वाले धर्मों में आस्वाद देखते हुये विहार करने से विज्ञान उठता है।

···[ऊपर वाले सूत्र के समान]

§ १०. निदान सुत्त (१२. ६. १०)

प्रतीत्यसमुत्पाद की गम्भीरता

एक समय, भगवान् कुरु-जनपद में कम्मासदम्म नामक कुरुओं के कस्बे में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले :—भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है ! भन्ते ! प्रतीत्यसमुत्पाद कितना गम्भीर है ! देखने में कितना गूढ़ मालूम होता है ! किन्तु, मुझे यह बिल्कुल साफ मालूम होता है।

आनन्द ! ऐसा मत कहो, ऐसा मत कहो। यह प्रतीत्यसमुत्पाद बड़ा गम्भीर और गूढ़ है ! आनन्द ! इसी धर्म को ठीक-ठीक नहीं जानने और समझने के कारण यह प्रजा उलझाई हुई धागे की गुण्डी जैसी, गाँठ और चन्द्रनों वाली, मूँज की झाड़ी जैसी हो अपाय में पड़ दुर्गति को प्राप्त होती है; संसार से छूटने नहीं पाती है।

आनन्द ! संसार के आकर्षक धर्मों में आसक्त होने से तृष्णा बढ़ती है। [महावृक्ष की उपमा पूर्ववत्]

वृक्षवर्ग समाप्त

सातवाँ भाग

महा वर्ग

§ १. पठम अस्सुतवा सुत्त (१२. ७. १)

चित्त बन्दर जैसा है

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

भिक्षुओ! अज्ञ पृथक्जन भी अपने इस चातुर्महाभूतिक शरीर से ऊब जाय, विरक्त हो जाय, और छूटने की इच्छा करे।

सो क्यों? क्योंकि, इस चातुर्महाभूतिक शरीर में बढ़ना, घटना, लेना और फेंक देना सभी अपनी आँखों से देखता है। इसके कारण, अज्ञ पृथक्जन भी अपने इस चातुर्महाभूतिक शरीर से ऊब जाय, विरक्त हो जाय, छूटने की इच्छा करे।

भिक्षुओ! किन्तु, यह जो चित्त=मन=विज्ञान है उससे पृथक्जन अज्ञ नहीं ऊब जाता, विरक्त होता, और छूटने की इच्छा करता।

सो क्यों? भिक्षुओ! क्योंकि चिरकाल से अज्ञ पृथक्जन, "यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है" के अज्ञान और ममत्व में पड़ा रहा है।...

भिक्षुओ! अच्छा होता कि अज्ञ पृथक्जन इस शरीर को, न कि चित्त को आत्मा कह कर मानता।

सो क्यों? भिक्षुओ! क्योंकि यह चातुर्महाभूतिक शरीर एक वर्ष भी, दो वर्ष भी...सौ वर्ष भी, और अधिक भी ठहरा हुआ देखा जाता है। भिक्षुओ! किन्तु, यह चित्त=मन=विज्ञान रात दिन दूसरा ही दूसरा उत्पन्न होता और निरुद्ध होता रहता है।

भिक्षुओ! जैसे जंगल में घूमते हुये बानर एक डाल पकड़ता है, उसे छोड़कर दूसरी डाल पर उछल जाता है—वैसे ही यह चित्त=मन=विज्ञान रात दिन...।

भिक्षुओ! यहाँ, ज्ञानी आर्यश्रावक प्रतीत्यसमुत्पाद का ही ठीक से मनन करता है। इसके होने से यह होता है। इसके नहीं होने से यह नहीं होता है।...इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

भिक्षुओ! इसे देख, ज्ञानी आर्यश्रावक रूप से भी विरक्त रहता है; वेदना से भी विरक्त रहता है; संज्ञा...; संस्कार...; विज्ञान...। इस वैराग्य से वह मुक्त हो जाता है। जाति क्षीण हो गई... ऐसा जान लेता है।

§ २. दुतिय अस्सुतवा सुत्त (१२. ७. २)

पञ्चस्कन्ध के वैराग्य से मुक्ति

श्रावस्ती में।

...[ऊपर के सूत्र जैसा]

भिक्षुओ! यहाँ, ज्ञानी आर्यश्रावक प्रतीत्यसमुत्पाद का ही ठीक से मनन करता है। इसके होने से यह होता है; इसके नहीं होने से यह नहीं होता है।...इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

भिक्षुओ ! सुखवेदनीय स्पर्श के होने से सुखवेदना पैदा होती है। उसी सुखवेदनीय स्पर्श के निरोध से···वह सुखवेदना निरुद्ध और शान्त हो जाती है।

भिक्षुओ ! दुःखवेदनीय स्पर्श के होने से···; अदुःखसुखवेदनीय स्पर्श के होनेसे···वह···वेदना निरुद्ध और शान्त हो जाती है।

भिक्षुओ ! दो लकड़ियों में रगड़ खाने से गर्मी पैदा होती है और आग निकल आती है। उन दो लकड़ियों के अलग-अलग कर देने से वह गर्मी और आग बुझकर ठण्ढी हो जाती है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, सुखवेदनीय स्पर्श के होने से सुखवेदना पैदा होती है। उसी सुखवेदनीय स्पर्श के निरोध से···वह सुखवेदना निरुद्ध और शान्त हो जाती है।

भिक्षुओ ! दुःखवेदनीय स्पर्श के होने से···; अदुःखसुखवेदनीय स्पर्श के होने से···।

भिक्षुओ ! इसे देख, ज्ञानी आर्यश्रावक स्पर्श से भी विरक्त रहता है, वेदना···, संज्ञा···, विज्ञान···। इस वैराग्य से वह मुक्त हो जाता है। जाति क्षीण हो गई···ऐसा जान लेता है।

§ ३. पुत्तमंस सुत्त (१२. ७. ३)

चार प्रकार के आहार

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! उत्पन्न हुए प्राणी की स्थिति के लिए, तथा उत्पन्न होनेवालों के अनुग्रह के लिए चार आहार हैं। कौन से चार ? (१) स्थूल या सूक्ष्म कौर के रूप में। (२) स्पर्श। (३) मन की संचेतना। (४) विज्ञान।······

भिक्षुओ ! कौर के रूप का आहार किस प्रकार का समझना चाहिए ?

भिक्षुओ ! दो पति पत्नी कुछ पाथेय लेकर कान्तार के किसी मार्ग में पड़ जाँय। उनके साथ अपना एक प्यारा लाड़ला पुत्र हो। तब, उनका पाथेय धीरे-धीरे समाप्त हो जाय; पास में कुछ न बचे, और कान्तार कुछ तै करना बाकी बचा रहे।

भिक्षुओ ! तब, उन पति पत्नी के मन में यह हो—हम लोगों का पाथेय समाप्त हो गया, पास में कुछ नहीं बचा है। तो, हम लोग अपने इकलौते प्यारे लाड़ले पुत्र को मार, टुकड़े-टुकड़े और बोटी-बोटी कर, उसे खाते हुए बाकी कान्तार को तै करें। तीनों के तीनों ही मर न जावें।

भिक्षुओ ! तब, वे अपने इकलौते प्यारे लाड़ले पुत्र को मार, टुकड़े टुकड़े और बोटी बोटी कर, उसे खाते हुये बाकी कान्तार को तै करें। वे पुत्र-मांस खावें भी, और छाती पीट पीट कर विलाप भी करें—हा पुत्र ! हा पुत्र !

भिक्षुओ ! तो तुम क्या समझते हो, क्या वे इस तरह मद, मण्डन और विभूषण के लिये आहार करते हैं ?

नहीं भन्ते !

भिक्षुओ ! ऐसा ही कौर के रूप का आहार समझना चाहिये। ऐसा समझने से पाँच कामगुणों के राग को पहचान लेता है। पाँच काम-गुणों के राग को पहचान लेने से उसके लिये वह बन्धन नहीं रहता है जिस बन्धन में बँधकर वह फिर जन्म ग्रहण करे।

भिक्षुओ ! स्पर्श के आहार को कैसा समझना चाहिये ?

भिक्षुओ ! छाँछ लगी हुई कोई गाय किसी भीत के सहारे लगकर खड़ी हो; भीत में रहने वाले कीड़े उसे काटें। वह किसी वृक्ष के सहारे लगकर खड़ी हो; वृक्ष में रहने वाले कीड़े उसे काटें। पानी में खड़ी हो···। आकाश में खड़ी हो···। भिक्षुओ ! वह गाय जहाँ जहाँ जाकर खड़ी हो वहाँ वहाँ के कीड़े उसे काटें। भिक्षुओ ! स्पर्श के आहार को भी इसी प्रकार का समझना चाहिये।

भिक्षुओ ! स्पर्श के आहार को इस प्रकार समझ लेने से तीनों वेदनायें जान ली जाती हैं। तीनों वेदनाओं को जान लेने से आर्यश्रावक को फिर और कुछ करना बाकी नहीं बचता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

भिक्षुओ ! मन की संचेतना के आहार को कैसा समझना चाहिये ?

भिक्षुओ ! किसी पोरसे भर गड्ढे में लपट और धूँआ से रहित लहलहाती हुई आग भरी हो। तब, कोई पुरुष आवे जो जीने की कामना रखता हो, मरना नहीं चाहता हो, सुख पाना चाहता हो, दुःख से दूर रहना चाहता हो। उसे दो बलवान् आदमी एक एक बाँह पकड़ कर उस गड्ढे में ढकेल दें। भिक्षुओ ! तो, उस पुरुष की चेतना, प्रार्थना और प्रणिधि वहाँ से छूटने के लिये ही होगी।

सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि वह जानता है कि इस आग में गिर कर मैं मर जाऊँगा, या मरने के समान दुःख उठाऊँगा। भिक्षुओ ! मन की संचेतना के आहार को ऐसा ही समझना चाहिये—मैं ऐसा कहता हूँ।

भिक्षुओ ! विज्ञान के आहार को कैसा समझना चाहिये ?

भिक्षुओ ! किसी चोर अपराधी को लोग पकड़ कर राजा के पास ले जाँय, और कहें—देव ! यह आप का चोर अपराधी है; इसे जैसी इच्छा हो दण्ड दें। तब, राजा यह कहे—जाओ, इसे पूर्वाह्न समय एक सौ भालों से भोंक दो। उसे लोग पूर्वाह्न समय···भोंक दें।

तब, राजा मध्याह्न समय यह कहे—उस पुरुष की क्या हालत है ?

देव ! वह वैसा ही जीवित है।

तब, राजा फिर कहे—जाओ, उसे मध्याह्न समय भी सौ भाले भोंक दो। लोग भोंक दें।

तब, राजा साँझ को कहे—उस पुरुष की क्या हालत है ?

···उसे साँझ में भी लोग सौ भाले भोंक दें।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, दिन भर में तीन सौ भालों से चुभ कर उसे दुःख और बेचैनी होगी या नहीं ?

भन्ते ! एक ही भाला से चुभ कर तो बड़ा दुःख होता है; तीन सौ की तो बात क्या ?

भिक्षुओ ! विज्ञान के आहार को ऐसा ही समझना चाहिये।

भिक्षुओ ! विज्ञान को इस प्रकार जान, नामरूप को पहचान लेता है। नामरूप को पहचान आर्यश्रावक को फिर और कुछ करना बाकी नहीं रहता—मैं ऐसा कहता हूँ।

§ ४. अत्थिराग सुत्त (१२. ७. ४)

चार प्रकार के आहार

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! उत्पन्न हुये प्राणी की स्थिति के लिये, तथा उत्पन्न होने वालों के अनुग्रह के लिये चार आहार हैं। कौन से चार ? (१) स्थूल या सूक्ष्म कौर के रूप में। (२) स्पर्श। (३) मन की संचेतना। (४) विज्ञान।···

भिक्षुओ ! कौर के रूप के आहार में यदि राग होता है, सुख का आस्वाद होता है, तृष्णा होती है, तो विज्ञान जमता और बढ़ता है।

जहाँ विज्ञान जमता और बढ़ता है वहाँ नामरूप उठता है। जहाँ नामरूप उठता है वहाँ संस्कारों की वृद्धि होती है। जहाँ संस्कारों की वृद्धि होती है वहाँ पुनर्जन्म होता है। जहाँ पुनर्जन्म होता है वहाँ जाति, जरा, मरण होते हैं। भिक्षुओ ! जहाँ जाति, जरा, मरण होते हैं वहाँ शोक, भय, और उपायास (=परेशानी) होते हैं—ऐसा मैं कहता हूँ।

भिक्षुओ ! स्पर्श ···; मन की चेतना ···; विज्ञान के आहार में यदि राग होता है···।

भिक्षुओ ! कोई रंगरेज या चित्रकार रंग, या लाक्षा, या हल्दी, या नील, या मंजीठ के होने से अच्छी तरह साफ और चिकना किये फलक पर, या भित्ति पर, या कपड़े के टुकड़े पर सभी अंगों से युक्त स्त्री या पुरुष का रूप उतार दे।

भिक्षुओ ! वैसे ही, कौर के रूप में आहार में यदि राग होता है। सुख का आस्वाद होता है,··· वहाँ शोक, भय और उपायास होते हैं।

भिक्षुओ ! स्पर्श···; मन की संचेतना···; विज्ञान के आहार में यदि राग होता है···।

भिक्षुओ ! कौर के रूप के आहार में यदि राग नहीं होता है, सुख का आस्वाद नहीं होता है, तृष्णा नहीं होती है, तो विज्ञान नहीं जमने पाता।

जहाँ विज्ञान जमता और बढ़ता नहीं है, वहाँ नामरूप नहीं उठता। जहाँ नामरूप नहीं उठता है, वहाँ संस्कारों की वृद्धि नहीं होती है।···वहाँ शोक, भय और उपायास नहीं होते हैं—ऐसा मैं कहता हूँ।

भिक्षुओ ! स्पर्श···; मन की संचेतना···; विज्ञान के आहार में यदि राग नहीं होता है···तो वहाँ शोक··· नहीं होते।

भिक्षुओ ! कोई कूटागार या कूटागारशाला हो। उसके उत्तर, दक्षिण और पूर्व में खिड़कियाँ लगी हों। तो, सूर्य के उगने पर किरणें उसमें प्रवेश कर कहाँ पड़ेंगी ?

भन्ते ! पश्चिम वाली दीवाल पर।

भिक्षुओ ! यदि पश्चिम में कोई दीवाल न हो तो ?

भन्ते ! तो जमीन पर।

भिक्षुओ ! यदि जमीन नहीं हो तो कहाँ पड़ेंगी ?

भन्ते ! जल पर।

भिक्षुओ ! यदि जल भी नहीं हो तो कहाँ पड़ेंगी ?

भन्ते ! कहीं नहीं पड़ेंगी।

भिक्षुओ ! वैसे ही, कौर के रूप के···, स्पर्श···, मन की संचेतना···, विज्ञान के आहार में यदि राग नहीं, आस्वाद नहीं, तृष्णा नहीं, तो विज्ञान जमता और बढ़ता नहीं है। ···वहाँ शोक, भय और उपायास नहीं होते हैं—ऐसा मैं कहता हूँ।

§ ५. नगर सुत्त (१२. ७. ५)

आर्य अष्टांगिक मार्ग प्राचीन बुद्ध-मार्ग है

श्रावस्ती में।

भिक्षुओ ! बुद्धत्व प्राप्त करने के पहले बोधिसत्व रहते मेरे मन में ऐसा हुआ—हाय ! यह लोक भारी विपत्ति में फँसा है। जनमता है, बुढ़ाता है, मरता है, यहाँ मरकर वहाँ पैदा होता है। और, जरामरण के दुःख से कैसे छुटकारा होगा नहीं जानता है। इस जरामरण के दुःख से मुक्ति का ज्ञान कब होगा ?

भिक्षुओ ! तब, मेरे मन में यह हुआ—किसके होने से जरामरण होता है, जरामरण का प्रत्यय क्या है ?

भिक्षुओ ! इस पर उचित मनन करने से मुझे ज्ञान का उदय हो गया—जाति के होने से जरामरण होता है; जाति ही जरामरण का प्रत्यय है।

···भव···; उपादान···; तृष्णा···; वेदना···; स्पर्श···; षडायतन···; नामरूप···।

भिक्षुओ ! इस पर उचित मनन करने से मुझे ज्ञान का उदय हो गया—विज्ञान के होने से नामरूप होता है; विज्ञान ही नामरूप का प्रत्यय है।

भिक्षुओ ! तब, मेरे मन में हुआ—किसके होने से विज्ञान होता है, विज्ञान का प्रत्यय क्या है ?

भिक्षुओ ! इस पर उचित मनन करने से मुझे ज्ञान का उदय हो गया—नामरूप के होने से विज्ञान होता है, नामरूप ही विज्ञान का प्रत्यय है।

भिक्षुओ ! तब मेरे मन में यह हुआ—नामरूप से यह विज्ञान लौट आता है, आगे नहीं बढ़ता। इतने से जनमता है, बुढ़ाता है···। जो नामरूप के प्रत्यय से विज्ञान होता है; विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप होता है। नामरूप के प्रत्यय से षडायतन होता है। षडायतन के प्रत्यय से स्पर्श···। इस तरह, सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है।

भिक्षुओ ! "उठ खड़ा होता है" (=समुदय)=ऐसा पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु उत्पन्न हुआ, ज्ञान पैदा हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ।

भिक्षुओ ! तब, मेरे मन में यह हुआ—किसके नहीं होने से जरामरण नहीं होता है, किसका निरोध होने से जरामरण का निरोध होता है।

भिक्षुओ ! इस पर उचित मनन करने से मुझे ज्ञान का उदय हो गया—जाति के नहीं होने से जरामरण नहीं होता है। जाति का निरोध होने से जरामरण का निरोध होता है।

भव···; उपादान···; तृष्णा···; वेदना···; स्पर्श···; षडायतन···; नामरूप···; किसका निरोध होने से नामरूप का निरोध होता है ?

भिक्षुओ ! इस पर उचित मनन करने से मुझे ज्ञान का उदय हो गया—विज्ञान के नहीं होने से नामरूप नहीं होता है, विज्ञान का निरोध होने से नामरूप का निरोध होता है।

···किसके नहीं होने से विज्ञान नहीं होता, किसका निरोध होने से विज्ञान का निरोध हो जाता है ?

··· नामरूप के नहीं होने से विज्ञान नहीं होता है, नाम-रूप का निरोध होने से विज्ञान का निरोध हो जाता है।

भिक्षुओ ! तब मेरे मन में यह हुआ—मैंने मार्ग का ज्ञान प्राप्त कर लिया, नाम-रूप के निरोध से विज्ञान का निरोध होता है। विज्ञान के निरोध से नाम-रूप का निरोध होता है। नाम-रूप के निरोध से षडायतन का निरोध होता है। षडायतन के निरोध से स्पर्श का निरोध होता है।···। इस तरह, सारे दुःख-समूह का निरोध हो जाता है।

भिक्षुओ ! "निरोध, निरोध" ऐसा पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु उत्पन्न हुआ, ज्ञान पैदा हुआ···।

भिक्षुओ ! कोई पुरुष जंगल में घूमते हुये एक पुराना मार्ग देखे, पूर्वकाल के लोगों का बनाया, पूर्वकाल के लोगों का इस्तेमाल किया। वह पुरुष उस मार्ग को पकड़ कर आगे जाय, और एक पुराने राजधानी नगर को देखे, जहाँ पूर्वकाल में लोग रहा करते थे, जो आराम, वाटिका, पुष्करिणी, और सुन्दर चहार-दिवारी से युक्त हो।

भिक्षुओ ! तब, वह पुरुष राजा या राजमन्त्री को जाकर कहे—भन्ते ! जानते हैं, मैंने जंगल में घूमते···। भन्ते ! अच्छा होता कि उस नगर को फिर बसावें।

भिक्षुओ ! तब, राजा या राजमन्त्री उस नगर को फिर भी बसावे। वह नगर कुछ काल के बाद बड़ा गुलजार, समृद्ध, और उन्नतिशील हो जाय।

भिक्षुओ ! वैसे ही, मैंने पुराना मार्ग देख लिया है, जिस मार्ग पर पूर्व के सम्यक् सम्बुद्ध चल चुके हैं।

भिक्षुओ ! पूर्व के सम्यक्-सम्बुद्धों से चला गया वह पुराना मार्ग क्या है ? यही आर्य-अष्टांगिक मार्ग; जो सम्यक् दृष्टि···सम्यक् समाधि।···

उस मार्ग पर मैंने चला। उस मार्ग पर चलकर मैंने जरामरण को जान लिया, जरामरण के

समुदय को जान लिया, जरामरण के निरोध को जान लिया, जरामरण की निरोधगामिनी प्रतिपदा को जान लिया।

उस मार्ग पर मैंने चला। उस मार्ग पर चलकर मैंने जाति···, भव···, उपादान···, तृष्णा···, वेदना···, स्पर्श···, षडायतन···, नामरूप···, विज्ञान···, संस्कार···।

उसे जान, मैंने भिक्षुओं को, भिक्षुणियों को, उपासकों को और उपासिकाओं को उपदेशा। भिक्षुओ! यही ब्रह्मचर्य इतना समृद्ध और उन्नतिशील है, विस्तारित है, बहुत जनों से भर गया है, मनुष्यों और देवताओं में भली प्रकार से प्रकाशित है।

§ ६. सम्मसन सुत्त (१२. ७. ६)

आध्यात्मिक मनन

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् कुरुजनपद में कम्मासदम्म नामक कुरुओं के कस्बे में विहार करते थे।

···भगवान् बोले—भिक्षुओ! तुम अपने भीतर ही भीतर खूब फेटन फेटो।

ऐसा कहने पर कोई भिक्षु भगवान् से बोला—भन्ते! मैं अपने भीतर ही भीतर खूब फेटन फेटता हूँ।

भिक्षु! कहो तो सही तुम अपने भीतर ही भीतर कैसे फेटन फेटते हो।

भिक्षु ने बतलाया, किन्तु उसके बतलाने से भगवान् का चित्त संतुष्ट नहीं हुआ।

तब, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले—हे भगवन्! अब यह समय है—भगवान् इसका उपदेश करें कि अपने भीतर ही भीतर कैसे फेटन फेटा जाता है। भगवान् से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे।

तो आनन्द! सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ।

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह, भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ! अपने भीतर ही भीतर भिक्षु खूब फेटन फेटता है—यह जो जरामरण इत्यादि अनेक प्रकार के नाना दुःख लोक में पैदा होते हैं उनका निदान क्या है? उत्पत्ति क्या है? प्रभव क्या है? किसके होने से जरामरण होता है? किसके नहीं होने से जरामरण नहीं होता है?

ऐसा फेटते हुए यह जान लेता है—···यह दुःख उपाधि के निदान···से होते हैं। उपाधि के होने से जरामरण होता है; उपाधि के नहीं होने से जरामरण नहीं होता है। वह जरामरण को जान लेता है। ···समुदय, निरोध और ···प्रतिपदा को जान लेता है। इस तरह वह धर्म के सच्चे मार्ग पर आरूढ़ होता है।

भिक्षुओ! वह भिक्षु सर्वशः सम्यक् दुःखक्षय के लिए, तथा जरामरण के निरोध के लिए प्रतिपन्न कहा जाता है।

इसके बाद भी, अपने भीतर ही भीतर फेटन फेटता है—उपाधि (=पञ्च स्कन्ध) का निदान क्या है···?

···उपाधि का निदान···तृष्णा है।···। वह उपाधि को जान लेता है।···

भिक्षुओ! इसके बाद भी अपने भीतर ही भीतर फेटन फेटता है—यह तृष्णा उत्पन्न होती हुई कैसे उत्पन्न होती है और कहाँ लग जाती है?

ऐसा फेटते हुए वह जान लेता है—लोक में जो सुन्दर और लुभावने विषय हैं उन्हीं में तृष्णा उत्पन्न होती है, और उन्हीं में लग जाती है। लोक में चक्षु के विषय सुन्दर और लुभावने हैं; इन्हीं में तृष्णा उत्पन्न होती है और लग जाती है।···

लोक में श्रोत्र···, घ्राण···, जिह्वा···, काया···, मन के विषय सुन्दर और लुभावने हैं; इन्हीं में तृष्णा उत्पन्न होती है और लग जाती है।

भिक्षुओ ! अतीत काल में जिन श्रमण या ब्राह्मणों ने लोक के सुन्दर और लुभावने विषयों को नित्य, सुख, आत्मा, आरोग्य और क्षेम के ऐसा देखा, उनने तृष्णा को बढ़ाया ।

जिनने तृष्णा को बढ़ाया उनने उपाधि को बढ़ाया । जिनने उपाधि को बढ़ाया उनने दुःख को बढ़ाया । जिनने दुःख को बढ़ाया वे जाति जरामरण, शोक···से मुक्त नहीं हुए । दुःख से मुक्त नहीं हुए—ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! भविष्य काल में जो श्रमण या ब्राह्मण···।

भिक्षुओ ! वर्तमान काल में जो श्रमण या ब्राह्मण···।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पीने का कटोरा हो; जो रंग, गन्ध और रस से युक्त हो, किन्तु उसमें विष लगा हो । तब, कोई घाम में गर्माया, घमाया, थका, माँदा प्यासा पुरुष आवे । उस पुरुष को कोई कहे—हे पुरुष ! यह तुम्हारे लिए पीने का कटोरा है; जो रंग, गन्ध और रस से युक्त है, किन्तु इसमें विष लगा है । यदि चाहो तो पी सकते हो । पीने से यह रंग, गन्ध और स्वाद में बड़ा अच्छा लगेगा । पीने के बाद उसके कारण या तो मर जाओगे या मरने के समान दुःख भोगोगे । वह पुरुष सहसा बिना कुछ विचार किये उस कटोरे को पी ले, अपने को नहीं रोके । वह उसके कारण मर जाय या मरने के समान दुःख पावे ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, अतीत काल में जिन श्रमण या ब्राह्मणों ने लोक के सुन्दर और लुभावने···। दुःख से मुक्त नहीं हुए—ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! भविष्य काल···, वर्तमान काल में···।

भिक्षुओ ! अतीतकाल में जिन श्रमण या ब्राह्मणों ने लोक के सुन्दर और लुभावने विषयों को अनित्य, दुःख, अनात्म, रोग, और भय के ऐसा देखा, उनने तृष्णा को छोड़ दिया ।

जिनने तृष्णा को छोड़ दिया उनने उपाधि को छोड़ दिया । जिनने उपाधि को छोड़ दिया उनने दुःख को छोड़ दिया । जिनने दुःख को छोड़ दिया वे जाति, जरामरण, शोक···से मुक्त हो गये । वे दुःख से छूट गये—ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! भविष्य में···; वर्तमान काल में···। वे दुःख से छूट गये—ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! जैसे···। यदि चाहो तो पी सकते हो । पीने से यह रंग, गंध और स्वाद में बड़ा अच्छा लगेगा । पीने के बाद उसके कारण या तो मर जाओगे या मरने के समान दुःख भोगोगे ।

भिक्षुओ ! तब, उस पुरुष के मन में यह हो—मैं इस प्यास को सुरा से, पानी से, दही-मट्ठा से, लस्सी से, या जीरा के पानी से मिटा सकता हूँ । इस प्याले को मैं न पीऊँ जो बहुत काल तक मेरे अहित और दुःख के लिए हो । वह समझ बूझकर उस कटोरे को छोड़ दे, न पीये । इससे वह न तो मरे और न मरने के समान दुःख पावे ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, अतीत काल में जिन श्रमण या ब्राह्मणों ने लोक के सुन्दर और लुभावने विषयों को अनित्य, दुःख, अनात्म, रोग और भय के ऐसा देखा, उनने तृष्णा को छोड़ दिया ।

···वे दुःख से छूट गये—ऐसा मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! भविष्य में···; वर्तमान काल में···। वे दुःख से छूट जाते हैं—ऐसा मैं कहता हूँ ।

§ ७. नलकलाप सुत्त (१२. ७. ७)

जरामरण की उत्पत्ति का नियम

एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् महाकोट्ठित वाराणसी के समीप ऋषिपतन मृगदाय में विहार करते थे ।

तब, आयुष्मान् महाकोट्ठित साँझ को ध्यान से उठ जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ गये, और कुशल क्षेम के प्रश्न पूछकर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् महाकोट्ठित आयुष्मान् सारिपुत्र से बोले—आवुस सारिपुत्र! क्या जरामरण अपना स्वयं किया हुआ है, या दूसरे का किया हुआ है, या अपना स्वयं भी और दूसरे का भी किया हुआ है, या न अपना स्वयं और न दूसरे का किया हुआ किन्तु अकारण हठात् उत्पन्न हो गया है?

=आवुस कोट्ठित! इनमें एक भी ठीक नहीं।

=आवुस सारिपुत्र! क्या जाति···, भव···, उपादान···, तृष्णा···, वेदना···, स्पर्श···, षडायतन···, नामरूप···अपना स्वयं किया हुआ है···या अकारण हठात् उत्पन्न हो गया है?

आवुस कोट्ठित! इनमें एक भी ठीक नहीं। किन्तु, विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप होता है।

आवुस सारिपुत्र! क्या विज्ञान अपना स्वयं किया हुआ है,···या अकारण उत्पन्न हुआ है?

आवुस कोट्ठित! इनमें एक भी ठीक नहीं; किन्तु, नामरूप के प्रत्यय से विज्ञान होता है।

तो हम आयुष्मान् सारिपुत्र के कहे का अर्थ इस प्रकार जानें—नामरूप और विज्ञान न तो अपना स्वयं किया हुआ है,···न अकारण हठात् उत्पन्न हुआ है; किन्तु, विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप, और नामरूप के प्रत्यय से विज्ञान होता है।

आवुस सारिपुत्र! इसका अर्थ यों ही न समझना चाहिये?

तो, आवुस! मैं एक उपमा देकर समझाता हूँ; उपमा से कितने विज्ञ पुरुष कहे हुये का अर्थ समझ लेते हैं।

आवुस! जैसे, दो नलकलाप (= नरकट के बोझे) एक दूसरे के सहारे लगकर खड़े हों; वैसे ही नामरूप के प्रत्यय से विज्ञान और विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप होता है। नामरूप के प्रत्यय से षडायतन होता है।···इस तरह, सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है।

आवुस! जैसे, उन दो नलकलापों में एक को खींच लेने से दूसरा गिर पड़ता है; वैसे ही, नामरूप के निरोध से विज्ञान का निरोध और विज्ञान के निरोध से नामरूप का निरोध होता है। नामरूप के निरोध से षडायतन का निरोध होता है। षडायतन के निरोध से स्पर्श का निरोध होता है।···। इस तरह, सारे दुःख-समूह का निरोध हो जाता है।

आवुस सारिपुत्र! आश्चर्य है, अद्भुत है! आप ने इसे इतना अच्छा समझाया! आप के कहे हुये का हम छः तरह प्रकार से अनुमोदन करते हैं।

जो भिक्षु जरामरण के निर्वेद, वैराग्य और निरोध के लिये धर्मोपदेश करता है वही अलबत्ता धर्मकथिक कहा जा सकता है। जो भिक्षु जरामरण के निर्वेद, वैराग्य और निरोध के लिये प्रतिपन्न होता है वही अलबत्ता धर्मानुधर्म-प्रतिपन्न कहा जा सकता है। जो भिक्षु जरामरण के निर्वेद, वैराग्य, निरोध, अनुपादान से विमुक्त हो जाता है वही अलबत्ता दृष्टधर्मनिर्वाण प्राप्त कहा जा सकता है।

जाति···, भव···, उपादान···, तृष्णा···, वेदना···, स्पर्श···, षडायतन···, नामरूप···, विज्ञान···, संस्कार···।···जो भिक्षु अविद्या के निर्वेद, वैराग्य, निरोध, अनुपादान से विमुक्त हो जाता है वही अलबत्ता दृष्टधर्मनिर्वाण प्राप्त कहा जा सकता है।

§ ८. कोसम्बी सुत्त (१२. ७. ८)

भव का निरोध ही निर्वाण

एक समय आयुष्मान् मूसिल, आयुष्मान् सविट्ठ, आयुष्मान् नारद और आयुष्मान् आनन्द कौशाम्बी के घोषिताराम में विहार करते थे।

क

तब, आयुष्मान् सविट्ठ आयुष्मान् मूसिल से बोले—आवुस मूसिल ! श्रद्धा को छोड़, रुचि को छोड़, अनुश्रव को छोड़, आकारपरिवितर्क को छोड़, दृष्टिनिध्यान क्षान्ति को छोड़, आयुष्मान् मूसिल को क्या अपने भीतर ही ऐसा ज्ञान हो गया है कि जाति के प्रत्यय से जरामरण होता है ?

आवुस सविट्ठ ! श्रद्धा को छोड़···, मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ कि जाति के प्रत्यय से जरामरण होता है।

आवुस मूसिल ! श्रद्धा को छोड़···, आयुष्मान् मूसिल को क्या अपने भीतर ही ऐसा ज्ञान हो गया है कि भव के प्रत्यय से जाति होती है ?···

··कि उपादान के प्रत्यय से भव होता है ?···
···कि तृष्णा के प्रत्यय से उपादान होता है ?···
··कि वेदना के प्रत्यय से तृष्णा होती है ?···
···कि स्पर्श के प्रत्यय से वेदना होती है ?···
···कि षडायतन के प्रत्यय से स्पर्श होता है ?···
···कि नामरूप के प्रत्यय से षडायतन होता है ?···
···कि विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप होता है ?···
···कि संस्कारों के प्रत्यय से विज्ञान होता है ?···
···कि अविद्या के प्रत्यय से संस्कार होते हैं ?··

आवुस सविट्ठ ! श्रद्धा को छोड़···, मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ कि अविद्या के प्रत्यय से संस्कार होते हैं।

आवुस मूसिल ! श्रद्धा को छोड़···, आयुष्मान् मूसिल को क्या अपने भीतर ऐसा ज्ञान हो गया है कि जाति का निरोध होने से जरामरण का निरोध होता है।

आवुस सविट्ठ ! श्रद्धा को छोड़···, मैं यह जानता और देखता हूँ कि जाति का निरोध होने से जरामरण का निरोध होता है ?

···भव के निरोध से जाति का निरोध···। [प्रतिलोम वश से]···अविद्या के निरोध से संस्कारों का निरोध होता है।

आवुस मूसिल ! श्रद्धा को छोड़···, आयुष्मान् मूसिल को क्या अपने भीतर ऐसा ज्ञान हो गया है कि भव का निरोध होना ही निर्वाण है ?

आवुस सविट्ठ ! श्रद्धा को छोड़···, मैं यह जानता और देखता हूँ कि भव का निरोध होना ही निर्वाण है ?

तो आयुष्मान् मूसिल क्षीणाश्रव अर्हत् हैं।

इस पर आयुष्मान् मूसिल चुप रहे।

ख

तब, आयुष्मान् नारद आयुष्मान् सविट्ठ से बोले—आवुस सविट्ठ ! अच्छा होता कि मुझे भी वह प्रश्न पूछा जाता। मुझसे वह प्रश्न पूछें। मैं आप को इस प्रश्न का उत्तर दूँगा।

···मैं आयुष्मान् नारद को भी वह प्रश्न पूछता हूँ। आयुष्मान् नारद मुझे इस प्रश्न का उत्तर दें।

···[पूर्ववत्]

आवुस सविट्ठ ! श्रद्धा को छोड़..., मैं यह जानता और देखता हूँ कि भव का निरोध होना ही निर्वाण है।

तो आयुष्मान् नारद क्षीणाश्रव अर्हत् हैं।

आवुस ! मैंने इस यथार्थ-ज्ञान को पा लिया है कि भव का निरोध होना ही निर्वाण है, किन्तु मैं क्षीणाश्रव अर्हत् नहीं हूँ।

आवुस ! जैसे, किसी कान्तार मार्ग में एक कुँआ हो। वहाँ न डोर हो न बाल्टी। तब, कोई धाम से गर्माया, घबाया, थका-माँदा प्यासा पुरुष आवे ! वह उस कुँआ में झाँके। "पानी है" ऐसा वह जाने, किन्तु वहाँ तक पहुँचने में असमर्थ हो।

आवुस ! वैसे ही, मैंने इस यथार्थ-ज्ञान को पा लिया है कि भव का निरोध होना ही निर्वाण है, किन्तु मैं क्षीणाश्रव अर्हत् नहीं हूँ।

ग

ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्द आयुष्मान् सविट्ठ से बोले—आवुस सविट्ठ ! ऐसा कह कर आप आयुष्मान् नारद को क्या कहना चाहते हैं?

आवुस आनन्द !...मैं आयुष्मान् नारद को कुशल और कल्याण छोड़ कर कुछ दूसरा कहना नहीं चाहता हूँ।

§ ९. उपयन्ति सुत्त (१२. ७. ९)

जरामरण का हटना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

...भगवान् बोले—भिक्षुओ ! महासमुद्र बढ़कर महानदियों को बढ़ा देता है। महानदियाँ बढ़कर छोटी-छोटी नदियों (= शाखा नदियों) को बढ़ा देती हैं।...बड़ी बड़ी झीलियाँ को बढ़ा देती हैं।...छोटी-छोटी डाँड़ियों को बढ़ा देती हैं।

भिक्षुओ ! इसी तरह, अविद्या बढ़कर संस्कारों को बढ़ा देती है। संस्कार बढ़कर विज्ञान को बढ़ा देते हैं।...जाति बढ़कर जरामरण को बढ़ा देती है।

भिक्षुओ ! महासमुद्र के लौट जाने पर महा नदियाँ लौट जाती हैं।...

भिक्षुओ ! इसी तरह, अविद्या के हट जाने से संस्कार हट जाते हैं। संस्कारों के हट जाने से विज्ञान हट जाता है।...जाति के हट जाने से जरामरण हट जाता है।

§ १०. सुसीम सुत्त (१२. ७. १०)

धर्म-स्वभाव-ज्ञान के पश्चात् निर्वाण का ज्ञान

अनित्यता. चोर की तरह साधु ही दुःख भोगता है

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दक-निवाप में विहार करते थे।

क

उस समय भगवान् का बड़ा सत्कार, = गुरुकार- = सम्मान, = पूजन, = आदर हो रहा था। उन्हें चीवर, पिण्डपात, शयनासन, ग्लानप्रत्यय भैषज्य परिष्कार प्राप्त हो रहे थे;

भिक्षुसंघ का भी बड़ा सत्कार···।

किन्तु, अन्य तैर्थिकों का सत्कार···नहीं होता था। उन्हें चीवर···प्राप्त नहीं होते थे।

ख

उस समय सुसीम परिव्राजक परिव्राजकों की एक बड़ी मण्डली के साथ राजगृह में ठहरा हुआ था।

तब, सुसीम परिव्राजक की मण्डली ने सुसीम परिव्राजक को कहा:—मित्र सुसीम ! सुनें, आप श्रमण गौतम के पास दीक्षा ले लें। श्रमण गौतम से धर्म सीख कर आवें और हम लोगों को कहें। आप से धर्म सीखकर हम लोग गृहस्थों को उपदेश देंगे। इस तरह, हम लोगों का भी सत्कार···होगा; और हम भी चीवर···प्राप्त करेंगे।

"मित्र ! बहुत अच्छा" कह, सुसीम परिव्राजक अपनी मण्डली को उत्तर दे, जहाँ आयुष्मान आनन्द थे वहाँ गया, और कुशल क्षेम के प्रश्न पूछकर एक ओर बैठ गया।

ग

एक ओर बैठ, सुसीम परिव्राजक आयुष्मान आनन्द से बोला—आवुस आनन्द ! मैं इस धर्म-विनय में ब्रह्मचर्य पालन करना चाहता हूँ।

तब, आयुष्मान् आनन्द सुसीम परिव्राजक को ले जहाँ भगवान थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले:—सुसीम परिव्राजक मुझसे कहता है कि आवुस आनन्द ! मैं इस धर्मविनय में ब्रह्मचर्य पालन करना चाहता हूँ।

आनन्द ! तो सुसीम को प्रव्रजित करो।

सुसीम परिव्राजक ने भगवान् के पास प्रव्रज्या और उपसम्पदा पाई।

उस समय कुछ भिक्षुओं ने भगवान् के पास ऐसा स्वीकार कर लिया था—जाति क्षीण हो गई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ नहीं बचा, ऐसा जान लिया।

घ

आयुष्मान् सुसीम ने इसे सुना कि कुछ भिक्षुओं ने भगवान् के पास ऐसा स्वीकार कर लिया है···।

तब, आयुष्मान् सुसीम जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ गये, और कुशल-क्षेम के प्रश्न पूछकर और बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् सुसीम उन भिक्षुओं से बोले:—क्या···यह सच्ची बात है कि आयुष्मान ने भगवान् के पास ऐसा स्वीकार कर लिया है···?

हाँ, आवुस !

आयुष्मानों ने यह जानते और देखते हुये क्या अनेक प्रकार की ऋद्धियों को प्राप्त कर लिया है ? एक होकर भी बहुत हो जाते हैं ? बहुत होकर भी एक हो जाते हैं ? क्या आप प्रगट होते और छप्त हो जाते हैं ? क्या आप दीवाल, हाता, पहाड़ के आर-पार बिना लगे-बझे चले जा सकते हैं, जैसे आकाश में ? पृथ्वी में भी क्या आप डुबकियाँ लगा सकते हैं जैसे पानी में ? जल के तल पर भी क्या आप चल सकते हैं, जैसे पृथ्वी के ऊपर ? आकाश में भी क्या आप पलथी लगाकर रह सकते हैं, जैसे पक्षी ? चाँद सूरज जैसे तेजवान् को भी क्या आप हाथ से छू सकते हैं ? ब्रह्मलोक तक भी क्या आप अपने शरीर से वश में कर सकते हैं ?

आवुस, नहीं।

आप आयुष्मान् ऐसा जानते और देखते हुये क्या दिव्य अलौकिक विशुद्ध श्रोत्रधातु से दिव्य और मानुष, तथा दूर और निकट के शब्दों को सुन सकते हैं ?

आवुस ! नहीं सुन सकते हैं।

आप आयुष्मान् ऐसा जानते और देखते हुये क्या दूसरे जीवों और पुरुषों के चित्त को अपने चित्त से जान लेते हैं ? सराग चित्त को सराग चित्त है, ऐसा जान लेते हैं ? वीतराग चित्त को वीतराग चित्त है, ऐसा जान लेते हैं ? द्वेष'''मोह वाले चित्त को'''वैसा जान लेते हैं ? संक्षिप्त''',विक्षिप्त''', महान्''', अमहान्''', सोत्तर''', अनुत्तर''', समाहित''', असमाहित''', विमुक्त''', अविमुक्त चित्त को वैसा-वैसा जान लेते हैं ?

आवुस, नहीं।

आप आयुष्मान् ऐसा जानते और देखते हुये क्या अनेक प्रकार के अपने पूर्व जन्म की बातों को स्मरण करते हैं—जैसे, एक जन्म भी, दो जन्म भी''', पाँच''', दश''', बीस''', पचास''', सौ''', हजार''', लाख'''। अनेक संवर्त कल्प भी, अनेक विवर्त कल्प भी, अनेक संवर्तविवर्त कल्प भी। वहाँ था; इस नाम का, इस गोत्र का, इस वर्ण का, इस आहार का, ऐसा सुखदुःख भोगने वाला, इतनी आयु वाला। सो वहाँ से मर कर वहाँ उत्पन्न हुआ। वहाँ भी इस नाम का'''था। सो, वहाँ से मर कर यहाँ उत्पन्न हुआ हूँ—इस प्रकार क्या आप आकार और उद्देश के साथ अनेक प्रकार के अपने पूर्व जन्म की बातों को स्मरण करते हैं।

आवुस, नहीं।

आप आयुष्मान् ऐसा जानते और देखते हुये क्या दिव्य अलौकिक विशुद्ध चक्षु से सत्वों को—मरते, जनमते, हीन, प्रणीत, सुन्दर, कुरूप, अच्छी गति को प्राप्त, दुर्गति को प्राप्त, अपने कर्म के अनुसार अवस्था को पाये—देखते हैं ? ये जीव शरीर, वचन और मन से दुराचार करने वाले हैं, आर्य पुरुषों की निन्दा करने वाले हैं, मिथ्या दृष्टि वाले हैं, मिथ्या दृष्टि में पड़ कर आचरण करने वाले हैं—जो मरने के बाद नरक में उत्पन्न हो कर दुर्गति को प्राप्त होंगे ? ये जीव शरीर, वचन, और मन से सदाचार करने वाले हैं''', जो मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो कर सुगति को प्राप्त होंगे ? इस प्रकार, क्या जीवों को मरते, जनमते, हीन, प्रणीत, सुन्दर, कुरूप, अच्छी गति को प्राप्त, दुर्गति को प्राप्त, अपने कर्म के अनुसार अवस्था को पाये—देखते हैं ?

आवुस, नहीं।

आप आयुष्मान् ऐसा जानते और देखते हुये क्या उस शान्त विमोक्ष रूप के परे अरूप जो हैं उन्हें शरीर से स्पर्श करते विहार करते हैं ?

आवुस, नहीं।

क्या आयुष्मानों का स्वीकार करना ठीक होते हुये भी आप ने इन (अलौकिक) धर्मों को नहीं पाया है ?

नहीं आवुस, यह नहीं है।

तो कैसे यह सम्भव है।

आवुस सुसीम ! हम लोग प्रज्ञा-विमुक्त हैं।

आयुष्मानों के इस संक्षेप से कहे गये का हम विस्तार से अर्थ नहीं समझते हैं। कृपा कर के आप लोग ऐसा कहें कि आयुष्मानों के इस संक्षेप से कहे गये का हम विस्तार से अर्थ जान लें।

आवुस सुसीम ! आप जान लें या न जान लें; किन्तु हम लोग प्रज्ञाविमुक्त हैं।

ङ

तब, आयुष्मान् सुसीम आसन से उठ जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, आयुष्मान् सुसीम ने उन भिक्षुओं के साथ जो कथा-संलाप हुआ था सभी भगवान् को कह सुनाया।

सुसीम! पहले धर्म के स्वभाव का ज्ञान होता है, पीछे निर्वाण का ज्ञान।

भगवान् के इस संक्षेप से कहे गये का हम विस्तार से अर्थ नहीं समझते हैं। कृपा कर भगवान् ऐसा कहें कि भगवान् के इस संक्षेप से कहे गये का हम विस्तार से अर्थ जान लें।

सुसीम! तुम जानो या न जानो, किन्तु पहले धर्म के स्वभाव का ज्ञान होता है, पीछे निर्वाण का ज्ञान। सुसीम! तो क्या समझते हो रूप नित्य है अथवा अनित्य?

भन्ते! अनित्य है।

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख?

भन्ते! दुःख है।

जो अनित्य, दुःख विपरिणामधर्मा है उसे क्या ऐसा समझना ठीक है—यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है?

नहीं भन्ते!

वेदना नित्य है या अनित्य···।

संज्ञा नित्य है या अनित्य···।

संस्कार नित्य हैं या अनित्य···।

विज्ञान नित्य है या अनित्य···।

जो अनित्य, दुःख, विपरिणामधर्मा है उसे क्या ऐसा समझना ठीक है—यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है?

नहीं भन्ते!

सुसीम! तो, जो कुछ अतीत, अनागत या वर्तमान् के रूप हैं—आध्यात्म या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, हीन या प्रणीत, दूरस्थ या निकटस्थ—सभी न मेरे हैं, न हम हैं, और न हमारे आत्मा हैं।

सुसीम! जो कुछ अतीत अनागत या वर्तमान के वेदना···, संज्ञा···, संस्कार···, विज्ञान हैं··· सभी न मेरे हैं, न हम हैं, और न हमारे आत्मा हैं। इस बात का यथार्थ रूप में अच्छी तरह साक्षात्कार कर लेना चाहिये।

सुसीम! ऐसा देखते हुये ज्ञानी आर्यश्रावक का चित्त रूप से हट जाता है, वेदना से हट जाता है, संज्ञा से हट जाता है, विज्ञान से हट जाता है। चित्त के हट जाने पर वैराग्य उत्पन्न होता है। वैराग्य से विमुक्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने पर विमुक्त हो गया ऐसा ज्ञान होता है। जाति क्षीण हुई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ बाकी नहीं बचा—ऐसा जान लेता है।

सुसीम! तुम देखते हो कि जाति के प्रत्यय से जरामरण होता है?

हाँ भन्ते!

सुसीम! तुम देखते हो कि भव के प्रत्यय से जाति होती है?

हाँ भन्ते!

·· सुसीम! तुम देखते हो अविद्या के प्रत्यय से संस्कार होते हैं?

हाँ भन्ते।

सुसीम! देखते हो कि जाति का निरोध होने से जरामरण का निरोध होता है?

हाँ भन्ते !

···सुसीम ! देखते हो कि अविद्या का निरोध होने से संस्कारों का निरोध हो जाता है ।

हाँ भन्ते ।

सुसीम ! क्या तुमने ऐसा जानते और देखते हुये अनेक प्रकार की ऋद्धियों को प्राप्त कर लिया है ? कि एक हो कर बहुत हो जाना···[जिन्हें सुसीम ने उन भिक्षुओं से पूछा था]

नहीं भन्ते !

सुसीम ! ऐसा कहना भी और इन धर्मों को न पा लेना भी—सुसीम ! यही हमने किया है ।

च

तब, आयुष्मान् सुसीम भगवान् के चरणों पर शिर से प्रणाम् करके बोले—बाल, मूढ़, अकुशल के ऐसा मुझ से अपराध हो गया कि मैंने ऐसे धर्म-विनय में चोर के ऐसा प्रव्रजित हुआ । भन्ते ! भगवान् के पास में अपना अपराध स्वीकार करता हूँ; सो भगवान् मुझे क्षमा कर दें । भविष्य में ऐसा नहीं करूँगा ।

सुसीम ! ·····तुमने ठीक में बड़ा अपराध किया है ।

सुसीम ! जैसे, लोग किसी चोर या दोषी को पकड़ कर राजा के पास ले जायँ और कहें—देव ! यह आपका चोर दोषी है; आप जैसा चाहें इसे दण्ड दें । तब, राजा कहे—जाओ, इसके हाथों को पीछे करके रस्सी से कस कर बाँध दो, माथा मुंड दो, चिल्लाते और ढोल पीटते इसे एक गली से दूसरी गली, और एक चौराहे से दूसरे चौराहे ले जाते हुए दक्खिन के फाटक से निकाल कर नगर के दक्खिन ओर इसका सिर काट दो ।···उसे लोग वैसे ही ले जाकर उसका सिर काट दें ।

सुसीम ! तो, क्या समझते हो, उस पुरुष को उससे दुःख, बेचैनी होगी या नहीं ?

भन्ते ! अवश्य होगी ।

सुसीम ! उस पुरुष को दुःख हो या नहीं हो, किन्तु जो चोर की तरह इस धर्म-विनय में प्रव्रजित होते हैं उन्हें अधिकाधिक दुःख भोगना होता है । वह नरक में पड़ता है ।

सुसीम ! जो तुम अपने अपराध को अपराध समझ स्वीकार कर रहे हो इसलिये हम क्षमा कर देते हैं । सुसीम ! आर्य-विनय में उसकी वृद्धि ही है जो अपने अपराध का धर्मानुकूल प्रायश्चित कर लेता है और भविष्य में न करने का संकल्प कर लेता है ।

महावर्ग समाप्त

आठवाँ भाग

श्रमण-ब्राह्मण वर्ग

§ १. पच्चय सुत्त (१२. ८. १)

परमार्थज्ञाता श्रमण-ब्राह्मण

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे ।

···भगवान् बोले—भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण जरामरण को नहीं जानते हैं, जरामरण के समुदय को नहीं जानते हैं, जरामरण के निरोध को नहीं जानते हैं, जरामरण की निरोधगामिनी प्रतिपद् को नहीं जानते हैं, उन श्रमणों में न तो श्रामण्य है और ब्राह्मणों में ब्राह्मण्य। वे आयुष्मान् श्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात् कर, और प्राप्त कर विहार नहीं करते हैं।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण जरामरण को...जानते हैं, उन्हीं श्रमणों में श्रामण्य और ब्राह्मणों में ब्राह्मण्य है। वे आयुष्मान् श्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को इसी जन्म में स्वयं जान...कर विहार करते हैं।

§ २-१०. पच्चय सुत्त (१२. ८. २-१०)

परमार्थज्ञाता श्रमण-ब्राह्मण

श्रावस्ती ' जेतवन में ।

जाति को नहीं जानता है···।

भव को नहीं जानता है···।

उपादान को नहीं जानता है···।

तृष्णा को नहीं जानता है···।

वेदना को नहीं जानता है···।

स्पर्श को नहीं जानता है···।

षडायतन को नहीं जानता है···।

नामरूप को नहीं जानता है···।

विज्ञान को नहीं जानता है···।

§ ११. पच्चय सुत्त (१२. ८. ११)

परमार्थज्ञाता श्रमण-ब्राह्मण

संस्कार को नहीं जानता है···।

श्रमण-ब्राह्मण वर्ग समाप्त ।

नवाँ भाग

अन्तर-पेय्याल

§ १. सत्था सुत्त (१२. ९. १)

यथार्थज्ञान के लिए बुद्ध की खोज

भिक्षुओ ! जरामरण को न जानते हुए, न देखते हुए, जरामरण के यथार्थ ज्ञान के लिए बुद्ध की खोज करनी चाहिये।···समुदय, निरोध और प्रतिपदा के यथार्थ ज्ञान के लिए बुद्ध की खोज करनी चाहिए। यह पहला सूत्रान्त है।

सभी में इसी भाँति समझ लेना चाहिए।

भिक्षुओ ! जाति को न जानते हुए···।

भिक्षुओ ! भव···, उपादान···, तृष्णा···, वेदना···, स्पर्श···, षडायतन···, नामरूप···, विज्ञान···, संस्कार···को न जानते हुए···बुद्ध की खोज करनी चाहिये।

§ २. सिक्खा सुत्त (१२. ९. २)

यथार्थज्ञान के लिए शिक्षा लेना

भिक्षुओ ! जरामरण को न जानते हुए...जरामरण के यथार्थ-ज्ञान के लिये शिक्षा लेनी चाहिये।

...[ऊपर के सूत्र के समान ही। "बुद्ध की खोज करनी चाहिये" के स्थान पर "शिक्षा लेनी चाहिये"]

§ ३. योग सुत्त (१२. ९. ३)

यथार्थज्ञान के लिए योग करना

...योग करना चाहिये।

§ ४. छन्द सुत्त (१२. ९. ४)

यथार्थज्ञान के लिए छन्द करना

...छन्द करना चाहिये।

§ ५. उस्सोल्हि सुत्त (१२. ९. ५)

यथार्थज्ञान के लिए उत्साह करना

...उत्साह करना चाहिये।

§ ६. अप्पटिवानिय सुत्त (१२. ९. ६)

यथार्थज्ञान के लिए पीछे न लौटना

...पीछे न लौटना चाहिये।

§ ७. आतप्प सुत्त (१२. ९. ७)

यथार्थज्ञान के लिए उद्योग करना

...उद्योग करना चाहिये।

§ ८. विरिय सुत्त (१२. ९. ८)

यथार्थ ज्ञान के लिए वीर्य करना

...वीर्य करना चाहिये।

§ ९. सातच सुत्त (१२. ९. ९)

यथार्थ ज्ञान के लिए सतत परिश्रम करना

...अध्यवसाय करना चाहिये।

§ १०. सति सुत्त (१२. ९. १०)

यथार्थ ज्ञान के लिए स्मृति करना

...स्मृति करनी चाहिये।

§ ११. सम्पजञ्ञ सुत्त (१२. ९. ११)

यथार्थ ज्ञान के लिए संप्रज्ञ रहना

...संप्रज्ञ रहना चाहिये।

§ १२. अप्पमाद सुत्त (१२. ९. १२)

यथार्थ ज्ञान के लिए अप्रमादी होना

...अप्रमाद करना चाहिये।

अन्तर पेय्यालं वर्ग समाप्त।

दशवाँ भाग

अभिसमय वर्ग

§ १. नखसिख सुत्त (१२. १०. १)

स्रोतापन्न के दुःख अत्यल्प हैं

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

तब, भगवान् ने अपने नख के ऊपर एक बालू का कण रख, भिक्षुओं को आमन्त्रित किया— भिक्षुओ ! क्या समझते हो, कौन बड़ा है, यह बालू का छोटा कण जिसे मैंने अपने नख पर रख लिया है, या महापृथ्वी ?

भन्ते ! महापृथ्वी ही बहुत बड़ी है; भगवान् ने जिस बालू-कण को अपने नख पर रख लिया है वह तो बड़ा अदना है। यह महापृथ्वी का···लाखवाँ भाग भी नहीं है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, दृष्टिसम्पन्न ज्ञानी आर्यश्रावक का वह दुःख बड़ा है जो क्षीण हो गया = कट गया; जो बचा है वह तो अत्यन्त अल्पमात्र है। पूर्व के क्षीण हो गये=कट गये उस दुःख स्कन्ध के सामने यह बचा हुआ दुःख जो अधिक से अधिक सात जन्मों तक रह सकता है,···लाखवाँ भाग भी नहीं है।

भिक्षुओ ! धर्म का ज्ञान हो जाना इतना बड़ा परमार्थ का है; धर्म-चक्षु का प्रतिलाभ इतना बड़ा परमार्थ का है।

§ २. पोक्खरणी सुत्त (१२. १०. २)

स्रोतापन्न के दुःख अत्यल्प हैं

श्रावस्ती··· जेतवन··· में।

भिक्षुओ ! पचास योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी और पचास योजन गहरी पानी से लबालब भरी कोई पुष्करिणी हो, कि जिसके किनारे बैठ कर कौआ भी पानी पी सकता हो। तब, कोई पुरुष उस पुष्करिणी से कुशाग्र से कुछ पानी निकाल ले।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, कुशाग्र में आये जलकण में अधिक पानी है या पुष्करिणी में ?

भन्ते ! कुशाग्र में आये जलकण से पुष्करिणी का पानी अत्यन्त अधिक है; यह तो उसका लाखवाँ भाग भी नहीं ठहरता है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, दृष्टिसम्पन्न ज्ञानी आर्यश्रावक...[ऊपर के सूत्र के ऐसा ही]

§ ३. सम्भेज्जउदक सुत्त (१२. १०. ३)

महानदियों के संगम से तुलना

श्रावस्ती···जेतवन में।

भिक्षुओ ! जैसे, जहाँ महानदियों का संगम होता है—जैसे गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभू, मही नदियों का—वहाँ से कोई पुरुष दो या तीन बूँद पानी निकाल ले।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो...[ऊपर के सूत्र जैसा]

§ ४. सम्भेज्जउदक सुत्त (१२. १०. ४)

महानदियों के संगम से तुलना

श्रावस्ती···जेतवन···में।

भिक्षुओ ! जैसे, जहाँ महानदियों का संगम होता है...वहाँ का जल सूख कर खतम हो जाय, केवल कुछ बूँद बच जायँ।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो...।

§ ५. पठवी सुत्त (१२. १०. ५)

पृथ्वी से तुलना

श्रावस्ती···जेतवन···में।

भिक्षुओ ! कोई पुरुष बैर के बराबर पृथ्वी पर सात गोलियाँ फेंक दे। तो···कौन बड़ा है, बैर के बराबर सात गोलियाँ या महापृथ्वी··· ?

···[पूर्ववत्]

§ ६. पठवी सुत्त (१२. १०. ६)

पृथ्वी से तुलना

श्रावस्ती···जेतवन···में।

भिक्षुओ ! जैसे महापृथ्वी नष्ट हो जाय, खतम हो जाय, बैर के बराबर सात गोलियों को छोड़कर।...

§ ७. समुद्द सुत्त (१२. १०. ७)

समुद्र से तुलना

श्रावस्ती···जेतवन···में।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष महासमुद्र से दो या तीन पानी के बूँद निकाल ले...।

§ ८. समुद्द सुत्त (१२. १०. ८)

समुद्र से तुलना

श्रावस्ती···जेतवन···में।

भिक्षुओ ! जैसे, महासमुद्र सूख कर खतम हो जाय, दो या तीन पानी के बूँद छोड़कर। भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो···।

§ ९. पब्बत सुत्त (१२. १०. ९)

पर्वत की उपमा

श्रावस्ती···जेतवन···में।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष पर्वतराज हिमालय से सात सरसों के बराबर कंकड़ ले ले। भिक्षुओ! तो क्या समझते हो···।

§ १०. पब्बत सुत्त (१२. १०. १०)

पर्वत की उपमा

श्रावस्ती···जेतवन···में।

भिक्षुओ ! जैसे, पर्वतराज हिमालय नष्ट हो जाय, खतम हो जाय, सात सरसों के बराबर कंकड़ छोड़कर। भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो···।

§ ११. पब्बत सुत्त (१२. १०. ११)

पर्वत की उपमा

श्रावस्ती···जेतवन···में।

भिक्षुओ ! जैसे, पर्वतराज सुमेरु से कोई पुरुष सात मूँग के बराबर कंकड़ फेंक दे। भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, पर्वतराज सुमेरु बड़ा होगा या वे सात मूँग के बराबर कंकड़ ?

भन्ते ! पर्वतराज सुमेरु ही उन सात मूँग के बराबर कंकड़ों से बड़ा होगा। वे तो इसका··· लाखवाँ भाग नहीं हो सकते।

भिक्षुओ ! वैसे ही, दृष्टिसम्पन्न ज्ञानी आर्य श्रावक का वह दुःख बड़ा है जो क्षीण हो गया=कट गया; जो बचा है वह तो अत्यन्त अल्पमात्र है। पूर्व के क्षीण हो गये=कट गये उस दुःख स्कन्ध के सामने वह बचा हुआ दुःख, जो अधिक से अधिक सात जन्मों तक रह सकता है·· लाखवाँ भाग भी नहीं है।···

अभिसमय संयुत्त समाप्त

दूसरा परिच्छेद

१२. धातु-संयुत्त

पहला भाग

नानात्व वर्ग

(आध्यात्म पञ्चक)

§ १. धातु सुत्त (१२. १. १)

धातु की विभिन्नता

श्रावस्ती···जेतवन···में।

भिक्षुओ ! धातु के नानात्व पर उपदेश करूँगा। उसे सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! धातु का नानात्व क्या है ?

चक्षुधातु, रूपधातु, चक्षुविज्ञान धातु। श्रोत्रधातु, शब्दधातु, श्रोत्रविज्ञान धातु। घ्राणधातु, गन्धधातु, घ्राणविज्ञान धातु। जिह्वा धातु, रसधातु, जिह्वाविज्ञानधातु। कायधातु, स्प्रष्टव्य धातु, कायविज्ञानधातु। मनोधातु, मनोविज्ञानधातु।

भिक्षुओ ! इसी को धातुनानात्व कहते हैं।

§ २. सम्फस्स सुत्त (१२. १. २)

स्पर्श की विभिन्नता

श्रावस्ती···जेतवन···में।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व होता है।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व क्या है ?

चक्षुधातु, श्रोत्रधातु, घ्राणधातु।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व कैसे उत्पन्न होता है ?

भिक्षुओ ! चक्षुधातु के होने से चक्षुसंस्पर्श उत्पन्न होता है।···श्रोत्रसंस्पर्श उत्पन्न होता है।···घ्राणसंस्पर्श उत्पन्न होता है।···जिह्वासंस्पर्श उत्पन्न होता है।···कायसंस्पर्श उत्पन्न होता है।··· मनःसंस्पर्श उत्पन्न होता है।

भिक्षुओ ! इस प्रकार, धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व उत्पन्न होता है।

§ ३. नो चेतं सुत्त (१२. १. ३)

धातु विभिन्नता से स्पर्श विभिन्नता

श्रावस्ती···जेतवन···में।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व उत्पन्न होता है; यह नहीं कि स्पर्शनानात्व के होने से धातुनानात्व उत्पन्न हो।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व क्या है ? चक्षुधातु···मनोधातु। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं धातुनानात्व।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व कैसे होता है; और यह नहीं कि स्पर्शनानात्व के होने से धातुनानात्व हो ?

भिक्षुओ ! चक्षुधातु के होने से चक्षुसंस्पर्श उत्पन्न होता है; चक्षुसंस्पर्श के होने से चक्षुधातु उत्पन्न नहीं होता।···। मनोधातु के संस्पर्श होने से मनःसंस्पर्श उत्पन्न होता है; मनःसंस्पर्श के होने से मनोधातु उत्पन्न नहीं होता।

भिक्षुओ ! इसी प्रकार, धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व उत्पन्न होता है; स्पर्शनानात्व के होने से धातुनानात्व नहीं होता है।

§ ४. पठम वेदना सुत्त (१३. १. ४)

वेदना की विभिन्नता

श्रावस्ती···जेतवन···में।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व उत्पन्न होता है। स्पर्शनानात्व के होने से वेदना-नानात्व उत्पन्न होता है।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व क्या है ? चक्षुधातु···, मनोधातु।···

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व कैसे उत्पन्न होता है; और स्पर्शनानात्व के होने से वेदनानानात्व कैसे उत्पन्न होता है ?

भिक्षुओ ! चक्षुधातु के होने से चक्षु-संस्पर्श उत्पन्न होता है। चक्षु-संस्पर्श के होने से चक्षु-संस्पर्शजा वेदना उत्पन्न होती है।···। मनोधातु के होने से मनःसंस्पर्श उत्पन्न होता है। मनःसंस्पर्श के होने से मनःसंस्पर्शजा वेदना उत्पन्न होती है।

भिक्षुओ ! इसी तरह, धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व उत्पन्न होता है। स्पर्शनानात्व के होने से वेदनानानात्व उत्पन्न होता है।

§ ५. दुतिय वेदना सुत्त (१३. १. ५)

वेदना की विभिन्नता

श्रावस्ती···जेतवन···में।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व उत्पन्न होता है। स्पर्शनानात्व के होने से वेदना-नानात्व उत्पन्न होता है। वेदना-नानात्व के होने से स्पर्शनानात्व नहीं होता है। स्पर्शनानात्व के होने से धातुनानात्व नहीं होता है।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व क्या है ? चक्षु···, मन···।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व कैसे उत्पन्न होता है; स्पर्शनानात्व के होने से वेदना-नानात्व उत्पन्न होता है; वेदनानानात्व के होने से स्पर्शनानात्व उत्पन्न नहीं होता; स्पर्शनानात्व के होने से धातुनानात्व नहीं होता है ?

भिक्षुओ ! चक्षुधातु के होने से चक्षुसंस्पर्श उत्पन्न होता है। चक्षुसंस्पर्श के होने से चक्षुसंस्पर्शजा वेदना उत्पन्न होती है। चक्षुसंस्पर्शजा वेदना के होने से चक्षुसंस्पर्श नहीं होता है। चक्षुसंस्पर्श के होने चक्षुधातु-उत्पन्न नहीं होता।

भिक्षुओ ! श्रोत्रधातु'' मनोधातु'''।

भिक्षुओ ! इसी तरह, धातुनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व उत्पन्न होता है; स्पर्शनानात्व के होने से वेदनानानात्व उत्पन्न होता है। वेदनानानात्व के होने से स्पर्शनानात्व उत्पन्न नहीं होता है; स्पर्श-नानात्व के होने से धातुनानात्व नहीं होता है।

(बाह्य पञ्चक)

§ ६. धातु सुत्त (१३. १. ६)

धातु की विभिन्नता

श्रावस्ती'' जेतवन में।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के विषय में उपदेश करूँगा। उसे सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ।'''

भिक्षुओ ! धातुनानात्व क्या है ? रूपधातु, शब्दधातु, गन्धधातु, रसधातु, स्प्रष्टव्यधातु और धर्मधातु।

भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं धातुनानात्व।

§ ७. सञ्ञा सुत्त (१३. १. ७)

संज्ञा की विभिन्नता

श्रावस्ती'''जेतवन'''में।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व के होने से संज्ञानानात्व उत्पन्न होता है। संज्ञानानात्व के होने से संकल्पनानात्व उत्पन्न होता है। संकल्पनानात्व के होने से छन्दनानात्व उत्पन्न होता है। छन्दनानात्व के होने से हृदय में तरह-तरह की* लगन पैदा होती है। तरह-तरह की लगन पैदा होने से (उसकी पूर्ति के लिये) तरह-तरह के यत्न होते हैं।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व क्या है ? रूपधातु'''धर्मधातु'''।

भिक्षुओ ! कैसे'''तरह-तरह की लगन पैदा होने से (उसकी पूर्ति के लिये) तरह-तरह के यत्न होते हैं ?

भिक्षुओ ! रूपधातु के होने से रूपसंज्ञा उत्पन्न होती है। रूपसंज्ञा के होने से रूपसंकल्प उत्पन्न होता है।'''। रूप में तरह-तरह की लगन पैदा होने से (उसकी पूर्ति के लिये) तरह-तरह के यत्न होते हैं ?

'''धर्मधातु के होने से'''।

भिक्षुओ ! इसी तरह, धातुनानात्व के होने से संज्ञानानात्व होता है।...

§ ८. नो चेतं सुत्त (१३. १. ८)

धातु की विभिन्नता से संज्ञा की विभिन्नता

श्रावस्ती''जेतवन'''में।

''''' तरह-तरह के यत्न होने से तरह-तरह की लगन पैदा नहीं होती है। तरह-तरह की लगन

* परिलाहनानत्तं=किसी चीज के पाने के लिये हृदय में एक लगन।

पैदा होने से छन्दनानात्व उत्पन्न नहीं होता। छन्दनानात्व के होने से संकल्पनानात्व उत्पन्न नहीं होता। संकल्पनानात्व के होने से संज्ञानानात्व नहीं होता। संज्ञानानात्व के होने से धातुनानात्व नहीं होता।

भिक्षुओ! धातुनानात्व क्या है? रूपधातु···धर्मधातु···।

भिक्षुओ! कैसे···धातुनानात्व के होने से संज्ञानानात्व उत्पन्न होता है···? और [प्रतिलोमवश से यह ठीक नहीं होता है]···संज्ञानानात्व के होने से धातुनानात्व नहीं होता है?

भिक्षुओ! रूपधातु के होने से रूप संज्ञा उत्पन्न होती है।···रूप में तरह-तरह की लगन पैदा होने से (उसकी पूर्ति के लिये) तरह-तरह के यत्न होते हैं। तरह-तरह के यत्न होने से तरह-तरह की लगन पैदा नहीं होती है।···संज्ञानानात्व के होने से धातुनानात्व उत्पन्न नहीं होता है।

शब्दधातु···; गन्धधातु···; रसधातु···; स्प्रष्टव्यधातु···; धर्मधातु···।

भिक्षुओ! इसी तरह धातुनानात्व के होने से संज्ञानानात्व उत्पन्न होता है।···और,···संज्ञानानात्व के होने से धातुनानात्व नहीं होता है।

§ ९. पठम फस्स सुत्त (१३. १. ९)

विभिन्न प्रकार के लाभ के कारण

श्रावस्ती···जेतवन···में।

भिक्षुओ! धातुनानात्व के होने से संज्ञानानात्व उत्पन्न होता है। संज्ञानानात्व के होने से संकल्पनानात्व उत्पन्न होता है। संकल्पनानात्व के होने से स्पर्शनानात्व उत्पन्न होता है। स्पर्शनानात्व के होने से वेदनानानात्व उत्पन्न होता है। वेदनानानात्व के होने से छन्दनानात्व उत्पन्न होता है। छन्दनानात्व के होने से हृदय में तरह तरह की लगन पैदा होती है। तरह-तरह की लगन पैदा होने से तरह-तरह के यत्न होते हैं। तरह तरह के यत्न होने से तरह-तरह के लाभ होते हैं।

भिक्षुओ! धातुनानात्व क्या है? रूपधातु···धर्मधातु···।

भिक्षुओ! कैसे···तरह-तरह की लगन पैदा होने से तरह-तरह के यत्न होते हैं?

भिक्षुओ! रूपधातु के होने से रूपसंज्ञा उत्पन्न होती है। रूपसंज्ञा के होने से रूपसंकल्प उत्पन्न होता है। रूपसंकल्प के होने से रूपसंस्पर्श उत्पन्न होता है। रूपसंस्पर्श के होने से रूपसंस्पर्शजा वेदना होती है। रूपसंस्पर्शजा वेदना के होने से रूपछन्द उत्पन्न होता है। रूपछन्द के होने से रूप में तरह-तरह की लगन पैदा होती है। रूप में तरह-तरह की लगन पैदा होने से तरह-तरह के यत्न होते हैं। रूप में तरह-तरह के यत्न होने से रूप के तरह-तरह के लाभ होते हैं।

शब्द धातु···धर्मधातु···।

भिक्षुओ! इसी तरह, धातुनानात्व के होने से संज्ञा-नानात्व उत्पन्न होता है।···। तरह-तरह के यत्न होने से तरह-तरह के लाभ होते हैं।

§ १०. दुतिय फस्स सुत्त (१३. १. १०)

धातु की विभिन्नता से ही संज्ञा की विभिन्नता

श्रावस्ती···जेतवन···में।

भिक्षुओ! धातुनानात्व के होने से संज्ञानानात्व उत्पन्न होता है। संज्ञानानात्व के होने से संकल्पनानात्व उत्पन्न होता है।···स्पर्श।···वेदना···।···छन्द···।···लगन···।···यत्न···।···लाभ···। ···तरह-तरह के लाभ होने से तरह-तरह के यत्न नहीं होते।···[इसी तरह प्रतिलोमवश से]। संज्ञानानात्व के होने से धातुनानात्व उत्पन्न नहीं होता।

भिक्षुओ ! धातुनानात्व क्या है ? रूप...धर्म...।

भिक्षुओ ! कैसे धातुनानात्व के होने से संज्ञानानात्व उत्पन्न होता है ।...। संज्ञानानात्व के होने से धातुनानात्व उत्पन्न नहीं होता ?

भिक्षुओ ! रूपधातु के होने से रूपसंज्ञा उत्पन्न होती है ।...

शब्दधातु...धर्मधातु...।

भिक्षुओ ! इसी तरह, धातुनानात्व के होने से संज्ञानानात्व उत्पन्न होता है ।...। संज्ञानानात्व के होने से धातुनानात्व उत्पन्न नहीं होता ।

नानात्ववर्ग समाप्त ।

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १. सत्तिमं सुत्त (१३. २. १)

सात धातुयें

श्रावस्ती ...जेतवन...में।

भिक्षुओ ! धातु यह सात हैं।

कौन से सात ? (१) आभाधातु, (२) शुभधातु, (३) आकाशानन्त्यायतन धातु, (विज्ञानानन्त्यायतन धातु, (५) आकिंचन्यायतन धातु, (६) नैवसंज्ञानासंज्ञायतन धातु, (संज्ञावेदयितनिरोध धातु।

भिक्षुओ ! यही सात धातु हैं।

ऐसा कहने पर एक भिक्षु भगवान् से बोला—भन्ते !... किस प्रत्यय से यह सात धातु जाते हैं ?

भिक्षु ! जो आभाधातु है वह अन्धकार के प्रत्यय से जाना जाता है। जो शुभधातु है वह अ के प्रत्यय से जाना जाता है। जो आकाशानन्त्यायतन-धातु है वह रूप के प्रत्यय से जाना जाता है। विज्ञानानन्त्यायतन-धातु है वह आकाशानन्त्यायतन के प्रत्यय से जाना जाता है। जो आकिञ्चन्या धातु है वह विज्ञानानन्त्यायतन के प्रत्यय से जाना जाता है। जो नैवसंज्ञानासंज्ञायतन-धातु है वह अ चन्यायतन के प्रत्यय से जाना जाता है। जो संज्ञावेदयितनिरोध-धातु है वह निरोध के प्रत्यय से जाता है।

भन्ते ! इन सात धातुओं की प्राप्ति कैसे होती है ?

भिक्षु ! जो आभाधातु, शुभधातु, आकाशानन्त्यायतन-धातु, विज्ञानानन्त्यायतन-धातु, आकिञ्च यतन-धातु हैं उनकी प्राप्ति संज्ञा से होती है।

भिक्षु ! जो नैवसंज्ञानासंज्ञायतन-धातु है वह संस्कारों के बिल्कुल अवशिष्ट हो जाने से होता है।

भिक्षु ! जो संज्ञावेदयितनिरोध-धातु है वह निरोध के हो जाने से प्राप्त होता है।

§ २. सनिदान सुत्त (१३. २. २)

कारण से ही कार्य

श्रावस्ती...जेतवन...में।

भिक्षुओ ! कामवितर्क किसी निदान से ही होता है, बिना निदान के नहीं। व्यापादवितर्क कि निदान से ही होता है, बिना निदान के नहीं। विहिंसावितर्क किसी निदान से ही होता है, बिना निद के नहीं।

भिक्षुओ ! कैसे...?

भिक्षुओ ! कामधातु के प्रत्यय से कामसंज्ञा उत्पन्न होती है। कामसंज्ञा के प्रत्यय से कामसंकल्प उत्पन्न होता है। कामसंकल्प के प्रत्यय से कामछन्द उत्पन्न होता है। कामछन्द के प्रत्यय से काम की ओर एक लगन पैदा होती है। काम की ओर एक लगन पैदा होने के प्रत्यय से काम की प्राप्ति के लिये यत्न होता है। भिक्षुओ ! काम की प्राप्ति के लिये यत्न करते रह अविद्वान् पृथक जन तीन जगह मिथ्या प्रतिपन्न होता है—शरीर से, वचन से और मन से।

भिक्षुओ ! व्यापादधातु के प्रत्यय से व्यापादसंज्ञा उत्पन्न होती है…।

भिक्षुओ ! विहिंसाधातु के प्रत्यय से विहिंसासंज्ञा उत्पन्न होती है…।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष जलती हुई एक लुकारी को सूखी घासों की ढेर पर फेंक दे। उसे हाथ या पैर से शीघ्र ही पीट कर बुझा न दे। भिक्षुओ ! इस प्रकार, घास लकड़ी में रहने वाले प्राणी बड़ी विपत्ति में पड़ जायँ, मर जायँ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, जो श्रमण या ब्राह्मण पैदा बुरी-बुरी संज्ञा को शीघ्र ही छोड़ नहीं देता, दूर नहीं कर देता…बिल्कुल उड़ा नहीं देता है, वह इसी जन्म में दुःखपूर्वक विहार करता है, विघातपूर्वक, उपायासपूर्वक, परिलाहपूर्वक। शरीर छोड़ मरने के बाद उसे बड़ी दुर्गति प्राप्त होती है।

भिक्षुओ ! निदान से ही नैष्क्रम्य-वितर्क (= त्याग वितर्क) उत्पन्न होता है, बिना निदान के नहीं। निदान से ही अव्यापादवितर्क उत्पन्न होता है, बिना निदान के नहीं। निदान से ही अविहिंसा-वितर्क उत्पन्न होता है, बिना निदान के नहीं।

भिक्षुओ ! यह कैसे ?

भिक्षुओ ! नैष्क्रम्यधातु (= संसार का त्याग) के प्रत्यय से नैष्क्रम्यसंज्ञा उत्पन्न होती है।… नैष्कम्य-संकल्प…।…नैष्क्रम्य-छन्द…।…लगन…।…यत्न…। भिक्षुओ ! नैष्क्रम्य का यत्न करते हुये विद्वान् आर्यश्रावक तीन जगह सम्यक् प्रतिपन्न होता है—शरीर से, वचन से, मन से।

भिक्षुओ ! अव्यापादधातु…, अविहिंसाधातु…।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष जलती हुई एक लुकारी को सूखी घासों की ढेर पर फेंक दे। उसे हाथ या पैर से शीघ्र ही पीटकर बुझा दे। भिक्षुओ ! इस प्रकार, घास लकड़ी में रहनेवाले प्राणी विपत्ति में न पड़ जायँ, न मर जायँ।

भिक्षुओ ! वैसे ही जो श्रमण या ब्राह्मण पैदा हुई बुरी संज्ञा को शीघ्र ही छोड़ देता है=दूर कर देता है=बिल्कुल उड़ा देता है, वह इसी जन्म में सुखपूर्वक विहार करता है, विघातरहित, उपायासरहित, परिलाहरहित। शरीर छोड़ मरने के बाद उसकी अच्छी गति होती है।

§ ३. गिञ्जकावसथ सुत्त (१२. २. ३)

धातु के कारण ही संज्ञा, दृष्टि तथा वितर्क की उत्पत्ति

एक समय भगवान् ज्ञातिकों के साथ गिञ्जकावसथ[1] में विहार करते थे।

…भगवान् बोले—भिक्षुओ ! धातु के प्रत्यय से संज्ञा उत्पन्न होती है, वितर्क उत्पन्न होता है।

ऐसा कहने पर, आयुष्मान् सन्धल्ह कात्यायन भगवान् से बोले :—भन्ते ! बुद्धत्व न प्राप्त किये हुये लोगों में जो दृष्टि होती है वह कैसे जानी जाती है ?

कात्यायन ! यह जो अविद्या-धातु है सो एक बड़ी धातु है।

कात्यायन ! हीन धातु के प्रत्यय से हीन संज्ञा, हीन दृष्टि, हीन वितर्क, हीन चेतना, हीन अभिलाषा, हीन प्रणिधि, हीन पुरुष, हीन वचन उत्पन्न होते हैं। वह हीन बातें करता है, हीन उपदेश

---

1. ईंटों से बनी हुई शाला—अट्ठकथा।

देता है, हीन प्रज्ञापन करता है, हीन पक्ष की स्थापना करता है, हीन विवरण देता है, हीन। करता है, हीन समझता है। उसकी उत्पत्ति भी हीन होती है—ऐसा मैं कहता हूँ।

कात्यायन ! मध्यम धातु के प्रत्यय से मध्यम संज्ञा···। उसकी उत्पत्ति भी मध्यम होती है—ऐसा मैं कहता हूँ।

कात्यायन ! उत्तम धातु के प्रत्यय से उत्तम संज्ञा···। उसकी उत्पत्ति भी उत्तम होती है—मैं कहता हूँ।

§ ४. हीनाधिमुत्ति सुत्त (१३. २. ४)

धातुओं के अनुसार ही मेलजोल का होना

श्रावस्ती···जेतवन···में।

भिक्षुओ ! धातु से सत्व सिलसिला में चलते और मिलते हैं। हीन प्रवृत्तिवाले सत्व हीन प्रवृत्तियों के साथ ही सिलसिला में चलते और मिलते हैं। कल्याण (= अच्छी) प्रवृत्तिवाले सत्व कल्याण प्रवृत्तियों के साथ ही सिलसिला में चलते और मिलते हैं।

भिक्षुओ ! अतीतकाल में भी धातु ही से सत्व सिलसिला में चलते रहे और मिलते रहे।···

भिक्षुओ ! अनागतकाल में भी···।

भिक्षुओ ! इस समय में भी···।

§ ५. चङ्कम सुत्त (१३. २. ५)

धातु के अनुसार ही सत्वों में मेलजोल का होना

एक समय भगवान् राजगृह में गृद्धकूट पर्वत पर विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र कुछ भिक्षुओं के साथ भगवान् से कुछ ही दूर पर चंक्रमण कर रहे थे।

आयुष्मान् महामौद्गल्यायन···; महाकाश्यप···; अनुरुद्ध···; पुण्ण मन्तानिपुत्र···; उपालि···; आनन्द···; देवदत्त भी कुछ भिक्षुओं के साथ भगवान् से कुछ ही दूर पर चंक्रमण कर रहे थे।

तब, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया:—

भिक्षुओ ! तुम सारिपुत्र को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देखते हो न ?

हाँ भन्ते।

भिक्षुओ ! वे सभी भिक्षु बड़े प्रज्ञावाले हैं।

भिक्षुओ ! तुम मौद्गल्यायन को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देखते हो न ?

हाँ, भन्ते !

भिक्षुओ ! वे सभी भिक्षु बड़े ऋद्धिवाले हैं।

भिक्षुओ ! तुम काश्यप को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देखते हो न ?

हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! वे सभी भिक्षु धुताङ्ग धारण करनेवाले हैं।

भिक्षुओ ! तुम अनुरुद्ध को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देखते हो न ?

हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! वे सभी भिक्षु दिव्य चक्षुवाले हैं।

भिक्षुओ ! तुम पुण्ण मन्तानिपुत्र को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देखते हो न ?

हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! वे सभी भिक्षु बड़े धर्मकथिक हैं।

भिक्षुओ ! तुम उपालि को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देखते हो न ?

हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! वे सभी भिक्षु बड़े विनयधर हैं।

भिक्षुओ ! तुम आनन्द को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देखते हो न ?

हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! ये सभी भिक्षु बहुश्रुत हैं।

भिक्षुओ ! तुम देवदत्त को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देखते हो न ?

हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! ये सभी भिक्षु पापेच्छ हैं।

भिक्षुओ ! धातु से ही सत्त्व सिलसिला में चलते और मिलते हैं। हीन प्रवृत्तिवाले सत्त्व हीन प्रवृत्तियों के साथ ही सिलसिला में चलते और मिलते हैं। कल्याण प्रवृत्तिवाले सत्त्व कल्याण प्रवृत्तियों के साथ ही सिलसिला में चलते और मिलते हैं।

भिक्षुओ ! अतीत में भी···; अनागत में भी···; इस समय भी···।

§ ६. सगाथा सुत्त (१३. २. ६)

धातु के अनुसार ही मेलजोल का होना

श्रावस्ती···जेतवन में···।

क

भिक्षुओ ! धातु से ही सत्त्व सिलसिला में चलते और मिलते हैं। हीन प्रवृत्तिवाले सत्त्व हीन प्रवृत्तियों के साथ ही सिलसिला में चलते और मिलते हैं।

भिक्षुओ ! अतीत में भी···; अनागत में भी···; इस समय भी···।

भिक्षुओ ! जैसे, मैला मैले के सिलसिले में चला आता और मिल जाता है। मूत्र मूत्र के···। थूक थूक के···। पीब पीब के···। लहू लहू के···। भिक्षुओ ! वैसे ही,···हीनप्रवृत्तिवाले सत्त्व हीन-प्रवृत्तियों के साथ ही सिलसिला में चलते और मिलते हैं।

भिक्षुओ ! अतीत में भी···; अनागत में भी···; इस समय भी···।

भिक्षुओ ! धातु से ही सत्त्व सिलसिले में आते और मिलते हैं। कल्याण प्रवृत्तिवाले सत्त्व कल्याण प्रवृत्तियों के साथ ही सिलसिले में आते और मिलते हैं। ·········

भिक्षुओ ! जैसे, दूध दूध के साथ, तेल तेल के साथ, घी घी के साथ, मधु मधु के साथ, तथा गुड़ गुड़ के साथ सिलसिले में आता है और मिलता है।

·········भिक्षुओ ! अतीत···, अनागत···, इस समय···।

भगवान् यह बोले। इतना कहकर बुद्ध और भी बोले—

संसर्ग से पैदा हुआ राग का जंगल,
असंसर्ग से काट दिया जाता है;
थोड़ी सी लकड़ी के ऊपर चढ़ कर,
जैसे महासमुद्र में डूब जाता है,

वैसे ही निकम्मे आदमी के साथ रह कर,
साधु पुरुष भी डूब जाता है ॥
इसलिये उसका वर्जन कर देना चाहिये,
जो निकम्मा और वीर्य-रहित पुरुष है।
एकान्त में रहने वाले जो आर्यपुरुष हैं,
प्रहितात्म और ध्यान में रत रहने वाले,
जिनको सदैव उत्साह बना रहता है,
उन पण्डितों का सहवास करे ॥

§ ७. असद्ध सुत्त (१३. २. ७)

धातु के अनुसार ही मेलजोल का होना

श्रावस्ती···जेतवन में···।

क

भिक्षुओ ! धातु से ही···। श्रद्धारहित पुरुष श्रद्धारहितों के साथ, निर्लज्ज निर्लज्जों के साथ, बेसमझ बेसमझों के साथ, मूर्ख मूर्खों के साथ, निकम्मा निकम्मों के साथ, मूढ़ स्मृतिवाले मूढ़ स्मृतिवाले के साथ तथा दुष्प्रज्ञ दुष्प्रज्ञों के साथ सिलसिले में आते और मेल खाते हैं।

भिक्षुओ ! अतीतकाल में···; अनागतकाल में···; इस समय···।

ख

भिक्षुओ ! धातु से ही···। श्रद्धालु पुरुष श्रद्धालुओं के साथ,··· [ठीक उसका उल्टा] प्रज्ञावान् प्रज्ञावानों के साथ···।

§ ८. अश्रद्धा मूलक पञ्च (१३. २. ८)

§ ९. निर्लज्ज मूलक चार (१३. २. ९)

§ १०. बेसमझ मूलक तीन(१३. २. १०)

§ ११. अल्पश्रुत (= मूर्ख) होने से दो (१३. २. ११)

§ १२. निकम्मा (१३. २. १२)

[इन सूत्रों में ऊपर की कही गई बातें ही तोड़-मरोड़कर कही गई हैं]

द्वितीय वर्ग समाप्त

तीसरा भाग

कर्मपथ वर्ग

§ १. असमाहित सुत्त (१३. ३. १)

असमाहित का असमाहितों से मेल होना

श्रावस्ती···जेतवन में···।

भिक्षुओ ! धातु से सत्त्व··· । श्रद्धारहित श्रद्धारहितों के साथ, निर्लज्ज निर्लज्जों के साथ, बेसमझ बेसमझों के साथ, असमाहित असमाहितों के साथ, दुष्प्रज्ञ दुष्प्रज्ञों के साथ सिलसिले में आते और मिलते हैं।

···[उलटा]। प्रज्ञावान् प्रज्ञावानों के साथ ···।

§ २. दुस्सील सुत्त (१३. ३. २)

दुःशील का दुःशीलों से मेल होना

श्रावस्ती···जेतवन में···।

भिक्षुओ ! धातु से सत्त्व···। श्रद्धारहित···, निर्लज्ज···, बेसमझ···, दुःशील दुःशीलों के साथ, दुष्प्रज्ञ···।

···[उलटा]।···शीलवान् शीलवानों के साथ···।

§ ३. पञ्चसिक्खापद सुत्त (१३. ३. ३)

बुरे बुरों का साथ करते तथा अच्छे अच्छों का

श्रावस्ती···जेतवन में ·।

भिक्षुओ ! धातु से सत्त्व···। हिंसक पुरुष हिंसकों के साथ, चोर चोरों के साथ, छिनाल छिनालों के साथ, झूठे झूठों के साथ, नशाखोर नशाखोरों के साथ सिलसिले में आते और मिलते हैं।

···[ठीक इसका उलटा ही]। नशा से परहेज करनेवाले पुरुष नशा से परहेज करनेवाले पुरुषों के साथ सिलसिले में आते और मिलते हैं।

§ ४. सत्तकम्मपथ सुत्त (१३. ३. ४)

सात कर्मपथ वालों में मेलजोल का होना

श्रावस्ती···जेतवन में···।

भिक्षुओ ! धातु से सत्त्व···। हिंसक पुरुष···, चोर···, छिनाल···, झूठे···, चुगलखोर चुगलखोरों के साथ, गप्पी गप्पियों के साथ सिलसिले में आते और मिलते हैं।

···। गप्प से परहेज करनेवाले गप्प से परहेज करनेवालों के साथ···।

§ ५. दसकम्मपथ सुत्त (१३. ३. ५)

दस कर्मपथवालों में मेलजोल का होना

श्रावस्ती · जेतवन में···।

भिक्षुओ ! धातु से सत्व···। हिंसक···, चोर···, छिनाल···, झूठे···, चुगलखोर···, रूखे वचन कहनेवाले···, गप्पी···, लोभी···, व्यापन्नचित्त···, मिथ्या दृष्टि···।

§ ६. अट्ठङ्गिक सुत्त (१३. ३. ६)

अष्टाङ्गिकों में मेलजोल का होना

श्रावस्ती···जेतवन में···।

भिक्षुओ ! धातु से सत्व···। मिथ्यादृष्टिवाले···। मिथ्या संकल्पवाले···, मिथ्या वचनवाले···, मिथ्या कर्मान्तवाले···, मिथ्या आजीविकावाले···, मिथ्या व्यायामवाले···, मिथ्या स्मृतिवाले···, मिथ्या समाधिवाले पुरुष मिथ्या समाधिवाले पुरुषों के साथ सिलसिले में आते और मिलते हैं।

···[उलटा]। सम्यक् समाधिवाले पुरुष सम्यक् समाधिवाले पुरुषों के साथ···।

§ ७. दसङ्ग सुत्त (१३. ३. ७)

दशाङ्गों में मेलजोल का होना

श्रावस्ती···जेतवन में···।

भिक्षुओ ! धातु से सत्व···[···[ऊपर के आठ में दो और जोड़ दिये गये हैं]। मिथ्या ज्ञानवाले··, मिथ्या विमुक्तिवाले···।

···[उलटा]।

कर्मपथ वर्ग समाप्त

चौथा भाग

चतुर्थ वर्ग

§ १. चतु सुत्त (१३. ४. १)

चार धातुयें

श्रावस्ती'''जेतवन'''में।

भिक्षुओ ! धातु चार हैं ! कौन से चार ? (१) पृथ्वीधातु, (२) आपो धातु, (३) तेजो धातु और (४) वायुधातु।

भिक्षुओ ! यही चार धातु हैं।

§ २. पुब्ब सुत्त (१३. ४. २)

पूर्वज्ञान, धातुओं के आस्वाद और दुष्परिणाम

श्रावस्ती...।

भिक्षुओ ! बुद्धत्व प्राप्त करने के पहले, बोधिसत्व रहते ही, मेरे मन में यह हुआ—पृथ्वीधातु का आस्वाद क्या है, आदिनव (= दोष) क्या है, और निःसरण (= मुक्ति) क्या है ?

भिक्षुओ ! तब, मेरे मन में यह हुआ—पृथ्वीधातु से जो सुख और चैन होता है वह पृथ्वीधातु का आस्वाद है। जो पृथ्वी में अनित्य, दुःख और विपरिणाम धर्म हैं वह पृथ्वीधातु का आदिनव है। जो पृथ्वीधातु के प्रति छन्दराग को दबाना और हटा देना है वही पृथ्वीधातु का निःसरण (= मुक्ति) है।

जो आपोधातु के प्रत्ययसे'''; जो तेजोधातु के प्रत्यय से'''; जो वायुधातु के प्रत्यय से'''।

भिक्षुओ ! जबतक इन पृथ्वीधातु के आस्वाद, आदिनव और निःसरण का यथाभूत ज्ञान मुझे प्राप्त नहीं हुआ था, तब तक मैंने—देवताओं के साथ, मार के साथ, ब्रह्मा के साथ—इस लोक में देवता, मनुष्य, ब्राह्मण और श्रमणों के बीच ऐसा दावा नहीं किया कि मुझे अनुत्तर सम्यक् सम्बुद्धत्व प्राप्त हुआ है।

भिक्षुओ ! जब, इनका''' ज्ञान प्राप्त हो गया, तभी मैंने''' ऐसा दावा किया'''।

मुझे ऐसा ज्ञान = दर्शन उत्पन्न हो गया कि अवश्य ही मेरे चित्त की विमुक्ति हो गई। यही अन्तिम जन्म है, और अब पुनर्जन्म होने का नहीं।

§ ३. अचरि सुत्त (१३. ४. ३)

धातुओं के आस्वादन में विचरण करना

श्रावस्ती'''।

भिक्षुओ ! पृथ्वीधातु में आस्वाद ढूँढते हुये मैंने विचरण किया। पृथ्वीधातु का जो आस्वाद है

वहाँ तक मैं पहुँच गया। पृथ्वी धातु का जहाँ तक आस्वाद है मैंने प्रज्ञा से देख लिया। भिक्षुओ ! पृथ्वी धातु में आदिनव···।

भिक्षुओ ! पृथ्वीधातु के निःसरण को ढूँढ़ते हुये मैंने विचरण किया। पृथ्वीधातु का जो निःसरण है वहाँ तक मैं पहुँच गया। जिससे पृथ्वीधातु का निःसरण होता है मैंने प्रज्ञा से देख लिया।

··[इसी तरह, आपोधातु, तेजोधातु और वायुधातु के साथ भी]

भिक्षुओ ! जबतक इन चार धातुओं के आस्वाद, आदिनव और निःसरण का यथाभूत ज्ञान मुझे प्राप्त नहीं हुआ था; तब तक मैंने 'ऐसा दावा नहीं किया कि मुझे अनुत्तर सम्यक् सम्बुद्धत्व प्राप्त हुआ है।

भिक्षुओ ! जब, इनका·· ज्ञान प्राप्त हो गया, तभी मैंने···ऐसा दावा किया···।

मुझे ऐसा ज्ञान=दर्शन उत्पन्न हो गया कि अवश्य ही मेरे चित्त की विमुक्ति हो गई। यही अन्तिम जन्म है और अब पुनर्जन्म होने को नहीं।

§ ४. नो चेदं सुत्त (१२. ४. ४)

धातुओं के यथार्थ ज्ञान से ही मुक्ति

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! यदि पृथ्वीधातु में आस्वाद नहीं होता, तो प्राणी पृथ्वीधातु में रक्त नहीं होते। भिक्षुओ ! क्योंकि पृथ्वीधातु में आस्वाद है, इसीलिये प्राणी पृथ्वीधातु में रक्त होते हैं।

भिक्षुओ ! यदि पृथ्वीधातु में आदिनव नहीं होते तो प्राणी पृथ्वीधातु से उचटते नहीं। भिक्षुओ ! क्योंकि पृथ्वीधातु में आदिनव हैं, इसीलिये प्राणी पृथ्वीधातु से उचट जाते हैं।

भिक्षुओ ! यदि पृथ्वीधातु से निःसरण (= मुक्ति) नहीं होता तो प्राणी पृथ्वीधातु से मुक्त नहीं होते। भिक्षुओ ! क्योंकि पृथ्वीधातु से निःसरण होता है, इसीलिये प्राणी पृथ्वीधातु से मुक्त हो जाते हैं।

···[इसी तरह, आपोधातु, तेजोधातु और वायुधातु के साथ भी]

भिक्षुओ ! जब तक इन चार धातुओं के आस्वाद, आदिनव और निःसरण को लोग यथाभूत नहीं जान लेते हैं, तब तक वे···इस लोक से नहीं छूटते हैं·····।

भिक्षुओ ! जब, लोग इनको यथाभूत जान लेते हैं, तब वे···इस लोक से छूट जाते हैं तथा विमुक्त चित्त से विहार करते हैं।

§ ५. दुक्ख सुत्त (१२. ४. ५)

धातुओं के यथार्थ ज्ञान से मुक्ति

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! यदि पृथ्वीधातु में केवल दुःख ही दुःख होता,···और सुख से बिल्कुल शून्य, तो प्राणी पृथ्वीधातु में रक्त नहीं होते। भिक्षुओ ! क्योंकि पृथ्वीधातु में सुख है,···दुःख का अभाव है, इसीलिये प्राणी पृथ्वीधातु में रक्त होते हैं।

···[इसी तरह आपोधातु, तेजोधातु और वायुधातु के साथ भी]

भिक्षुओ ! यदि पृथ्वीधातु में केवल सुख ही सुख होता,···और दुःख से बिल्कुल शून्य, तो पृथ्वीधातु से विरक्त नहीं होते। भिक्षुओ ! क्योंकि पृथ्वीधातु में दुःख है···सुख का अभाव है, इसीलिये प्राणी पृथ्वीधातु से विरक्त होते हैं।

···[इसी तरह आपोधातु, तेजोधातु और वायुधातु के साथ भी]

§ ६. अभिनन्दन सुत्त (१३. ४. ६)

धातुओं की विरक्ति से ही दुःख से मुक्ति

श्रावस्ती···।

क

भिक्षुओ ! जो पृथ्वीधातु में आनन्द उठाता है वह दुःख का स्वागत करता है। जो दुःख का स्वागत करता है। वह दुःख से मुक्त नहीं हुआ है—ऐसा मैं कहता हूँ।

···आपोधातु···, तेजोधातु···, वायुधातु···।

ख

भिक्षुओ ! जो पृथ्वीधातु से विरक्त रहता है वह दुःख का स्वागत नहीं करता। जो दुःख का स्वागत नहीं करता है, वह दुःख से विमुक्त हो गया—ऐसा मैं कहता हूँ।

§ ७. उप्पाद सुत्त (१३. ४. ७)

धातु-निरोध से ही दुःख-निरोध

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! जो पृथ्वीधातु का होना, रहना और लय हो जाना है (=उत्पाद, स्थिति, अभिनिर्वृत्ति), वह दुःख ही का प्रादुर्भाव है, रोग तथा जरामरण का ही होना और रहना है।

···आपोधातु···; तेजोधातु···; वायुधातु···।

भिक्षुओ ! जो पृथ्वीधातु का निरोध=व्युपशम=अस्त हो जाना है, वह दुःख का ही निरोध है, रोग तथा जरामरण का ही व्युपशम और अस्त हो जाना है।

§ ८. पठम समणब्राह्मण सुत्त (१३. ४. ८)

चार धातुयें

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! धातु चार हैं। कौन से चार ? पृथ्वीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायुधातु।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण इन चार धातुओं के आस्वाद, आदिनव और निःसरण को यथाभूत नहीं जानते हैं, न तो उन श्रमणों में श्रामण्य है और न ब्राह्मणों में ब्राह्मण्य। वे आयुष्मान् श्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को इसी जन्म में स्वयं जान साक्षात् कर और प्राप्त कर विहार नहीं करते हैं।

भिक्षुओ ! जो···यथाभूत जानते हैं···वे प्राप्त कर विहार करते हैं।

§ ९. दुतिय समणब्राह्मण सुत्त (१३. ४. ९)

चार धातुयें

श्रावस्ती···।

···। जो श्रमण या ब्राह्मण इन चार धातुओं के समुदय, अस्तंगम, आस्वाद, आदिनव, निःसरण को यथाभूत नहीं जानते हैं···[ऊपर के ऐसा]।

§ १०. ततिय समणब्राह्मण सुत्त (१३. ४. १०)

चार धातुयें

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण पृथ्वीधातु के समुदय को नहीं जानते हैं ; पृथ्वीधातु के निरोध को नहीं जानते हैं ; पृथ्वीधातु की निरोधगामिनी प्रतिपदा को नहीं जानते हैं··· ।

अपोधातु··· ; तेजोधातु··· ; वायुधातु··· ।

भिक्षुओ ! जो··· जानते हैं··· ।

चतुर्थ वर्ग समाप्त

धातु-संयुत्त समाप्त

तीसरा परिच्छेद

१४. अनमतग्ग-संयुत्त

प्रथम वर्ग

§ १. तिणकट्ठ सुत्त (१४. १. १)

संसार के प्रारम्भ का पता नहीं, घास-लकड़ी की उपमा

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

वहाँ, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—हे भिक्षुओ!

"भदन्त" कहकर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—इस संसार का प्रारम्भ (= आदि) निर्धारित नहीं किया जा सकता है। अविद्या में पड़े, तृष्णा के बन्धन से बँधे, चलते-फिरते सत्वों की पूर्वकोटि जानी नहीं जाती।

भिक्षुओ! जैसे, कोई पुरुष सारे जम्बूद्वीप के घास, लकड़ी, डाली और पत्ते को तोड़ कर एक जगह जमा कर दे, और चार-चार अंगुली भर के टुकड़े करके फेंकता जाय—यह मेरी माता हुई; यह मेरी माता की माता हुई—यों यह माता का सिलसिला समाप्त नहीं होगा, किन्तु यह सारे जम्बूद्वीप के घास, लकड़ी, डाली और पत्ते समाप्त हो जायँगे :

सो क्यों? भिक्षुओ! क्योंकि, इस संसार का प्रारम्भ निर्धारित नहीं किया जा सकता है। अविद्या में पड़े···सत्वों की पूर्वकोटि जानी नहीं जाती।

भिक्षुओ! चिरकाल से दुःख, पीड़ा और अनर्थ हो रहे हैं; श्मशान भरता आ रहा है।

भिक्षुओ! अतः तुम्हें सभी संस्कारों से विरक्त हो जाना चाहिये, राग नहीं करना चाहिये, विमुक्त हो जाना चाहिये।

§ २. पठवी सुत्त (१४. १. २)

संसार के प्रारम्भ का पता नहीं, पृथ्वी की उपमा

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ! इस संसार का प्रारम्भ···।

भिक्षुओ! जैसे, कोई पुरुष सारी महापृथ्वी को बेर के बराबर करके फेंकता जाय—यह मेरा पिता, यह मेरे पिता का पिता—तो उसके पिता के पिता का सिलसिला समाप्त नहीं होगा, महापृथ्वी समाप्त हो जायगी।

···[ऊपर के ऐसा]।

§ ३. अस्सु सुत्त (१४. १. ३)

संसार के प्रारम्भ का पता नहीं, आँसू की उपमा

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ! इस संसार का प्रारम्भ···।

भिक्षुओ ! क्या समझते हो, जो चिरकाल से जनमते मरते, अप्रिय के संयोग और प्रियके वियोग से रोते हुये लोगों के अश्रु अधिक गिरे हैं, वह अधिक हैं या चारों महासमुद्र के जल ?

भन्ते ! भगवान् के बताये धर्म को जैसा हम जानते हैं, उससे तो यही पता चलता है कि जो··· अश्रु गिरे हैं वही चारों महासमुद्र के जलसे अधिक हैं।

सच है, भिक्षुओ, सच है ! तुमने मेरे बताये धर्म को ठीक से जान लिया है।······

भिक्षुओ ! चिरकाल से तुम माता की मृत्यु, पुत्र की मृत्यु, पुत्री की मृत्यु, परिवार के अनर्थ, भोग की हानि, और रोग के दुःख का अनुभव करते आ रहे हो ·····जो···अश्रु गिरे हैं वही···अधिक हैं।

सो क्यों ? भिक्षुओ ! इस संसार का प्रारम्भ···।

भिक्षुओ ! अतः, तुम्हें सभी संस्कारों से विरक्त हो जाना चाहिये, राग नहीं करना चाहिये। विमुक्त हो जाना चाहिये।

§ ४. खीर सुत्त (१४. १. ४)

संसार के प्रारम्भ का पता नहीं, दूध की उपमा

भिक्षुओ ! इस संसार का प्रारम्भ···।

भिक्षुओ ! तुम क्या समझते हो, जो चिरकाल से जनमते मरते रह, माता का दूध पीया गया है, वह अधिक है या चारों महासमुद्र का जल ?

भन्ते ! भगवान् के बताये धर्म को जैसा हम जानते हैं, ···जो··· माता का दूध पीया गया है वही चारों महासमुद्र के जल से अधिक है।

सच है भिक्षुओ ! ···[ऊपर के ऐसा]

§ ५. पब्बत्त सुत्त (१४. १. ५)

कल्प की दीर्घता

श्रावस्ती···।

तब कोई भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला—भन्ते एक कल्प कितना बड़ा होता है ?

भिक्षु ! कल्प बहुत बड़ा होता है। उसकी गिनती नहीं की जा सकती है कि इतने वर्ष, या इतने सौ वर्ष या इतने हजार वर्ष, या इतने लाख वर्ष।

भन्ते ! उपमा करके कुछ समझा जा सकता है ?

भगवान् बोले—उपमा करके हाँ, कुछ समझा जा सकता है। भिक्षु ! जैसे, एक योजन लम्बा, एक योजन चौड़ा और एक योजन ऊँचा एक महान् पर्वत हो—बिल्कुल ठोस, जिसमें कोई बिल भी न हो। उसे कोई पुरुष सौ-सौ वर्ष के बाद काशी के रेशम से एक-एक बार पोंछे। भिक्षुओ ! इस प्रकार वह पर्वत शीघ्र ही समाप्त हो जायगा, किन्तु एक कल्प भी नहीं पुरने पायगा।

भिक्षु ! कल्प ऐसा दीर्घ होता है। ऐसे··· लाखों कल्प बीत चुके।

सो क्यों ? क्योंकि संसार का प्रारम्भ··· ।

§ ६. सासप सुत्त (१५. १. ६)

कल्प की दीर्घता

श्रावस्ती···।

···एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला—भन्ते ! कल्प कितना बड़ा होता है ?

···भगवान् बोले—हाँ, उपमा की जा सकती है। भिक्षु ! जैसे, लोहे से घिरा एक नगर हो—योजन भर लम्बा, योजन भर चौड़ा, योजन भर ऊँचा—जो थोप-थोप कर सरसों से भर दिया गया हो। कोई पुरुष उससे एक-एक सौ वर्ष के बाद एक-एक सरसों निकाल ले। भिक्षु ! तो, इस प्रकार वह सरसों की ढेर शीघ्र ही समाप्त हो जायगी किन्तु एक कल्प नहीं पुरने पायगा।

···[ऊपर के ऐसा]।

§ ६. सावक सुत्त (१५. १. ७)

बीते हुए कल्प अगण्य हैं

श्रावस्ती···।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ वह भिक्षु भगवान् से बोले—भन्ते ! अभी तक कितने कल्प बीत चुके हैं ?

···भन्ते ! क्या उपमा करके कुछ समझा जा सकता है ?

भगवान् बोले—हाँ, उपमा की जा सकती है। भिक्षुओ ! सौ वर्षों की आयुवाले चार श्रावक हों। वे प्रतिदिन एक-एक लाख कल्पों का स्मरण करें। भिक्षुओ ! वे केवल कल्पों का स्मरण ही करते जायँ। तब, सौ वर्ष की आयु समाप्त होने पर वे चारों मर जायँ।

इस प्रकार, अधिक कल्प बीत गये हैं। उनकी गिनती नहीं की जा सकती है।···

··[ऊपर के ऐसा]

§ ८. गङ्गा सुत्त (१५. १. ८)

बीते हुए कल्प अगण्य हैं

राजगृह ··वेलुवन···में।

···एक ओर बैठ, वह ब्राह्मण भगवान् से बोला, हे गौतम ! अभी तक कितने कल्प बीत चुके हैं ?

···भगवान् बोले—हाँ ब्राह्मण ! उपमा की जा सकती है। ब्राह्मण ! जैसे, जहाँ से गङ्गा नदी निकलती है और जहाँ समुद्र में गिरती है उसके बीच में कितने बालुकण हैं ··उनकी गिनती नहीं की जा सकती है।

ब्राह्मण ! इतने अधिक कल्प बीत चुके हैं। ···उनकी गिनती नहीं की जा सकती है।

सो क्यों ? ब्राह्मण ! क्योंकि इस संसार का प्रारम्भ निश्चित नहीं किया जा सकता है। अविद्या में पड़े, तृष्णा के बन्धन में बँधे, जीते मरते सत्वों की पूर्वकोटि जानी नहीं जाती।

ब्राह्मण ! इतने चिरकाल से दुःख, पीड़ा और विपत्ति का अनुभव हो रहा है, श्मशान भरता जा रहा है। ब्राह्मण ! अतः, सभी संस्कारों से विरक्त रहना चाहिये, विमुक्त हो जाना चाहिये।

ऐसा कहने पर वह ब्राह्मण भगवान् से बोला:—हे गौतम ! आप धन्य हैं ! आज से जन्म भर के लिये मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।

९. दण्ड सुत्त (१४. १. ९)

संसार के प्रारम्भ का पता नहीं

श्रावस्ती ⋯।

भिक्षुओ ! इस संसार का प्रारम्भ निश्चित नहीं ⋯।⋯।

भिक्षुओ ! जैसे, ऊपर फेंकी गई लाठी अपने ही कभी तो मूल से, कभी मध्य से, और कभी अग्र-भाग से गिर पड़ती है। वैसे ही, अविद्या में पड़े, तृष्णा के बन्धन में बँधे, जीते मरते सत्व कभी तो इस लोक से उस लोक में पड़ते हैं और कभी उस लोक से इस लोक में।

सो क्यों ? ⋯भिक्षुओ ! अतः, सभी संस्कारों से विरक्त रहना चाहिये, विमुक्त हो जाना चाहिये।

§ १०. पुग्गल सुत्त (१४. १. १०)

संसार के प्रारम्भ का पता नहीं

⋯राजगृह में गृद्धकूट पर्वत पर⋯।

⋯भिक्षुओ ! इस संसार का प्रारम्भ निश्चित नहीं । भिक्षुओ ! कल्प भर भिन्न-भिन्न योनि में पैदा होनेवाले एक ही पुरुष की हड्डियाँ कहीं एक जगह इकट्ठी की जायँ—और वह नष्ट नहीं हों—तो उनकी ढेर वेपुल्ल पर्वत के समान हो जाय।

सो क्यों ? ⋯भिक्षुओ ! अतः, सभी संस्कारों से विरक्त रहना चाहिये, विमुक्त हो जाना चाहिये।

भगवान् यह बोले। इतना कहकर बुद्ध फिर भी बोले—

> एक पुरुष तो पहाड़-सा एक ढेर लग जाय,
> महर्षि ने ऐसा कहा—की कल्प भर की हड्डियाँ यदि जमा की जायँ।
> जैसा वह महान् वेपुल्ल पर्वत है,
> गृद्धकूट के उत्तर, मगधों का गिरिव्रज ॥
> जो आर्यसत्यों को सम्यक् प्रज्ञा से देख लेता है,
> दुःख, दुःखसमुदय, दुःख का अन्त कर देना,
> आर्य अष्टांगिक मार्ग, जिससे दुःख से मुक्ति होती है,
> अधिक से अधिक सात बार जन्म लेकर
> दुःखों का अन्त कर देता है,
> सभी बन्धनों को क्षीण कर ॥

प्रथम वर्ग समाप्त।

द्वितीय वर्ग

§ १. दुग्गत सुत्त (१४. २. १)

दुःखी के प्रति सहानुभूति करना

श्रावस्ती…।

…भिक्षुओ ! इस संसार का प्रारम्भ… ।

भिक्षुओ ! यदि किसी को अत्यन्त दुर्गति में पड़े देखो तो सोचो—इस दीर्घकाल में हमने भी कभी न कभी इस अवस्था को भी प्राप्त कर लिया होगा ।

सो क्यों ? …विमुक्त हो जाना चाहिये ।

§ २. सुखित सुत्त (१४. २. २)

सुखी के प्रति सहानुभूति करना

श्रावस्ती…।

…भिक्षुओ ! इस संसार का प्रारम्भ… ।

भिक्षुओ ! यदि किसी को खूब सुख करते देखो तो सोचो—इस दीर्घकाल में हमने भी कभी न कभी इस सुख को भोगा होगा ।

सो क्यों ? …विमुक्त हो जाना चाहिये ।

§ ३. तिंसति सुत्त (१४. २. ३)

आदि का पता नहीं, समुद्रों के जल से खून ही अधिक

राजगृह… वेलुवन में…।

तब, पावा के रहने वाले तीस भिक्षु-सभी आरण्यक, सभी पिण्डपातिक, सभी पांसुकूलिक, सभी तीन ही चीवर…धारण करने वाले, सभी संयोजन (=बन्धन) में पड़े हुए ही—जहाँ भगवान थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

तब, भगवान् के मन में यह हुआ—ये…भिक्षु…सभी संयोजन में पड़े हुये ही हैं। तो, मैं इन्हें ऐसा धर्मोपदेश दूँ कि इसी आसन पर बैठे-बैठे इनका चित्त आश्रवों से विमुक्त और उपादान-रहित हो जाय ।

तब, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—हे भिक्षुओ !

"भदन्त !" कह कर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले :—भिक्षुओ ! संसार का प्रारम्भ निश्चित नहीं किया जा सकता है। अविद्या में पड़े, तृष्णा के बन्धन में बँधे, जीते मरते सत्त्वों की पूर्वकोटि जानी नहीं जाती ।

भिक्षुओ ! क्या समझते हो, जो चिरकाल से जीते मरते लोगों के सिर कटने से खून बहा है वह अधिक है या चारों महासमुद्र का जल ?

भन्ते ! भगवान् के बताये धर्म को जैसा हम जानते हैं, उससे तो यही मालूम होता है कि··· खून ही अधिक बहा है।

सच है, भिक्षुओ, सच है ! तुम मेरे उपदेश किये गये धर्म को ठीक से जानते हो।······

भिक्षुओ ! चिरकाल से गौवों के सिर कटने से जो खून बहा है वह चारों समुद्र के जल··· अधिक है।

···भैंस···; भेंड़ा···; बकरी···; मृग···; कुक्कुर···; सूअर···। लुटेरों ने जो लोगों के सिर काट कर खून बहाया है···; छिनालों ने···।

सो क्यों ?···विमुक्त हो जाना चाहिये।

भगवान् यह बोले। भिक्षुओं ने संतुष्ट मन से भगवान् के कहे का अभिनन्दन किया।

इस उपदेश के दिये जाने पर उन पावा के तीस भिक्षुओं का चित्त विमुक्त हो गया, उपादान रहित हो गया।

§ ४. माता सुत्त (१४. २. ४)

माता न हुए सत्व असम्भव

श्रावस्ती···।

···भिक्षुओ ! इस संसार का प्रारम्भ···।

भिक्षुओ ! ऐसा कोई सत्व मिलना मुश्किल है जो चिरकाल में कभी न कभी माता न रह चुका हो।

सो क्यों ?···विमुक्त हो जाना चाहिये।

§ ५–९. पिता सुत्त (१४. २. ५–९)

पिता न हुए सत्व असम्भव

···जो चिरकाल में कभी न कभी पिता, भाई, बहन, बेटा, बेटी···।

§ १०. वेपुल्लपब्बत सुत्त (१४. २. १०)

वेपुल्ल पर्वत की प्राचीनता, सभी संस्कार अनित्य हैं

··· राजगृह में गृद्धकूट पर्वत पर···।

···भगवान् बोले—भिक्षुओ ! इस संसार का प्रारम्भ···। भिक्षुओ ! बहुत ही पूर्वकाल में इस वेपुल्ल पर्वत का नाम पाचीनवंश पड़ा था। उस समय मनुष्य तिवर कहे जाते थे। इन तिवर मनुष्यों का आयुप्रमाण चालीस हजार वर्षों तक का था। भिक्षुओ ! वे तिवर मनुष्य पाचीनवंश पर्वत पर चार दिनों में चढ़ते थे, और चार दिनों में नीचे उतरते थे।

भिक्षुओ ! उस समय अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् ककुसन्ध लोक में उत्पन्न हुये थे। उनके विधुर और संजीव नाम के दो अग्रश्रावक थे।

भिक्षुओ ! देखो, इस पर्वत का वह नाम लुप्त हो गया। वे मनुष्य सभी के सभी खतम हो गये। वे भगवान् भी परिनिर्वाण को प्राप्त हुये।

भिक्षुओ ! संस्कार इतने अनित्य हैं, अध्रुव हैं, चलायमान हैं। भिक्षुओ ! अतः, सभी संस्कारों से विरक्त रहना चाहिये, विमुक्त हो जाना चाहिये।

× × ×

भिक्षुओ ! बहुत ही पूर्वकाल में इस वेपुल्ल पर्वत का नाम वंकक पड़ा था। उस समय मनुष्य **रोहितस्स** कहे जाते थे।...आयुप्रमाण तीस हजार वर्षों का था। वे रोहितस्स मनुष्य वंकक पर्वत पर तीन दिनों में चढ़ते थे और तीन दिनों में उतरते थे।

...भगवान् **कोणागमन**...।...भिय्यो और सुत्तर नाम के दो अग्रश्रावक...।

...विमुक्त हो जाना चाहिये।

× × ×

...पर्वत का **सुपस्स** नाम पड़ा था।...मनुष्य **सुप्पिय** कहे जाते थे।...बीस हजार वर्षों का आयुप्रमाण...।...दो दिन में चढ़ते...थे।

...भगवान् **काश्यप**।...**तिस्स** और **भारद्वाज** नाम के दो अग्रश्रावक थे।

...विमुक्त हो जाना चाहिये।

× × ×

भिक्षुओ ! इस समय इस पर्वत का नाम **वेपुल्ल** पड़ा है। ये मनुष्य **मागध** कहे जाते हैं। भिक्षुओ ! मागध मनुष्यों का आयुप्रमाण बहुत घटकर कम हो गया है। जो बहुत जीता है वह सौ वर्ष, उसके कुछ कम या अधिक भी जीता है। मागध मनुष्य वेपुल्ल पर्वत पर अल्प काल ही में चढ़ जाते हैं और उतर भी आते हैं।

भिक्षुओ ! इस समय, अर्हत सम्यक् सम्बुद्ध मैं ही लोक में उत्पन्न हुआ हूँ। मेरे **सारिपुत्र** और **मौद्गल्यायन** दो अग्रश्रावक हैं।

भिक्षुओ ! एक समय आयेगा कि इस पर्वत का यह नाम लुप्त हो जायगा। ये मनुष्य भी मर जायँगे। मैं भी परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाऊँगा।

भिक्षुओ ! संस्कार इतने अनित्य हैं, अध्रुव हैं, चलायमान हैं। भिक्षुओ ! अतः सभी संस्कारों से विरक्त रहना चाहिये, विमुक्त हो जाना चाहिये।

भगवान् यह बोले। यह कहकर बुद्ध फिर भी बोले—

पाचीनवंश तिवरोंका, रोहितोंका वंकक,
सुप्पियों का सुपस्स, और मागधों का वेपुल्ल ॥
सभी संस्कार अनित्य हैं, उत्पन्न और व्यय होनेवाले,
उत्पन्न होकर निरुद्ध हो जाते हैं, उनका शान्त हो जाना ही सुख है ॥

द्वितीय वर्ग समाप्त

अनमतग्ग-संयुत्त समाप्त।

चौथा परिच्छेद

१५. काश्यप-संयुत्त

§ १. सन्तुट्ठ सुत्त (१५. १)

प्राप्त चीवर आदि से सन्तुष्ट रहना

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! काश्यप जैसे तैसे चीवर से संतुष्ट रहता है। जैसे तैसे चीवर से संतुष्ट रहने की प्रशंसा करता है। चीवर के लिये अनुचित अन्वेषण में नहीं लगता है। चीवर नहीं प्राप्त होने से खिन्न नहीं होता है; और मिलने से बिना बहुत ललचाये=विभोर हुये=लोभ किये, उसके आदिनव (= दोष) को देखते हुये, मुक्ति की प्रज्ञा के साथ उस चीवर का भोग करता है।

भिक्षुओ ! काश्यप जैसे तैसे पिण्डपात···; शयनासन···; ग्लान-प्रत्यय भैषज्य-परिष्कार से···।

भिक्षुओ ! इसलिये तुम्हें भी ऐसा ही सीखना चाहिये:—जैसे तैसे चीवर से संतुष्ट रहूँगा।··· संतुष्ट रहने की प्रशंसा करूँगा। चीवर के लिये अनुचित अन्वेषण में नहीं लगूँगा।···। मुक्ति की प्रज्ञा के साथ उस चीवर का भोग करूँगा। ···पिण्डपात···। ···शयनासन···। ···ग्लान प्रत्यय ···। भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिये।

भिक्षुओ ! काश्यप, अथवा उसी के समान किसी दूसरे को दिखाकर तुम्हें उपदेश करूँगा। उपदेश पाकर तुम्हें ठीक वैसा ही बर्तना चाहिये।

§ २. अनोत्तापी सुत्त (१५. २)

आतापी और ओत्तापी को ही ज्ञान-प्राप्ति

ऐसा मैंने सुना।

एक समय आयुष्मान् महाकाश्यप और आयुष्मान् सारिपुत्र वाराणसी के पास ऋषिपतन मृगदाव में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् सारिपुत्र साँझ को ध्यान से उठ जहाँ आयुष्मान् महाकाश्यप थे वहाँ गये, और कुशल-क्षेम के प्रश्न पूछकर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् महाकाश्यप से बोले:—आवुस काश्यप ! यह कहा जाता है कि अनातापी (= जो अपने क्लेशों को नहीं तपाता है) और अनोत्तापी (= जो क्लेशों के उठने पर सावधान नहीं रहता है) परम-ज्ञान, निर्वाण, अनुत्तर योगक्षेम को नहीं पा सकता है। आतापी और ओत्तापी ही परम-ज्ञान···को पा सकता है।

आवुस ! यह कैसे ··· ?

क

आवुस ! भिक्षु, अनुत्पन्न पाप अकुशल धर्म उत्पन्न होकर अनर्थ करेंगे, इसके लिये आताप नहीं करता है। उत्पन्न पाप अकुशल धर्म प्रहीण नहीं होने से अनर्थ करेंगे, इसके लिये आताप नहीं

करता है। मेरे अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न नहीं होने से अनर्थ करेंगे, इसके लिये आताप नहीं करता है। मेरे उत्पन्न कुशल धर्म नष्ट होते हुये अनर्थ करेंगे, इसके लिये आताप नहीं करता है।

आवुस ! इस प्रकार वह अनातापी होता है।

ख

आवुस ! कैसे कोई अनोत्तापी होता है ?

आवुस ! भिक्षु, अनुत्पन्न पाप अकुशल धर्म उत्पन्न होकर अनर्थ करेंगे, इसके लिये उत्ताप नहीं करता है।···[ऊपर के ऐसा]

आवुस ! इस तरह, अनातापी और अनोत्तापी परम-ज्ञान, निर्वाण, अनुत्तर योगक्षेम को नहीं पा सकता है।

ग—घ

···[उलटा करके]

आवुस ! इस तरह, आतापी और ओत्तापी ही परम-ज्ञान···को पा सकता है।

§ ३. चन्दोपम सुत्त (१५. ३)

चाँद की तरह कुलों में जाना

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! चाँद की तरह कुलों में जाओ। अपने शरीर और चित्त को समेटे, सदा नये अनजान के ऐसा, अप्रगल्भ हुये।

भिक्षुओ ! जैसे कोई पुरुष पुराने कुयें, बीहड़ पर्वत, ख़तरनाक नदी को देखकर अपने शरीर और मन को समेटे रहता है ; वैसे ही भिक्षुओ ! चाँद की तरह कुलों में जाओ ; अपने शरीर और चित्त को समेटे, सदा नये अनजान के ऐसा, अप्रगल्भ हुए।

भिक्षुओ ! काश्यप कुलों में चाँद की तरह जाता है···।

× × ×

भिक्षुओ ! तुम क्या समझते हो, कैसा भिक्षु कुलों में जाने के लायक है ?

भन्ते ! धर्म के आधार भगवान् ही हैं, धर्म के नायक और आश्रय भगवान् ही हैं। अच्छा हो कि भगवान् ही इस कहे गये का अर्थ बताते। भगवान् से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे।

तब, भगवान् ने आकाश में हाथ फेरा। भिक्षुओ ! जैसे, यह हाथ आकाश में नहीं लगता है, नहीं फँसता है = नहीं बझता है, वैसे ही जिस भिक्षु का चित्त कुलों में जाकर भी नहीं लगता = नहीं फँसता = नहीं बझता है। जो लाभकामी हैं वे लाभ करें ; जो पुण्यकामी हैं वे पुण्य करें। जैसे अपने लाभ से सन्तुष्ट और प्रसन्न होता है, वैसे ही दूसरों के भी लाभ से। भिक्षुओ ! ऐसा ही भिक्षु कुलों में जाने के लायक है।

भिक्षुओ ! काश्यप का चित्त कुलों में जाने पर नहीं लगता है=नहीं फँसता है=नहीं बझता है···।

\+ + + +

भिक्षुओ ! तुम क्या समझते हो, किस भिक्षु की धर्मदेशना अपरिशुद्ध होती है, और किस भिक्षु की परिशुद्ध ?

···भगवान् से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे।

···भगवान् बोले:—भिक्षुओ ! जो भिक्षु मन में ऐसा करके धर्मदेशना करता है—अहो ! लोग मेरी धर्मदेशना को सुनें, सुनकर प्रसन्न हों, और प्रसन्न होकर मेरे सामने अपनी प्रसन्नता दिखावें—उसकी धर्मदेशना अपरिशुद्ध होती है।

भिक्षुओ ! जो भिक्षु मन में ऐसा करके धर्मदेशना करता है—भगवान् का धर्म स्वाख्यात है, सांदृष्टिक है, अकालिक है, प्रगट है, निर्वाण को ले जानेवाला है, विज्ञों के द्वारा अपने भीतर ही भीतर जानने के योग्य है। अहो ! लोग मेरी धर्मदेशना को सुनें, सुनकर धर्म को जानें, जानकर उसका अभ्यास करें। ऐसे वह उचित रीति से दूसरों को धर्म कहता है। करुणा से, दया से, अनुकम्पा से दूसरों को धर्म कहता है। भिक्षुओ ! इस प्रकार के भिक्षु की धर्मदेशना परिशुद्ध होती है।

भिक्षुओ ! काश्यप ऐसे ही चित्त से धर्मदेशना करता है···।

भिक्षुओ ! ···वैसा ही तुम्हें भी बर्तना चाहिये।

§ ४. कुलूपग सुत्त (१५. ४)

कुलों में जाने योग्य भिक्षु

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, कैसा भिक्षु कुलों में जाने के योग्य है, और कैसा भिक्षु नहीं ?

···भिक्षुओ ! जो भिक्षु इस चित्त से कुलों में जाता है—मुझे दे ही, ऐसा नहीं कि न दे; बहुत दे, थोड़ा नहीं; बढ़िया ही दे, घटिया नहीं; शीघ्र ही दे, देर न लगावे; सत्कारपूर्वक ही दे, बिना सत्कार के नहीं।

भिक्षुओ ! ··· यदि उसे नहीं देते हैं, थोड़ा देते हैं···तो उसे बड़ा दुःख होता है, बेचैनी होती है।

भिक्षुओ ! वह भिक्षु कुलों में जाने के योग्य नहीं है।

······भिक्षुओ ! ···यदि उसे नहीं देते हैं, थोड़ा देते हैं···, तो उसे दुःख नहीं होता है।

भिक्षुओ ! वह भिक्षु कुलों में जाने के योग्य है।

भिक्षुओ ! काश्यप कुलों में इसी चित्त से जाता है···, उसे दुःख नहीं होता है।

भिक्षुओ ! वैसा ही तुम्हें भी बर्तना चाहिये।

§ ५. जिण्ण सुत्त (१५. ५)

आरण्यक होने के लाभ

···राजगृह वेलुवन में···।

···एक ओर बैठे आयुष्मान् महाकाश्यप से भगवान् बोले:—काश्यप ! तुम बहुत बूढ़े हो गये हो, यह रूखा पांसुकूल तुम्हें पहनना न आता होगा। इसलिये, तुम गृहस्थों के दिये गये चीवर को पहनो, निमन्त्रण के भोजन का भोग करो, और मेरे पास रहो।

भन्ते ! मैं बहुतकाल से आरण्यक हूँ और आरण्यक होने की प्रशंसा करता हूँ। पिण्डपातिक···। पांसुकूलिक···; तीन चीवरों को धारण करनेवाला···। अल्पेच्छ···। संतुष्ट···। एकान्तवासी···। असंसृष्ट···, उत्साहशील···।

काश्यप ! किस उद्देश्य से तुम बहुत काल से आरण्यक हो, और आरण्यक रहने की प्रशंसा करते हो···?

भन्ते ! दो उद्देश्य से···। एक तो स्वयं इस जन्म में सुखपूर्वक विहार करने के लिये; और दूसरे

भविष्य में होनेवाली जनता के प्रति अनुकम्पा करके, कि कहीं वे भ्रम में न पड़ जायें।—जो बुद्ध के श्रावक थे वे बहुत काल से आरण्यक थे···। पिण्डपातिक थे···उत्साहशील थे··—ऐसा जान वे भी उचित मार्ग पर आवेंगे जिससे उनका चिरकाल तक हित और सुख होगा।

भन्ते! इन्हीं दो उद्देश्यों से···!

ठीक है, काश्यप ठीक है! तुम बहुतों के हित के लिये, बहुतों के सुख के लिये, लोक पर अनुकम्पा करने के लिये, देव और मनुष्यों के परमार्थ के लिये, हित के लिये, और सुख के लिये ऐसा कर रहे हो।

काश्यप! सो, तुम रूखे पांसुकूल चीवर धारण करो, पिण्डपात के लिये चरो, आरण्य में रहो।

§ ६. पठम ओवाद सुत्त (१५. ६)

धर्मोपदेश सुनने के लिए अयोग्य भिक्षु

···राजगृह वेलुवन में···।

···एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् महाकाश्यप को भगवान् बोले:—काश्यप! भिक्षुओं को उपदेश दो। काश्यप! भिक्षुओं को धर्मोपदेश करो। चाहे हम या तुम भिक्षुओं को उपदेश दें, धर्मोपदेश करें।

भन्ते! इस समय भिक्षु उपदेश ग्रहण करने के योग्य नहीं हैं, इस समय उन्हें उपदेश देना ठीक नहीं। उपदेश को वे स्वीकार और सत्कार नहीं करेंगे। भन्ते! इस समय मैंने आनन्द के अनुचर भिक्षु भण्ड और अनुरुद्ध के अनुचर भिक्षु अभिञ्जक को आपस में कहते सुना है—भिक्षु! देखें, कौन बहुत बोलता है, कौन बढ़िया बोलता है, कौन अधिक देर तक बोलता है?

तब, भगवान् ने किसी भिक्षु को आमन्त्रित किया—हे भिक्षु! सुनो, मेरी ओर से जाकर··· भिक्षु भण्ड, और···अभिञ्जक को कहो कि "बुद्ध आयुष्मानों को बुला रहे हैं"।

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह, वह भिक्षु भगवान् को उत्तर दे जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ गया, और बोला—बुद्ध आयुष्मानों को बुला रहे हैं।

"आवुस! बहुत अच्छा" कह, वे उस भिक्षु को उत्तर दे जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे हुये उन भिक्षुओं से भगवान् बोले:—भिक्षुओ! क्या यह सच है कि तुम आपस में ऐसी बातें कर रहे थे कि, 'देखें! कौन बहुत बोलता है, कौन बढ़िया बोलता है, कौन अधिक देर तक बोलता है।'

हाँ भन्ते!

भिक्षुओ! क्या मैंने तुम्हें ऐसा धर्म सिखाया है, कि तुम भिक्षुओ! आपस में ऐसी बातें करो··· कौन अधिक देर तक बोलता है?

नहीं भन्ते!

भिक्षुओ! जब तुम जानते हो कि मैंने ऐसा धर्म नहीं बताया है, तो तुम निकम्मे आदमी क्या जानबूझ इस स्वाख्यात धर्मविनय में प्रव्रजित होकर ऐसी बातें करते हो '··कौन अधिक देर तक बोलता है'?

तब, वे भिक्षु भगवान् के चरणों पर सिर टेककर बोले—बाल, मूढ़, पापी के जैसा हमलोगों ने यह अपराध किया है, कि इस स्वाख्यात धर्मविनय में प्रव्रजित होकर ऐसी बातें कर रहे थे···। भन्ते! भविष्य में ऐसा अपराध न होगा, कृपया भगवान् क्षमा-प्रदान करें।

···भिक्षुओ! जब तुम अपना दोष समझकर स्वीकार करते हो, तो मैं क्षमा कर देता हूँ

भिक्षुओं ! इस आर्य-विनय में यह वृद्धि ही है जो अपने दोष को जानकर स्वीकार कर लेता है, और भविष्य में फिर ऐसा न करने की शिक्षा लेता है।

§ ७. दुतिय ओवाद सुत्त (१५. ७)

धर्मोपदेश सुनने के लिए अयोग्य भिक्षु

···राजगृह वेलुवन में···।

···एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् महाकाश्यप से भगवान् बोले—काश्यप ! भिक्षुओं को उपदेश दो···।

भन्ते ! इस समय भिक्षु उपदेश ग्रहण करने के योग्य नहीं···। भन्ते ! जिस किसी को कुशल धर्मों में श्रद्धा नहीं है। ह्री···; अपत्रपा···; वीर्य···; प्रज्ञा···नहीं है। रात दिन कुशल धर्मों में उनकी अवनति ही होती जाती है, उन्नति नहीं।

भन्ते ! पुरुष अश्रद्धालु होवे, यह परिहानि है, अह्रीक···; अपत्रपा-रहित···; काहिल; दुष्प्रज्ञ; क्रोधी···; वैरी···यह परिहानि ही है। भन्ते ! उपदेश देनेवाले भिक्षु भी नहीं हो यह परिहानि है।

भन्ते ! जिन पुरुष को श्रद्धा, ह्री, अपत्रपा, वीर्य, प्रज्ञा कुशल धर्मों में हैं, उनकी दिन रात कुशल धर्मों में वृद्धि ही होती है, परिहानि नहीं।

भन्ते ! जैसे, शुक्लपक्ष का जो चाँद है वह रात दिन वर्ण, शोभा, आभा और आरोहपरिणाह से बढ़ता ही जाता है। भन्ते ! वैसे ही, जिसे श्रद्धा···है···।

भन्ते ! पुरुष श्रद्धालु होवे यह अपरिहानि है, ह्रीक···; अपत्रपायुक्त···; उत्साहशील···; प्रज्ञावान्···; क्रोध-रहित···; वैर-रहित···यह अपरिहानि है। उपदेश देनेवाले भिक्षु हों यह भी अपरिहानि है।

ठीक है, काश्यप, ठीक है !······

काश्यप ! जैसे, कृष्ण-पक्ष का चाँद रात-दिन वर्ण···से हीन होता जाता है, वैसे ही जिसे कुशल धर्मों में श्रद्धा नहीं है, ह्री नहीं है,···प्रज्ञा नहीं है, उसे दिन-रात कुशल धर्मों में परिहानि ही होती है, वृद्धि नहीं।

···[काश्यप के कहे गये की पुनरावृत्ति]

§ ८. ततिय ओवाद सुत्त (१५. ८)

धर्मोपदेश सुनने के लिए अयोग्य भिक्षु

···राजगृह वेलुवन में···।

भन्ते ! इस समय भिक्षु उपदेश ग्रहण करने के योग्य नहीं···।

काश्यप ! तो भी, पूर्वकाल में स्थविर भिक्षु आरण्यक थे, और आरण्यक होने के प्रशंसक।··· पिण्डपातिक···! पांसुकूलिक···। तो, जो ऐसे भिक्षु होते थे उन्हीं को स्थविर धर्मासन पर निमन्त्रित करते थे—भिक्षु जी, आवें, कौन इतना भद्र और शिक्षाकामी होगा ! भिक्षुजी, आवें, इस आसन पर बैठें।

काश्यप ! तो नये भिक्षुओं के मन में यह होता था :—जो भिक्षु आरण्यक हैं···उन्हीं को स्थविर धर्मासन पर निमन्त्रित करते हैं···। इसलिये वे भी वैसा ही आचरण करते थे, जो चिरकाल तक उनके हित और सुख के लिये होता था।

काश्यप ! इस समय स्थविर भिक्षु आरण्यक नहीं है, और आरण्यक होने के प्रशंसक···। तब,

जो भिक्षु यशस्वी हैं, और चीवर इत्यादि जिन्हें बहुत प्राप्त होते रहते हैं, उन्हीं को स्थविर भिक्षु धर्मासन पर निमन्त्रित करते हैं···। वे वैसा करते हैं, जो चिरकाल तक उनके अहित और दुःख के लिये होता है।

काश्यप ! जिसे उचित कहनेवाले कहते हैं:—वे ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य व्रत के उपद्रव में पड़ गये, गिर गये।···

§ ९. ज्ञानाभिञ्ञा सुत्त (१६. ९)

ध्यान-अभिज्ञा में काश्यप बुद्ध-तुल्य

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! जब मैं चाहता हूँ, कामों से अलग हो, अकुशल धर्मों से अलग हो, सवितर्क सविचार विवेकज प्रीति-सुखवाले प्रथम ध्यान को प्राप्त होकर विहार करता हूँ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी··· प्रथम ध्यान को प्राप्त···।

भिक्षुओ ! जब मैं चाहता हूँ, वितर्क विचार के शान्त हो जाने से आध्यात्मिक संप्रसाद, चित्त की एकाग्रता से युक्त, समाधिज प्रीति सुखवाले द्वितीय ध्यान को प्राप्त होकर विहार करता हूँ— भिक्षुओ ! काश्यप भी···द्वितीय ध्यान को प्राप्त···।

भिक्षुओ ! जब मैं चाहता हूँ तो प्रीति के हट जाने से उपेक्षा के साथ विहार करता हूँ, स्मृतिमान् और संयत हो काया से सुख का अनुभव करते हुये। जिसे आर्यपुरुष कहते हैं कि, उपेक्षा के साथ स्मृतिमान् हो सुख से विहार करता है इस तीसरे ध्यान को प्राप्त कर सुख से विहार करता हूँ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी··· तीसरे ध्यान को प्राप्त···।

भिक्षुओ ! जब मैं चाहता हूँ, सुख और दुःख के प्रहाण से, पूर्व ही सौमनस्य और दौर्मनस्य के अस्त हो जाने से, अदुःख, असुख, उपेक्षा से स्मृति-पारिशुद्धिवाले चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूँ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी···चौथे ध्यान को प्राप्त···।

भिक्षुओ ! जब मैं चाहता हूँ, सर्वथा रूपसंज्ञाओं के समतिक्रमण से, प्रतिघ संज्ञाओं के अस्त हो जाने से, नानात्व संज्ञाओं के अमनसिकार से, आकाश अनन्त है—ऐसा आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त कर विहार करता हूँ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी···।

भिक्षुओ ! जब मैं चाहता हूँ, सर्वथा आकाशानन्त्यायतन का समतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है' ऐसा विज्ञानन्त्यायतन को प्राप्त कर विहार करता हूँ—भिक्षुओ ! काश्यप भी···।

भिक्षुओ ! जब मैं चाहता हूँ, सर्वथा विज्ञानन्त्यायतन का समतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' ऐसा आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त कर विहार करता हूँ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी···।

भिक्षुओ ! जब मैं चाहता हूँ, सर्वथा आकिञ्चन्यायतन का समतिक्रमण कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त कर विहार करता हूँ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी···।

भिक्षुओ ! जब मैं चाहता हूँ, सर्वथा नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का समतिक्रमण कर संज्ञावेदयित निरोध को प्राप्त कर विहार करता हूँ—भिक्षुओ ! काश्यप भी···।

भिक्षुओ ! जब मैं चाहता हूँ, अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करता हूँ—एक होकर बहुत हो जाता हूँ···[देखो पृष्ठ २४१]।—भिक्षुओ ! काश्यप भी···।

भिक्षुओ ! मैं आश्रवों के क्षीण हो जाने से, आश्रव-रहित चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात्कार कर और प्राप्त कर विहार करता हूँ।—भिक्षुओ ! काश्यप भी आश्रवों के क्षीण हो जाने से, आश्रव-रहित चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात्कार कर और प्राप्त कर विहार करता है।

§ १०. उपस्सय सुत्त (१५. १०)

थुल्लतिस्सा भिक्षुणी का संघ से बहिष्कार

ऐसा मैंने सुना।

एक समय आयुष्मान् काश्यप श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

क

तब, आयुष्मान् आनन्द पूर्वाह्न समय पहन और पात्रचीवर ले जहाँ आयुष्मान् महाकाश्यप थे वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् महाकाश्यप से बोले:—भन्ते काश्यप! जहाँ भिक्षुणियों का स्थान है वहाँ चलें।

आवुस आनन्द! आप जायें, आपको बहुत काम-धाम रहता है।

दूसरी बार भी···।

तीसरी बार···। तब, आयुष्मान् महाकाश्यप पहन और पात्रचीवर ले आयुष्मान् आनन्द को पीछे लिये जहाँ भिक्षुणियों का स्थान था वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठ गये।

ख

तब, कुछ भिक्षुणियाँ जहाँ आयुष्मान् महाकाश्यप थे वहाँ गईं, जाकर आयुष्मान् महाकाश्यप का अभिवादन कर एक ओर बैठ गईं। एक ओर बैठी हुई उन भिक्षुणियों को आयुष्मान् महाकाश्यप ने धर्मोपदेशकर दिखा दिया, बता दिया, और उनके धार्मिक भावों को उद्बुद्ध कर दिया। धर्मोपदेश कर आयुष्मान् महाकाश्यप आसन से उठकर चले गये।

तब, थुल्लतिस्सा भिक्षुणी असंतुष्ट होकर असंतोष के शब्द कहने लगी:—क्या आर्य महाकाश्यप को आर्य वैदेहमुनि आनन्द के सामने धर्मोपदेश करना अच्छा था? जैसे, कोई सूई बेचनेवाला किसी सूई बनानेवाले के पास सूई बेचने को आवे; वैसे ही आर्य महाकाश्यप ने आर्य आनन्द के सामने धर्मोपदेश करने का साहस किया है।

आयुष्मान् महाकाश्यप ने थुल्लतिस्सा भिक्षुणी को ऐसा कहते सुना।

ग

तब, आयुष्मान् महाकाश्यप आयुष्मान् आनन्द से बोले:—आवुस आनन्द! क्या मैं सूई बेचनेवाला हूँ और आप सूई बनानेवाले, या मैं सूई बनानेवाला हूँ और आप सूई बेचनेवाले?

भन्ते काश्यप! यह मूर्ख स्त्री है, इसे क्षमा कर दें।

आनन्द! ठहरें, संघ आपके विषय में और चर्चा न करे।

आवुस आनन्द! आप क्या समझते हैं?

क्या भगवान् ने आपके विषय में भिक्षुसंघ के सामने उपस्थित किया था कि:—भिक्षुओ! जब मैं चाहता हूँ,··· प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूँ—और आनन्द भी···प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है?

नहीं भन्ते!

आवुस! मेरे विषय में भगवान् ने भिक्षुसंघ के सामने ऐसा उपस्थित किया था···।

[नवों ध्यानावस्थाओं के विषय में ऐसा समझ लेना चाहिये]

आवुस ! यह समझा जा सकता है कि सात हाथ का ऊँचा हाथी डेढ़ हाथ के तालपत्र में छिप जाय; किन्तु यह सम्भव नहीं कि मेरी छ अभिज्ञायें छिप जायें।

घ

थुल्लतिस्सा भिक्षुणी धर्म से च्युत हो गई।

§ ११. चीवर सुत्त (१५. ११)

आनन्द 'कुमार' जैसे, थुल्लनन्दा का संघ से बहिष्कार

एक समय आयुष्मान् महाकाश्यप राजगृह में वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे।

क

उस समय आयुष्मान् आनन्द दक्षिणागिरि में भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ चारिका कर रहे थे।

उस समय आयुष्मान् आनन्द के तीस अनुचर भिक्षु जो विशेष कर कुमार थे, शिक्षा को छोड़ कर गृहस्थ हो गये थे।

ख

तब, आयुष्मान् आनन्द दक्षिणागिरि में यथेच्छ चारिका कर, राजगृह के वेलुवन में जहाँ आयुष्मान् महाकाश्यप थे वहाँ पधारे, और आयुष्मान् महाकाश्यप का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द को आयुष्मान् महाकाश्यप बोले:—आवुस आनन्द ! किस उद्देश्य से भगवान् ने कुलों में 'त्रिकभोजन' की प्रज्ञप्ति की है ?

भन्ते काश्यप ! तीन उद्देश्य से'''। बुरे लोगों के निग्रह के लिये, शीलवन्त भिक्षुओं के आराम के लिये, कि पापेच्छ लोग पक्ष लेकर कहीं संघ में फूट पैदा न कर दें, और कुलों की भलाई के लिये।'''

आवुस आनन्द ! तो, आप क्यों इन नये भिक्षुओं के साथ चारिका करते हैं, जो असंयमी, पेटू, और सुतक्कड़ हैं ? मालूम होता है कि आप शस्य और कुलों को नष्ट करते हुये विचरते हैं। आवुस आनन्द ! आप की यह नई मण्डली घट रही है, कमती आ रही है। यह नया कुमार मात्रा को नहीं जानता है।

भन्ते काश्यप ! मेरे बाल भी पक चले, किंतु आज तक आयुष्मान् महाकाश्यप के 'कुमार' कहकर पुकारे जाने से नहीं छूटे हैं।

आवुस आनन्द ! इसी से तो मैं कहता हूँ'''यह नया कुमार मात्रा को नहीं जानता है।

ग

थुल्लनन्दा भिक्षुणी ने सुना कि आर्य महाकाश्यप ने आर्य वेदेहमुनि आनन्द को "कुमार" कहकर धत्ता बताया है।

तब, थुल्लनन्दा भिक्षुणी असंतुष्ट होकर असंतोष के वचन कहने लगी—आयुष्मान् महाकाश्यप, जो पहले अन्य तैर्थिक रह चुके हैं, आर्य आनन्द को 'कुमार' कहकर धत्ता बताने का कैसे साहस करते हैं ?

आयुष्मान् महाकाश्यप ने थुल्लनन्दा भिक्षुणी को ऐसा कहते सुना :

तब, आयुष्मान् महाकाश्यप आयुष्मान् आनन्द से बोले:—आवुस आनन्द ! थुल्लनन्दा भिक्षुणी का सहसा ऐसा कहना उचित नहीं। आवुस ! जब मैं शिर दाढ़ी मुड़वा, काषाय वस्त्र पहन, घर से बेघर हो प्रव्रजित हो गया हूँ, और उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् को छोड़ किसी दूसरे को गुरु नहीं मानता हूँ।

आवुस ! पहले, घरवासी रहते मेरे मन में यह हुआ—घर में रहना बड़ा संकट है, गंदा है; और प्रव्रज्या खुला आकाश-सा है। घर में रहते हुये बिल्कुल शुद्ध, पूर्ण, शङ्खलिखित-सा ब्रह्मचर्य-पालन करना बड़ा कठिन है। तो, क्यों न मैं शिर दाढ़ी मुड़वा, काषायवस्त्र पहन, घर से बेघर होकर प्रव्रजित हो जाऊँ!

आवुस ! तब, मैं गुदड़ी का एक चीवर बना, जो लोक में अर्हत् हैं उनके उद्देश्य से शिर दाढ़ी मुड़वा, काषाय वस्त्र पहन, घर से बेघर होकर प्रव्रजित हो गया।

सो मैंने इस प्रकार प्रव्रजित हो, रास्ते में आते हुये, राजगृह और नालन्दा के बीच बहुपुत्र चैत्य पर भगवान् को बैठे हुये देखा। देखकर मेरे मन में हुआ—यदि मैं किसी गुरु को देखूँ तो भगवान् ही को देखूँ, सुगत और सम्यक् सम्बुद्ध।

आवुस ! सो, मैंने वहीं भगवान् के चरणों पर गिर कर कहा—भगवान् मेरे गुरु हैं; मैं आपका श्रावक हूँ।

आवुस ! ऐसा कहने पर भगवान् मुझसे बोले—काश्यप ! जो इस प्रकार के चित्त से समन्वागत श्रावक को बिना जाने कह दे कि 'जानता हूँ', बिना देखे कह दे कि 'देखता हूँ', उसका शिर टूट-टूट कर गिर जाय। काश्यप ! मैं जानकर कहता हूँ कि 'जानता हूँ', देखकर कहता हूँ कि 'देखता हूँ'।

काश्यप ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—स्थविरों में, नये लोगों में, और मध्यम में ही अपना श्रद्धोपस्थित होगी।······

काश्यप ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—कुशलोपसंहित जो धर्म सुनूँगा, सभी को बूझ-कर, मन में ला, एकाग्रचित्त से सुनूँगा।······

काश्यप ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—अत्यन्त लाभकारी कायगतास्मृति मुझसे कभी भी छूटने न पायगी।······

तब, भगवान् मुझे ऐसा उपदेश दे, आसन से उठकर चले गये।

आवुस ! सात दिनों तक मैं बिना मुक्त हुये ही राष्ट्रपिण्ड का भोग करता रहा। आठवें दिन मुझे दिव्य ज्ञान उत्पन्न हो गया।

\+ \+ \+ \+

आवुस ! तब, भगवान् रास्ते से हट, एक वृक्ष के नीचे गये।

आवुस ! तब, मैंने अपनी गुदड़ी के संघाटी को चौपेत कर बिछा दिया और भगवान् से कहा—भन्ते ! भगवान् इस पर बैठें, जो चिरकाल तक मेरे हित और सुख के लिये हो।

भगवान् बिछे आसन पर बैठ गये।

आवुस ! बैठ कर भगवान् मुझसे बोले: काश्यप ! तुम्हारी यह गुदड़ी की संघाटी तो बहुत मुलायम है।

भन्ते ! मुझपर अनुकम्पा करके भगवान् इस संघाटी को स्वीकार करें।

काश्यप ! तुम मेरे टाट जैसे रूखे पुराने पांसुकूल को धारण करोगे ?

भन्ते ! हाँ, धारण करूँगा।

आवुस ! सो, मैंने भगवान् को अपनी संघाटी दे दी और उनके पांसुकूल को अपने धारण कर लिया।

आवुस ! कोई यह ठीक ही कह सकता है—यह भगवान् का पुत्र, मुख से उत्पन्न, धर्म से उत्पन्न, धर्म से निर्मित, धर्मदायाद है जो उनके रद्द जैसे रूखे पांसुकूल को धारण करता है।

आवुस ! जब मैं चाहता हूँ,...प्रथम ध्यान···को प्राप्त कर विहार करता हूँ।

आवुस ! मैं आश्रवों के क्षीण हो जाने से, आश्रव-रहित चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान, साक्षात्कार कर और प्राप्तकर विहार करता हूँ।

आवुस !···मेरी छः अभिज्ञायें नहीं छिप सकतीं।

घ

थुल्लनन्दा भिक्षुणी धर्म से च्युत हो गई।

§ १२. परम्मरण सुत्त (१५. १२)

अव्याकृत, चार आर्यसत्य

एक समय आयुष्मान् महाकाश्यप और आयुष्मान् सारिपुत्र वाराणसी के पास ऋषिपतन मृगदाय में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् सारिपुत्र सांझ को ध्यान से उठ जहाँ आयुष्मान् महाकाश्यप थे वहाँ गये, और कुशल क्षेम के प्रश्न पूछकर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् महाकाश्यप से बोले—आवुस काश्यप ! क्या जीव मरने के बाद रहता है ?

आवुस ! भगवान् ने ऐसा नहीं बतलाया है कि जीव मरने के बाद रहता है।

आवुस ! तो क्या जीव मरने के बाद नहीं रहता ?

आवुस ! भगवान् ने ऐसा भी नहीं बतलाया है कि जीव मरने के बाद नहीं रहता है।

आवुस ! तो क्या···होता भी है, नहीं भी होता है···; न होता है, न नहीं होता है···।

आवुस ! भगवान् ने इसे क्यों नहीं बताया है ?

आवुस ! क्योंकि, यह न तो परमार्थ के लिये है, न ब्रह्मचर्य का साधक है, न निर्वेद के लिये है, न विराग के लिये है, न निरोध के लिये है, न शान्ति के लिये है, न ज्ञान के लिये है, न सम्बोधि के लिये है, और न निर्वाण के लिये है। इसीलिये भगवान् ने इसे नहीं बताया।

आवुस ! तो, भगवान् ने क्या बताया है ?

आवुस ! यह दुःख है—ऐसा भगवान् ने बताया है। यह दुःख-समुदय···; निरोध···; निरोध-गामिनी प्रतिपदा है—ऐसा भगवान् ने बताया है ?

आवुस ! भगवान् ने इसे क्यों बताया है ?

आवुस ! क्योंकि, यही परमार्थ का साधक है, ब्रह्मचर्य का साधक है, निर्वेद के लिये है···निर्वाण के लिये है। इसी से भगवान् ने इसे बताया है।

§ १३. सद्धम्मपतिरूपक सुत्त (१५. १३)

नकली धर्म से सद्धर्म का लोप

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् महाकाश्यप जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् महाकाश्यप भगवान् से बोले :—भन्ते ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है कि पहले अल्प ही शिक्षापद थे और (उस पर भी) बहुतों ने अर्हत् पद पा लिया था ? भन्ते ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है कि इस समय शिक्षापद बहुत हैं और कम अर्हत्-पद पर प्रतिष्ठित हैं ?

काश्यप ! ऐसा ही होता है—सत्त्वों के हीन होने, और सद्धर्म के क्षय होने पर बहुत शिक्षापद होते हैं, और अल्प भिक्षु अर्हत्-पद पर प्रतिष्ठित होते हैं।

काश्यप ! तब तक सद्धर्म का लोप नहीं होता है जब तक कोई दूसरा नकली धर्म उठ खड़ा नहीं होता। जब कोई नकली धर्म उठ खड़ा होता है तो सद्धर्म का लोप हो जाता है। काश्यप ! जैसे, तब तक सच्चे सोने का लोप नहीं होता जब तक नकली तैयार होने नहीं लगता '' वैसे ही।

काश्यप ! पृथ्वीधातु, सद्धर्म को लुप्त नहीं करता; न आपोधातु, न तेजोधातु, और न वायुधातु। किंतु, यहीं ये मूर्ख लोग उत्पन्न होते हैं जो सद्धर्म को लुप्त कर देते हैं। काश्यप ! जैसे अधिक भार से नाव डूब जाती है वैसे धर्म डूब नहीं जाता।

काश्यप ! ऐसे पाँच कारण हैं जिनसे सद्धर्म नष्ट होकर लुप्त हो जाता है। कौन से पाँच ?

(१) काश्यप ! भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिकायें बुद्ध के प्रति गौरव नहीं करतीं, उनका ख्याल नहीं करती हैं। (२) धर्म के प्रति'''। (३) संघ के प्रति'''। (४) शिक्षा के प्रति'''। (५) समाधि के प्रति'''।

काश्यप ! यही पाँच कारण हैं जिनसे सद्धर्म नष्ट हो कर लुप्त हो जाता है।

काश्यप ! ऐसे पाँच कारण हैं, जिनसे सद्धर्म ठहरा रहता है, क्षीण और लुप्त नहीं होता।

(१) '' बुद्ध के प्रति गौरव'''। (२) धर्म के प्रति'''। (३) संघ के प्रति'''। (४) शिक्षा के प्रति'''। (५) समाधि के प्रति'''।

काश्यप ! यही पाँच कारण हैं, जिनसे सद्धर्म ठहरा रहता है, क्षीण और लुप्त नहीं होता।

काश्यप-संयुत्त समाप्त।

पाँचवाँ परिच्छेद

१६. लाभसत्कार-संयुत्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १. दारुण सुत्त (१६. १. १)

लाभसत्कार दारुण है

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

…भगवान् बोले—भिक्षुओ ! अनुत्तर निर्वाण की प्राप्ति के मार्ग में लाभसत्कार बड़ा दारुण है, कटु है, तीखा है, विघ्नकर है।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये कि—लाभ, सत्कार, प्रशंसा आदि को छोड़ दूँगा, उन्हें मन में ठहरने नहीं दूँगा।

भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिये।

§ २. बालिस सुत्त (१६. १. २)

लाभसत्कार दारुण है, बंसी की उपमा

श्रावस्ती…जेतवन में…।

भिक्षुओ ! अनुत्तर निर्वाण की प्राप्ति के मार्ग में लाभसत्कार बड़ा दारुण है, कटु है, तीखा है, विघ्नकर है।

भिक्षुओ ! जैसे, अंकुसी फेंकनेवाला चारा लगाकर अंकुसी को गहरे पानी में फेंक दे। तब, चारे के लोभ से कोई मछली उसे निगल जाय। भिक्षुओ ! इस तरह, वह मछली अंकुसी को निगल कर बड़े दुःख और विपत्ति में पड़ जाती है, मछुआ जो चाहे उससे करता है।

भिक्षुओ ! यहाँ अंकुसी फेंकनेवाला मछुवा पापी मार को ही समझना चाहिये; और उसकी अंकुसी यही लाभ, सत्कार, प्रशंसा आदि हैं।

भिक्षुओ ! जो भिक्षु लाभादि पाने पर बड़ा खुश होता है और आनन्द उठाता है, वह मार की अंकुसी में फँसा हुआ समझा जाता है। वह दुःख और विपत्ति में पड़ता है। मार उससे जैसा चाहता है करता है।

…इसलिये, भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये…

§ ३. कुम्म सुत्त (१६. १. ३)

लाभादि भयानक हैं, कछुआ और व्याधा की उपमा

श्रावस्ती···।

···भिक्षुओ ! पूर्वकाल में किसी जलाशय में कछुओं का एक परिवार बहुत समय से वास करता था। तब, एक कछुये ने दूसरे कछुये से कहा—प्यारे कछुये ! उस जगह मत जाओ। किन्तु वह कछुआ उस जगह पर चला गया। वहाँ किसी व्याधे ने उसे भाला चलाकर बेध दिया। तब वह कछुआ जहाँ दूसरा कछुआ था वहाँ गया। उस कछुये ने इसे दूर ही से आते देखा। देखकर उसने कहा—प्यारे ! उस स्थान पर गये तो नहीं थे ?

प्यारे ! मैं उस स्थान पर गया था।

प्यारे ! तो तुम भाले से छिद-बिध तो नहीं गये ?

प्यारे ! मैं भाले से छिद-बिध तो नहीं गया हूँ, किन्तु यह धागा मेरे पीछे-पीछे लगा है।

प्यारे कछुये ! तुम छिद गये हो, बिध गये हो। इसी व्याधे से तुम्हारे कितने बाप दादे फँसाकर मार दिये गये हैं। जाओ, तुम अब मेरे काम के नहीं रहे।

भिक्षुओ ! यहाँ व्याधा पापी मार को ही समझना चाहिये।···भाला यही लाभादि है। धागा संसारमें स्वाद लेना और राग करना है।

···[ऊपर के ऐसा]

§ ४. दीघलोमी सुत्त (१६. १. ४)

लम्बे बाल वाले भेंड़े की उपमा

श्रावस्ती···जेतवन में···।

···भिक्षुओ ! जैसे, लम्बे-लम्बे बाल वाला कोई भेंड़ा कँटीली झाड़ी में पैठ जाय। वह इधर-उधर लग जाय, फँस जाय, बझ जाय, बड़ी विपत्ति में पड़ जाय।

भिक्षुओ ! वैसे ही कितने भिक्षु लाभादि में पड़कर क्लिष्ट चित्त से सुबह में पहन और पात्र चीवर ले गाँव या कस्बे में भिक्षाटन के लिये पैठता है। वह इधर-उधर लग जाता है, फँस जाता है, बझ जाता है।

··[पूर्ववत्]

§ ५. एलक सुत्त (१६. १. ५)

लाभसत्कार से आनन्दित होना अहितकर है

···भिक्षुओ ! जैसे मैला खानेवाला कोई पिल्लू मैला से लथपथ सना हो, और उसके सामने मैले की एक ढेर पड़ी हो। इससे वह अपने को दूसरे पिल्लुओं से बड़ा समझे:—मैं मैला खानेवाला पिल्लू मैला से लथपथ सना हूँ, और मेरे सामने मैले की एक ढेर पड़ी है।

भिक्षुओ ! वैसे ही,···भिक्षाटन के लिये पैठता है। वह वहाँ भोजन करके दूसरे दिन के लिये भी निमन्त्रित होता है, और उसका पात्र पूरा होता है।

वह आराम में जाकर भिक्षुओं के सामने गर्व के साथ कहता है—मैंने भोजन कर लिया, दूसरे दिन के लिये भी निमन्त्रित हूँ, और मेरा पात्र भी पूरा है। मैं चीवरादि का लाभ करनेवाला हूँ। ये दूसरे अभागे अल्पपुण्य भिक्षु चीवरादि का लाभ नहीं करते।

वह भिक्षु लाभादिकों पर फूल जाता है और दूसरे शीलवन्त भिक्षुओं को नीचा समझता है। भिक्षुओ ! उस मूर्ख भिक्षु का यह चिरकाल तक अहित और दुःख के लिये होता है।

…। ऐसा सीखना चाहिये।

§ ६. असनि सुत्त (१६. १. ६)

बिजली की उपमा और लाभसत्कार

श्रावस्ती…।

भिक्षुओ ! बिजली के गिरने की उपमा उस शैक्ष भिक्षु से दी जाती है जिसका मन लाभादि में फँसता है।

भिक्षुओ ! लाभादि को ही बिजली का गिरना समझना चाहिये।

…ऐसा सीखना चाहिये।

§ ७. दिद्धु सुत्त (१६. १. ७)

विषैला तीर

श्रावस्ती…।

विषैले तीर से चुभे पुरुष की उपमा उस शैक्ष भिक्षु से दी जाती है जिसका चित्त लाभादि में फँस जाता है।

…ऐसा सीखना चाहिये।

§ ८. सिगाल सुत्त (१६. १. ८)

रोगी शृगाल की उपमा

श्रावस्ती…।

…भिक्षुओ ! रात के भिनसारे में तुमने शृगालों को रव करते सुना है ?

हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! वह शृगाल बूढ़ा, उक्कण्णक नामक रोग से पीड़ित हो न तो एकान्त में चैन पाता है, न वृक्ष के नीचे और न खुली जगह में। जहाँ-जहाँ जाता है, जहाँ-जहाँ खड़ा रहता है, जहाँ-जहाँ बैठता है और जहाँ-जहाँ लेटता है वहाँ-वहाँ बड़ा दुःख भोगता है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, कितने भिक्षु लाभादि में चित्त फँसा कर न तो शून्यागार न वृक्ष के नीचे और न खुली जगह में रमते हैं। जहाँ-जहाँ जाते हैं…दुःख उठाते हैं।

…ऐसा सीखना चाहिये।

§ ९. वेरम्भ सुत्त (१६. १. ९)

इन्द्रियों में संयम रखना, वेरम्भ वायु की उपमा

…भिक्षुओ ! ऊपर आकाश में वेरम्भ नामकी एक हवा चलती है। इसके बीच में जो पक्षी पड़ता है वह फेंका जाता है। उस पक्षी के पैर, पांख, सिर और शरीर सभी अलग-अलग हो जाते हैं।

भिक्षुओ ! वैसे ही…भिक्षाटन के लिये पैठता है। उसके शरीर, वचन और मन अरक्षित रहते हैं। स्मृति और इन्द्रियों का संयम नहीं रहता है।

वह वहाँ किसी स्त्री को देखता है जो अपने अंगों को ठीक से ढँकी न हो। उसे देख उसके चित्त में राग चला आता है। चित्त में राग चले आने से वह शिक्षा को छोड़ गृहस्थ हो जाता है। तब, दूसरे लोग उसके चीवर को, पात्र को, आसन को और सूईदानी को उठा-उठा कर ले जाते हैं। वेरम्भ हवा में पड़े पक्षी की तरह।

"ऐसा सीखना चाहिए।

§ १०. सगाथा सुत्त (१६. १. १०)

लाभसत्कार दारुण है

श्रावस्ती⋯।

भिक्षुओ! अनुत्तर निर्वाण की प्राप्ति के मार्ग में लाभसत्कार बड़ा दारुण है, कटु है, तीखा है, विघ्नकर है।

भिक्षुओ! मैं देखता हूँ कि कितने लोग सत्कार में अपने चित्त को फँसा कर मरने के बाद नरक में उत्पन्न हो दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

भिक्षुओ! मैं देखता हूँ कि कितने लोग असत्कार में चित्त को लगा कर मरने के बाद नरक में उत्पन्न हो दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

भिक्षुओ! मैं देखता हूँ कि कितने लोग असत्कार और सत्कार में चित्त लगाकर...दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

भिक्षुओ! अनुत्तर निर्वाण की प्राप्ति के मार्ग में लाभसत्कार इतना दारुण है, कटु है, तीखा है, विघ्नकर है।

भिक्षुओ! इसलिए, ऐसा सीखना चाहिए कि—लाभ, सत्कार, प्रशंसा को छोड़ दूँगा, उन्हें मन में ठहरने नहीं दूँगा।

भगवान् यह बोले! इतना कहकर बुद्ध फिर भी बोले—

जो सत्कार या असत्कार के मिलने पर,
अप्रमाद से विहार करते हुए समाधि को नहीं डिगाता है।
उस ध्यान में तत्पर, सूक्ष्म दृष्टि रखनेवाले को,
सत्पुरुष 'उपादान-क्षीण होकर रमण करनेवाला' कहते हैं॥

प्रथम वर्ग समाप्त।

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १. पठम पाती सुत्त (१६. २. १)

लाभसत्कार की भयंकरता

श्रावस्ती…।

भिक्षुओ ! …लाभसत्कार बड़ा दारुण…है।

भिक्षुओ ! मैंने एक समय एक पुरुष के चित्त को अपने चित्त से जान लिया:—यह भिक्षु सोने की थाली में भरे हुये रजत-चूर्ण के लिये भी जान-बूझ कर झूठ नहीं बोलेगा।

उसी पुरुष को मैंने आगे चलकर लाभसत्कार के लिये जान-बूझ कर झूठ बोलते देखा।

…इसलिये, ऐसा सीखना चाहिये।

§ २. दुतिय पाती सुत्त (१६. २. २)

लाभसत्कार की भयंकरता

श्रावस्ती…।

…भिक्षुओ ! मैंने एक समय एक पुरुष के चित्त को अपने चित्त से जान लिया—यह भिक्षु चाँदी की थाली में भरे हुये सुवर्ण-चूर्ण के लिये भी जान बूझकर झूठ नहीं बोलेगा।

उसी पुरुष को…।

§ ३-१०. सिङ्गी सुत्त (१६. २. ३-१०)

लाभसत्कार की भयंकरता

३. …सुवर्ण-निष्क के लिये भी जान-बूझकर झूठ नहीं…।

४. …एक सौ सुवर्ण-निष्क के लिये भी…।

५. …निष्कों की एक ढेर के लिये भी…।

६. …निष्कों की सौ ढेर के लिये भी…।

७. …जातरूप से भरी हुई सारी पृथ्वी के लिये भी…।

८. …संसार की किसी भी वस्तु के लिये…।

९. …प्राणों के निकल जाने पर भी…।

१०. …सबसे सुन्दरी स्त्री के लिये भी…।

द्वितीय वर्ग समाप्त।

तीसरा भाग

तृतीय वर्ग

§ १. मातुगाम सुत्त (१६. ३. १)

लाभसत्कार दारुण है

श्रावस्ती…।

…लाभसत्कार दारुण…है।

भिक्षुओ ! एकान्त में कोई अकेली स्त्री भी जिसके चित्त को लुभाने में असमर्थ होती है, उसका चित्त लाभ, सत्कार और प्रशंसा में फँस जाता है।

…ऐसा सीखना चाहिए।

§ २. कल्याणी सुत्त (१६. ३. २)

लाभसत्कार दारुण है

…एकान्त में सुन्दरी स्त्री भी…।

§ ३. पुत्त सुत्त (१६. ३. ३)

लाभसत्कार में न फँसना, बुद्ध के आदर्श श्रावक

श्रावस्ती…।

…लाभसत्कार दारुण…है।

भिक्षुओ ! श्रद्धालु उपासिका अपने इकलौते लाड़ले पुत्र को इस तरह सिखावे दे—तात ! वैसा बनना जैसा चित्र गृहपति या आलवक हत्थक है।

भिक्षुओ ! क्योंकि मेरे गृहस्थ श्रावकों में यही दो आदर्श माने जाते हैं।

—तात ! यदि तुम घर से बेघर हो जाओ तो वैसा ही बनना जैसे सारिपुत्त और मौद्गल्यायन हैं।

भिक्षुओ ! क्योंकि मेरे भिक्षु श्रावकों में यही दो आदर्श माने जाते हैं।

—तात ! अप्रमत्त होकर शिक्षा का पालन करते हुए लाभादि के फेर में मत फँसना। लाभादि के फेर में फँसने से यह तुम्हारे विघ्न के लिए होगा।

…ऐसा सीखना चाहिए।

§ ४. एकधीता सुत्त (१६. ३. ४)

लाभसत्कार में न फँसना, बुद्ध की आदर्श श्राविकाएँ

श्रावस्ती…।

…लाभसत्कार दारुण…है।

भिक्षुओ ! श्रद्धालु उपासिका अपनी इकलौती लाड़ली लड़की को इस तरह सिखावे—बेटी ! तुम वैसी होना जैसी की उपासिका खुज्जुत्तरा और वेलुकण्डकिय नन्द माता हैं।

···उपासिका श्राविकाओं में यही दोनों आदर्श हैं।

बेटी ! यदि तुम घर से बेघर हो प्रव्रजित होना तो ऐसी होना जैसी कि भिक्षुणी क्षेमा और उत्पलवर्णा हैं।

···भिक्षुणी श्राविकाओं में यही दोनों आदर्श हैं।

···[ऊपर के ऐसा]

§ ५. पठम समणब्राह्मण सुत्त (१६. ३. ५)

लाभसत्कार के यथार्थ दोष-ज्ञान से मुक्ति

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण लाभादि के आस्वाद, आदीनव, और निःसरण को यथाभूत नहीं जानते हैं, वे···प्राप्त कर नहीं विहार करते हैं।

भिक्षुओ ! जो···जानते हैं···प्राप्त कर विहार करते हैं।

§ ६. दुतिय समणब्राह्मण सुत्त (१६. ३. ६)

लाभसत्कार के यथार्थ दोष-ज्ञान से मुक्ति

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण लाभादि के समुदय, अस्तंगम, आस्वाद, आदीनव और निःसरण को यथाभूत नहीं जानते हैं, वे···प्राप्त कर नहीं विहार करते हैं।

···प्राप्त कर विहार करते हैं।

§ ७. ततिय समणब्राह्मण सुत्त (१६. ३. ७)

लाभसत्कार के यथार्थ निरोध-ज्ञान से मुक्ति

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! जो···लाभादि के समुदय, निरोध, और निरोधगामिनी प्रतिपदा को नहीं जानते हैं, वे प्राप्त कर नहीं विहार करते हैं।

···प्राप्त कर विहार करते हैं।

§ ८. छवि सुत्त (१६. ३. ८)

लाभसत्कार खाल को छेद देता है

···भिक्षुओ ! लाभादि खाल को छेद देता है, खाल को छेद कर चाम को छेद देता है, मांस, नहारू, हड्डी, मज्जा को छेद देता है।···

§ ९. रज्जु सुत्त (१६. ३. ९)

लाभसत्कार की रस्सी खाल को छेद देती है

श्रावस्ती···।

···लाभसत्कार दारुण···है।

भिक्षुओ ! लाभसत्कार···हड्डी को छेदकर मज्जा में जा लगता है।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई बलवान् पुरुष एक मजबूत ऊनी धागे से जंघे में लपेट कर घँसे। वह धागा खाल को छेदकर,…हड्डी को छेदकर मज्जा में जा लगे।

वैसे ही…।

§ १०. भिक्खु सुत्त (१६. ३. १०)

लाभसत्कार अर्हत् के लिए भी विघ्नकारक

श्रावस्ती…।

भिक्षुओ ! जो भिक्षु क्षीणाश्रव अर्हत् है उसके लिये भी मैं लाभसत्कार को विघ्न बताता हूँ।

ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले—भन्ते ! भला, क्षीणाश्रव अर्हत् भिक्षु को लाभसत्कार कैसे विघ्न कर सकता है ?

आनन्द ! जिसका चित्त बिल्कुल विमुक्त हो चुका है उसके लिये मैं लाभसत्कार को विघ्नकर नहीं बताता।

आनन्द ! जो कुछ आतापी, प्रहितात्म, इसी जन्म में सुख विहार को प्राप्त कर लेनेवालों के लिये मैं लाभसत्कार को विघ्नकर बताता हूँ।

आनन्द ! निर्वाण प्राप्ति के मार्ग के लिये लाभसत्कार ऐसा दारुण, कटु, तीखा और विघ्नकर है।

आनन्द ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—लाभ, सत्कार और प्रशंसा को मैं छोड़ दूँगा, उनमें अपने चित्त को फँसने नहीं दूँगा।

आनन्द ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये।

तृतीय वर्ग समाप्त।

चौथा भाग

चतुर्थ वर्ग

१. भिन्दि सुत्त (१६. ४. १)

लाभसत्कार के कारण संघ में फूट

श्रावस्ती'''।

'''लाभसत्कार दारुण'''है।

लाभसत्कार में फँस और पड़कर देवदत्त ने संघ को फोड़ दिया।

'''ऐसा सीखना चाहिए।

§ २. मूल सुत्त (१६. ४. २)

पुण्य के मूल का कटना

'''देवदत्त के पुण्य के मूल कट गये।'''

§ ३. धम्म सुत्त (१६. ४. ३)

कुशल धर्म का कटना

'''देवदत्त के कुशल धर्म कट गये।'''

§ ४. सुक्कधम्म सुत्त (१६. ४. ४)

शुक्ल धर्म का कटना

'''देवदत्त के शुक्ल धर्म कट गये।''' .

§ ५. पकन्त सुत्त (१६. ४. ५)

देवदत्त के वध के लिए लाभसत्कार का उत्पन्न होना

एक समय देवदत्त के जाने के कुछ ही बाद भगवान् राजगृह में गृद्धकूट पर्वत पर विहार करते थे।

वहाँ, भगवान् ने देवदत्त के विषय में भिक्षुओं को आमन्त्रित किया।

भिक्षुओ! देवदत्त के अपने वध के लिए उसे इतना लाभसत्कार उत्पन्न हुआ है।'''अपनी परिहानि के लिए'''।

भिक्षुओ! जैसे, केला का वृक्ष अपने वध और अपनी परिहानि के लिए ही फल देता है; वैसे ही देवदत्त के अपने वध के लिए'''।

भिक्षुओ! जैसे, वेणु का वृक्ष अपने वध और अपनी परिहानि के लिए ही फल देता है'''।

भिक्षुओ! जैसे नल'''।

भिक्षुओ! जैसे, खचरी अपने वध और अपनी परिहानि के लिए ही बच्चा देती है'''।

···ऐसा सीखना चाहिये।

भगवान् यह बोले। इतना कह कर बुद्ध फिर भी बोले—

फल केला को मार देता है,
फल वेणु को, फल नल को;
सत्कार कापुरुष को मार देता है,
जैसे अपना गर्भ खचरी को॥

§ ६. रथ सुत्त (१६. ४. ६)

देवदत्त का लाभसत्कार उसकी हानि के लिए

···राजगृह वेलुवन···।

उस समय, कुमार अजातशत्रु सांझ सुबह पाँच सौ रथों को लेकर देवदत्त के उपस्थान के के लिये आया करता था। पाँच सौ पकवान की थालियाँ भेजी जाती थीं।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ कर उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा—भन्ते! कुमार अजातशत्रु···थालियाँ भेजी जाती हैं।

भिक्षुओ! देवदत्त के लाभसत्कार की ईर्ष्या मत करो।······इससे कुशल धर्मों में देवदत्त की हानि ही है, वृद्धि नहीं।

भिक्षुओ! जैसे, चण्ड कुत्ते के नाक पर कोई पित्त काट दे, उससे कुत्ता और भी चण्ड हो उठे; वैसे ही, जब तक कुमार अजातशत्रु देवदत्त का उपस्थान इस प्रकार करता रहेगा तब तक कुशल धर्मों में उसकी हानि ही है, वृद्धि नहीं।

···ऐसा सीखना चाहिये।

§ ७. माता सुत्त (१६. ४. ७)

लाभसत्कार दारुण है

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ!···लाभसत्कार दारुण···है।

भिक्षुओ! मैं किसी पुरुष के चित्त को अपने चित्त से जान लेता हूँ—यह माता के कारण भी जान-बूझ कर झूठ नहीं बोलेगा। भिक्षुओ! उसी को लाभसत्कार में फँस जानबूझ कर झूठ बोलते देखता हूँ।

···भिक्षुओ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—लाभसत्कार को छोड़ दूँगा, लाभसत्कार में अपने चित्त को नहीं फँसने दूँगा।

भिक्षुओ! ऐसा सीखना चाहिये।

§ ८-१३. पिता सुत्त (१६. ४. ८-१३)

लाभसत्कार दारुण है

(८) पिता; (९) भाई; (१०) बहन; (११) पुत्र; (१२) पुत्री; (१३) स्त्री
···[ऊपर के ऐसा]

चतुर्थ वर्ग समाप्त।

छठाँ परिच्छेद

१७. राहुल-संयुत्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १. चक्खु सुत्त (१७. १. १)

इन्द्रियों में अनित्य, दुःख, अनात्म के मनन से विमुक्ति

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में ...

...एक ओर बैठ, आयुष्मान् राहुल भगवान् से बोले—भन्ते! भगवान् मुझे उपदेश दें कि जिसे सुनकर मैं एकान्त में अकेला अप्रमत्त, आतापी, और प्रहितात्म होकर विहार करूँ।

राहुल! तो, क्या समझते हो चक्षु नित्य है या अनित्य?

अनित्य, भन्ते!

जो अनित्य है वह दुःख है अथवा सुख?

दुःख, भन्ते!

जो अनित्य दुःख और परिवर्तनशील है क्या उसे ऐसा समझना चाहिये—यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है?

नहीं भन्ते!

[वैसे ही]—श्रोत्र...; घ्राण...; जिह्वा...; काया...; मन...।

राहुल! यह जान और सुनकर आर्यश्रावक चक्षु...से मन को उचटा देता है।

उचटा कर विरक्त हो जाता है। विरक्त रह विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने से विमुक्त हो गया ऐसा ज्ञान हो जाता है। जाति क्षीण हुई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, और कुछ बाकी नहीं बचा—ऐसा जान लेता है।

§ २. रूप सुत्त (१७. १. २)

रूप में अनित्य, दुःख, अनात्म के मनन से विमुक्ति

राहुल! तो क्या समझते हो, रूप..., शब्द..., गन्ध..., रस..., स्पर्श..., धर्म नित्य है या अनित्य?

अनित्य भन्ते!

...[पूर्ववत्]

§ ३. विञ्ञाण सुत्त (१७. १. ३)

विज्ञान में अनित्य, दुःख, अनात्म के मनन से मुक्ति

राहुल ! तो क्या समझते हो, चक्षुविज्ञान···, श्रोत्रविज्ञान···, घ्राणविज्ञान···, जिह्वाविज्ञान··· कायाविज्ञान···, मनोविज्ञान नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !···

§ ४. सम्फस्स सुत्त (१७. १. ४)

संस्पर्श में अनित्य, दुःख, अनात्म के मनन से मुक्ति

राहुल ! तो क्या समझते हो, चक्षुसंस्पर्श···मनःसंस्पर्श नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !···

§ ५. वेदना सुत्त (१७. १. ५)

वेदना का मनन

राहुल ! तो क्या समझते हो, चक्षुसंस्पर्शजा वेदना······मनःसंस्पर्शजा वेदना नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !···

§ ६. सञ्ञा सुत्त (१७. १. ६)

संज्ञा का मनन

राहुल ! तो क्या समझते हो, रूप-संज्ञा···—धर्म-संज्ञा नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !···

§ ७. सञ्चेतना सुत्त (१७. १. ७)

संचेतना का मनन

राहुल ! तो क्या समझते हो, रूप-संचेतना···—धर्म-संचेतना नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !···

§ ८. तण्हा सुत्त (१७. १. ८)

तृष्णा का मनन

राहुल ! तो क्या समझते हो, रूप-तृष्णा नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !···

§ ९. धातु सुत्त (१७. १. ९)

धातु का मनन

राहुल ! तो क्या समझते हो, पृथ्वी-धातु···, आपोधातु···, तेजो-धातु···, वायु-धातु···, आकाश-धातु···, विज्ञान-धातु नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !···

§ १०. खन्ध सुत्त (१७. १. १०)

स्कन्ध का मनन

राहुल ! तो क्या समझते हो, रूप···, वेदना···, संज्ञा···, संस्कार···, विज्ञान नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !···

प्रथम वर्ग समाप्त ।

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १. चक्खु सुत्त (१८. २. १)

चक्षु आदि में अनित्य, दुःख, अनात्म की भावना से मुक्ति

श्रावस्ती···।

···एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् राहुल से भगवान् बोले:—राहुल ! ···चक्षु नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !···

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

दुःख भन्ते !

जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है उसे क्या यह कहना उचित है कि—यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?

नहीं भन्ते !

श्रोत्र···; घ्राण···; जिह्वा···; काया···; मन···।

राहुल ! ऐसा देख और सुनकर आर्यश्रावक इनसे उचटा रहता है। उचटा रह वैराग्य करता है। वैराग्य से विमुक्त हो जाता है: विमुक्त होने से विमुक्त हो गया ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है। जाति क्षीण हुई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, और कुछ बाकी नहीं बचा है—ऐसा जान लेता है।

इसी भाँति दश सूत्रान्त कर लेने चाहिये।

§ २-१०. रूप सुत्त (१८. २. २-१०)

अनित्य, दुःख की भावना

श्रावस्ती···।

राहुल ! तो क्या समझते हो रूप···—धर्म···; चक्षुविज्ञान···—मनोविज्ञान···; चक्षुर्संस्पर्श···—मनःसंस्पर्श···; चक्षुसंस्पर्शजा वेदना···—मनः संस्पर्शजा वेदना···; रूप संज्ञा···—धर्म संज्ञा···, रूपसंचेतना···—धर्मसंचेतना···; रूपतृष्णा···—धर्मतृष्णा···; पृथ्वी धातु···—विज्ञान धातु···; रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान नित्य हैं या अनित्य ?

अनित्य भन्ते।···

§ ११. अनुसय सुत्त (१८. २. ११)

सम्यक् मनन से मानानुशय का नाश

श्रावस्ती···।

···एक ओर बैठ, आयुष्मान् राहुल भगवान् से बोले:—भन्ते ! क्या जान और देख लेने से

विज्ञान-सहित इस शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार=ममंकार=मानानुशय नहीं होते हैं ?

राहुल ! अतीत, अनागत, या वर्तमान के; आध्यात्म या बाहर के; स्थूल या सूक्ष्म; हीन या प्रणीत; दूर के या निकट के जितने रूप हैं सभी न तो मेरे हैं, न मैं हूँ, न मेरे आत्मा हैं। जो इसे यथाभूत सम्यक् प्रज्ञा से देखता है।

जितनी वेदना, संज्ञा, संस्कार, और विज्ञान हैं सभी न तो मेरे हैं; न मैं हूँ, न मेरे आत्मा है। जो इसे यथाभूत सम्यक् प्रज्ञा से देखता है।

राहुल ! इसे जान और देख लेने से विज्ञान-सहित इस शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार=ममंकार=मानानुशय नहीं होते हैं।

§ १२. अपगत सुत्त (१७. २. १२)

ममत्व के त्याग से मुक्ति

श्रावस्ती···!

···एक ओर बैठ, आयुष्मान् राहुल भगवान् से बोले:—भन्ते ! क्या जान और देख लेने से विज्ञान-सहित इस शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार, ममंकार और मान हट जाते हैं, मन शुद्ध, शान्त और विमुक्त हो जाता है ?

राहुल ! अतीत अनागत या वर्तमान के···जितने रूप हैं सभी न तो मेरे हैं न मैं हूँ, न मेरे आत्मा हैं।

···वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

राहुल ! इसे जान और देख लेने से विज्ञान-सहित इस शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार, ममंकार और मान हट जाते हैं, मन शुद्ध, शान्त और विमुक्त हो जाता है।

राहुल संयुत्त समाप्त।

सातवाँ परिच्छेद

१८. लक्खण संयुत्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १. अट्ठिपेसि सुत्त (१८. १. १)

अस्थि-कंकाल, गौहत्या का दुष्परिणाम

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् राजगृह में वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् लक्षण और आयुष्मान् महामौद्गल्यायन गृद्धकूट पर्वत पर विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन पूर्वाह्ण-समय पहन और पात्रचीवर ले जहाँ आयुष्मान् लक्षण थे वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् लक्षण से बोले—आवुस लक्षण ! चलें, राजगृह में भिक्षाटन के लिये पैठें।

'आवुस, बहुत अच्छा' कहकर आयुष्मान् लक्षण ने आयुष्मान् महामौद्गल्यायन को उत्तर दिया।

तब, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने गृद्धकूट पर्वत से उतरते हुये एक जगह मुसकरा दिया।

तब, आयुष्मान् लक्षण आयुष्मान् महामौद्गल्यायन से बोले—आवुस ! आप के मुसकरा देने का क्या हेतु है ?

आवुस लक्षण ! इस प्रश्न का यह उचित-काल नहीं है। भगवान् के सामने मुझे यह प्रश्न पूछना।

तब, आयुष्मान् लक्षण और आयुष्मान् महामौद्गल्यायन भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने के बाद जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् लक्षण आयुष्मान् महामौद्गल्यायन से बोले—आप आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने गृद्धकूट पर्वत से उतरते हुये एक जगह मुसकरा दिया। सो आपके इस मुसकरा देने का क्या हेतु था ?

आवुस ! गृद्धकूट पर्वत से उतरते हुये मैंने हड्डियों के एक कंकाल को आकाश मार्ग से जाते देखा। उसे गीध भी, कौए भी, और चील भी झपट-झपट कर नोचते थे, पीछाते थे, टुकड़े-टुकड़े कर देते थे; और वह आर्तस्वर कर रहा था।

आवुस ! तब, मेरे मन में ऐसा हुआ—बड़ा आश्चर्य है, बड़ा अद्भुत है ! ऐसे भी प्राणी हैं ! इस प्रकार का भी आत्मभाव-प्रतिलाभ होता है।

तब, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! मेरे श्रावक आँख खोले विहार करते हैं; ज्ञान के साथ विहार करते हैं। मेरे श्रावक इस प्रकार को भी जान लेते हैं, देख लेते हैं, साक्षात्कार कर लेते हैं।

भिक्षुओ ! पहले मैंने भी उस सत्व को देखा था, किन्तु किसी को नहीं कहा। यदि मैं कहता तो

यह दूसरे नहीं मानते। जो मुझे नहीं मानते उनका यह चिरकाल तक अहित और दुःख के लिये था।

भिक्षुओ! वह सत्व इसी राजगृह में गौहत्या करने वाला था। इस पाप के फलस्वरूप वह··· वों वर्ष तक नरक में पचता रहा। उस कर्म के अवसान में उसने ऐसा आत्मभाव-प्रतिलाभ किया है।

सभी सूत्रों में इसी तरह।

§ २. गोघातक सुत्त (१८. १. २)

मांसपेशी, गौहत्या का दुष्परिणाम

[इन सब सूत्रों में आयुष्मान् महामौद्गल्यायन इसी प्रकार मुसकराते हैं, जिसकी व्याख्या वान् करते हैं—]

···आवुस···मांसपेशी को आकाश से जाते देखा···

···इसी राजगृह में गोघातक था···।

§ ३. पिण्डसाकुणि सुत्त (१८. १. ३)

पिण्ड और चिड़िमार

···मांसपिण्ड को आकाश से जाते देखा···।

···इसी राजगृह में चिड़िमार था···।

§ ४. निच्छवोरब्भि सुत्त (१८. १. ४)

खाल उतरा और भेड़ों का कसाई

···खाल उतरे हुये पुरुष को देखा···।

···वह इसी राजगृह में भेड़ों का कसाई था···

§ ५. असिसूकरिक सुत्त (१८. १. ५)

तलवार और सूअर का कसाई

आवुस! गृद्धकूट पर्वत से उतरते हुये एक असिलोम (=जिसके रोयें तलवार जैसे हों) पुरुष को श से जाते देखा। वे असि घूम घूम कर उसी के शरीर पर गिरते थे; वह उससे आर्तस्वर कर ।

···वह इसी राजगृह में सूअर का कसाई था···।

§ ६. सत्तिमागवी सुत्त (१८. १. ६)

बर्छी-जैसा लोम और बहेलिया

···सत्ति-लोम पुरुष को आकाश से जाते देखा···।

···इसी राजगृह में मृगमार (=बहेलिया) था···।

§ ७. उसुकारणिय सुत्त (१८. १. ७)

बाण-जैसा लोम और अन्यायी हाकिम

···इषुलोम पुरुष को आकाश से जाते देखा···।

···इसी राजगृह में अन्यायी हाकिम था···।

§ ८. सूचिसारथी सुत्त (१८. १. ८)

सुई-जैसा लोम और सारथी

···सूचिलोम पुरुष को···।

···इसी राजगृह में सारथि था···।

§ ९. सूचक सुत्त (१८. १. ९)

सुई-जैसा लोम और सूचक

···सूचिलोम पुरुष को···।

···इसी राजगृह में सूचक था···।

§ १० गामकूटक सुत्त (१८. १. १०)

दुष्ट गाँव का पञ्च

···कुम्भण्ड पुरुष को आकाश से जाते देखा···।

वह जाते हुये उन अण्डों को कन्धे पर रख कर जाता था, बैठते हुये उन्हीं पर बैठता था। ···वह आर्तस्वर कर रहा था।

···वह इसी राजगृह में दुष्ट गाँव का पञ्च था।

प्रथम वर्ग समाप्त।

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १. कूपनिमुग्ग सुत्त (१८. २. १)

परस्त्री-गमन करने वाला कूयें में गिरा

…आवुस ! गृद्धकूट पर्वत से उतरते हुये मैंने गूह के कूयें में बिल्कुल डूबे एक पुरुष को देखा।

…वह इसी राजगृह में परस्त्री के पास जाने वाला था…।

§ २. गूथखादी सुत्त (१८. २. २)

गूह खानेवाला दुष्ट ब्राह्मण

…एक पुरुष को देखा जो गूह के कूयें में गिरकर दोनों हाथों से गूह खा रहा था।

भिक्षुओ ! वह सत्व इसी राजगृह में एक ब्राह्मण था। उसने सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् काश्यप के शासन रहते भिक्षु-संघ को भोजन के लिये निमन्त्रित कर, एक बर्तन में गूह भर कर कहा:—आप लोग जितनी मरजी खायँ और ले भी जायँ।

§ ३. निच्छवित्थी सुत्त (१८. २. ३)

खाल उतारी हुई छिनाल स्त्री

…खाल उतारी हुई स्त्री को आकाश से जाती देखा। …वह आर्तस्वर कर रही थी।

…वह इसी राजगृह में बड़ी छिनाल स्त्री थी…।

§ ४. मङ्गलित्थी सुत्त (१८. २. ४)

रमैल फेंकनेवाली मंगुली स्त्री

…दुर्गन्ध से भरी कुरूप स्त्री को देखा…। …आर्तस्वर कर रही थी।

…वह इसी राजगृह में रमल फेंका करती थी…।

§ ५. ओकिलिनी सुत्त (१८. २. ५)

सूखी—सौत पर अंगार फेंकनेवाली

…सूखी, छिपी और बदहवाश एक स्त्री को आकाश से जाते देखा। वह आर्तस्वर कर रही थी।

भिक्षुओ ! वह स्त्री कलिङ्ग राजा की पटरानी थी। उसने ईर्ष्या से अपनी सौत के ऊपर एक कड़ाही अंगार फेंक दिया था।

§ ६. सीसच्छिन्न सुत्त (१८. २. ६)

सिर कटा हुआ डाकू

···बिना सिर के एक कबन्ध को आकाश से जाते देखा। उसकी छाती ही में आँख और मुँह थे।···वह आर्तस्वर कर रहा था।

···वह सत्व इसी राजगृह में हारिक नामक एक डाकू था।

§ ७. भिक्खु सुत्त (१८. २. ७)

भिक्षु

आवुस ! गृद्धकूट पर्वत से उतरते हुये मैंने एक भिक्षु को आकाश से जाते देखा।

उसकी संघाटी लहलहा कर जल रही थी। पात्र भी लहलहा कर जल रहा था। काय-बन्धन भी···। शरीर भी···। वह आर्तस्वर कर रहा था।

भिक्षुओ ! वह सत्व सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् काश्यप के कालमें पापभिक्षु था।

§ ८. भिक्खुनी सुत्त (१८. २. ८)

भिक्षुणी

···भगवान् काश्यप के काल में पापभिक्षुणी थी।

§ ९. सिक्खमाना सुत्त (१८. २. ९)

शिक्ष्यमाणा

···भगवान् काश्यप के काल में पापी शिक्ष्यमाणा थी।

§ १०. सामणेर सुत्त (१८. २. १०)

श्रामणेर

···पापी श्रामणेर था।

§ ११. सामणेरी सुत्त (१८. २. ११)

श्रामणेरी

···वह आर्तस्वर कर रही थी।' आवुस ! तब मेरे मन में यह हुआ—आश्चर्य है, अद्भुत है। ऐसे भी सत्व होते हैं; ऐसा भी आत्मभाव-प्रतिलाभ होता है।

तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! मेरे श्रावक आँख खोलकर विहार करते हैं, ज्ञान के साथ विहार करते हैं कि वे इस प्रकार को भी जान लेते हैं, देख लेते हैं, साक्षात्कार कर लेते हैं।

भिक्षुओ ! पहले भी मैंने उस श्रामणेरी को देखा था, किन्तु किसी से कहा नहीं। यदि मैं कहता तो शायद लोग विश्वास नहीं करते; वह चिरकाल तक उनके अहित और दुःख के लिये होता।

भिक्षुओ ! वह श्रामणेरी सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् काश्यप के कालमें पाप-श्रामणेरी थी। वह उस पाप के फल से···लाखों वर्ष नरक में पकती रही। उस कर्म के अवसान में उसने ऐसा आत्मभाव-प्रतिलाभ किया है।

द्वितीय वर्ग

लक्खण-संयुत्त समाप्त

आठवाँ परिच्छेद

१९. औपम्य-संयुत्त

§ १. कूट सुत्त (१९. १)

सभी अकुशल अविद्यामूलक हैं

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

भगवान् बोले :—भिक्षुओ ! जैसे, कूटागार के जितने धरण हैं सभी कूट की ओर जाते हैं, कूट पर जा लगते हैं, कूट में जोड़े रहते हैं, कूट में आकर मिल जाते हैं।

भिक्षुओ ! वैसे ही, जितने अकुशल धर्म हैं, सभी अविद्यामूलक, अविद्या में लगे रहने वाले, अविद्या में आकर जुटने और मिलने वाले हैं।

इसलिये, हे भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—अप्रमत्त होकर विहार करूँगा।

§ २. नखसिख सुत्त (१९. २)

प्रमाद न करना

श्रावस्ती'''।

तब अपने नखाग्र पर एक छोटा रज-कण रख कर भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया:—भिक्षुओ ! क्या समझते हो, यह छोटा रज-कण बड़ा है या महापृथ्वी ?

भन्ते ! महापृथ्वी बड़ी है; यह रज-कण तो बड़ा अदना है। यह अदना कण महापृथ्वी के किसी भी भाग में नहीं समझा जा सकता है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, वे सत्व बड़े अल्प हैं जो मनुष्य-योनि में जन्म लेते हैं। वे सत्व बहुत हैं जो दूसरी योनि में जन्म लेते हैं।

इसलिये, हे भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—अप्रमत्त होकर विहार करूँगा।

§ ३. कुल सुत्त (१९. ३)

मैत्री-भावना

श्रावस्ती'''।

भिक्षुओ ! जैसे, वह कुल जिनमें बहुत स्त्रियाँ और अल्प पुरुष हों, चोर-डाकुओं से सहज में पीड़ित किये जाते हैं।

भिक्षुओ ! वैसे ही, जिस किसी भिक्षु की मैत्री चेतोविमुक्ति अभावित और अनभ्यस्त रहती है वह अमनुष्यों से सहज में पीड़ित किया जाता है।

भिक्षुओ ! जैसे, वह कुल, जिनमें अल्प स्त्रियाँ और अधिक पुरुष हों, चोर-डाकुओं से पीड़ित नहीं किया जाता है;

भिक्षुओ ! वैसे ही, जिस किसी भिक्षु की मैत्री चेतोविमुक्ति भावित और अभ्यस्त रहती है वह अमनुष्यों से पीड़ित नहीं किया जा सकता है।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—मैत्री चेतोविमुक्ति मेरी भावित होगी, अभ्यस्त होगी, अपनी कर ली गई होगी, सिद्ध होगी, अनुष्ठित होगी, परिचित होगी, सुसमारब्ध होगी।

§ ४. ओक्खा सुत्त (१९. ४)

मैत्री-भावना

श्रावस्ती…।

भिक्षुओ ! जो सुबह, दोपहर और साँझ को सौ-सौ ओक्खा[1] का दान दे[2]। और जो…गाय के एक दूहन भर भी मैत्री की भावना करे, तो वही अधिक फल देनेवाला है।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—मैत्री चेतोविमुक्ति मेरी भावित होगी…।

§ ५. सत्ति सुत्त (१९. ५)

मैत्री-भावना

श्रावस्ती…।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई तेज धारवाली बर्छी हो। तब, कोई पुरुष आवे—मैं इस तेज धारवाली बर्छी को हाथ और मुक्के से उलट दूँगा, कूट दूँगा, पीट दूँगा। भिक्षुओ ! तो, क्या समझते हो वह पुरुष ऐसा कर सकेगा ?

नहीं भन्ते !

सो क्यों ?

भन्ते ! तेज धारवाली बर्छी को कोई पुरुष हाथ और मुक्के से ऐसा नहीं कर सकता है। बल्कि, उस पुरुष का हाथ ही जख्मी हो जायगा और उसे बड़ा कष्ट भोगना पड़ेगा।

भिक्षुओ ! वैसे ही, जिस किसी भिक्षु की मैत्री चेतोविमुक्ति भावित रहती है, उसे यदि कोई अमनुष्य डरा देना चाहे तो उसी को विपत्ति में पड़कर कष्ट भोगना पड़ेगा।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—मैत्री चेतोविमुक्ति मेरी भावित होगी।

§ ६. धनुग्गह सुत्त (१९. ६)

अप्रमाद के साथ विहरना

श्रावस्ती…।

भिक्षुओ ! जैसे, चार वीर धनुर्धर—शिक्षित, हाथसाफ, अभ्यासी—चारों दिशाओं में खड़े हों।

तब, कोई पुरुष आवे और कहे—मैं इन चारों के छोड़े हुये बाण को पृथ्वी पर गिरने के पहले ही ले आऊँगा।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, ऐसी फुर्ती होने से वह बड़ा भारी फुर्तीबाज कहा जा सकेगा ?

भन्ते ! यदि एक ही के छोड़े बाण को पृथ्वी पर गिरने से पहले ले आवे, तो वह सबसे बड़ा फुर्तीबाज कहा जायगा, चारों की बात तो दूर रहे।

भिक्षुओ ! उस पुरुष की जो तेजी है, उससे भी अधिक तेज चाँद-सूरज हैं। भिक्षुओ ! उस

१. भात पकाने का बहुत बड़ा बर्तन (हंडा)—अट्ठकथा।

२. उत्तम भोजन से परिपूर्ण सौ बड़े हंडों का दान करे—अट्ठकथा।

भिक्षुओ ! वैसे ही, जिस किसी भिक्षु की मैत्री चेतोविमुक्ति भावित और अभ्यस्त रहती है वह अमनुष्यों से पीड़ित नहीं किया जा सकता है।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—मैत्री चेतोविमुक्ति मेरी भावित होगी, अभ्यस्त होगी, अपनी कर ली गई होगी, सिद्ध होगी, अनुष्ठित होगी, परिचित होगी, सुसमारब्ध होगी।

§ ४. ओक्खा सुत्त (१९. ४)

मैत्री-भावना

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! जो सुबह, दोपहर और साँझ को सौ-सौ ओक्खा[1] का दान दे[2]। और जो···गाय के एक दूहन भर भी मैत्री की भावना करे, तो वही अधिक फल देनेवाला है।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—मैत्री चेतोविमुक्ति मेरी भावित होगी···।

§ ५. सत्ति सुत्त (१९. ५)

मैत्री-भावना

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई तेज धारवाली बर्छी हो। तब, कोई पुरुष आवे—मैं इस तेज धारवाली बर्छी को हाथ और मुक्के से उलट दूँगा, कूट दूँगा, पीट दूँगा। भिक्षुओ ! तो, क्या समझते हो वह पुरुष ऐसा कर सकेगा ?

नहीं भन्ते !

सो क्यों ?

भन्ते ! तेज धारवाली बर्छी को कोई पुरुष हाथ और मुक्के से ऐसा नहीं कर सकता है। बल्कि, उस पुरुष का हाथ ही जख्मी हो जायगा और उसे बड़ा कष्ट भोगना पड़ेगा।"

भिक्षुओ ! वैसे ही, जिस किसी भिक्षु की मैत्री चेतोविमुक्ति भावित रहती है, उसे यदि कोई अमनुष्य डरा देना चाहे तो उसी को विपत्ति में पड़कर कष्ट भोगना पड़ेगा।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—मैत्री चेतोविमुक्ति मेरी भावित होगी।

§ ६. धनुग्गह सुत्त (१९. ६)

अप्रमाद के साथ विहरना

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! जैसे, चार वीर धनुर्धर—शिक्षित, हाथसाफ, अभ्यासी—चारों दिशाओं में खड़े हों। तब, कोई पुरुष आवे और कहे—मैं इन चारों के छोड़े हुये बाण को पृथ्वी पर गिरने के पहले ही ले आऊँगा।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, ऐसी फुर्ती होने से वह बड़ा भारी फुर्तीबाज कहा जा सकेगा ?

भन्ते ! यदि एक ही के छोड़े बाण को पृथ्वी पर गिरने से पहले ले आवे, तो वह सबसे बड़ा फुर्तीबाज कहा जायगा, चारों की बात तो दूर रहे।

भिक्षुओ ! उस पुरुष की जो तेजी है, उससे भी अधिक तेज चाँद-सूरज हैं। भिक्षुओ ! उस

१. भात पकाने का बहुत बड़ा बर्तन (हंडा)—अट्ठकथा।
२. उत्तम भोजन से परिपूर्ण सौ बड़े तौलों का दान करे—अट्ठ···

आठवाँ परिच्छेद

१९. औपम्य-संयुत्त

§ १. कूट सुत्त (१९. १)

सभी अकुशल अविद्यामूलक हैं

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

भगवान् बोले :—भिक्षुओ ! जैसे, कूटागार के जितने धरन हैं सभी कूट की ओर जाते हैं, कूट पर जा लगते हैं, कूट में जोड़े रहते हैं, कूट में आकर मिल जाते हैं।

भिक्षुओ ! वैसे ही, जितने अकुशल धर्म हैं, सभी अविद्यामूलक, अविद्या में लगे रहने वाले, अविद्या में आकर जुटने और मिलने वाले हैं।

इसलिये, हे भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—अप्रमत्त होकर विहार करूँगा।

§ २. नखसिख सुत्त (१९. २)

प्रमाद न करना

श्रावस्ती···।

तब अपने नखाग्र पर एक छोटा रज-कण रख कर भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया:—भिक्षुओ ! क्या समझते हो, यह छोटा रज-कण बड़ा है या महापृथ्वी ?

भन्ते ! महापृथ्वी बड़ी है; यह रज-कण तो बड़ा अदना है। यह अदना कण महापृथ्वी के किसी भी भाग में नहीं समझा जा सकता है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, वे सत्व बड़े अल्प हैं जो मनुष्य-योनि में जन्म लेते हैं। वे सत्व बहुत हैं जो दूसरी योनि में जन्म लेते हैं।

इसलिये, हे भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—अप्रमत्त होकर विहार करूँगा।

§ ३. कुल सुत्त (१९. ३)

मैत्री-भावना

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! जैसे, वह कुल जिनमें बहुत स्त्रियाँ और अल्प पुरुष हों, चोर-डाकुओं से सहज में पीड़ित किये जाते हैं।

भिक्षुओ ! वैसे ही, जिस किसी भिक्षु की मैत्री चेतोविमुक्ति अभावित और अनभ्यस्त रहती है वह अमनुष्यों से सहज में पीड़ित किया जाता है।

भिक्षुओ ! जैसे, वह कुल, जिनमें अल्प स्त्रियाँ और अधिक पुरुष हों, चोर-डाकुओं से पीड़ित नहीं किया जाता है।

पुरुष की जो तेजी है, चाँद-सूरज की जो तेजी है, चाँद-सूरज के आगे-आगे चलने वाले देवताओं की जो तेजी है, उन सभी से तेज आयुसंस्कार क्षीण हो रहा है।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—अप्रमत्त होकर विहार करूँगा।

§ ७. आणी सुत्त (१९. ७)

गम्भीर धर्मों में मन लगाना, भविष्य-कथन

श्रावस्ती'''।

भिक्षुओ ! पूर्वकाल में दसारहों को आनक नाम का एक मृदंग था।

उस आनक मृदङ्ग में जब कोई छेद हो जाता था तो दसारह लोग उसमें एक खूँटी ठोंक देते थे। धीरे-धीरे, एक ऐसा समय आया कि सारे मृदङ्ग की अपनी पुरानी लकड़ी कुछ भी नहीं रही; सारे का सारा खूँटियों का एक ढरचर बन गया।

भिक्षुओ ! भविष्यकाल में भिक्षु ऐसे ही बन जायेंगे। बुद्ध ने जो गम्भीर, गम्भीर अर्थ वाले, लोकोत्तर, शून्यताप्रतिसंयुक्त सूत्र कहे हैं उनके कहे जाने पर कान न देंगे, सुनने की इच्छा न करेंगे, समझने की कोशिश नहीं करेंगे। धर्म को वे सीखने और अभ्यास करने के योग्य नहीं समझेंगे।

जो बाहर के श्रावकों से कही कविता, सुन्दर अक्षर और सुन्दर व्यञ्जन वाले जो सूत्र बनेंगे उन्हीं के कहे जाने पर कान देंगे, सुनने की इच्छा करेंगे, समझने की कोशिस करेंगे। उन्हीं धर्मों को वे सीखने और अभ्यास करने के योग्य समझेंगे।

भिक्षुओ ! इस तरह, बुद्ध ने जिन गम्भीर'''सूत्रों को कहा है उनका लोप हो जायगा।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—बुद्ध ने जो गम्भीर'''सूत्र कहे हैं, उनके कहे जाने पर कान दूँगा, सुनने की इच्छा करूँगा, समझने की कोशिस करूँगा। उसी धर्म को सीखने और अभ्यास करने के योग्य समझूँगा।

§ ८. कलिङ्गर सुत्त (१९. ८)

लकड़ी के बने तख्त पर सोना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् वैशाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे।

'''भगवान् बोले—भिक्षुओ ! लिच्छवी लकड़ी के बने तख्त पर सोते हैं, अप्रमत्त हो उत्साह के साथ अपने कर्तव्य पूरा करते हैं। मगधराज वैदेहिपुत्र अजातशत्रु उनके विरुद्ध कोई दाँव-पेंच नहीं पा रहा है।

भिक्षुओ ! अनागत काल में लिच्छवी लोग बड़े सुकुमार तथा कोमल हाथ पैर वाले होंगे। वे गद्देदार बिछावन पर गुलगुल तकिये लगा दिन चढ़ जाने तक सोये रहेंगे। तब मगधराज'''को उनके विरुद्ध दाँव पेंच मिल जायगा।

भिक्षुओ ! इस समय भिक्षु लोग लकड़ी के बने तख्त पर सोते हैं, अपने उद्योग में आतापी और अप्रमत्त होकर विहार करते हैं। पापी मार इनके विरुद्ध कोई दाँव-पेंच नहीं पा रहा है।

भिक्षुओ ! अनागत काल में भिक्षु लोग'''दिन चढ़ जाने तक सोये रहेंगे। उनके विरुद्ध पापी मार को दाँव-पेंच मिल जायगा।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—लकड़ी के बने तख्त पर सोऊँगा; अपने उद्योग में आतापी और अप्रमत्त होकर विहार करूँगा।

§ ९. नाग सुत्त (१९. ९)

लालच-रहित भोजन करना

श्रावस्ती'''।

उस समय कोई नया भिक्षु कुवेला करके गृहस्थ-कुलों में रहा करता था। उसे दूसरे भिक्षुओं ने कहा—आयुष्मान् कुवेला करके गृहस्थ-कुलों में मत रहा करें।

इस पर वह भिक्षु बोला—ये स्थविर भिक्षु गृहस्थ-कुलों में जाया करते हैं, तो भला मुझमें क्या लगा है?

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा—भन्ते! एक नया भिक्षु कुवेला करके''।'''तो भला मुझमें क्या लगा है?

भिक्षुओ! बहुत पहले कोई जंगल में एक सरोवर था। कुछ नाग भी वहीं वास करते थे। वे उस सरोवर में पैठ, सूँड़ से कमल के नाल को उखाड़, अच्छी तरह धो, कीचड़ हटाकर निगल जाते थे। वह उनके वर्ण और बल के लिये होता था। उससे न तो उनकी मृत्यु होती थी और न वे मृत्यु के समान दुःख पाते थे।

भिक्षुओ! उनकी देखादेखी छोटे-छोटे हाथी भी उस सरोवर में पैठ, कमल के नाल को उखाड़, उसे धो, कीचड़ लगे हुए ही निगल जाते थे। वह न तो उनके वर्ण के लिये होता था और न बल के लिये। उससे वे मर भी जाते थे, और मरने के समान दुःख भी पाते थे।

भिक्षुओ! वैसे ही, ये स्थविर भिक्षु सुबह में पहन और पात्र-चीवर ले भिक्षाटन के लिये गाँव या कस्बे में पैठते हैं; वे वहाँ धर्म का उपदेश करते हैं। उससे गृहस्थों को बड़ी श्रद्धा होती है। जो भिक्षा मिलती है उसका वे लोभरहित हो, उसके आदीनव और निःसरणका ख्याल करते हुये, भोग करते हैं। यह उनके वर्ण और बल के लिये होता है'''।

भिक्षुओ! उनकी देखादेखी नये भिक्षु भी'''कस्बे में पैठते हैं।'''जो भिक्षा मिलती है उसका वे ललचा हृदिया कर भोग करते हैं; उसके आदीनव और निःसरण का कुछ ख्याल नहीं करते। वह न तो उनके वर्ण के लिये होता है, और न बल के लिये।'''

भिक्षुओ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—बिना ललचाये हृदियाये, तथा आदीनव और निःसरण का ख्याल रख कर भिक्षा का भोग करूँगा।

§ १०. बिलार सुत्त (१९. १०)

संयम के साथ भिक्षाटन करना

श्रावस्ती'''।

उस समय कोई नया भिक्षु कुवेला करके गृहस्थ-कुलों में रहा करता था। उसे दूसरे भिक्षुओं ने कहा—आयुष्मान् कुवेला करके गृहस्थ-कुलों में मत रहा करें।

भिक्षुओं से कहे जाने पर भी वह भिक्षु नहीं मानता था।

तब कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठकर उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा—भन्ते!'''वह भिक्षु नहीं मानता है।

भिक्षुओ! बहुत पहले कोई बिलार एक गंदीरे के पास चूहे की ताक में बैठा था—जैसे ही चूहा बाहर निकलेगा कि मैं झट उसे पकड़ कर खा जाऊँगा।

भिक्षुओ ! तब, चूहा बाहर निकला। बिलार झपटा मार उसे सहसा निगल गया। चूहे ने उस बिलार की अँतड़ी-पचौनी को काट दिया। उससे वह मृत्यु को प्राप्त हुआ या मृत्यु के समान दुःख को।

भिक्षुओ ! वैसे ही, कितने भिक्षु···गाँव या कस्बे में भिक्षाटन के लिये पैठते हैं—शरीर, वचन और चित्त से असंयत, स्मृतिहीन इन्द्रियों के साथ।

वह वहाँ किसी बेपर्द स्त्री को देखता है। उससे उसके चित्त में जबरदस्त राग उठता है। उससे वह मृत्यु को प्राप्त होता है या मृत्यु के समान दुःख को।

भिक्षुओ ! जो शिक्षा छोड़कर गृहस्थ बन जाता है उसे इस आर्यविनय में मृत्यु ही कहते हैं। भिक्षुओ ! जो मनका ऐसा मैला हो जाता है वह मृत्यु के समान दुःख ही है।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—शरीर, वचन और मन से रक्षित हो, स्मृति-पूर्ण इन्द्रियों से गाँव या कस्बे में भिक्षाटन के लिये पैठूँगा।

§ ११. पठम सिगाल सुत्त (१९. ११)

अप्रमाद के साथ विहरना

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! रात के भिनसारे तुमने सियारों को रोते सुना है ?

हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! यह जर श्रृगाल उक्कण्णक नामक रोग से पीड़ित होता है। वह जहाँ जहाँ जाता है, खड़ा होता है, बैठता है, या सोता है, वहाँ वहाँ बड़ी ठंढी हवा चलती है।

भिक्षुओ ! कोई शाक्यपुत्र (= भिक्षु) ऐसे आत्मभाव प्रतिलाभ को प्राप्त करते हैं।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—अप्रमत्त होकर विहार करूँगा।

§ १२. दुतिय सिगाल सुत्त (१९. १२)

कृतज्ञ होना

श्रावस्ती···।

···इन सियारों में भी कृतज्ञता है, किन्तु कुछ भिक्षु में नहीं है।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये:—मैं कृतज्ञ बनूँगा। अपने प्रति किये गये थोड़े से भी उपकार को नहीं भूलूँगा।

औपम्य संयुत्त समाप्त

नवाँ परिच्छेद

२०. भिक्षु-संयुत्त

§ १. कोलित सुत्त (२०. १)

आर्य मौन-भाव

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में…।

वहाँ आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—हे भिक्षुओ !

"आवुस !" कहकर भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

आयुष्मान् महामौद्गल्यायन बोले—आवुस ! एकान्त में ध्यान करते समय मेरे मन में यह वितर्क उठा—आर्य तूष्णी-भाव, आर्य तूष्णी भाव कहा जाता है; सो यह आर्य तूष्णी-भाव क्या है ?

आवुस ! तब मेरे मन में यह हुआ—भिक्षु वितर्क और विचार के शान्त हो जाने से…द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है। यही आर्य तूष्णी-भाव है।

आवुस ! सो मैं…द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूँ। इस प्रकार विहार करते हुये वितर्क—सहगत संज्ञायें मन में उठती हैं।

आवुस ! तब, भगवान् ने ऋद्धि से मेरे पास आकर यह कहा—हे मौद्गल्यायन, हे ब्राह्मण ! आर्य तूष्णी-भाव में प्रमाद मत करो। आर्य तूष्णी-भाव में चित्त को स्थिर करो,…चित्त को एकाग्र करो, …चित्त को लगा दो।

आवुस ! तब, मैं…द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करने लगा। यदि कोई ठीक में कहे, "गुरु से प्रेरित होकर श्रावक ने महा अभिज्ञा को प्राप्त किया" तो वह ऐसे मेरे ही विषय में कह सकता है।

§ २. उपतिस्स सुत्त (२०. २)

सारिपुत्र को शोक नहीं

श्रावस्ती…।

…सारिपुत्र बोले:—आवुस ! एकान्त में ध्यान करते समय मेरे मन में ऐसा वितर्क उठा—क्या लोक में ऐसा कुछ है, जिसको विपरिणत होते जान मुझे शोकादि उत्पन्न हों ?

आवुस ! तब, मेरे मन में ऐसा हुआ—लोक में ऐसा कुछ नहीं है, जिसको विपरिणत होते जान मुझे शोकादि हों।

ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्द आयुष्मान् सारिपुत्र से बोले—आवुस सारिपुत्र ! क्या बुद्ध को भी विपरिणत होते जान आपको शोकादि न होंगे ?

आवुस आनन्द ! बुद्ध को भी विपरिणत होते जान मुझे शोकादि न होंगे। किन्तु, मेरे मन में ऐसा होगा—ऐसे प्रतापी, महर्द्धिक और महानुभाव, बुद्ध अन्तर्धान मत होवें। यदि भगवान् चिरकाल

तक ठहरें तो वह बहुतों के हित और सुख के लिये, संसार की अनुकम्पा के लिये, तथा देवता और मनुष्यों के अर्थ, हित और सुख के लिये होगा।

सचमुच में आयुष्मान् सारिपुत्र से 'अहंकार, ममंकार, और मानानुशय' चिरकाल से उठ गया था। इसीलिये बुद्ध को भी विपरिणत होते जान आयुष्मान् सारिपुत्र को शोकादि नहीं होते।

§ ३. घट सुत्त (२०. ३)

अग्रश्रावकों की परस्पर स्तुति, आरब्ध-वीर्य

श्रावस्ती···।

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् महामौद्गल्यायन राजगृह के वेलुवन कलन्दक-निवाप में एक ही जगह विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् सारिपुत्र साँझ को ध्यान से उठ जहाँ आयुष्मान् महामौद्गल्यायन थे वहाँ गये और कुशल क्षेम के प्रश्न पूछ कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् महामौद्गल्यायन से बोले:—आवुस मौद्गल्यायन! आपकी इन्द्रियाँ विप्रसन्न हैं; मुख-वर्ण सतेज और परिशुद्ध है। क्या आज आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने शान्त विहार से विहार किया है?

आवुस! आज मैंने ओलारिक विहार से विहार किया है; और धार्मिक कथा भी हुई है।

किसके साथ धार्मिक कथा हुई है?

आवुस! भगवान् के साथ।

आवुस! भगवान् तो बहुत दूर श्रावस्ती में···विहार कर रहे हैं। क्या आप भगवान् के पास ऋद्धि से गये थे, या भगवान् ही आपके पास आये थे?

आवुस! न तो ऋद्धि से मैं भगवान् के पास गया था, और न भगवान् मेरे पास आये थे। किन्तु, जहाँ भगवान् हैं वहाँ तक मुझे दिव्य चक्षु और श्रोत्र उत्पन्न हुये। वैसे ही जहाँ मैं हूँ वहाँ तक भगवान् को दिव्य चक्षु और श्रोत्र उत्पन्न हुये।

आयुष्मान् महामौद्गल्यायन की भगवान् के साथ क्या धर्मकथा हुई?

आवुस! मैंने भगवान् से यह कहा—भन्ते! आरब्धवीर्य, आरब्धवीर्य कहा जाता है; सो आरब्धवीर्य कैसे होता है?

आवुस! ऐसा कहने पर भगवान् हमसे बोले—मौद्गल्यायन! भिक्षु इस प्रकार आरब्धवीर्य हो विहार करता है—त्वचा, नहारू और हड्डी ही भले बच जायँ; शरीर में मांस और लोहित भी भले ही सूख जायँ; किन्तु, पुरुष के उत्साह, वीर्य और पराक्रम से जो पाया जा सकता है उसे बिना पाये विश्राम नहीं लूँगा।···मौद्गल्यायन! इसी तरह आरब्धवीर्य होता है।

आवुस! भगवान् के साथ मेरी यही धर्मकथा हुई।

'आवुस! जैसे पर्वतराज हिमालय के सामने पत्थर कंकड़ों की एक ढेर अदनी है, वैसे ही आयुष्मान् महामौद्गल्यायन के सामने हमारी अवस्था है। आयुष्मान् महामौद्गल्यायन बड़े ऋद्धिवाले, महानुभावी हैं; यदि चाहें तो कल्प भर भी ठहर सकते हैं।

आवुस! जैसे नमक के एक बड़े ढ़ले के सामने नमक का एक छोटा कण अदना है, वैसे ही हम आयुष्मान् सारिपुत्र के सामने हैं।

भगवान् ने भी आयुष्मान् सारिपुत्र की अनेक प्रकार से प्रशंसा की है—

प्रज्ञा में सारिपुत्र की तरह, शील में और उपशम में,
वह भिक्षु भी पारंगत है, यही परम-पद है॥

इस तरह, इन महानागों ने एक दूसरे के सुभाषित का अनुमोदन किया।

§ ४. नव सुत्त (२०. ४)

शिथिलता से निर्वाण की प्राप्ति नहीं

श्रावस्ती ···

उस समय कोई नया भिक्षु भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने पर विहार में पैठकर अल्पोत्सुक चुपचाप बैठ रहता था। भिक्षुओं को चीवर बनाने में सहायता नहीं करता था।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

···भन्ते !···वह भिक्षुओं को चीवर बनाने में सहायता नहीं करता है।

तब, भगवान् ने एक भिक्षु को आमन्त्रित किया—हे भिक्षु ! जाकर उस भिक्षु को मेरी ओर से कहो, "आवुस ! बुद्ध आपको बुला रहे हैं।"

···तब, वह भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे हुये उस भिक्षु से भगवान् बोले—भिक्षु ! क्या तुम सच में···सहायता नहीं करते हो ?

भन्ते ! मैं भी अपना काम करता हूँ।

तब, भगवान् ने उसके चित्त को अपने चित्त से जान भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! तुम इस भिक्षु से मत कहो। यह भिक्षु इसी जन्म में सुख पूर्वक विहार करके चार ध्यानों को जब जैसे चाहता है प्राप्त कर लेता है। यह इसी जन्म में ब्रह्मचर्य के उस परम-फल को जान, साक्षात् कर, और प्राप्त कर विहार करता है, जिसके लिये कुलपुत्र अच्छी तरह घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाते हैं।

भगवान् यह बोले। यह कहकर बुद्ध फिर भी बोले—

> शिथिलता करने से, अल्प शक्ति से,
> यह निर्वाण नहीं प्राप्त होता, सभी दुःखों से छुड़ा देनेवाला,
> यह नवजवान भिक्षु, यह उत्तम पुरुष,
> अन्तिम देह धारण करता है, मार को बिलकुल जीत कर।

§ ५. सुजात सुत्त (२०. ५)

बुद्ध द्वारा सुजात की प्रशंसा

श्रावस्ती···

तब, आयुष्मान् सुजात जहाँ भगवान् थे वहाँ आये।

भगवान् ने आयुष्मान् सुजात को दूर ही से आते देखा। देखकर भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—

भिक्षुओ ! दोनों तरह से कुलपुत्र शोभता है। जो यह अभिरूप = दर्शनीय = प्रासादिक = अत्यन्त सौन्दर्य से युक्त है; वह इसी जन्म में ब्रह्मचर्य के उस परम-फल को जान, साक्षात् कर, और प्राप्त कर विहार करता है, जिसके लिये कुलपुत्र अच्छी तरह घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाते हैं।

···यह कह बुद्ध फिर भी बोले—

> यह भिक्षु शोभता है, ऋजुभूत चित्त से,
> सभी बन्धनों से अलग होकर छूट गया है,

अनुपादान के लिये निर्वाण पा लिया है,
अन्तिम देह धारण करता है, मार को बिल्कुल जीतकर ॥

§ ६. भद्दिय सुत्त (२०. ६)

शरीर से नहीं, ज्ञान से बड़ा

श्रावस्ती…।

तब, आयुष्मान् लकुण्टक भद्दिय जहाँ भगवान् थे वहाँ आये।

भगवान् ने आयुष्मान् लकुण्टक भद्दिय को दूर ही से आते देखा। देखकर भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ! इस छोटे, कुरूप, मन मारे हुये भिक्षु को आते देखते हो?

हाँ भन्ते!

भिक्षुओ! यह भिक्षु बड़ी ऋद्धिवाला, बड़ा तेजस्वी है। जिन समापत्तियों को इस भिक्षु ने पा लिया है वे सुलभ नहीं हैं। यह इसी जन्म में ब्रह्मचर्य के उस अन्तिम फल को…।

यह कहकर बुद्ध फिर भी बोले—

हंस, क्रौंच, और मयूर; हाथी और चितकबरे मृग,
सभी सिंह से डरते हैं, शरीर में कोई तुल्यता नहीं ॥
इसी प्रकार, मनुष्यों में, कम उम्र का भी यदि प्रज्ञावान् हो,
तो वह वैसे ही महान् होता है, शरीर से कोई बालक नहीं होता ॥

§ ७. विसाख सुत्त (२०. ७)

धर्म का उपदेश करे

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् वैशाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् विसाख पाञ्चालपुत्र ने उपस्थानशाला में भिक्षुओं को धर्मोपदेश कर दिखा दिया, बता दिया…भद्र वचनों से, उचित रीति से, बिना किसी कर्कशता से, परमार्थ को बताते हुये, विषय पर ही कहते हुये।

तब, भगवान् साँझ को ध्यान से उठ जहाँ वह उपस्थानशाला थी वहाँ गये, और बिछे आसन पर बैठ गये।

बैठकर भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ! उपस्थानशाला में भिक्षुओं को कौन धर्मोपदेश कर रहा था?

भन्ते! आयुष्मान् विसाख पाञ्चालपुत्र…।

तब, भगवान् ने आयुष्मान् विसाख को आमन्त्रित किया:—ठीक है, विसाख! तुमने बड़ा अच्छा किया कि भिक्षुओं को धर्मोपदेश कर रहे थे।

…यह कहकर बुद्ध फिर भी बोले—

नहीं कहने से भी लोग जान लेते हैं, मूर्खों में मिले हुये पण्डित को,
उसके कहने पर जान लेते हैं, अमृत-पद का उपदेश करते हुये ॥
धर्म को कहे, प्रकाशित करे, ऋषियों के ध्वजा को धारण करे,
सुभाषित ही ऋषियों का ध्वजा है, धर्म ही उनका ध्वजा है ॥

§ ८. नन्द सुत्त (२०. ८)

नन्द को उपदेश

श्रावस्ती…।

तब, भगवान् के मौसेरे भाई आयुष्मान् नन्द साँटे और सिज़िल किये चीवर को पहन, आँख में अञ्जन लगा, सुन्दर पात्र लिये जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् नन्द से भगवान् बोले—नन्द! श्रद्धापूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रजित हुये तुम जैसे कुलपुत्र के लिये यह उचित नहीं कि ऐसे साँटे और सिज़िल किये चीवर को पहनो, आँख में अञ्जन लगाओ, और सुन्दर पात्र धारण करो।

नन्द! तुम्हें तो उचित था कि आरण्य में रहते; पिण्ड-पातिक और पांसुकूलिक हो कामों में अनपेक्षित रहते।

…यह कहकर बुद्ध फिर भी बोले:—

कब मैं नन्द को देखूँगा,
आरण्य में रहते, पांसुकूलिक,
भिक्षा से जीवन निबाहते,
कामों में अनपेक्षित!

तब, उसके बाद आयुष्मान् नन्द आरण्य में रहने लगे; पिण्डपातिक और पांसुकूलिक हो गये कामों में अनपेक्षित होकर विहार करने लगे।

§ ९. तिस्स सुत्त (२०. ९)

नहीं बिगड़ना उत्तम

श्रावस्ती…।

तब भगवान् के फुफेरे भाई आयुष्मान् तिस्स जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये—दुःखी, उदास, आँसू टपकाते।

तब, भगवान् आयुष्मान् तिस्स से बोले:—तिस्स! तुम एक ओर बैठे दुःखी, उदास और आँसू क्यों टपका रहे हो?

भन्ते! भिक्षुओं ने आपस में मिलकर मेरी नकल की है, और मुझे चनाया है।

तिस्स! तुम तो भले ही दूसरों को कहना चाहो, किन्तु उनकी सह नहीं सकते।

तिस्स! श्रद्धापूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रजित हुये तुम जैसे कुलपुत्र के लिये यह उचित नहीं कि अपने तो भले दूसरों को कहना चाहो, किन्तु उनकी सह नहीं सको! यदि तुम दूसरों को कहते हो तो उनकी तुम्हें सहना भी चाहिये।

…यह कह कर बुद्ध फिर भी बोले:—

बिगड़ते क्यों हो, मत बिगड़ो,
तिस्स! तुम्हारा नहीं बिगड़ना ही अच्छा है,
क्रोध, मान, और माया को दबाने ही के लिये,
तिस्स! तुम ब्रह्मचर्य का आचरण करते हो॥

§ १०. थेरनाम सुत्त (२०. १०)

अकेला रहने वाला कौन ?

एक समय भगवान् राजगृह में···।

उस समय स्थविर नाम का कोई भिक्षु अकेला रहता था और अकेले रहने का प्रशंसक था। वह अकेला ही गाँव में भिक्षाटन के लिये पैठता था; अकेला ही लौटता था, अकेला ही एकान्त में बैठता था, और अकेला ही चंक्रमण करता था।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ कर उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा:—भन्ते ! यह भिक्षु···अकेला ही चंक्रमण करता है।

तब भगवान् ने एक भिक्षु को आमन्त्रित किया···।

एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् स्थविर को भगवान् बोले:—क्या सच है कि···तुम अकेले ही रहते और उसकी प्रशंसा करते हो ?

हाँ भन्ते !

स्थविर ! तुम अकेला ही कैसे रहते और उसकी प्रशंसा किया करते हो ?

भन्ते ! मैं अकेला ही गाँव में भिक्षाटन के लिये पैठता हूँ, अकेला ही चंक्रमण करता हूँ। भन्ते इस तरह मैं अकेला रहता हूँ और अकेले रहने की प्रशंसा करता हूँ।

स्थविर ! इसे मैं अकेला रहना नहीं बताता। यथार्थ में अकेले कैसे रहा जाता है उसे सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ।···

स्थविर ! जो बीत गया वह प्रहीण हुआ; जो अभी अनागत है उसकी बात छोड़ो; वर्तमान में जो छन्द-राग है उसे जीत लो। स्थविर ! ऐसे ही, यथार्थ में अकेला रहा जाता है।

···यह कह कर बुद्ध फिर भी बोले:—

> सर्वाभिभू, सर्वविद्, पण्डित,
> सभी धर्मों में अनुपलिप्त,
> सर्वत्यागी, तृष्णा के क्षीण हो जाने से विमुक्त;
> ऐसे ही नर को मैं अकेला रहने वाला कहता हूँ॥

§ ११. कप्पिन सुत्त (२०. ११)

आयुष्मान् कप्पिन के गुणों की प्रशंसा

श्रावस्ती···।

तब, आयुष्मान् महाकप्पिन जहाँ भगवान् थे वहाँ आये।

भगवान् ने आयुष्मान् कप्पिन को दूर ही से आते देखा। देख कर भिक्षुओं को आमन्त्रित किया:—भिक्षुओ ! तुम इस गोरे, पतले, ऊँचे नाक वाले भिक्षु को आते देखते हो ?

हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! यह भिक्षु बड़ी ऋद्धिवाला, बड़ा अनुभाव वाला है। जिन समापत्तियों को इसने पा लिया है वे सुलभ नहीं हैं। इसने ब्रह्मचर्य के उस अन्तिम फलको···।

···यह कह कर भगवान् फिर भी बोले:—

> मनुष्यों में क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं, जो गोत्र का ख्याल करने वाले हैं।

विद्याचरण से सम्पन्न, देव-मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं ॥
दिनमें सूर्य तपता है, रात में चाँद शोभता है,
सन्नद्ध हो क्षत्रिय तपता है, ब्राह्मण ध्यान से तपता है,
और, सदा ही दिनरात, अपने तेज से बुद्ध तपते हैं ॥

§ १२. सहाय सुत्त (२०. १२)

दो ऋद्धिमान भिक्षु

श्रावस्ती ''।

तब, आयुष्मान् महाकप्पिन के दो अनुचर मित्र भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये।

भगवान् ने उन दोनों को दूर ही से आते देखा। देख कर भिक्षुओं को आमन्त्रित किया :—भिक्षुओ! इन दोनों को आते देखते हो?

हाँ भन्ते!

ये दोनों भिक्षु बड़ी ऋद्धिवाले और बड़े अनुभाव वाले हैं...।

यह कह कर भगवान् फिर भी बोले :—

ये भिक्षु आपस में मित्र हैं, चिरकाल से साथी हैं,
सद्धर्म को उनने पा लिया है, कप्पिन के द्वारा,
बुद्ध के धर्म में सिखाये गये हैं, जो आर्य प्रवेदित है,
अन्तिम देह को धारण करते हैं, मार को बिल्कुल जीत कर ॥

भिक्षु-संयुत्त समाप्त ।

निदान वर्ग समाप्त

तीसरा खण्ड

खन्ध वर्ग

पहला परिच्छेद

२१. खन्ध-संयुत्त

मूल पण्णासक

पहला भाग

नकुलपिता वर्ग

§ १. नकुलपिता सुत्त (२१. १. १. १)

चित्त का आतुर न होना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् भर्ग (देश) में सुंसुमारगिरि के भेसकलावन मृगदाय में विहार करते थे।

तब, गृहपति नकुलपिता जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ गृहपति नकुलपिता भगवान् से बोला—भन्ते ! मैं जीर्ण = वृद्ध = महल्लक = पुरनिया = आयु-प्राप्त = हारे शरीर वाला हूँ, न जाने कब मर जाऊँ। भन्ते ! मुझे भगवान् और मनो-भावनीय भिक्षुओं के दर्शन प्राप्त करने का बराबर अवकाश नहीं मिलता है। भन्ते ! भगवान् मुझे उप-देश दें, जो चिरकाल तक मेरे हित और सुख के लिये हो।

गृहपति, सच है। तुम्हारा शरीर हार गया है, तुम्हारी आयु पुर गई है, तुम जीर्ण हो गये हो। गृहपति ! जो ऐसे शरीर को धारण करते मुहूर्त भर भी आरोग्य की आशा करता है वह मूर्ख छोड़ कर और क्या है ? गृहपति ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—मेरा शरीर भले ही आतुर हो जाय, किन्तु चित्त आतुर होने नहीं पायगा।

तब, गृहपति नकुलपिता भगवान् के कहे का अभिनन्दन और अनुमोदन कर, आसन से उठ, भगवान् का अभिवादन और प्रदक्षिणा कर, जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ गया, और उनका अभि-वादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे गृहपति नकुलपिता से आयुष्मान् सारिपुत्र बोले—गृहपति ! तुम्हारी इन्द्रियाँ प्रसन्न दीख रही हैं, मुखवर्ण सतेज और परिशुद्ध है। क्या तुम्हें आज भगवान् से धर्मकथा सुनने को मिली है ?

भला और क्या भन्ते ! अभी ही मैं भगवान् के धर्मोपदेशरूपी अमृत से अभिषिक्त किया गया हूँ।…भगवान् ने कहा—गृहपति ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—मेरा शरीर भले ही आतुर हो जाय, किन्तु चित्त आतुर होने नहीं पायगा।

गृहपति ! इसके आगे की बात भगवान् से पूछने को तुम्हें नहीं सूझी ?—भन्ते ! कैसे शरीर के आतुर होने पर चित्त आतुर होता है ? भन्ते ! कैसे शरीर के आतुर होने पर चित्त आतुर नहीं होता है ?

भन्ते ! मैं बड़ी दूर से भी इस कहे गये के अर्थ को समझने के लिये आयुष्मान् सारिपुत्र के पास आऊँ। अच्छा हो, आयुष्मान् सारिपुत्र ही इसका अर्थ बतावें।

गृहपति ! तो सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, गृहपति नकुलपिता ने आयुष्मान् सारिपुत्र को उत्तर दिया।

आयुष्मान् सारिपुत्र बोले:—गृहपति ! कैसे शरीर के आतुर हो जाने पर चित्त भी आतुर हो जाता है ? गृहपति ! कोई पृथक्जन, अविद्वान्, आर्यों को न देखने वाला, आर्यधर्म को नहीं जानने वाला, आर्य-धर्म में विनीत नहीं हुआ, सत्पुरुषों को न देखनेवाला, सत्पुरुषों के धर्म को नहीं जाननेवाला, सत्पुरुषों के धर्म में विनीत नहीं हुआ, रूप को अपनापन की दृष्टि से देखता है; या रूपवान् को अपना; या अपने में रूप को; या रूप में अपने को देखता है। मैं रूप हूँ; मेरा रूप है—ऐसा मन में लाता है। वह जिस रूप को अपने में और अपना समझता है वह विपरिणत हो जाता है, बदल जाता है। उस रूप के विपरिणत और अन्यथा हो जाने से उसे शोक, रोना-पीटना, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास होते हैं।

वेदना को अपनापन की दृष्टि से देखता है···।

संज्ञा···; संस्कारों को···; विज्ञान को अपनापन की दृष्टि से देखता है; या विज्ञान को अपना; या अपने में विज्ञान को; या विज्ञान में अपने को देखता है। मैं विज्ञान हूँ; मेरा विज्ञान है—ऐसा मन में लाता है। वह जिस विज्ञान को अपने में और अपना समझता है वह विपरिणत हो जाता है, अन्यथा हो जाता है। उस विज्ञान के विपरिणत और अन्यथा हो जाने से उसे शोक, रोना-पीटना, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास होते हैं।

गृहपति ! इसी तरह, शरीर के आतुर हो जाने पर चित्त भी आतुर हो जाता है।

गृहपति ! कैसे शरीर के आतुर हो जाने पर चित्त आतुर नहीं होता है ?

गृहपति ! कोई विद्वान् आर्यश्रावक, आर्यों को देखने वाला, आर्यों के धर्म को जानने वाला, आर्यों के धर्म में सुविनीत,···सत्पुरुषों के धर्म में सुविनीत होता है। वह रूप को अपनापन की दृष्टि से नहीं देखता है; या रूप को अपना; या अपने में रूप को; या रूप में अपने को नहीं देखता है। मैं रूप हूँ; मेरा रूप है—ऐसा मन में नहीं लाता है। तब, उस रूप के विपरिणत और अन्यथा हो जाने से उसे शोकादि नहीं होते।

वेदना को···; संज्ञा को···; संस्कारों को···; विज्ञान को अपनापन की दृष्टि से नहीं देखता है···। तब, उस विज्ञान के विपरिणत और अन्यथा हो जाने से उसे शोकादि नहीं होते।

गृहपति ! इसी तरह, शरीर के आतुर हो जाने पर चित्त आतुर नहीं होता है।

आयुष्मान् सारिपुत्र यह बोले। गृहपति नकुलपिता ने सन्तुष्ट होकर आयुष्मान् सारिपुत्र के कहे का अभिनन्दन किया।

§ २. देवदह सुत्त (२१. १. १. २)

गुरु की शिक्षा, छन्द-राग का दमन

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् शाक्यों के देश में देवदह[1] नामक शाक्यों के कस्बे में विहार करते थे।

तब, कुछ पश्चिम की ओर जाने वाले भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, वे भिक्षु भगवान् से बोले:—भन्ते ! हम पश्चिम देश में जाना चाहते हैं, पश्चिम देश में निवास करने की हमारी इच्छा है।

---

१. राजाओं के मंगलह्रद के पास बसा हुआ नगर 'देवदह' कहा जाता था और आसपास का निगम भी इसी नाम से प्रसिद्ध था—अट्ठकथा।

भिक्षुओ ! सारिपुत्र से तुमने छुट्टी ले ली है ?

नहीं भन्ते ! सारिपुत्र से हमने छुट्टी नहीं ली है।

भिक्षुओ ! सारिपुत्र से छुट्टी ले लो। सारिपुत्र भिक्षुओं में पण्डित है, ब्रह्मचारियों का अनुग्राहक है।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र भगवान् के पास ही किसी एलगलो[2] नामक गुल्म के नीचे बैठे थे।

तब, वे भिक्षु भगवान् के भाषित का अनुमोदन और अभिनन्दन कर, आसन से उठ भगवान् को अभिवादन और प्रदक्षिणा कर, जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ गये। जाकर, आयुष्मान् सारिपुत्र से कुशल क्षेम के प्रश्न पूछ एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, वे भिक्षु आयुष्मान् सारिपुत्र से बोले:—भन्ते ! हम पश्चिम देश में जाना चाहते हैं, पश्चिम देश में निवास करने की हमारी इच्छा है। हमने बुद्ध से छुट्टी ले ली है।

आवुस ! नाना देश में घूमने वाले भिक्षु को तरह तरह के प्रश्न करने वाले मिलते हैं—क्षत्रिय पण्डित भी, ब्राह्मण पण्डित भी, गृहस्थ पण्डित भी, श्रमण पण्डित भी। आवुस ! पण्डित मनुष्य पूछेंगे, "आयुष्मानों के गुरु की क्या शिक्षा है, क्या उपदेश है ?" आयुष्मानों ने क्या धर्म का अच्छी तरह अध्ययन कर लिया है, अच्छी तरह ग्रहण कर लिया है, अच्छी तरह मनन कर लिया है, अच्छी तरह धारण कर लिया है—

जिससे आप भगवान् के धर्म को ठीक-ठीक कह सकें, कुछ उलट-पुलट न कर दें, धर्मानुकूल ही बोलें, बातचीत करने में किसी सदोष स्थान पर नहीं पहुँच जायँ ?

आवुस ! इस कहे गये का अर्थ जानने के लिये हम दूर से भी आयुष्मान् सारिपुत्र के पास आवें। इसका अर्थ आप आयुष्मान् सारिपुत्र ही कहते तो अच्छा था।

आवुस ! तो सुनें, अच्छी तरह मन लगावें, मैं कहता हूँ।

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह, भिक्षुओं ने आयुष्मान् सारिपुत्र को उत्तर दिया।

आयुष्मान् सारिपुत्र बोले:—आवुस ! पण्डित मनुष्य आप से पूछेंगे, "आयुष्मानों के गुरु की क्या शिक्षा है, क्या उपदेश है ?" आवुस ! ऐसा पूछे जाने पर आप यों उत्तर देंगे—छन्दराग को दमन करना हमारे गुरु की शिक्षा है।

आवुस ! ऐसा उत्तर देने पर भी, ऐसे पण्डित लोग हैं जो आगे का प्रश्न पूछेंगे, "आयुष्मानों के गुरु छन्दराग को कैसे दमन करने का उपदेश देते हैं ?" आवुस ! ऐसा पूछे जाने पर आप यों उत्तर देंगे—रूप में छन्दराग का दमन करना हमारे गुरु की शिक्षा है; वेदना में ···; संज्ञा में ···; संस्कारों में ···; विज्ञान में ···।

आवुस ! ऐसा उत्तर देने पर भी ऐसे पण्डित लोग हैं जो आगे का प्रश्न पूछेंगे, "आयुष्मानों के गुरु रूप में क्या दोष देखकर उसमें छन्दराग को दमन करने का उपदेश देते हैं ?" वेदना ···; संज्ञा ···; संस्कार ···; विज्ञान ···। आवुस ! ऐसा पूछे जाने पर आप यों उत्तर देंगे—जिसको रूप में राग लगा हुआ है, छन्द लगा हुआ है, प्रेम लगा हुआ है, प्यास लगी हुई है, लगन लगी हुई है, तृष्णा लगी हुई है, उसे रूप के विपरिणत और अन्यथा हो जाने से शोकादि उत्पन्न होते हैं। वेदना ···; संज्ञा ···; संस्कार ···; विज्ञान ···। हमारे गुरु रूप में इसी दोष को देखकर उसमें छन्दराग को दमन करने

२. वृक्षों का मण्डप। यह मण्डप पानी वाले प्रदेश में था। उसकी चारों ईंटों का एक मंडपाकार बना दिया गया था, जो बड़ा ही शीतल था—अट्ठकथा।

का उपदेश देते हैं। वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान में छन्दराग को दमन करने का उपदेश देते हैं।

आवुस ! ऐसा उत्तर देने पर भी ऐसे पण्डित हैं जो आगे का प्रश्न पूछेंगे, "आयुष्मानों के गुरु ने क्या लाभ देखकर रूप में छन्द-राग को दमन करने का उपदेश दिया है ? वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···?" आवुस ! ऐसा पूछे जाने पर आप यों उत्तर देंगे—रूप में जो विगतराग, विगतछन्द, विगतप्रेम, विगतपिपास, विगतपरिलाह, और विगततृष्ण हैं, उसे रूप के विपरिणत और अन्यथा हो जाने से शोकादि नहीं होते। वेदना···; संज्ञा···; संस्कार; विज्ञान···। इसी लाभ को देखकर, हमारे गुरु ने रूप में, वेदना में, संज्ञा में, संस्कारों में, विज्ञान में छन्दराग को दमन करने का उपदेश दिया है।

आवुस ! अकुशल धर्मों के साथ विहार करनेवाला इसी जन्म में यदि सुख से विहार करता, उसे विघात, परिलाह या उपायास नहीं होते; शरीर छूट कर मरने के बाद उसकी गति अच्छी होती; तो भगवान् अकुशल धर्मों का प्रहाण नहीं बताते।

आवुस ! क्योंकि अकुशल धर्मों के साथ विहार करने से इसी जन्म में दुःख से विहार करता है, उसे विघात, परिलाह और उपायास होते हैं, तथा शरीर छूट कर मरने के बाद दुर्गति को प्राप्त होता है, इसी से भगवान् ने अकुशल धर्मों का प्रहाण बताया है।

आवुस ! कुशल धर्मों के साथ विहार करने से यदि इसी जन्म में दुःख से विहार करता···तो भगवान् कुशल धर्मों का सञ्चय करना नहीं बताते।

आवुस ! क्योंकि कुशल धर्मों के साथ विहार करने से इसी जन्म में सुख से विहार करता है, उसे विघातादि नहीं होते, तथा शरीर छूट कर मरने के बाद उसकी गति अच्छी होती है, इसी से भगवान् ने कुशल-धर्मों का सञ्चय करना बताया है।

आयुष्मान् सारिपुत्र यह बोले। संतुष्ट होकर उन भिक्षुओं ने आयुष्मान् सारिपुत्र के कहे का अभिनन्दन किया।

§ ३. पठम हालिद्दिकानि सुत्त (२१. १. १. ३)

मागन्दिय-प्रश्न की व्याख्या

ऐसा मैंने सुना।

एक समय आयुष्मान् महाकात्यायन अवन्ती में कुररघर के ऊँचे पर्वत पर विहार करते थे।

तब, गृहपति हालिद्दिकानि जहाँ आयुष्मान् महाकात्यायन थे वहाँ आया, और उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ, गृहपति हालिद्दिकानि आयुष्मान् महाकात्यायन से बोला—भन्ते ! भगवान् ने अट्ठकवर्गिक मागन्दिय-प्रश्न में कहा है—

> घर को छोड़ बेघर घूमनेवाला,
> मुनि गाँव में लगाव-बझाव न करते हुये,
> कामों से रिक्त, कहीं अपनापन न जोड़,
> किसी मनुष्य से कुछ झंझट नहीं करता है॥

भन्ते ! भगवान् ने जो यह संक्षेप से कहा है उसका विस्तार-पूर्वक कैसे अर्थ समझना चाहिये ?

गृहपति ! रूपधातु विज्ञान का घर है। रूपधातु के रूप में बँधा हुआ विज्ञान घर में रहनेवाला कहा जाता है। गृहपति ! वेदनाधातु विज्ञान का घर है। वेदनाधातु के राग में बँधा हुआ विज्ञान घर में रहने वाला कहा जाता है। गृहपति ! संज्ञाधातु विज्ञान का घर है। संज्ञाधातु के राग में बँधा हुआ

विज्ञान घर में रहने वाला कहा जाता है। गृहपति ! संस्कारधातु विज्ञान का घर है। संस्कारधातु के राग में बँधा हुआ विज्ञान घर में रहने वाला कहा जाता है।

गृहपति ! इसी तरह कोई घर में रहने वाला कहा जाता है।

गृहपति ! कोई बेघर कैसे होता है ?

गृहपति ! जो रूपधातु के प्रति छन्द=राग=नन्दि=तृष्णा=उपादान तथा चित्त के अधिष्ठान, अभिनिवेश और अनुशय हैं, सभी बुद्ध में प्रहीण=उच्छिन्नमूल=सिर कटे तालवृक्ष के ऐसा=मिटे=भविष्य में कभी उठ न सकने वाले हुये रहते हैं। इसीलिये, बुद्ध बेघर कहे जाते हैं।

गृहपति ! जो वेदनाधातु के प्रति···; संज्ञाधातु के प्रति···; संस्कारधातु के प्रति···। इसीलिये बुद्ध बेघर कहे जाते हैं।

गृहपति ! ऐसे ही कोई बेघर होता है।

गृहपति ! कैसे कोई निकेतसारी होता है ?

गृहपति ! जो रूप निमित्त के निकेत में फँसकर बँध गया है वह निकेतसारी कहा जाता है। जो शब्दनिमित्त ··; गन्धनिमित्त ···; रसनिमित्त ···; स्पर्शनिमित्त ···; धर्मनिमित्त ···।

गृहपति ! कैसे कोई अनिकेतसारी होता है ?

गृहपति ! जो रूप निमित्त के निकेत में फँसकर बँध जाता है, वह बुद्ध में प्रहीण=उच्छिन्नमूल=सिर कटे तालवृक्ष के ऐसा=मिटे=भविष्य में कभी उठ न सकने वाले हुये रहते हैं। इसीलिये, बुद्ध अनिकेतसारी कहे जाते हैं। शब्द···; गन्ध···; रस···; स्पर्श···; धर्म···।

गृहपति ! गाँव में लगाव-बझाव करने वाला कैसे होता है ?

गृहपति ! कोई (भिक्षु) गृहस्थों से संसृष्ट होकर विहार करता है; उनके आनन्द में आनन्द मनाता है; उनके शोक में शोकित होता है; उनके सुख-दुःख में सुखी-दुःखी होता है; उनके काम-काज आ पड़ने पर अपने भी जुट जाता है। गृहपति ! इसी तरह, गाँव में लगाव-बझाव करने वाला होता है।

गृहपति ! कैसे गाँव में लगाव-बझाव करने वाला नहीं होता है ?

गृहपति ! कोई (भिक्षु) गृहस्थों से असंसृष्ट होकर विहार करता है; उनके आनन्द में आनन्द नहीं मनाता; उनके शोक में शोकित नहीं होता; उनके सुख-दुःख में सुखी-दुःखी नहीं होता; उनके काम-काज आ पड़ने पर अपने भी जुट नहीं जाता है। गृहपति ! इसी तरह, गाँव में लगाव-बझाव करने वाला नहीं होता है।

गृहपति ! कैसे कोई कामों से अरिक्त होता है ?

गृहपति ! कोई कामों में अविगतराग होता है, अविगतछन्द=अविगतप्रेम=अविगतपिपास=अविगत-परिलाह=अविगततृष्ण होता है। गृहपति ! इसी तरह, कोई कामों से अरिक्त होता है।

गृहपति ! कैसे कोई कामों से रिक्त होता है ?

गृहपति ! कोई कामों में विगतराग होता है; विगतछन्द=विगतप्रेम=विगतपिपास=विगतपरिलाह=विगततृष्ण होता है। गृहपति ! इसी तरह कोई कामों से रिक्त होता है।

गृहपति ! कैसे कोई कहीं अपनापन जोड़ता है ?

गृहपति ! किसी के मन में ऐसा होता है—अनागतकाल में मैं इस रूप का होऊँ, इस वेदना··· विज्ञान का होऊँ। गृहपति ! इसी तरह कोई अपनापन जोड़ता है।

गृहपति ! कैसे कोई कहीं अपनापन नहीं जोड़ता है ?

गृहपति ! किसी के मन में ऐसा नहीं होता है—अनागतकाल में मैं इस रूप का होऊँ, इस वेदना···विज्ञान का होऊँ। गृहपति ! इसी तरह, कोई अपनापन नहीं जोड़ता है।

गृहपति ! कैसे कोई किसी मनुष्य से झंझट करता है ?

गृहपति ! कोई इस प्रकार कहता है—तुम इस धर्मविनय को नहीं जानते हो, मैं इस धर्मविनय को जानता हूँ, तुम इस धर्मविनय को क्या जानोगे ! तुम मिथ्या मार्ग पर आरूढ़ हो, मैं सुमार्गपर आरूढ़ हूँ। जो पहले कहना चाहिये था उसे पीछे कहा; जो पीछे कहना चाहिये था उसे पहले ही कह दिया। मेरा कहना विषयानुकूल है, तुम्हारा कहना तो विषयान्तर हो गया। जो तुमने इतना कहा सभी उलट गया। तुम्हारे विरुद्ध तर्क दे दिया गया है; अब, छूटने की कोशिश करो। तुम तो पकड़ा गये, यदि ताकत है तो निकलो। गृहपति ! इसी तरह, कोई किसी मनुष्य से झंझट करता है।

गृहपति ! कैसे कोई किसी मनुष्य से झंझट नहीं करता है ?

गृहपति ! कोई इस प्रकार नहीं कहता है—तुम इस धर्मविनय को नहीं जानते हो, मैं इस धर्मविनय को जानता हूँ···। गृहपति ! इसी तरह, कोई किसी मनुष्य से झंझट नहीं करता है।

गृहपति ! यही भगवान् ने अष्टकवर्गिक मागन्दिय प्रश्न में कहा है—

घर को छोड़ बेघर घूमने वाला,
मुनि गाँव में लगाव-बझाव न करते हुये,
कामों से रिक्त, कहीं अपनापन न जोड़,
किसी मनुष्य से कुछ झंझट नहीं करता है।

गृहपति ! भगवान् ने जो यह संक्षेप से कहा है उसका विस्तारपूर्वक ऐसे ही अर्थ समझना चाहिये।

§ ४. दुतिय हालिद्दिकानि सुत्त (२१. १. १. ४)

शक्र-प्रश्न की व्याख्या

ऐसा मैंने सुना।

एक समय आयुष्मान् महाकात्यायन अवन्ती में कुररघर के ऊँचे पर्वत पर विहार करते थे।

तब," एक ओर बैठ, गृहपति हालिद्दिकानि आयुष्मान् महाकात्यायन से बोला:—भन्ते ! भगवान् ने यह शक्र-प्रश्न में कहा है:—

"जो श्रमण या ब्राह्मण तृष्णा के क्षय से विमुक्त हो गये हैं,
उन्होंने अपना कर्तव्य पूरा कर लिया है, उन्होंने परम—
योग-क्षेम पा लिया है, वे ही सत्यतः ब्रह्मचारी हैं,
उन्होंने उत्तम स्थान को पा लिया है, तथा देवताओं और,
मनुष्यों में वे ही श्रेष्ठ हैं।"

भन्ते ! भगवान् के इस संक्षेप से कहे गये का विस्तारपूर्वक अर्थ कैसे समझना चाहिये।

गृहपति ! रूपधातु के प्रति जो छन्द=राग=आनन्द लहना=तृष्णा=उपादान, तथा चित्त के अधिष्ठान, अभिनिवेश और अनुशय हैं, उनके क्षय=विराग=निरोध=त्याग से चित्त विमुक्त कहा जाता है।

गृहपति ! वेदना-धातुके प्रति···; संज्ञा-धातु··; संस्कार-धातु···; विज्ञान-धातु···।

गृहपति ! यही भगवान् ने शक्र-प्रश्न में कहा है जो श्रमण या ब्राह्मण तृष्णा के क्षयसे···।"

गृहपति ! भगवान् के इस संक्षेप से कहे गये का विस्तारपूर्वक अर्थ ऐसे ही समझना चाहिये।

§ ५. समाधि सुत्त (२१. १. १. ५)

समाधि का अभ्यास

ऐसा मैंने सुना।

···भिक्षुओ ! समाधि का अभ्यास करो। भिक्षुओ ! समाहित होकर भिक्षु यथार्थ को जान लेता।

है। किसके यथार्थ को जान लेता है? रूप के उगने और डूबने के। वेदना के उगने और डूबने के। संज्ञा के···। संस्कारों के···। विज्ञान के···।

भिक्षुओ! रूप का उगना क्या है? वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान का उगना क्या है?

भिक्षुओ! (कोई) आनन्द मनाता है, आनन्द के शब्द कहता है, उसमें डूब जाता है। किससे आनन्द मनाता है···?

रूप से आनन्द मनाता है, आनन्द के शब्द कहता है, उसमें डूब जाता है। इससे वह रूप में आसक्त हो जाता है। रूप में जो यह आसक्त होना है वही उपादान है। उस उपादान के प्रत्यय से भव होता है। भव के प्रत्यय से जाति होती है। जाति के प्रत्यय से जरा, मरण···होते हैं। इस तरह सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है।

वेदना से···; संज्ञा से···; संस्कारों से···; विज्ञान से आनन्द मनाता है···। इस तरह सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है।

भिक्षुओ! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान यही उगना है।

भिक्षुओ! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान का डूब जाना क्या है?

भिक्षुओ! (कोई) न तो आनन्द मनाता है, न आनन्द के शब्द कहता है, और न उसमें डूब जाता है। किससे न तो आनन्द मनाता है···?

रूप से न तो आनन्द मनाता है, न आनन्द के शब्द कहता है, और न उसमें डूब जाता है। इससे रूप में, उसकी जो आसक्ति है वह निरुद्ध हो जाती है। आसक्ति के निरुद्ध हो जाने से उपादान नहीं होता। उपादान के निरुद्ध हो जाने से भव नहीं होता।···। इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

वेदना से···; संज्ञा से···; संस्कार से···; विज्ञान से···। इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक जाता है।

भिक्षुओ! यही रूप का डूब जाना है, वेदना का डूब जाना है, संज्ञा का डूब जाना है, संस्कारों का डूब जाना है, विज्ञान का डूब जाना है।

§ ६. पटिसल्लान सुत्त (२१. १. १. ६)

ध्यान का अभ्यास

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ! ध्यान के अभ्यास में लग जाओ। भिक्षुओ! ध्यानस्थ हो भिक्षु यथार्थ को जान लेता है। किसके यथार्थ को जान लेता है?

रूपके उगने और डूबने के यथार्थ को। वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

[ऊपर वाले सूत्र के समान]

§ ७. पठम उपादान परितस्सना सुत्त (२१. १. १. ७)

उपादान और परितस्सना

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ! उपादान और परितस्सना के विषय में उपदेश करूँगा। अनुपादान और अपरितस्सना के विषय में उपदेश करूँगा। उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें लाओ, मैं कहता हूँ।

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

सके यथार्थ को जान लेता है ? रूप के उगने और डूबने के। वेदना के उगने और डूबने के। ···। संस्कारों के···। विज्ञान के···।

भिक्षुओ ! रूप का उगना क्या है ? वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान का उगना ?

भिक्षुओ ! (कोई) आनन्द मनाता है, आनन्द के शब्द कहता है, उसमें डूब जाता है। किससे मनाता है··· ?

रूप से आनन्द मनाता है, आनन्द के शब्द कहता है, उसमें डूब जाता है; इससे वह रूप में हो जाता है। रूप में जो यह आसक्त होना है वही उपादान है। उस उपादान के प्रत्यय से भव है। भव के प्रत्यय से जाति होती है। जाति के प्रत्यय से जरा, मरण···होते हैं। इस तरह सारा मूह उठ खड़ा होता है।

वेदना से···; संज्ञा से···; संस्कारों से···; विज्ञान से आनन्द मनाता है···। इस तरह सारा मूह उठ खड़ा होता है।

क्षुओ ! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान यही उगना है :

भिक्षुओ ! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान का डूब जाना क्या है ?

भिक्षुओ ! (कोई) न तो आनन्द मनाता है, न आनन्द के शब्द कहता है, और न उसमें डूब है। किससे न तो आनन्द मनाता है··· ?

रूप से न तो आनन्द मनाता है, न आनन्द के शब्द कहता है, और न उसमें डूब जाता है। रूप में, उसकी जो आसक्ति है वह निरुद्ध हो जाती है। आसक्ति के निरुद्ध हो जाने से उपादान ता। उपादान के निरुद्ध हो जाने से भव नहीं होता।···। इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक है।

वेदना से···; संज्ञा से···; संस्कार से···; विज्ञान से···। इस तरह, सारा दुःख-समूह रुक है।

भिक्षुओ ! यही रूप का डूब जाना है, वेदना का डूब जाना है, संज्ञा का डूब जाना है, संस्कारों का ना है, विज्ञान का डूब जाना है।

§ ६. पटिसल्लान सुत्त (२१. २. १. ६)

ध्यान का अभ्यास

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! ध्यान के अभ्यास में लग जाओ। भिक्षुओ ! ध्यानस्थ ही भिक्षु यथार्थ को जान लेता सके यथार्थ को जान लेता है ?

रूपके उगने और डूबने के यथार्थ को। वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

[ऊपर वाले सूत्र के समान]

§ ७. पठम उपादान परितस्सना सुत्त (२१. २. १. ७)

उपादान और परितस्सना

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! उपादान और परितस्सना के विषय में उपदेश करूँगा। अनुपादान और अपरितस्सना य में उपदेश करूँगा। उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें लाओ, मैं कहता हूँ।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

गृहपति ! कोई इस प्रकार कहता है—तुम इस धर्मविनय को नहीं जानते हो, मैं इस जानता हूँ, तुम इस धर्मविनय को क्या जानोगे ! तुम मिथ्या मार्ग पर आरूढ़ हो, मैं सु हूँ। जो पहले कहना चाहिये था उसे पीछे कहा; जो पीछे कहना चाहिये था उसे पहले ही कहना विषयानुकूल है, तुम्हारा कहना तो विषयान्तर हो गया। जो तुमने इतना कहा सब तुम्हारे विरुद्ध तर्क दे दिया गया है; अब, छूटने की कोशिश करो। तुम तो पकड़ा गये, यदि निकलो। गृहपति ! इसी तरह, कोई किसी मनुष्य से झंझट करता है।

गृहपति ! कैसे कोई किसी मनुष्य से झंझट नहीं करता है।

गृहपति ! कोई इस प्रकार नहीं कहता है—तुम इस धर्मविनय को नहीं जानते हो, विनय को जानता हूँ···। गृहपति ! इसी तरह, कोई किसी मनुष्य से झंझट नहीं करता है

गृहपति ! यही भगवान् ने अट्ठकवर्गिक मागन्दिय प्रश्न में कहा है—

> घर को छोड़ बेघर घूमने वाला,
> मुनि गाँव में लगाव-बझाव न करते हुये,
> कामों से रिक्त, कहीं अपनापन न जोड़,
> किसी मनुष्य से कुछ झंझट नहीं करता है।

गृहपति ! भगवान् ने जो यह संक्षेप से कहा है उसका विस्तारपूर्वक ऐसे ही चाहिये।

§ ४. दुतिय हालिद्दिकानि सुत्त (२१. १. १. ४)

शक्र-प्रश्न की व्याख्या

ऐसा मैंने सुना।

एक समय आयुष्मान् महाकात्यायन अवन्ती में कुररघर के ऊँचे पर्वत पर वि तब,'' एक ओर बैठ, गृहपति हालिद्दिकानि आयुष्मान् महाकात्यायन से बोला:—भ ने यह शक्र-प्रश्न में कहा है:—

> "जो श्रमण या ब्राह्मण तृष्णा के क्षय से विमुक्त हो गये हैं,
> उन्होंने अपना कर्तव्य पूरा कर लिया है, उन्होंने परम—
> योग-क्षेम पा लिया है, वे ही सत्यतः ब्रह्मचारी हैं,
> उन्होंने उत्तम स्थान को पा लिया है, तथा देवताओं और,
> मनुष्यों में वे ही श्रेष्ठ हैं।"

भन्ते ! भगवान् के इस संक्षेप से कहे गये का विस्तारपूर्वक अर्थ कैसे समझना चाहि

गृहपति ! रूपधातु के प्रति जो छन्द=राग=आनन्द लहना=तृष्णा=उपादान, त अधिष्ठान, अभिनिवेश और अनुशय हैं, उनके क्षय=विराग=निरोध=त्याग से चित्त विमुक्त का

गृहपति ! वेदना-धातु के प्रति···; संज्ञा-धातु··; संस्कार-धातु···; विज्ञान-धातु···।

गृहपति ! यही भगवान् ने शक्र-प्रश्न में कहा है जो श्रमण या ब्राह्मण तृष्णा के क्षय

गृहपति ! भगवान् के इस संक्षेप से कहे गये का विस्तारपूर्वक अर्थ ऐसे ही समझना

§ ५. समाधि सुत्त (२१. १. १. ५)

समाधि का अभ्यास

ऐसा मैंने सुना।

···भिक्षुओ ! समाधि का अभ्यास करो। भिक्षुओ ! समाहित होकर भिक्षु यथार्थ को

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! उपादान और परितस्सना कैसे होती है ?

भिक्षुओ ! कोई अविद्वान् पृथक्जन···रूप को अपना समझता है; अपने को रूपवाला समझता है; अपने में रूप, या रूप में अपने को समझता है। तब, वह रूप विपरिणत तथा दूसरा ही हो जाता है। रूप के विपरिणत तथा दूसरा ही हो जाने से रूपविपरिणामानुवर्ती विज्ञान होता है। उसे रूपविपरिणामानुपरिवर्तजा परितस्सना के होने से चित्त उसमें बझ जाता है। चित्त के बझ जाने से उसे उत्रास, दुःख, अपेक्षा और परितस्सना होती है।

भिक्षुओ !···वेदना को अपना समझता है···। संज्ञा को अपना समझता है···। ···संस्कारों को अपना समझता है···।···विज्ञान को अपना समझता है···।

भिक्षुओ ! इसी तरह, उपादान और परितस्सना होती है।

भिक्षुओ ! अनुपादान और अपरितस्सना कैसे होती है ?

भिक्षुओ ! कोई विद्वान् आर्यश्रावक···रूपको अपना नहीं समझता है; अपने को रूपवाला नहीं समझता है; अपने में रूप, या रूप में अपने को नहीं समझता है। तब, वह रूप विपरिणत तथा दूसरा ही हो जाता है। रूप के विपरिणत तथा दूसरा ही हो जाने से रूपविपरिणामानुवर्ती विज्ञान नहीं होता है। रूपविपरिणामानुपरिवर्तजा धर्म की उत्पत्ति से उसका चित्त परितस्सना में नहीं बझता है। चित्त के नहीं बझने से उसे उत्रास, दुःख, अपेक्षा परितस्सना नहीं होती है।

भिक्षुओ !···वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान को अपना नहीं समझता है···।

भिक्षुओ ! इसी तरह, अनुपादान और अपरितस्सना होती है।

§ ८. दुतिय उपादान परितस्सना सुत्त (२२. १. १. ८)

उपादान और परितस्सना

श्रावस्ती···।

···भिक्षुओ ! उपादान और परितस्सना कैसे होती है ?

भिक्षुओ ! कोई अविद्वान् पृथक्जन रूप को "यह मेरा है; यह मैं हूँ; यह मेरा आत्मा है" समझता है। उसका वह रूप विपरिणत तथा अन्यथा हो जाता है। रूप के विपरिणत तथा अन्यथा हो जाने से उसे शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास होते हैं।

भिक्षुओ !···वेदना को···; संज्ञा को···; संस्कार को···; विज्ञान को···।

भिक्षुओ ! इसी तरह, उपादान और परितस्सना होती है।

भिक्षुओ ! अनुपादान और अपरितस्सना कैसे होती है ?

भिक्षुओ ! कोई विद्वान् आर्यश्रावक रूपको "यह मेरा है; यह मैं हूँ; यह मेरा आत्मा है" नहीं समझता है। उसका वह रूप विपरिणत तथा अन्यथा हो जाता है। रूप के विपरिणत तथा अन्यथा हो जाने से उसे शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य, और उपायास नहीं होते हैं।

···वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

भिक्षुओ ! इसी तरह अनुपादान और अपरितस्सना होती है।

§ १०. पठम अतीतानागत सुत्त (२१. १. १. ९)

भूत और भविष्यत्

श्रावस्ती···।

···भगवान् बोले—भिक्षुओ ! रूप अतीत और अनागत में अनित्य है; वर्तमान का कहना क्या!

भिक्षुओ ! इसे जानकर विद्वान् आर्यश्रावक अतीत के रूप में अनपेक्ष रहता है; अनागत रूपका अभिनन्दन नहीं करता; वर्तमान रूप के निर्वेद, विराग और निरोध के लिये यत्नवान् रहता है।

···वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

§ १०. दुतिय अतीतानागत सुत्त (२१. १. १. १०)

भूत और भविष्यत्

श्रावस्ती···।

···भगवान् बोले—भिक्षुओ ! रूप अतीत और अनागत में दुःख है; वर्तमान का कहना क्या? भिक्षुओ ! इसे जानकर विद्वान् आर्यश्रावक अतीत के रूप में अनपेक्ष रहता है; अनागत रूप का अभिनन्दन नहीं करता; वर्तमान रूप के निर्वेद, विराग और निरोध के लिये यत्नवान् रहता है।

···वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

§ ११. ततिय अतीतानागत सुत्त (२१. १. १. ११)

भूत और भविष्यत्

श्रावस्ती···।

···भगवान् बोले—भिक्षुओ ! रूप अतीत और अनागत में अनात्म है; वर्तमान का कहना क्या ?··· [पूर्ववत्]

नकुलपितावर्ग समाप्त

दूसरा भाग

अनित्य वर्ग

§ १. अनिच्च सुत्त (२१. १. २. १)

अनित्यता

ऐसा मैंने सुना।

···श्रावस्ती···।

···भगवान् बोले :—भिक्षुओ! रूप अनित्य है, वेदना अनित्य है, संज्ञा अनित्य है, विज्ञान अनित्य है।

भिक्षुओ! इसे जानकर विद्वान् आर्यश्रावक को रूप से भी निर्वेद होता है, वेदना से भी निर्वेद होता है, संज्ञा से भी निर्वेद होता है, संस्कारों से भी निर्वेद होता है, विज्ञान से भी निर्वेद होता है। निर्वेद होने से विरक्त हो जाता है; वैराग्य से विमुक्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने से विमुक्त हो गया ऐसा ज्ञान होता है। विमुक्त हो जाने से पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया गया, अब कुछ बाकी नहीं बचा—ऐसा जान लेता है।

§ २. दुक्ख सुत्त (२१. १. २. २)

दुःख

श्रावस्ती···।

" भिक्षुओ! रूप दुःख है, वेदना दुःख है, संज्ञा दुःख है, संस्कार दुःख है, विज्ञान दुःख है।

भिक्षुओ! इसे जान कर···।

§ ३. अनत्त सुत्त (२१. १. २. ३)

अनात्मा

श्रावस्ती···।

···भिक्षुओ! रूप अनात्म है···।

भिक्षुओ! इसे जान कर···।

§ ४. पठम यदनिच्च सुत्त (२१. १. २. ४)

अनित्यता के गुण

श्रावस्ती···।

···भिक्षुओ! रूप अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है। जो अनात्मा है वह न तो मेरा, न मैं, न मेरा आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक देखना चाहिये।

वेदना'''; संज्ञा'''; संस्कार'''; विज्ञान अनित्य है'''।

भिक्षुओ ! इसे जानकर विद्वान् आर्यश्रावक'''जाति क्षीण हुई'''ऐसा जान लेता है।

§ ५. दुतिय यदनिच्च सुत्त (२१. १. २. ५)

दुःख के गुण

श्रावस्ती'''।

'''भिक्षुओ ! रूप दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है।

'''[शेष पूर्ववत्]

§ ६. ततिय यदनिच्च सुत्त (२१. १. २. ६)

अनात्म के गुण

श्रावस्ती'''।

'''भिक्षुओ ! रूप अनात्म है।

'''[शेष पूर्ववत्]

§ ७. पठम हेतु सुत्त (२१. १. २. ७)

हेतु भी अनित्य है

श्रावस्ती'''।

'''भिक्षुओ ! रूप अनित्य है। रूप की उत्पत्ति के जो हेतु और प्रत्यय हैं वे भी अनित्य हैं। भिक्षुओ ! अनित्य से उत्पन्न होकर रूप नित्य कैसे हो सकता है !

[इसी तरह वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान के विषय में]

भिक्षुओ ! इसे जान कर विद्वान् आर्यश्रावक'''जाति क्षीण हुई'''ऐसा जान लेता है।

§ ८. दुतिय हेतु सुत्त (२१. १. २. ८)

हेतु भी दुःख है

श्रावस्ती'''।

'''भिक्षुओ ! रूप दुःख है। रूप की उत्पत्ति के जो हेतु और प्रत्यय हैं वे भी दुःख हैं। भिक्षुओ ! दुःख से उत्पन्न होकर रूप सुख कैसे हो सकता है !

[इसी तरह वेदना, संज्ञा, संस्कार, और विज्ञान के विषय में]

भिक्षुओ ! इसे जानकर विद्वान् आर्यश्रावक'''जाति क्षीण हुई'''ऐसा जान लेता है।

§ ९. ततिय हेतु सुत्त (२१. १. २. ९)

हेतु भी अनात्म है

श्रावस्ती'''।

'''भिक्षुओ ! रूप अनात्म है। रूप की उत्पत्ति के जो हेतु और प्रत्यय हैं वे भी अनात्म हैं। भिक्षुओ ! अनात्म से उत्पन्न हो कर रूप आत्मा कैसे हो सकता है।

'''[पूर्ववत्]

§ १०. आनन्द सुत्त (२१. १. २. १०)

निरोध किसका ?

श्रावस्ती···।

तब, आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले :—भन्ते ! लोग 'निरोध, निरोध' कहा करते हैं। भन्ते ! किन धर्मोंका निरोध निरोध कहा जाता है ?

आनन्द ! रूप अनित्य है, संस्कृत है, प्रतीत्यसमुत्पन्न है, क्षयधर्मा है, व्ययधर्मा है, निरोधधर्मा है। उसी के निरोध से निरोध कहा जाता है।

वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···; इसीके निरोध से निरोध कहा जाता है।

आनन्द ! इन्हीं धर्मों के निरोध से निरोध कहा जाता है।

अनित्य वर्ग समाप्त।

तीसरा भाग

भार वर्ग

§ १. भार सुत्त (२१. १. ३. १)

भार को उतार फेंकना

श्रावस्ती…।

भिक्षुओ ! भार के विषय में उपदेश करूँगा भारहार के विषय में भार उठाने के विषय में और भार उतार देने के विषय में। उसे सुनो…।

भिक्षुओ ! भार क्या है ?

इन पाँच उपादान-स्कन्धों को कहना चाहिये। किन पाँच ? जो यह, रूप-उपादान-स्कन्ध, वेदना-उपादान-स्कन्ध, संज्ञा-उपादान स्कन्ध, संस्कार-उपादान-स्कन्ध, और विज्ञान-उपादान-स्कन्ध हैं। भिक्षुओ ! इसी को भार कहते हैं।

भिक्षुओ ! भारहार क्या है ? पुरुष को ही कहना चाहिये। जो यह आयुष्मान् इस नाम और इस गोत्र के हैं। भिक्षुओ ! उसी को भारहार कहते हैं।

भिक्षुओ ! भार का उठाना क्या है ? जो यह तृष्णा, पुनर्जन्म करानेवाली, आसक्ति और राग-वाली, यहाँ वहाँ लग जानेवाली है। जो यह काम-तृष्णा, भव-तृष्णा, विभव-तृष्णा है। भिक्षुओ ! इसी को भार का उठाना कहते हैं।

भिक्षुओ ! भार का उतार देना क्या है ? उसी तृष्णा का जो बिल्कुल विराग=निरोध=त्याग=प्रतिनिःसर्ग=मुक्ति=अनालय है। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं भार का उतार देना।

भगवान् यह बोले। यह कह कर बुद्ध फिर भी बोले:—

ये पाँच स्कन्ध भार हैं,
पुरुष भारहार है,
भार का उठाना लोक में दुःख है,
भार का उतार देना सुख है ॥१॥

भार के बोझे को उतार,
दूसरा भार नहीं लेता है,
तृष्णा को जड़ से उखाड़,
दुःखमुक्त निर्वाण पा लेता है ॥२॥

§ २. परिञ्ञा सुत्त (२१. १. ३. २)

परिज्ञेय और परिज्ञा की व्याख्या

श्रावस्ती…।

भिक्षुओ ! परिज्ञेय धर्म और परिज्ञान के विषय में उपदेश करूँगा। उसे सुनो…।

भिक्षुओ ! परिज्ञेय धर्म क्या है ? भिक्षुओ ! रूप परिज्ञेय धर्म है, वेदना परिज्ञेय धर्म है, संज्ञा

परिज्ञेय धर्म है, संस्कार परिज्ञेय धर्म है, विज्ञान परिज्ञेय धर्म है। भिक्षुओ ! इन्हीं को परिज्ञेय धर्म कहते हैं।

भिक्षुओ ! परिज्ञा क्या है ? भिक्षुओ ! जो राग-क्षय और मोह-क्षय है उसी को परिज्ञा कहते हैं।

§ ३. अभिज्ञान सुत्त (२१. १. ३. ३)

रूप को समझे बिना दुःख का क्षय नहीं

श्रावस्ती...।

...भिक्षुओ ! रूप को बिना समझे, जाने, त्याग किये तथा उससे विरक्त हुये कोई दुःखों का क्षय नहीं कर सकता है।

...वेदना...; संज्ञा...; संस्कार...; विज्ञान को बिना समझे, जाने, त्याग किये तथा उससे विरक्त हुये कोई दुःखों का क्षय नहीं कर सकता है।

भिक्षुओ ! रूप को समझ, जान, त्याग उससे विरक्त हो कोई दुःखों का क्षय कर सकता है।

...वेदना...; संज्ञा...; संस्कार...; विज्ञान को समझ, जान, त्याग कर तथा उससे विरक्त हो कोई दुःखों का नाश कर सकता है।

§ ४. छन्दराग सुत्त (२१. १. ३. ४)

छन्दराग का त्याग

श्रावस्ती...।

...भिक्षुओ ! रूपमें जो छन्दराग है उसे छोड़ दो। इस तरह, वह रूप प्रहीण हो जायगा, उच्छिन्न-मूल, कटे हुये सिर वाले ताड़वृक्ष के समान, अनभाव किया हुआ, फिर भी कभी न उग सकने वाला।

...वेदना...; संज्ञा...; संस्कार...; विज्ञान में जो छन्दराग है उसे छोड़ दो...।

§ ५. पठम अस्साद सुत्त (२१. १. ३. ५)

रूपादि का आस्वाद

श्रावस्ती...।

...भिक्षुओ ! बुद्धत्व प्राप्त करने के पहले, बोधिसत्व रहते ही, मेरे मनमें यह हुआ :—रूपका आस्वाद क्या है, दोष क्या है, छुटकारा क्या है ? वेदना... संज्ञा...? संस्कार...? विज्ञान...?

भिक्षुओ ! तब, मेरे मनमें यह हुआ :—रूप के प्रत्यय से जो सुख और सौमनस्य होता है वही रूप का आस्वाद है। रूप जो अनित्य, दुःख, विपरिणामधर्मा है वह रूप का दोष (=आदीनव) है। जो रूप के प्रति छन्दराग को दबा देना, प्रहीण करना है वही रूप से छुटकारा है।

[वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान के साथ भी ऐसे ही]

भिक्षुओ ! जब तक मैंने इन पाँच उपादान-स्कन्धों के आस्वाद को आस्वाद के तौर पर, दोष को दोष के तौर, और छुटकारे को छुटकारे के तौर पर यथार्थतः नहीं जान लिया था, तब तक......इस लोक में अनुत्तर सम्यक्-सम्बुद्धत्व प्राप्त करने का दावा नहीं किया।

भिक्षुओ ! जब मैंने...यथार्थतः जान लिया, तभी...इस लोक में अनुत्तर सम्यक्-सम्बुद्धत्व प्राप्त करने का दावा किया।

मुझे ऐसा ज्ञान = दर्शन उत्पन्न हुआ—मेरा चित्त लोक में विमुक्त हो गया, यही अन्तिम जाति है, अब पुनर्जन्म होने का नहीं।

§ ६. दुतिय अस्साद सुत्त (२१. १. ३. ६)

आस्वाद की खोज

श्रावस्ती…।

…भिक्षुओ ! मैंने रूप के आस्वाद की खोज की। रूप का जो आस्वाद है उसे समझ लिया। जहाँ तक रूप का आस्वाद है उसे प्रज्ञा से अच्छी तरह देख लिया।

भिक्षुओ ! मैंने रूप के दोष की खोज की। रूप का जो दोष है उसे समझ लिया। जहाँ तक रूप का दोष है उसे प्रज्ञा से अच्छी तरह देख लिया।

भिक्षुओ ! मैंने रूप के छुटकारे की खोज की। रूपका जो छुटकारा है उसे समझ लिया। जहाँ तक रूप का छुटकारा है उसे प्रज्ञा से अच्छी तरह देख लिया।

[वेदना, संज्ञा, संस्कार, और विज्ञान के साथ भी ऐसे ही]

भिक्षुओ ! जब तक मैंने इन पाँच उपादान स्कन्धों के आस्वाद को आस्वाद के तौर पर…

… यही अन्तिम जाति है, अब पुनर्जन्म होने का नहीं।

§ ७. ततिय अस्साद सुत्त (२१. १. ३. ७)

आस्वाद से ही आसक्ति

श्रावस्ती…।

…भिक्षुओ ! यदि रूप में आस्वाद नहीं होता तो सत्व रूप में आसक्त नहीं होते। भिक्षुओ ! क्योंकि रूप में आस्वाद है इसीलिये सत्व रूप में आसक्त होते हैं।

भिक्षुओ ! यदि रूप में दोष नहीं होता तो सत्व रूप से निर्वेद (= विराग) को प्राप्त नहीं होते। भिक्षुओ ! क्योंकि रूप में दोष है, इसलिये सत्व से निर्वेद को प्राप्त होते हैं।

भिक्षुओ ! यदि रूप से छुटकारा नहीं होता तो सत्व रूप से मुक्त नहीं होते। भिक्षुओ ! क्योंकि रूप से छुटकारा होता है, इसलिये सत्व रूप से मुक्त होते हैं।

[वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान के साथ भी ऐसे ही]

भिक्षुओ ! जब तक सत्वों ने इन पाँच उपादान-स्कन्धों के आस्वाद को आस्वाद के तौर पर, दोष को दोष के तौर पर, और छुटकारे को छुटकारे के तौर पर यथार्थतः नहीं जान लिया तब तक…वे नहीं निकले=छूटे=मुक्त हुये तथा मर्यादा रहित चित्त से विहार किये।

भिक्षुओ ! जब सत्वों ने…यथार्थतः जान लिया तब…वे निकल गये=छूट गये=मुक्त हुये तथा मर्यादा रहित चित्त से विहार किये।

§ ८. अभिनन्दन सुत्त (२१. १. ३. ८)

अभिनन्दन से दुःख की उत्पत्ति

श्रावस्ती…।

…भिक्षुओ ! जो रूप का अभिनन्दन करता है वह दुःख का ही अभिनन्दन करता है। जो दुःख का अभिनन्दन करता है वह दुःख से मुक्त नहीं हुआ है—ऐसा मैं कहता हूँ।

…वेदना…; संज्ञा…; संस्कार…; जो विज्ञान का अभिनन्दन करता है…।

भिक्षुओ ! और, जो रूप का अभिनन्दन नहीं करता है वह दुःख का अभिनन्दन नहीं करता है। जो दुःख का अभिनन्दन नहीं करता है वह दुःख से मुक्त हो गया—ऐसा मैं कहता हूँ।

…वेदना…; संज्ञा…; संस्कार…; जो विज्ञान का अभिनन्दन नहीं करता है…।

§ ९. उप्पाद सुत्त (२१. १. ३. ९)

रूप की उत्पत्ति दुःख का उत्पाद है

श्रावस्ती…।

…भिक्षुओ ! रूप के जो उत्पाद, स्थिति, पुनर्जन्म, और प्रादुर्भाव हैं वे दुःख के उत्पाद रोगों की स्थिति, और जरामरण के प्रादुर्भाव हैं।

…वेदना…; संज्ञा…; संस्कार…; विज्ञान के जो उत्पाद, स्थिति…।

भिक्षुओ ! जो रूप का निरोध, व्युपशम, तथा जरामरण का अस्त हो जाना है।

…वेदना…; संज्ञा…; संस्कार…; विज्ञान…।

§ १०. अघमूल सुत्त (२१. १. ३. १०)

दुःख का मूल

श्रावस्ती…।

…भिक्षुओ ! दुःख के विषय में उपदेश करूँगा, तथा दुःख के मूल के विषय में। उसे सुनो…।

भिक्षुओ ! दुःख क्या है ?

भिक्षुओ ! रूप दुःख है। वेदना दुःख है। संज्ञा दुःख है। संस्कार दुःख है। विज्ञान दुःख है। भिक्षुओ ! इसी को दुःख कहते हैं।

भिक्षुओ ! दुःख का मूल क्या है ?

जो यह तृष्णा, पुनर्भव कराने वाली, आसक्ति और राग से युक्त, यहाँ वहाँ आनन्द खोजने वाली। जो यह, काम-तृष्णा, भव-तृष्णा, विभव-तृष्णा। भिक्षुओ ! इसी को दुःख का मूल कहते हैं।

§ ११. पभंगु सुत्त (२१. १. ३. ११)

क्षणभंगुरता

श्रावस्ती…।

…भिक्षुओ ! भङ्गुर के विषय में उपदेश करूँगा, और अभङ्गुर के विषय में।

भिक्षुओ ! क्या भङ्गुर है और क्या अभङ्गुर ? भिक्षुओ ! रूप भङ्गुर है। जो उसका निरोध = व्युपशम = अस्त हो जाना है वह अभङ्गुर है।

…वेदना…; संज्ञा…; संस्कार…; विज्ञान…।

भार वर्ग समाप्त।

चौथा भाग

न तुम्हाक वर्ग

§ १. पठम न तुम्हाक सुत्त (२१. १. ४. १)

जो अपना नहीं है, उसका त्याग

श्रावस्ती···।

···भिक्षुओ ! जो तुम्हारा नहीं है उसे छोड़ दो। उसका प्रहीण हो जाना तुम्हारे हित और सुख के लिये होगा।

भिक्षुओ ! तुम्हारा क्या नहीं है ?

भिक्षुओ ! रूप तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ दो। उसका प्रहीण हो जाना तुम्हारे हित और सुख के लिये होगा।

··वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई आदमी इस जेतवन के तृण, काठ, शाखा और पत्ते को ले जाय, या जला दे, या जो मरजी करे। तो क्या तुम्हारे मन में ऐसा होगा—यह आदमी हमें ले जा रहा है। या जला रहा है, या जो मरजी कर रहा है ?

नहीं भन्ते !

सो क्यों ?

भन्ते ! क्योंकि यह हमारा आत्मा, आत्मनीय नहीं है।

भिक्षुओ ! इसी तरह, रूप तुम्हारा नहीं है। उसे छोड़ दो। उसका प्रहीण हो जाना तुम्हारे हित और सुख के लिये होगा।

···वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ दो···।

§ २. दुतिय न तुम्हाक सुत्त (२१. १. ४. २)

जो अपना नहीं है, उसका त्याग

श्रावस्ती···।

···[ठीक ऊपरवाले के जैसा; जेतवन का दृष्टान्त नहीं]

§ ३. पठम भिक्खु सुत्त (२१. १. ४. ३)

अनुशय के अनुसार समझा जाना

श्रावस्ती···।

क

तब, कोई भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ कर वह भिक्षु भगवान् से बोला:—

भन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप से धर्म का उपदेश करें; कि मैं भगवान् के धर्म को सुनकर अकेला, एकान्त में, अप्रमत्त, संयमशील तथा प्रहितात्म होकर विहार करूँ।

हे भिक्षु ! जिसका जैसा अनुशय रहता है वह वैसा ही समझा जाता है; जैसा अनुशय नहीं रहता है वैसा नहीं समझा जाता है।

भगवन् ! समझ गया ! सुगत ! समझ गया।

हे भिक्षु ! मेरे इस संक्षेप से कहे गये का तुमने विस्तार से अर्थ कैसे समझा ?

भन्ते ! यदि रूप का अनुशय होता है तो वह वैसा ही समझा जाता है। यदि वेदना का···; संज्ञा का ··; संस्कारों का···; विज्ञान का···।

भन्ते ! यदि (किसी को) रूप का अनुशय नहीं होता है तो वह वैसा नहीं समझा जाता है। यदि वेदना का···; संज्ञा का ··; संस्कारों का···; विज्ञान का···। भगवान् के इस संक्षेप से कहे गये का मैं ऐसे ही विस्तार से अर्थ समझता हूँ।

ठीक है भिक्षु, ठीक है ! मेरे इस संक्षेप से कहे गये का तुमने ठीक में विस्तार से अर्थ समझ लिया।····· मेरे इस संक्षेप से कहे गये का ऐसे ही विस्तार से अर्थ समझना चाहिये।

तब, वह भिक्षु भगवान् के कहे का अभिनन्दन और अनुमोदन कर आसन से उठ भगवान् को अभिवादन और प्रदक्षिणा कर चला गया।

ख

तब उस भिक्षु ने अकेला, एकान्त में अप्रमत्त, संयमशील तथा प्रहितात्म हो विहार करते हुये शीघ्र ही ब्रह्मचर्य के उस अनुत्तर अन्तिम फल को इसी जन्म में स्वयं जान, देख और पा लिया, जिसके लिये कुलपुत्र श्रद्धा से सम्यक् घर से बेघर हो कर प्रव्रजित हो जाते हैं। जाति क्षीण हुई, ब्रह्मचर्य सफल हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ बाकी नहीं रहा—ऐसा जान लिया।

वह भिक्षु अर्हतों में एक हुआ।

§ ४. दुतिय भिक्खु सुत्त (२१. १. ४. ४)

अनुशय के अनुसार मापना

श्रावस्ती···।

कोई भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ कर वह भिक्षु भगवान् से बोला :—

भन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप से धर्म का उपदेश करें, कि मैं भगवान् के धर्म को सुन कर अकेला, एकान्त में, अप्रमत्त, संयमशील तथा प्रहितात्म होकर विहार करूँ।

हे भिक्षु ! जिसका जैसा अनुशय रहता है वह वैसा ही मापता है। जो जैसा मापता है वह वैसा ही समझा जाता है।

···[ऊपर वाले सूत्र के समान ही]

वह भिक्षु अर्हतों में एक हुआ।

§ ५. पठम आनन्द सुत्त (२१. १. ४. ५)

किसका उत्पाद, व्यय और विपरिणाम ?

श्रावस्ती···।

···एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द से भगवान् बोले, "आनन्द ! यदि तुमसे कोई पूछे, आवुस

आनन्द ! किन धर्मों का उत्पाद जाना जाता है, व्यय, जाना जाता है, तथा स्थित हुओं का अन्यथात्व जाना जाता है।'' आनन्द ! ऐसा पूछे जाने पर तुम क्या उत्तर दोगे ?

भन्ते ! ''''ऐसा पूछे जाने पर मैं यों उत्तर दूँगा :—

आवुस ! रूप का उत्पाद जाना जाता है, व्यय जाना जाता है, तथा स्थित हुये का अन्यथात्व जाना जाता है। वेदना का ''; संज्ञा का'''; संस्कारों का'''; विज्ञान का'''। आवुस ! इन्हीं धर्मों का उत्पाद जाना जाता है'''। भन्ते ! ऐसा पूछे जाने पर मैं यों ही उत्तर दूँगा।

ठीक है, आनन्द, ठीक है ! ' ऐसा पूछे जाने पर तुम यों ही उत्तर दोगे।

§ ६. दुतिय आनन्द सुत्त (२१. १. ४. ६)

किनका उत्पाद, व्यय और स्थितिनाश ?

श्रावस्ती ।

'''एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् आनन्द से भगवान् बोले, "आनन्द ! यदि तुमसे कोई पूछे, आवुस आनन्द ! किन धर्मों का उत्पाद जाना गया है, व्यय जाना गया है तथा स्थित हुये का अन्यथात्व जाना गया है ? किनका'''जाना जायगा ? किनका'''जाना जाता है ?' आनन्द ! ऐसा पूछे जाने पर तुम क्या उत्तर दोगे ?"

'''भन्ते ! ऐसा पूछा जाने पर मैं यों उत्तर दूँगा :—

आवुस ! जो रूप अतीत हो गया = निरुद्ध हो गया = विपरिणत हो गया, उसका उत्पाद जाना गया, व्यय जाना गया, स्थित हुये का अन्यथात्व जाना गया। 'वेदना'''; संज्ञा'''; संस्कार, जो विज्ञान अतीत हो गया'''।

आवुस ! इन्हीं धर्मों का उत्पाद जाना गया है, व्यय जाना गया है, तथा स्थित हुये का अन्यथात्व जाना गया है।

आवुस ! जो रूप अभी उत्पन्न नहीं हुआ है, प्रगट नहीं हुआ है, उसी का उत्पाद जाना जायगा, व्यय जाना जायगा, तथा स्थित हुये का अन्यथात्व जाना जायगा।'''वेदना'''; संज्ञा'''; संस्कार'''; जो विज्ञान अभी उत्पन्न नहीं हुआ है'''।

आवुस ! इन्हीं धर्मों का उत्पाद जाना जायगा, व्यय जाना जायगा, तथा स्थित हुये का अन्यथात्व जाना जायगा।

आवुस ! जो रूप अभी उत्पन्न हुआ है, प्रादुर्भूत हुआ है, उसी का उत्पाद जाना जाता है, व्यय जाना जाता है, तथा स्थित हुये का अन्यथात्व जाना जाता है।'' वेदना'''; संज्ञा'''; संस्कार'''; विज्ञान'''।

आवुस ! धर्मों का उत्पाद जाना जाता है, व्यय जाना जाता है, तथा स्थित हुये का अन्यथात्व जाना जाता है।

भन्ते ! ऐसा पूछा जाने पर मैं यों ही उत्तर दूँगा।

ठीक है आनन्द, ठीक है ! [सारे की पुनरुक्ति] ऐसा पूछे जाने पर तुम यों ही उत्तर दोगे।

§ ७. पठम अनुधम्म सुत्त (२१. १. ४. ७)

विरक्त होकर विहरना

श्रावस्ती ''।

'''भिक्षुओ ! जो भिक्षु धर्मानुधर्म प्रतिपन्न है उसका यह धर्मानुकूल होता है, कि रूप के प्रति विरक्त होकर विहार करे, वेदना'''; संज्ञा'''; संस्कार'''; विज्ञान के प्रति विरक्त होकर विहार करे।

इस प्रकार विरक्त होकर विहार करते हुये वह रूप को जान लेता है, वेदना''' ; संज्ञा''' ; संस्कार''' ; विज्ञान को जान लेता है।

वह रूप'''विज्ञान को जानकर रूप से मुक्त हो जाता है, वेदना से मुक्त हो जाता है, संज्ञा से मुक्त हो जाता है, संस्कारों से मुक्त हो जाता है, विज्ञान से मुक्त हो जाता है। जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य, उपायास से मुक्त हो जाता है। दुःख से छूट जाता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

§ ८. दुतिय अनुधम्म सुत्त (२१. १. ४. ८)

अनित्य समझना

श्रावस्ती'''।

'''भिक्षुओ ! जो भिक्षु धर्मानुधर्म प्रतिपन्न है उसका यह धर्मानुकूल होता है, कि रूप को अनित्य समझे'''[पूर्ववत्]।

दुःख से छूट जाता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

§ ९. ततिय अनुधम्म सुत्त (२१. १. ४. ९)

दुःख समझना

श्रावस्ती'''।

'''भिक्षुओ ! '''कि रूप को दुःख समझे'''।

§ १०. चतुत्थ अनुधम्म सुत्त (२१. १. ४. १०)

अनात्म समझना

श्रावस्ती'''।

'''भिक्षुओ ! '''कि रूप को अनात्म समझे'''।

न तुम्हाक वर्ग समाप्त।

पाँचवाँ भाग

आत्मद्वीप वर्ग

§ १. अत्तदीप सुत्त (२१. १. ५. १)

अपना आधार आप बनना

श्रावस्ती'''।

'''भिक्षुओ ! अपना आधार आप बनो, अपना शरण आप बनो, किसी दूसरे का शरणागत मत बनो; धर्म ही तुम्हारा आधार है, धर्म ही तुम्हारा शरण है, कुछ दूसरा तुम्हारा शरण नहीं है।

'''इस प्रकार विहार करते हुये तुम्हें ठीक से इसकी परीक्षा करनी चाहिये—शोक परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास का जन्म=प्रभव क्या है ?

भिक्षुओ ! इनका जन्म=प्रभव क्या है ?

भिक्षुओ ! कोई अविद्वान् पृथक्जन रूप को अपना करके समझता है, अपने को रूपवान् समझता है, रूप में अपने को समझता है। उसका वह रूप विपरिणत=अन्यथा हो जाता है। रूप के विपरिणत तथा अन्यथा हो जाने से शोकादि उत्पन्न होते हैं।

वेदना को'''; संज्ञा को'''; संस्कारों को'''; विज्ञान को अपना करके समझता है'''।

भिक्षुओ ! रूप के अनित्यत्व, विपरिणाम, विराग, निरोध को जान कर; जो पहले के रूप थे, और जो अभी रूप हैं सभी अनित्य, दुःख और विपरिणाम-धर्मा हैं, इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक देख लेने से जो शोकादि हैं सभी प्रहीण हो जाते हैं। उनके प्रहीण हो जाने से त्रास नहीं होता। त्रास नहीं होने से सुखपूर्वक विहार करता है। सुखपूर्वक विहार करते हुये वह भिक्षु उस अंश में मुक्त कहा जाता है।

'''वेदना'''; संज्ञा'''; संस्कार'''; विज्ञान'''; सुखपूर्वक विहार करते हुये वह भिक्षु उस अंश में मुक्त कहा जाता है।

§ २. पटिपदा सुत्त (२१. १. ५. २)

सत्काय की उत्पत्ति और निरोध का मार्ग

श्रावस्ती...।

'''भिक्षुओ ! सत्काय की उत्पत्ति तथा सत्काय के निरोध के मार्ग के विषय में उपदेश करूँगा। उसे सुनो'''।

भिक्षुओ ! सत्काय की उत्पत्ति का मार्ग क्या है ?

भिक्षुओ ! कोई अविद्वान् पृथक्जन'''रूप को अपना करके समझता है, अपने को रूपवान् समझता है, अपने में रूप को समझता है, रूप में अपने को समझता है।

'' वेदना'''; संज्ञा'''; संस्कार'''; विज्ञान'''।

भिक्षुओ ! इसी को सत्काय की उत्पत्ति का मार्ग कहते हैं। भिक्षुओ ! यही दुःख की उत्पत्ति का मार्ग कहा जाता है, यही समझना चाहिये।

भिक्षुओ ! सत्काय के निरोध का मार्ग क्या है ?

भिक्षुओ ! कोई विद्वान् आर्यश्रावक···रूप को अपना करके नहीं समझता है, अपने को रूपवान् नहीं समझता है, अपने में रूप को नहीं समझता है, रूप में अपने को नहीं समझता है।

··वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

भिक्षुओ ! इसी को सत्काय के निरोध का मार्ग कहते हैं। भिक्षुओ ! यही दुःख के निरोध का मार्ग कहा जाता है—यही समझना चाहिये।

§ ३. पठम अनिच्चता सुत्त (२१. १. ५. ३)

अनित्यता

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! रूप अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःख है जो दुःख है वह अनात्म है। जो अनात्म है सो न मेरा है, न मैं हूँ, न मेरा आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक देख लेना चाहिये। चित्त उपादान-रहित हो आश्रवों से विरक्त और विमुक्त हो जाता है।

···वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

भिक्षुओ ! यदि भिक्षु का चित्त रूप के प्रति उपादान-रहित हो आश्रवों से विरक्त और विमुक्त हो जाता है। वेदना···; संस्कार···; विज्ञान के प्रति···; तो स्थिर हो जाता है; स्थिर होने से शान्त हो जाता है; शान्त होने से त्रास नहीं होता; त्रास नहीं होने से अपने भीतर ही भीतर निर्वाण पा लेता है। जाति क्षीण हुई ··ऐसा जान लेता है।

§ ४. दुतिय अनिच्चता सुत्त (२१. १. ५. ४)

अनित्यता

श्रावस्ती···।

···भिक्षुओ ! रूप अनित्य है···[ऊपर जैसा] इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक देख लेना चाहिये।

···वेदना अनित्य है···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक देख लेने से वह पूर्वान्त की मिथ्या-दृष्टि में नहीं पड़ता है। पूर्वान्त की मिथ्या-दृष्टियों में न पड़ने से उसे अपरान्त की भी मिथ्या-दृष्टियाँ नहीं होती हैं। अपरान्त की दृष्टि नहीं होने से वह कहीं नहीं झुकता है।·· वह रूप···विज्ञान के प्रति आश्रवोंसे विरक्त, विमुक्त तथा उपादान-रहित हो जाता है। उसका चित्त विमुक्त हो जाने से स्थिर हो जाता है। स्थिर हो जाने से शान्त हो जाता है। शान्त हो जाने से त्रास नहीं होता है। त्रास नहीं होने से अपने भीतर ही भीतर निर्वाण पा लेता है। जाति क्षीण हुई···ऐसा जान लेता है।

§ ५. समनुपस्सना सुत्त (२१. १. ५. ५)

आत्मा मानने से ही अस्मि की अविद्या

श्रावस्ती···।

···भिक्षुओ ! जितने श्रमण या ब्राह्मण अनेक प्रकार से आत्मा को जानते और समझते हैं, वे सभी इन्हीं पाँच उपादान स्कन्धों को जानते और समझते हैं, या उनमें से किसी को।

किन पाँच ?

भिक्षुओ ! कोई अविद्वान् पृथक्जन···रूपको अपना करके समझता है, अपने को रूपवान् समझता है, अपने में रूप को समझता है, रूप में अपने को समझता है।

"वेदना'''; संज्ञा'''; संस्कार'''; विज्ञान'''। ऐसा समझने से उसे "अस्मि" की अविद्या होती है।

भिक्षुओ ! "अस्मि" की अविद्या होने से पाँच इन्द्रियाँ चली आती हैं—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, और काया।

भिक्षुओ ! मन है, धर्म है, और अविद्या है। भिक्षुओ ! अविद्या संस्पर्शोत्पन्न वेदना होने से अविद्वान् पृथक्जनको 'अस्मिता' होती है। 'यह मैं हूँ'—ऐसा होता है। 'होऊँगा'—ऐसा भी होता है। 'नहीं होऊँगा'—ऐसा भी होता है। 'रूपवान्'''; 'अरूपवान्'; 'संज्ञी'''; 'असंज्ञी''': 'न संज्ञी और न असंज्ञी होऊँगा'—ऐसा भी होता है।

भिक्षुओ ! वहीं पाँच इन्द्रियाँ ठहरी रहती हैं। वहीं विद्वान् आर्यश्रावककी अविद्या प्रहीण हो जाती है, विद्या उत्पन्न होती है। उसको अविद्या के हट जाने और विद्या के उत्पन्न होने से 'अस्मिता' नहीं होती है। 'होऊँगा'—ऐसा भी नहीं होता है। 'रूपवान्'''; 'अरूपवान्'''; 'संज्ञी';'''असंज्ञी;''' 'न संज्ञी और न असंज्ञी होऊँगा'—ऐसा भी नहीं होता है।

§ ६. खन्ध सुत्त (२१. १. ५. ६)

पाँच स्कन्ध

श्रावस्ती'''।

'''भिक्षुओ ! पाँच स्कन्ध तथा पाँच उपादान स्कन्ध के विषय में उपदेश करूँगा। उसे सुनो'''।

भिक्षुओ ! पाँच स्कन्ध कौन से हैं ?

भिक्षुओ ! जो रूप—अतीत, अनागत, वर्तमान् , आध्यात्म, बाह्य, स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूर का, वा निकट का—है वह रूपस्कन्ध कहा जाता है।

जो वेदना'''; संज्ञा'''; संस्कार'''; विज्ञान'''।

भिक्षुओ ! यही पाँच स्कन्ध कहे जाते हैं।

भिक्षुओ ! पाँच उपादान स्कन्ध कौन से हैं ?

भिक्षुओ ! जो रूप—अतीत, अनागत, वर्तमान, आध्यात्म, बहिः, स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूर का, या निकट का आश्रव के साथ उपादानीय है वह रूपोपादानस्कन्ध कहा जाता है।

जो वेदना'''; संज्ञा'''; संस्कार'''; विज्ञान'''।

भिक्षुओ ! इन्हीं को पञ्च-उपादानस्कन्ध कहते हैं।

§ ७. पठम सोण सुत्त (२१. १. ५. ७)

यथार्थ का ज्ञान

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् राजगृह में वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे।

तब, गृहपतिपुत्र सोण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे हुये गृहपतिपुत्र सोण को भगवान् बोले :—सोण ! जो श्रमण या ब्राह्मण इस अनित्य, दुःख, विपरिणामधर्मा रूप से अपने को बड़ा समझते हैं, सदृश समझते हैं, या हीन समझते हैं, वह यथार्थ का अज्ञान छोड़ कर दूसरा क्या है ?

'''वेदना'''; संज्ञा'''; संस्कार'''; विज्ञान'''।

सोण ! जो श्रमण या ब्राह्मण इस अनित्य, दुःख, विपरिणामधर्मा रूप से अपने को बड़ा भी नहीं समझते हैं, सदृश भी नहीं समझते हैं, या हीन भी नहीं समझते हैं, वह यथार्थ का ज्ञान छोड़ कर और क्या है ?

···वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

सोण ! तो तुम क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

भन्ते ! अनित्य।

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

भन्ते ! दुःख है।

जो अनित्य है, दुःख है, विपरिणामधर्मा है, उसे क्या ऐसा समझना ठीक है कि यह मेरा है, यह मैं हूँ; यह मेरा आत्मा है ?

नहीं भन्ते !

सोण !···वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान अनित्य है या नित्य···।

सोण ! इसलिये, जो रूप—अतीत, अनागत, वर्तमान्, आध्यात्म, बाह्य, स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूर का, या निकट का—है उसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक देख लेना चाहिये कि न यह मेरा है, न यह मैं हूँ, और न यह मेरा आत्मा है।

जो वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

सोण ! ऐसा देखनेवाला विद्वान् आर्यश्रावक रूप से निर्वेद करता है, वेदना से निर्वेद करता है, संज्ञा से···, संस्कारों से···; विज्ञान से···। निर्वेद से विरक्त हो जाता है। वैराग्य से मुक्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने से विमुक्त हो गया ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है। जाति क्षीण हुई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ बाकी नहीं बचा—ऐसा जान लेता है।

§ ८. दुतिय सोण सुत्त (२१. १. ५. ८)

श्रमण और ब्राह्मण कौन ?

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् राजगृह में वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे।

तब, गृहपतिपुत्र सोण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे हुये गृहपति पुत्र सोण को भगवान् बोले :—

सोण ! जो श्रमण या ब्राह्मण रूप को नहीं जानते हैं, रूप के समुदय को नहीं जानते हैं, रूप के निरोध को नहीं जानते हैं, रूप के निरोधगामी मार्ग को नहीं जानते हैं; वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान को नहीं जानते हैं···; वे न तो श्रमणों में श्रमण समझे जाते हैं, और न ब्राह्मणों में ब्राह्मण ! वे आयुष्मान् इसी जन्म में श्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को जान देख और पाकर विहार नहीं करते हैं।

सोण ! जो श्रमण या ब्राह्मण रूप को जानते हैं··· विज्ञान को जानते हैं···, वे ही श्रमणों में श्रमण समझे जाते हैं, और ब्राह्मणों में ब्राह्मण। वे आयुष्मान् इसी जन्म में श्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को जान, देख, और पाकर विहार करते हैं।

§ ९. पठम नन्दिक्खय सुत्त (२१. १. ५. ९)

आनन्द का क्षय कैसे ?

श्रावस्ती···।

···भिक्षुओ ! भिक्षु जो रूप को अनित्य के तौर पर देख लेता है, उसे सम्यक् दृष्टि कहते हैं।

इसे अच्छी तरह समझ कर वह निर्वेद को प्राप्त होता है। आनन्द लेने की इच्छा मिट जाने से राग मिट जाता है; राग मिट जाने से आनन्द लेने की इच्छा मिट जाती है। आनन्द लेने की इच्छा और राग के मिट जाने से चित्त बिलकुल मुक्त कहा जाता है।

भिक्षु जो वेदना को···; संज्ञा को···; संस्कारों को···; विज्ञान को अनित्य के तौर पर देखता है उसे सम्यक् दृष्टि कहते हैं।···। आनन्द लेने की इच्छा और राग के मिट जाने से चित्त बिलकुल मुक्त कहा जाता है।

§ १०. दुतिय नन्दिक्खय सुत्त (२१. १. ५. १०)

रूप का यथार्थ मनन

श्रावस्ती···।

···भिक्षुओ ! रूप का ठीक से मनन करो; रूप की अनित्यता को यथार्थतः देखो। रूप का ठीक से मनन करने, तथा रूप की अनित्यता को यथार्थतः देखने से रूप के प्रति निर्वेद को प्राप्त होता है। आनन्द लेने की इच्छा मिट जाने से राग मिट जाता है; राग मिट जाने से आनन्द लेने की इच्छा मिट जाती है। आनन्द लेने की इच्छा और राग के मिट जाने से चित्त बिलकुल मुक्त कहा जाता है।

वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान का ठीक से मनन करो···।

आत्मद्वीप वर्ग समाप्त।

मूल पण्णासक समाप्त

दूसरा परिच्छेद

मज्झिम पण्णासक

पहला भाग

उपय वर्ग

§ १. उपय सुत्त (२१. २. १. १)

अनासक्त विमुक्त है

श्रावस्ती···।

···भिक्षुओ ! आसक्त अविमुक्त है, अनासक्त विमुक्त है।

भिक्षुओ ! रूप में आसक्त होने से विज्ञान बना रहता है—रूप पर आलम्बित, रूप पर प्रतिष्ठित, आनन्द उठाने वाला और उगता, बढ़ता तथा फैलता है।

संस्कारों पर आलम्बित, संस्कारों पर प्रतिष्ठित, आनन्द उठाने वाला, उगता, बढ़ता तथा फैलता है।

भिक्षुओ ! जो कोई ऐसा कहे कि मैं बिना रूप, बिना वेदना, बिना संज्ञा, बिना संस्कार, बिना विज्ञान के आवागमन, मरना, जीना, या उगना, बढ़ना तथा फैलना सिद्ध कर दूँगा, वह सम्भव नहीं है।

भिक्षुओ ! यदि भिक्षु का रूप-धातु में राग प्रहीण हो जाता है, तो विज्ञान का आलम्बन = प्रतिष्ठा प्रहीण हो जाता है। यदि भिक्षु का वेदना-धातु में···; संज्ञा-धातु में···, संस्कार-धातु में···, विज्ञान-धातु में राग प्रहीण हो जाता है तो विज्ञान का आलम्बन = प्रतिष्ठा प्रहीण हो जाता है।

वह अप्रतिष्ठित विज्ञान उगने नहीं पाता, संस्कारों से रहित हो विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने से स्थित हो जाता है, स्थित होने से शान्त हो जाता है। शान्त होने से त्रास नहीं होने पाता। त्रास नहीं होने से अपने भीतर ही भीतर निर्वाण को प्राप्त कर लेता है। जाति क्षीण हुई ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ बाकी नहीं है—ऐसा जान लेता है।

§ २. बीज सुत्त (२१. २. १. २)

पाँच प्रकार के बीज

श्रावस्ती···।

···भिक्षुओ ! बीज पाँच प्रकार के होते हैं। कौन से पाँच ? मूल-बीज, स्कन्ध-बीज, अग्र-बीज, फल-बीज, और बीज-बीज।

भिक्षुओ ! ये पाँच प्रकार के बीज अखण्डित हों, सड़े गले नहीं हों, हवा या धूप से नष्ट नहीं हो गये हों, सार वाले हों, और आसानी से रोपे जा सकने वाले हों; किन्तु मिट्टी न हो और जल न हो। भिक्षुओ ! तो क्या वे बीज उगेंगे, बढ़ेंगे और फैलेंगे ?

नहीं भन्ते !

भिक्षुओ ! ये पाँच बीज खण्डित हों, सड़े-गले हों, हवा या धूप से नष्ट हो गये हों, निःसार हों, और आसानी से रोपे जा सकनेवाले नहीं हों; किन्तु मिट्टी भी हो और जल भी हो। भिक्षुओ ! तो क्या वे बीज उगेंगे, बढ़ेंगे, और फैलेंगे ?

नहीं भन्ते !

भिक्षुओ ! ये पाँच बीज अखण्डित हों···; और मिट्टी और जल भी हो। भिक्षुओ ! तो क्या वे बीज उगेंगे, बढ़ेंगे, और फैलेंगे ?

हाँ भन्ते ! यहाँ जैसे पृथ्वी-धातु है वैसे विज्ञान की स्थितियाँ समझनी चाहिये। यहाँ जैसे जल-धातु है वैसे नन्दिराग समझना चाहिये। यहाँ जैसे पाँच प्रकार के बीज हैं वैसे आहार के साथ विज्ञान को समझना चाहिये।

भिक्षुओ ! रूप में आसक्त होने से विज्ञान बना रहता है;—रूप पर आलम्बित, रूप पर प्रतिष्ठित आनन्द उठानेवाला; और उगता, बढ़ता तथा फैलता है।···[शेष ऊपर वाले सूत्र के समान ही।]

§ ३. उदान सुत्त (२१. २. १. ३)

आश्रवों का क्षय कैसे ?

श्रावस्ती···।

वहाँ भगवान् ने उदान के यह शब्द कहे, "यदि यह नहीं होवे तो मेरा नहीं होवे; नहीं होगा, वह मेरा नहीं होगा—ऐसा कहनेवाला भिक्षु नीचे के बन्धन (=ओरम्भागीय संयोजन) को काट देता है।"

ऐसा कहने पर कोई भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! ··यह कैसे ?"

भिक्षुओ ! कोई अविद्वान् पृथक्जन···रूप को अपना करके समझता है, अपने को रूपवान् समझता है, अपने में रूप को समझता है, या रूप में अपने को समझता है··।

···वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान को अपना करके समझता है, अपने को विज्ञानवान् समझता है···।

वह अनित्य रूप की अनित्यता को यथार्थतः नहीं जानता है, अनित्य वेदना की···; संज्ञा की···; संस्कारों की···; विज्ञान की अनित्यता को नहीं समझता है।

वह दुःखमय रूप के दुःख को यथार्थतः नहीं जानता है, दुःखमय वेदना के···; संज्ञा के···; संस्कारों के···; विज्ञान के दुःख को नहीं जानता है।

वह अनात्म रूप के अनात्मत्व को यथार्थतः नहीं जानता है, अनात्म वेदना के···; संज्ञा के···; संस्कारों के···; विज्ञान के अनात्म को नहीं जानता है।

वह संस्कृत रूप को संस्कृत के तौर पर यथार्थतः नहीं जानता है। संस्कृत वेदना को···; संज्ञा को···; संस्कारों को···; विज्ञान को संस्कृत के तौर पर यथार्थतः नहीं जानता है।

रूप नहीं रहेगा वह यथार्थतः नहीं जानता।

वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान नहीं रहेगा वह यथार्थतः नहीं जानता है।

भिक्षुओ ! कोई विद्वान् आर्यश्रावक···रूप को अपना करके नहीं समझता है···।

वह अनित्य रूप की अनित्यता को यथार्थतः जानता है···।

वह दुःखमय रूप के दुःख को यथार्थतः जानता है···।

वह अनात्म रूप के अनात्मत्व को यथार्थतः जानता है।

वह संस्कृत रूप को संस्कृत के तौर पर यथार्थतः जानता है··· ।

रूप नहीं रहेगा वह यथार्थतः जानता है··· ।

रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान के नहीं होने से जो भिक्षु 'यदि यह नहीं होवे तो मेरा नहीं होवे, नहीं होगा वह मेरा नहीं होगा'—ऐसा कहे वह नीचे के बन्धन को काट देता है।

भन्ते ! ऐसा कहनेवाला भिक्षु नीचे के बन्धन को काट देता है।

भन्ते ! क्या जान और देख लेने के बाद् आश्रवों का क्षय हो जाता है ?

भिक्षु ! कोई अविद्वान् पृथक्जन त्रास नहीं करने के स्थान पर त्रास को प्राप्त होता है। भिक्षु ! अविद्वान् पृथक्जनों को यह त्रास होता है कि—'यदि यह नहीं होवे तो मेरा नहीं होवे, नहीं होगा वह मेरा नहीं होगा।'

भिक्षु ! विद्वान् आर्यश्रावक त्रास नहीं करने के स्थान पर त्रास को नहीं प्राप्त होता है। भिक्षु ! विद्वान् आर्यश्रावक को यह त्रास नहीं होता है कि—'यदि यह नहीं होवे··· ।'

भिक्षु ! रूप में आसक्त होने से विज्ञान बना रहता है—रूप पर आलम्बित, रूप पर प्रतिष्ठित ···[शेष २१. २. १. १ सूत्र के समान]।

भिक्षु ! यह जान और देख लेने के बाद उसके आश्रवों का क्षय हो जाता है।

§ ४. उपादान परिवत्त सुत्त (२१. २. १. ४)

उपादान स्कन्धों की व्याख्या

श्रावस्ती ··· ।

···भिक्षुओ ! पाँच उपादान-स्कन्ध हैं। कौन से पाँच ? जो यह, रूपोपादान स्कन्ध, वेदनोपादान स्कन्ध, संज्ञोपादान स्कन्ध, संस्कारोपादान स्कन्ध और विज्ञानोपादान स्कन्ध।

भिक्षुओ ! जब तक मैंने इन पाँच उपादान स्कन्धों को चारों सिलसिले में यथार्थतः नहीं समझा था, तब तक इस लोक में···अनुत्तर सम्यक् सम्बुद्धत्व प्राप्त करने का दावा नहीं किया था।

भिक्षुओ ! जब मैंने···यथार्थतः समझ लिया, तभी···दावा किया।

वे चार सिलसिले कैसे ? रूप को जान लिया। रूप के समुदय को जान लिया। रूप के निरोध को जान लिया। रूप के निरोधगामी मार्ग को जान लिया। वेदना को···; संज्ञा को···; संस्कारों को···; विज्ञान को···।

भिक्षुओ ! रूप क्या है ? चार महाभूत और चार महाभूत से बनने वाले रूप। यही रूप है। आहार के समुदय से रूप का समुदय होता है। आहार के निरोध से रूप का निरोध होता है। यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग रूप के निरोध का मार्ग है। जो यह सम्यक् दृष्टि···सम्यक् समाधि।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण···इसे जान कर रूप के निर्वेद के लिये, विराग के लिये, निरोध के लिये प्रतिपन्न होते हैं वे ही सुप्रतिपन्न हैं। जो सुप्रतिपन्न हैं वे इस धर्म विनय में प्रतिष्ठित होते हैं।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण···इसे जान कर रूप के निर्वेद से, विराग से, निरोध से, अनुपादान से विमुक्त हो गये हैं वे ही यथार्थ में विमुक्त हुये हैं। जो यथार्थ में विमुक्त हो गये हैं वे ही केवली हैं। जो केवली हैं उनके लिये भँवर नहीं है।

भिक्षुओ ! वेदना क्या है ? भिक्षुओ ! वेदना-काय छः हैं। चक्षुसंस्पर्शजा वेदना। श्रोत्रसंस्पर्शजा वेदना। घ्राण-संस्पर्शजा वेदना। जिह्वासंस्पर्शजा वेदना। कायसंस्पर्शजा वेदना। मनःसंस्पर्शजा वेदना। भिक्षुओ ! इसे वेदना कहते हैं। स्पर्श के समुदय से वेदना का समुदय होता है। स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध होता है। यही आर्य अष्टांगिक मार्ग वेदना के निरोध का मार्ग है।···

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण···इसे जान··· ।

भिक्षुओ ! संज्ञा क्या है ?

भिक्षुओ ! संज्ञाकाय छः हैं। रूप-संज्ञा, शब्द-संज्ञा, गन्ध-संज्ञा, रस-संज्ञा, स्पर्श-संज्ञा धर्म-संज्ञा। यही संज्ञा है। स्पर्श के समुदय से संज्ञा का समुदय होता है। स्पर्श के निरोध से संज्ञा का निरोध होता है। यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग संज्ञा के निरोध का मार्ग है।···

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण······इसे जान···।

भिक्षुओ ! संस्कार क्या हैं ?

भिक्षुओ ! चेतना-काय छः हैं। रूप-संचेतना, शब्द-संचेतना, गन्ध-संचेतना, रस-संचेतना, स्पर्श-संचेतना, धर्म-संचेतना। भिक्षुओ ! इन्हीं को संस्कार कहते हैं। स्पर्श के समुदय से संस्कारों का समुदय होता है। स्पर्श के निरोध से संस्कारों का निरोध होता है। यही आर्य-अष्टाङ्गिक मार्ग संस्कारों के निरोध का मार्ग है।···

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण···इसे जान···।

भिक्षुओ ! विज्ञान क्या है ?

भिक्षुओ ! विज्ञान-काय छः हैं। चक्षुविज्ञान, श्रोत्रविज्ञान, घ्राणविज्ञान, जिह्वाविज्ञान, काय विज्ञान, मनोविज्ञान। भिक्षुओ ! इसी को विज्ञान कहते हैं। नामरूप के समुदय से विज्ञान का समुदय होता है। नामरूप के निरोध से विज्ञान का निरोध होता है। यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग विज्ञान के निरोध का मार्ग है।···

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण···इसे जान कर रूप के निर्वेद के लिये, विराग के लिये, निरोध के लिये प्रतिपन्न होते हैं वे ही सुप्रतिपन्न हैं। जो सुप्रतिपन्न हैं वे इस धर्म विनय में प्रतिष्ठित होते हैं।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण···इसे जान कर रूप के निर्वेद से, अनुपादान से विमुक्त हो गये हैं वे ही यथार्थ में विमुक्त हुये हैं। जो यथार्थ में विमुक्त हो गये हैं वे ही केवली हैं। जो केवली उनके लिये भँवर नहीं है।

§ ५. सत्तट्ठान सुत्त (२१. २. १. ५)

सात स्थानों में कुशल ही उत्तम पुरुष है

श्रावस्ती···।

···भिक्षुओ ! जो भिक्षु सात स्थानों में कुशल तथा तीन प्रकार से परीक्षा करनेवाला होता है, वह इस धर्मविनय में केवली, सफल ब्रह्मचर्यवाला, और उत्तम पुरुष कहा जाता है।

भिक्षुओ ! भिक्षु सात स्थानों में कुशल कैसे होता है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु रूप को जानता है। रूप के समुदय को जानता है। रूप के निरोध को जानता है। रूप के निरोधगामी मार्ग को जानता है। रूप के आस्वाद को जानता है। रूप के दोष को जानता है। रूप के छुटकारे (= मुक्ति) को जानता है।

···वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

भिक्षुओ ! रूप क्या है ? चार महाभूत और उनसे होने वाले रूप। भिक्षुओ ! इसी को रूप कहते हैं। आहार के समुदय से रूप का समुदय होता है। आहार के निरोध से रूपका निरोध होता है। यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग रूप के निरोध का मार्ग है।···

जो रूप के प्रत्यय से सुख और सौमनस्य होता है वही रूप का आस्वाद है। रूप जो अनित्य, दुःख, विपरिणामधर्मा है वह रूप का दोष है। जो रूप से छन्द-राग का प्रहाण हो जाता है वह रूप की मुक्ति है।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण इस प्रकार रूप को जान, रूप के समुदय को जान, रूप के निरोध को जान, रूप के निरोध के मार्ग को जान, रूप के आस्वाद को जान, रूप के दोष को जान, रूप की

मुक्ति को जान, निर्वेद के लिये, विराग के लिये, तथा निर्वाण के लिये प्रतिपन्न होते हैं वे ही सुप्रतिपन्न हैं। जो सुप्रतिपन्न हैं वे इस विनय में प्रतिष्ठित होते हैं।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण इस प्रकार रूप को जान,···रूप की मुक्ति को जान, रूप के निर्वेद से, विराग से, निरोध से, तथा अनुपादान से विमुक्त हो गये हैं वे ही यथार्थ में विमुक्त हुये हैं। जो यथार्थ में विमुक्त हो गये हैं वे केवली हैं। जो केवली हो गये हैं उनके लिये भँवर नहीं है।

भिक्षुओ ! वेदना क्या है ?

भिक्षुओ ! वेदना काय छः हैं। चक्षुसंस्पर्शजा वेदना···, मनःसंस्पर्शजा वेदना। भिक्षुओ ! इसे वेदना कहते हैं। स्पर्श के समुदय से वेदना का समुदय होता है। स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध होता है। यही आर्य अष्टांगिक मार्ग वेदना के निरोध का मार्ग है।···

जो वेदना के प्रत्यय से सुख सौमनस्य होता है वह वेदना का आस्वाद है। वेदना जो अनित्य, दुःख, विपरिणामधर्मा है वह वेदना का दोष है। जो वेदना के प्रति छन्दराग का प्रहीण हो जाना है वह वेदना की मुक्ति है।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण इस प्रकार वेदना को जान···।

भिक्षुओ ! संज्ञा क्या है ?

भिक्षुओ ! संज्ञाकाय छः हैं। रूपसंज्ञा···, धर्मसंज्ञा। भिक्षुओ ! इसी को संज्ञा कहते हैं।···

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण इस प्रकार संज्ञा को जान···।

भिक्षुओ ! संस्कार क्या हैं ? भिक्षुओ ! चेतनाकाय छः हैं। रूपसंचेतना···धर्मसंचेतना। भिक्षुओ ! इसी को संस्कार कहते हैं। स्पर्श के समुदय से संस्कार का समुदय होता है।···

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण इस प्रकार संस्कारों को जान···।

भिक्षुओ ! विज्ञान क्या है ?

भिक्षुओ ! विज्ञानकाय छः हैं। चक्षुविज्ञान···मनोविज्ञान। भिक्षुओ ! इसी को विज्ञान कहते हैं। नामरूप के समुदय से विज्ञान का समुदय होता है। नामरूप के निरोध से विज्ञान का निरोध होता है। आर्य अष्टांगिक मार्ग विज्ञान के निरोध का मार्ग है···।

विज्ञान के प्रत्यय से जो सुख सौमनस्य होता है वह विज्ञान का आस्वाद है। विज्ञान जो अनित्य, दुःख और विपरिणामधर्मा है वह विज्ञान का दोष है। जो विज्ञान के प्रति छन्दराग का प्रहीण हो जाना है वह विज्ञान की मुक्ति है।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण विज्ञान को इस प्रकार जान···निर्वेद के लिये, तथा निर्वाण के लिये प्रतिपन्न होते हैं वे ही सुप्रतिपन्न हैं। जो सुप्रतिपन्न हैं वे इस विनय में प्रतिष्ठित होते हैं।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण इस प्रकार विज्ञान को जान···, विज्ञान के निर्वेद से, विज्ञान के निरोध से तथा अनुपादान से विमुक्त हो गये हैं वे ही यथार्थ में विमुक्त हुए हैं। जो यथार्थ में विमुक्त हो गये हैं वे केवली हैं। जो केवली हो गये हैं उनके लिये भँवर नहीं है।

भिक्षुओ ! इसी प्रकार भिक्षु सात स्थानों में कुशल होता है।

भिक्षुओ ! भिक्षु कैसे तीन प्रकार से परीक्षा करने वाला होता है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु धातु से परीक्षा करने वाला होता है। आयतन से परीक्षा करने वाला होता है। प्रतीत्यसमुत्पाद से परीक्षा करने वाला होता है।

भिक्षुओ ! ऐसे ही भिक्षु तीन प्रकार से परीक्षा करने वाला होता है।

भिक्षुओ ! जो भिक्षु सात स्थानों में कुशल तथा तीन प्रकार से परीक्षा करने वाला होता है, वह इस धर्म विनय में केवली, सफल ब्रह्मचर्य वाला, और उत्तम पुरुष कहा जाता है।

§ ६. बुद्ध सुत्त (२१. २. १. ६)

बुद्ध और प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु में भेद

श्रावस्ती···।

···भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध रूप के निर्वेद, विराग तथा निरोध से उपादान-रहित हो विमुक्त सम्यक्-सम्बुद्ध कहे जाते हैं ; भिक्षुओ ! प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु भी रूप के निर्वेद, विराग, निरोध तथा अनुपादान से विमुक्त हो प्रज्ञाविमुक्त कहा जाता है।

भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान के निर्वेद, विराग, तथा निरोध से उपादान-रहित हो विमुक्त सम्यक्-सम्बुद्ध कहे जाते हैं। भिक्षुओ ! प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु भी वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान के निर्वेद, विराग, निरोध तथा अनुपादान से विमुक्त हो प्रज्ञाविमुक्त कहा जाता है।

भिक्षुओ ! तो, तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध और प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु में क्या भेद है ?

भन्ते ! भगवान् ही हमारे धर्म के अधिष्ठाता हैं, भगवान् ही नेता हैं, भगवान् ही प्रतिशरण हैं। अच्छा होता कि भगवान् ही इसे बताते। भगवान् से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे।

भिक्षुओ ! तो सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ, मैं कहता हूँ।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कहकर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध अनुत्पन्न मार्ग के उत्पन्न करनेवाले होते हैं, अज्ञात मार्ग के जनाने वाले होते हैं, नहीं बताये गये मार्ग के बताने वाले होते हैं, मार्ग-विद् और मार्ग-कोविद होते हैं। भिक्षुओ ! इस समय के जो श्रावक हैं वे बाद में मार्ग का अनुगमन करने वाले हैं।

भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध और प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु में यही भेद है।

§ ७. पञ्चवग्गिय सुत्त (२१. २. १. ७)

अनित्य, दुःख, अनात्म का उपदेश

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् वाराणसी के पास ऋषिपतन मृगदाय में विहार करते थे :

वहाँ भगवान् ने पंचवर्गीय भिक्षुओं को आमन्त्रित किया।···

भिक्षुओ ! रूप अनात्म है। भिक्षुओ ! यदि रूप आत्मा होता तो यह दुःख का कारण नहीं बनता; और तब कोई ऐसा कह सकता, 'मेरा रूप ऐसा होवे, मेरा रूप ऐसा नहीं होवे।'

भिक्षुओ ! क्योंकि रूप अनात्म है इसीलिये यह दुःख का कारण होता है, और कोई ऐसा नहीं कह सकता है, 'मेरा रूप ऐसा होवे, मेरा रूप ऐसा नहीं होवे।'

भिक्षुओ ! वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान अनात्म है···

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप अनित्य है या नित्य ?

अनित्य, भन्ते !

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

दुःख भन्ते !

जो अनित्य, दुःख, और विपरिणामधर्मा है क्या उसे ऐसा समझना ठीक है कि 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है' ?

नहीं भन्ते !

वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

दुःख भन्ते !

जो अनित्य, दुःख, और विपरिणामधर्मा है क्या उसे ऐसा समझना ठीक है कि, यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?

नहीं भन्ते !

भिक्षुओ ! इसलिये, जो भी रूप—अतीत, अनागत वर्तमान् अध्यात्म, बाह्य, स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूर में, या निकट में—है सभी को यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक ऐसा समझना चाहिये कि 'यह मेरा नहीं है, वह मैं नहीं हूँ, यह मेरा आत्मा नहीं है।'

जो भी वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

भिक्षुओ ! ऐसा समझने वाला विद्वान् आर्यश्रावक रूप में निर्वेद करता है, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान में निर्वेद करता है। निर्वेद करने से विरक्त हो जाता है। विरक्त होने से विमुक्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने से विमुक्त हो गया—ऐसा ज्ञान होता है। जाति क्षीण हुई···—ऐसा जान लेता है।

भगवान् यह बोले। संतुष्ट हो पंचवर्गीय भिक्षुओं ने भगवान् के कहे का अभिनन्दन किया। इस धर्मोपदेश के किये जाने पर पंचवर्गीय भिक्षुओं का चित्त उपादान रहित हो आश्रवों से मुक्त हो गया।

§ ८. महालि सुत्त (२१. २. १. ८)

सत्वों की शुद्धि का हेतु, पूर्ण काश्यप का अहेतु-वाद

एक समय भगवान् वैशाली में महावन की कूटागार-शाला में विहार करते थे।

तब, महालि लिच्छवि जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ कर महालि लिच्छवि भगवान् से बोला, "भन्ते ! पुराण काश्यप ऐसा कहता है, सत्वों के संक्लेश के लिये कोई हेतु प्रत्यय नहीं है। बिना हेतु = प्रत्यय के सत्व संक्लेश में पड़ते हैं। सत्वों की विशुद्धि के लिये कोई हेतु प्रत्यय नहीं है। बिना हेतु=प्रत्यय के सत्व विशुद्ध होते हैं। इसमें भगवान् का क्या कहना है ?

महालि ! सत्वों के संक्लेश के लिये हेतु = प्रत्यय है। हेतु=प्रत्यय से ही सत्व संक्लेश में पड़ते हैं। सत्वों की विशुद्धि के लिये हेतु=प्रत्यय है। हेतु=प्रत्यय से ही सत्व विशुद्ध होते हैं।

भन्ते ! सत्वों के संक्लेश के लिये क्या हेतु=प्रत्यय है ? कैसे हेतु=प्रत्यय संक्लेश में पड़ जाते हैं ?

महालि ! यदि रूप केवल दुःख ही दुःख और सुख से सर्वदा रहित होता तो सत्व रूप में रक्त नहीं होते। महालि ! क्योंकि रूप में बड़ा सुख है तथा दुःख नहीं है, इसीलिये सत्व रूप में रक्त होते हैं, रक्त हो जाने से उसका संयोग करते हैं, संयोग से क्लेश में पड़ जाते हैं।

महालि ! सत्वों के संक्लेश का यह हेतु=प्रत्यय है। इस तरह भी, हेतु=प्रत्यय से सत्व संक्लेश में पड़ते हैं।

···[वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान के साथ भी ऐसा ही]

भन्ते ! सत्वों की विशुद्धि का हेतु=प्रत्यय क्या है ? हेतु = प्रत्यय से सत्व कैसे विशुद्ध होते हैं ?

महालि ! यदि रूप केवल सुख ही सुख, और दुःख से सर्वथा रहित होता तो सत्व रूप से

निर्वेद नहीं करते। महालि ! क्योंकि रूप में सदा दुःख और सुख का अभाव है, इसलिये सत्व रूप से निर्वेद को प्राप्त होते हैं; निर्वेद से विरक्त हो जाते हैं; विराग से विशुद्ध हो जाते हैं।

महालि ! सत्वों की विशुद्धि का यही हेतु=प्रत्यय है। इस तरह, हेतु=प्रत्यय से सत्व विशुद्ध हो जाते हैं।

…[वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान के साथ भी ऐसा ही]

§ ९. आदित्त सुत्त (२१. २. १. ९)

रूपादि जल रहा है

श्रावस्ती…।

…भिक्षुओ ! रूप जल रहा (=आदीप्त) है। वेदना…; संज्ञा…; संस्कार…; विज्ञान जल रहा है।

भिक्षुओ ! विद्वान् आर्यश्रावक इसे समझ कर रूप से निर्वेद करता है; वेदना…; संज्ञा…; संस्कार…; विज्ञान से निर्वेद करता है। निर्वेद से विरक्त हो जाता है, विराग से मुक्त हो जाता है, मुक्त होने से मुक्त हो गया—ऐसा ज्ञान होता है।

जाति क्षीण हुई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब और कुछ बाकी नहीं बचा—ऐसा जान लेता है।

§ १०. निरुत्तिपथ सुत्त (२१. २. १. १०)

तीन निरुक्ति-पथ सदा एक-सा रहते हैं

श्रावस्ती…।

…भिक्षुओ ! तीन निरुक्ति-पथ = अधिवचन-पथ = प्रज्ञप्ति पथ बदले नहीं हैं; पहले भी कभी नहीं बदले थे और न आगे चलकर बदलेंगे। श्रमण, ब्राह्मण या विज्ञ पुरुष उसे उलट नहीं सकते हैं। कौन से तीन ?

भिक्षुओ ! जो रूप अतीत = निरुद्ध = विपरिणत हो गया, वह 'हुआ था' ऐसा जाना जाता है। वह 'अभी है' ऐसा जाना नहीं जाता। वह 'होगा' ऐसा भी नहीं जाना जाता।

जो वेदना…; संज्ञा…; संस्कार…; विज्ञान…।

भिक्षुओ ! जो रूप अभी उत्पन्न = प्रादुर्भूत नहीं हुआ है, वह 'होगा' ऐसा जाना जाता है। 'वह है' ऐसा जाना नहीं जाता। 'वह था' ऐसा जाना जाता।

जो वेदना…; संज्ञा…; संस्कार…; विज्ञान…।

भिक्षुओ ! जो रूप अभी उत्पन्न = प्रादुर्भूत हुआ है, वह 'है' ऐसा जाना जाता है। 'वह होगा' ऐसा जाना नहीं जाता। 'वह था' ऐसा जाना नहीं जाता है।

जो वेदना…; संज्ञा…; संस्कार…; विज्ञान…।

भिक्षुओ ! यही तीन निरुक्ति-पथ = अधिवचन-पथ=प्रज्ञप्ति-पथ बदले नहीं हैं, पहले भी कभी नहीं बदले थे और आगे चलकर भी नहीं बदलेंगे। श्रमण, ब्राह्मण या विज्ञ पुरुष उसे उलट नहीं सकते हैं।

भिक्षुओ ! जो उत्कल (प्रान्त के रहने वाले) वस्स और भञ्ञ अहेतुवादी, अक्रियवादी, नास्तिक-वादी हैं, वे भी इन तीन निरुक्ति-पथ=अधिवचन-पथ=प्रज्ञप्ति-पथ को मान्य और अनिन्द्य समझते हैं।

सो क्यों ? निन्दा और तिरस्कार के भय से।

उपय-वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

अर्हत् वर्ग

§ १. उपादिय सुत्त (२१. २. २. १)

उपादान के त्याग से मुक्ति

श्रावस्ती···।

तब, कोई भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप में धर्मोपदेश करें जिसे सुनकर मैं एकान्त में अकेला अप्रमत्त, आतापी और प्रहितात्म हो विहार करूँ।"

भिक्षु ! उपादान में पड़ा हुआ मार के बन्धन से बँधा रहता है; उपादान को छोड़ देनेवाला उस पापी से मुक्त हो जाता है।

भगवान् ! जान लिया। सुगत ! जान लिया।

भिक्षु ! मेरे संक्षेप से बताये गये का तुमने विस्तार से अर्थ क्या समझा ?

भन्ते ! रूप के उपादान में पड़ा हुआ मार के बन्धन से बँधा रहता है; रूप के उपादान को छोड़ देनेवाला उस पापी से मुक्त हो जाता है।

वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

भन्ते ! भगवान् के संक्षेप से बताये गये का हमने विस्तार से यही अर्थ समझा है।

भिक्षु ! ठीक है।···तुम्हें यही समझना चाहिये।

तब, वह भिक्षु भगवान् के कहे का अभिनन्दन कर, भगवान् को प्रणाम् कर चला गया।

तब, उस भिक्षु ने एकान्त में अकेला अप्रमत्त, आतापी और प्रहितात्म हो विहार करते हुये शीघ्र ही ब्रह्मचर्य के उस अन्तिम फल को प्राप्त कर विहार करने लगा जिसके लिये कुलपुत्र भलीभाँति घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाते हैं। जाति क्षीण हुई···—ऐसा जान लेता है।

वह भिक्षु अर्हतों में एक हुआ।

§ २. मञ्ञमान सुत्त (२१. २. २. २)

मार से मुक्ति कैसे ?

श्रावस्ती···।

···एक ओर बैठ वह भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप में धर्मोपदेश करें···।

भिक्षु ! मानते हुये कोई मार के बन्धन में बँधा रहता है। मानना छोड़ देने से पापी के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

···भन्ते ! रूप को मानते हुये कोई मार के बन्धन में बँधा रहता है।···[शेष ऊपरवाले सूत्र के समान ही।]

§ ३. अभिनन्दन सुत्त (२१. २. २. ३)

अभिनन्दन करते हुए मार के बन्धन में

श्रावस्ती…।

…भिक्षु ! अभिनन्दन करते हुये कोई मार के बन्धन में बँधा रहता है।…

[जैसा ऊपर वाले सूत्र के सम्बन्ध में]

§ ४. अनिच्च सुत्त (२१. २. २. ४)

छन्द का त्याग

श्रावस्ती…।

…भिक्षु ! जो अनित्य है उसके प्रति छन्द का प्रहाण कर देना चाहिये।

भगवान् ! समझ लिया। सुगत ! समझ लिया।

भिक्षु ! मेरे इस संक्षेप से कहे गये का तुमने विस्तार से अर्थ कैसे समझा ?

भन्ते ! रूप अनित्य है। उसके प्रति छन्द का प्रहाण कर देना चाहिये। वेदना…; संज्ञा…; संस्कार…; विज्ञान…।

…वह भिक्षु अर्हतों में एक हुआ।

§ ५. दुक्ख सुत्त (२१. २. २. ५)

छन्द का त्याग

श्रावस्ती…।

…भिक्षु ! जो दुःख है उसके प्रति छन्द का प्रहाण कर देना चाहिये।

…वह भिक्षु अर्हतों में एक हुआ।

§ ६. अनत्त सुत्त (२१. २. २. ६)

छन्द का त्याग

श्रावस्ती…।

…भिक्षु ! जो अनात्म है उसके प्रति छन्द का प्रहाण कर देना चाहिये।

…वह भिक्षु अर्हतों में एक हुआ।

§ ७. अनत्तनेय्य सुत्त (२१. २. २. ७)

छन्द का त्याग

श्रावस्ती…।

…भिक्षु ! जो अनात्मनीय है उसके प्रति छन्द का प्रहाण कर देना चाहिये।

…वह भिक्षु अर्हतों में एक हुआ।

§ ८. रजनीयसण्ठित सुत्त (२१. २. २. ८)

छन्द का त्याग

श्रावस्ती…।

…भिक्षु ! जो राग उत्पन्न करनेवाली चीज है उसके प्रति छन्द का प्रहाण कर दो। …

§ ९. राध सुत्त (२१. २. २. ९)

अहंकार का नाश कैसे ?

श्रावस्ती'''।

तब, आयुष्मान् राध जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, भन्ते ! क्या जान और देखकर इस विज्ञान-युक्त शरीर में तथा बाहर सभी निमित्तों में अहङ्कार, ममङ्कार और मानानुशय नहीं होते हैं ?

राध ! जो रूप है—अतीत, अनागत, वर्तमान, भीतर, बाहर, स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूर में या निकट में—सभी 'मेरा नहीं है, मैं नहीं हूँ, मेरा आत्मा नहीं है'—ऐसा यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक देखता है।

वेदना'''; संज्ञा'''; संस्कार'''; विज्ञान'''।

राध ! इसे जान और देखकर इस विज्ञानयुक्त शरीर में तथा बाहर सभी निमित्तों में अहङ्कार, ममङ्कार और मानानुशय नहीं होते हैं।

'''आयुष्मान् राध अर्हतों में एक हुये।

§ १०. सुराध सुत्त (२१. २. २. १०)

अहंकार से चित्त की विमुक्ति कैसे ?

श्रावस्ती'''।

'''तब, आयुष्मान् सुराध भगवान् से बोले, 'भन्ते ! क्या जान और देखकर इस विज्ञान-युक्त शरीर में, तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहङ्कार, ममङ्कार और मान से रहित हो चित्त विमुक्त होता है ?

सुराध ! जो रूप है''', सभी 'मेरा नहीं है'''—ऐसा जान और देखकर उपादान-रहित हो कोई विमुक्त होता है।

वेदना'''; संज्ञा'''; संस्कार'''; विज्ञान'''।

सुराध ! इसे जान और देखकर इस विज्ञान-युक्त शरीर में, तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहङ्कार, ममङ्कार और मान से रहित हो चित्त विमुक्त होता है।

'''आयुष्मान् सुराध अर्हतों में एक हुये।

अर्हत् वर्ग समाप्त

तीसरा भाग

खज्जनीय वर्ग

§ १. अस्साद सुत्त (२१. २. ३. १)

आस्वाद का यथार्थ ज्ञान

श्रावस्ती…।

…भिक्षुओ ! अविद्वान् पृथक्जन रूप के आस्वाद, आदीनव (=दोष) और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानता है।

वेदना…; संज्ञा…; संस्कार…; विज्ञान…।

भिक्षुओ ! विद्वान् आर्यश्रावक रूप के आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जानता है।

वेदना…; संज्ञा…; संस्कार…; विज्ञान…।

§ २. पठम समुदय सुत्त (२१. २. ३. २)

उत्पत्ति का ज्ञान

श्रावस्ती…।

…भिक्षुओ ! अविद्वान् पृथक्जन रूप के समुदय, अस्त, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानता है।…

…विद्वान् आर्यश्रावक…यथार्थतः जानता है।

§ ३. दुतिय समुदय सुत्त (२१. २. ३. ३)

उत्पत्ति का ज्ञान

श्रावस्ती…।

…भिक्षुओ ! विद्वान् आर्यश्रावक रूप के समुदय, अस्त, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जानता है।

वेदना…; संज्ञा…; संस्कार…; विज्ञान…।

§ ४. पठम अरहन्त सुत्त (२१. २. ३. ४)

अर्हत् सर्वश्रेष्ठ

श्रावस्ती…।

…भिक्षुओ ! रूप अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है। जो अनात्म है वह न मेरा है, न मैं हूँ, न मेरा आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक समझना चाहिये।

वेदना…; संज्ञा…; संस्कार…; विज्ञान…।

भिक्षुओ ! विद्वान् आर्यश्रावक रूप में निर्वेद करता है। वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

निर्वेद से विरक्त हो जाता है। विराग से विमुक्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने से 'विमुक्त हो गया' ऐसा ज्ञान होता है। जाति क्षीण हुई···यह जान लेता है।

भिक्षुओ ! जितने सत्वावास भवाग्र हैं उनमें अर्हत् ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वाग्र हैं।

भगवान् यह बोले। यह कहकर बुद्ध फिर भी बोले :—

अर्हत् बड़े सुखी हैं, उन्हें तृष्णा नहीं है।
अस्मि-मान समुच्छिन्न हो गया है, मोह-जाल कट गया है ॥१॥
शान्त, परमार्थ-प्राप्त, ब्रह्मभूत, अनाश्रव।
लोक में अनुपलिप्त, स्वच्छ चित्तवाले ॥२॥
पाँच स्कन्धों को जान, सात धर्मों में विचरनेवाले।
प्रशंसनीय, सत्पुरुष, बुद्ध के प्यारे पुत्र ॥३॥
सात रत्नों से सम्पन्न, तीन शिक्षाओं में शिक्षित।
महावीर विचरते हैं, जिनके भय-भैरव प्रहीण हो गये हैं ॥४॥
दश अङ्गों से सम्पन्न, महा-भाग, समाहित।
वे लोक में श्रेष्ठ हैं, उन्हें तृष्णा नहीं है ॥५॥
अशैक्ष्य-पद-प्राप्त, अन्तिम जन्म वाले।
ब्रह्मचर्य का जो सार है, उसे अपना लेने वाले ॥६॥
द्वैत में अकम्पित, पुनर्भव से विमुक्त।
दान्त-भूमिको प्राप्त, वे लोक के विजयी हैं ॥७॥
ऊपर, नीचे, टेढ़े, कहीं भी उन्हें आसक्ति नहीं है।
वे सिंह-नाद करते हैं, लोक के अनुत्तर बुद्ध ॥८॥

§ ५. दुतिय अरहन्त सुत्त (२१. २. ३. ५)

अर्हत् सर्वश्रेष्ठ

श्रावस्ती...।

···भिक्षुओ ! रूप अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है। जो अनात्म है वह न तो मेरा है, न मैं हूँ, न मेरा आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञा-पूर्वक देख लेना चाहिये।

वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

भिक्षुओ ! विद्वान् आर्यश्रावक इसे देख रूप में निर्वेद करता है। वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान में निर्वेद करता है।

निर्वेद करते हुए विरक्त हो जाता है। विरक्त हो विमुक्त हो जाता है। विमुक्त हो 'विमुक्त हो गया' ऐसा ज्ञान होता है। जाति क्षीण हुई···—जान लेता है।

भिक्षुओ ! जितने सत्वावास भवाग्र हैं उनमें अर्हत् ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वाग्र हैं।

§ ६. पठम सीह सुत्त (२१. २. ३. ६)

बुद्ध का उपदेश सुन देवता भी भयभीत हो जाते हैं

श्रावस्ती···।

···भिक्षुओ ! मृगराज सिंह साँझ को अपनी माँद से निकलता है। माँद से निकल कर जँभाई

लेता है। जँभाई लेकर अपने चारों ओर देखता है। अपने चारों ओर देखकर तीन बार गर्जना करता है। तीन बार गर्जना कर शिकार के लिये निकल जाता है।

भिक्षुओ! जितने जानवर सिंह की गरजना सुनते हैं सभी भय = संवेग = संत्रास को प्राप्त होते हैं। बिल में रहनेवाले अपने बिल में घुस जाते हैं। जल में रहनेवाले जल में पैठ जाते हैं। जंगल-झाड़ में रहनेवाले जंगल-झाड़ में पैठ जाते हैं। पक्षी आकाश में उड़ जाते हैं।

भिक्षुओ! राजा के हाथी जो गाँव, कस्बे या राजधानी में बँधे रहते हैं वे भी अपने दृढ़ बन्धन को तोड़-ताड़, डर से पेशाब-पाखाना करते जिधर-तिधर भाग खड़े होते हैं।

भिक्षुओ! जानवरों में मृगराज सिंह का ऐसा तेज और प्रताप है।

भिक्षुओ! इसी तरह, अर्हत्, सम्यक्-सम्बुद्ध, विद्या-चरण-सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, पुरुषों को दमन करने में सारथी के समान, देवताओं और मनुष्यों के गुरु भगवान् बुद्ध लोक में जन्म लेकर धर्म का उपदेश करते हैं। यह रूप है। यह रूप का समुदय है। यह रूप का अस्त हो जाना है। यह वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

भिक्षुओ! जो दीर्घायु, वर्णवान्, सुख-सम्पन्न और ऊपर के विमानों में चिरकाल तक बने रहने वाले देव हैं वे भी बुद्ध के धर्मोपदेश सुनकर भय को प्राप्त होते हैं। अरे! हम अनित्य होते हुए भी अपने को नित्य समझे बैठे थे। अरे! हम अध्रुव होते हुए भी अपने को ध्रुव समझे बैठे थे। अरे! हम अशाश्वत होते हुए भी अपने को शाश्वत समझे बैठे थे। अरे! हम अनित्य = अध्रुव = अशाश्वत हो सत्काय के घोर अविद्या-मोह में पड़े थे।

भिक्षुओ! देवताओं के साथ इस लोक में बुद्ध ऐसे तेजस्वी और प्रतापी हैं।

भगवान् यह बोले। यह कह कर बुद्ध फिर भी बोले :—

> जब बुद्ध अपने ज्ञान-बल से धर्मचक्र का प्रवर्तन करते हैं,
> देवताओं के साथ इस लोक के सर्वश्रेष्ठ गुरु ॥१॥
> सत्काय का निरोध और सत्काय की उत्पत्ति,
> और आर्य अष्टांगिक मार्ग, दुःखों को शान्त करनेवाला ॥२॥
> जो भी दीर्घायु देव हैं, वर्णवान्, यशस्वी,
> वे डर जाते हैं, जैसे सिंह से दूसरे जानवर ॥३॥
> क्योंकि वे सत्काय के फेर में पड़े हैं।
> अरे! हम अनित्य हैं!
> वैसे विमुक्त अर्हत् के उपदेश को सुनकर ॥४॥

§ ७. दुतिय सीह सुत्त (२१. २. ३. ७)

देवता दूर ही से प्रणाम् करते हैं

श्रावस्ती···।

···भिक्षुओ! जो श्रमण या ब्राह्मण अपने अनेक पूर्व जन्मों की बातें याद करते हैं, वे सभी पाँच उपादान स्कन्धों को या उनमें किसी एक को याद करते हैं।

भूतकाल में मैं ऐसा रूपवाला था—यह याद करते हुये भिक्षुओ! वह रूप ही को याद करता है। भूतकाल में मैं ऐसी वेदना वाला था—यह याद करते हुये भिक्षुओ! वह वेदना ही को याद करता है।···ऐसी संज्ञा वाला···।···ऐसे संस्कारों वाला···;···ऐसे विज्ञान वाला···।

भिक्षुओ! रूप क्यों कहा जाता है? भिक्षुओ! क्योंकि वह प्रभावित होता है, इसी से 'रूप' कहा जाता है। किससे प्रभावित होता है? शीत से प्रभावित होता है। उष्ण से प्रभावित होता है।

भूख से प्रभावित होता है। प्यास से प्रभावित होता है। डँस, मच्छड़, हवा, धूप तथा कीड़े-मकोड़े के स्पर्श से प्रभावित होता है। भिक्षुओ! क्योंकि यह प्रभावित होता है इसी से 'रूप' कहा जाता है।

भिक्षुओ! वेदना क्यों कहा जाता है? भिक्षुओ! क्योंकि अनुभव करता है इसी से 'वेदना' कहा जाता है। क्या अनुभव करता है? सुख का भी अनुभव करता है, दुःख का भी अनुभव करता है, सुख और दुःख से रहित का भी अनुभव करता है। भिक्षुओ! क्योंकि अनुभव करता है इसीसे 'वेदना' कहा जाता है।

भिक्षुओ! संज्ञा क्यों कहा जाता है? भिक्षुओ! क्योंकि जानता है इसलिये 'संज्ञा' कहा जाता है। क्या जानता है? नीले को भी जानता है। पीले को भी जानता है। लाल को भी जानता है। उजले को भी जानता है। भिक्षुओ! क्योंकि जानता है इसलिये 'संज्ञा' कहा जाता है।

भिक्षुओ! संस्कार क्यों कहा जाता है? भिक्षुओ! संस्कृत का अभिसंस्करण करता है; इसलिये संस्कार कहा जाता है। किस संस्कृत का अभिसंस्करण करता है? रूपत्व के लिये संस्कृत रूप का अभिसंस्करण करता है। वेदनात्व के लिये संस्कृत वेदना का अभिसंस्करण करता है। संज्ञात्व के लिये संस्कृत संज्ञा का···। संस्कारत्व के लिये संस्कृत संस्कारों का···। विज्ञान के लिये संस्कृत विज्ञान का···। भिक्षुओ! संस्कृत का अभिसंस्करण करता है, इसलिये संस्कार कहा जाता है।

भिक्षुओ! विज्ञान क्यों कहा जाता है? भिक्षुओ! क्योंकि पहचानता है इसलिये विज्ञान कहा जाता है। क्या पहचानता है? कसैले को भी पहचानता है। तीते को भी···; कड़ुये को भी···; मीठे को भी···; खारे को भी···; जो खारा नहीं है उसे भी···; नमकीन को भी···; जो नमकीन नहीं है उसे भी···। भिक्षुओ! क्योंकि पहचानता है इसलिये विज्ञान कहा जाता है।

भिक्षुओ! वहाँ विद्वान् आर्यश्रावक ऐसा मनन करता है।

इस समय मैं रूप से खाया जा रहा हूँ। अतीत काल में भी मैं रूप से खाया गया हूँ, जैसे इस समय खाया जा रहा हूँ। यदि मैं अनागत रूप का अभिनन्दन करूँगा तो अनागत रूप से भी वैसे ही खाया जाऊँगा जैसे इस वर्तमान रूप से। वह ऐसा मनन कर अतीत रूप में अनपेक्ष रहता है; अनागत रूप का अभिनन्दन नहीं करता है; तथा वर्तमान रूप के निर्वेद, विराग और निरोध के लिये प्रतिपन्न होता है।

इस समय मैं वेदना से खाया जा रहा हूँ···। संज्ञा से···; संस्कारों से···; विज्ञान से···।

भिक्षुओ! तो तुम क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य?

अनित्य भन्ते!

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख?

दुःख भन्ते!

जो अनित्य, दुःख, विपरिणामधर्मा है क्या उसे ऐसा समझना चाहिये, "यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है"?

नहीं भन्ते!

वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

भिक्षुओ! इसलिये, जो रूप अतीत, अनागत, वर्तमान्···—है सभी न मेरा है, न मैं हूँ, न मेरा आत्मा है—ऐसा समझना चाहिये।

जो वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

भिक्षुओ! इसी को कहते हैं कि आर्यश्रावक छोड़ता है, बटोरता नहीं···; बुझा देता है, सुलगाता नहीं।

किसको छोड़ता है, बटोरता नहीं···; बुझा देता है, सुलगाता नहीं ?

रूप को···; वेदना को···; संज्ञा को···; संस्कारों को···; विज्ञान को··· ।

भिक्षुओ ! यह समझ कर, विद्वान् आर्यश्रावक रूप से भी निर्वेद करता है; वेदना से भी···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···। निर्वेद करने से विरक्त हो जाता है। विरक्त हो विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने पर 'विमुक्त हो गया' ऐसा ज्ञान होता है। जाति क्षीण हुई···—जान लेता है।

भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं कि न छोड़ता है और न बटोरता है···; न बुझाता है, न सुलगाता है। किसको न छोड़ता है और न बटोरता है···; न बुझाता है, न सुलगाता है ? रूप को···; वेदना को···; संज्ञा को···; संस्कारों को···; विज्ञान को···।

भिक्षुओ ! इस तरह बिल्कुल बुझकर विमुक्त-चित्त हो गये भिक्षु को इन्द्र, ब्रह्मा, प्रजापति आदि सभी देव दूर ही से प्रणाम् करते हैं।

> हे पुरुष-श्रेष्ठ ! आपको नमस्कार है,
> हे पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है।
> जिससे हम भी उसे जानें,
> जिसके लिये आप ध्यान करते हैं॥

§ ८. पिण्डोल सुत्त (२१. २. ३. ८)

लोभी की मुर्दाठी से तुलना

एक समय भगवान् शाक्य जनपद में कपिलवस्तु के निग्रोधाराम में विहार करते थे।

तब, भगवान् किसी कारणवश भिक्षु-संघ को अपने पास से हटा सुबह में पहन और पात्र-चीवर ले कपिलवस्तु में भिक्षाटन के लिये पैठे।

भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने के उपरान्त दिन के विहार के लिये जहाँ महावन है वहाँ गये, और एक तरुण बिल्व वृक्ष के नीचे बैठ गये।

तब, एकान्त में ध्यान करते समय भगवान् के चित्त में यह वितर्क उठा :—मैंने भिक्षुसंघ को स्थापित किया है। यहाँ कितने नव-प्रव्रजित भिक्षु भी हैं जो इस धर्मविनय में अभी तुरत ही आये हैं। मुझे न देखने से शायद उनके मन में कुछ अन्यथात्व हो; जैसे माता को नहीं देखने से तरुण बछड़े के मन में अन्यथात्व होता है; जैसे पानी नहीं मिलने से अभी तुरत का लगाया बीज अन्यथात्व को प्राप्त होता है। तो क्यों न मैं भिक्षु-संघ को स्वीकार करूँ जैसे मैं पहले से कर रहा हूँ।

तब, सहम्पति ब्रह्मा अपने चित्त से भगवान् के चित्त को जान—जैसे बलवान् पुरुष समेटी बाँह को फैला दे और फैलाई बाँह को समेट ले वैसे—ब्रह्मलोक में अन्तर्धान हो भगवान् के सम्मुख प्रगट हुये।

तब, सहम्पति ब्रह्मा उपरनी को एक कन्धे पर सम्हाल भगवान् की ओर हाथ जोड़ कर बोले—भगवान् ! ऐसी ही बात है। सुगत ! ऐसी ही बात है। भन्ते ! भगवान् ने ही भिक्षु-संघ को स्थापित किया है।

यहाँ कितने नव-प्रव्रजित भिक्षु भी हैं जो इस धर्मविनय में अभी तुरत ही आये हैं। भगवान् को न देखने से शायद उनके मन में अन्यथात्व हो; जैसे माता को नहीं देखने से तरुण बछड़े के मन में अन्यथात्व होता है; जैसे पानी नहीं मिलने से अभी तुरत का लगाया बीज अन्यथात्व को प्राप्त होता है।

भन्ते ! भगवान् भिक्षुसंघ का अभिनन्दन करें। भन्ते ! भगवान् भिक्षुसंघ का अभिनन्दन करें। जैसे भगवान् भिक्षुसंघ को पहले से स्वीकार कर रहे हैं, वैसे ही अभी भी स्वीकार कर लें।

भगवान् ने चुप रह कर स्वीकार कर लिया।

तब, सहम्पति ब्रह्मा भगवान् की स्वीकृति को जान भगवान् का अभिवादन और प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गये।

तब, साँझ को ध्यान से उठ भगवान् जहाँ निग्रोधाराम था वहाँ गये, और बिछे आसन पर बैठ गये। तब, भगवान् ने अपने ऋद्धि-बल से ऐसा किया कि सारा भिक्षुसंघ एक साथ बड़े प्रेम से भगवान् के सम्मुख आ उपस्थित हुआ। वे भिक्षु भगवान् के पास आ, अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे हुये उन भिक्षुओं से भगवान् बोले:—

भिक्षुओ! यह जो भिक्षाटन करके जीना है सो सभी जीविकाओं में हीन है। किन्तु, तुम अपने हाथ में पात्र ले सारे मान को छोड़ भिक्षाटन करते फिरते हो। भिक्षुओ! वह कुलपुत्र अपने किसी उद्देश्य के कारण ही ऐसा करते हैं। वे किसी राजा या किसी चोर से दण्डित होकर ऐसा नहीं करते, न तो किसी और भय से, और न किसी दूसरी जीविका न मिलने के कारण ही। बल्कि, जन्म, जरा, मृत्यु, शोक, रोना, पीटना, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास (=परेशानी) से मुक्त हो जाने के लिए ही वे ऐसा आचरण करते हैं, जिससे हमें इस विशाल दुःखराशि का अन्त मिल जाय। भिक्षुओ! कुलपुत्र ऐसी महत्वाकांक्षा को लेकर प्रव्रजित होता है।

यदि वह (कुलपुत्र) लोभी, भोग विलास में तीव्र राग करनेवाला, गिरे हुए चित्तवाला, दोषपूर्ण संकल्पोंवाला, मूढ़ स्मृतिवाला, असंप्रज्ञ, असमाहित, विभ्रान्त चित्तवाला, और असंयतेन्द्रिय हो, तो हे भिक्षुओ! वह श्मशान में फेंकी हुई उस जली लकड़ी के समान है, जो दोनों ओर से जली हुई और बीच में गन्दगी लगी हुई है, जो न गाँव में और न तो जंगल ही में लकड़ी के काम में आ सकती है। वह गृहस्थ के भोग से भी वंचित रहता है, और अपने श्रमण-भाव को भी नहीं पूरा कर सकता है।

भिक्षुओ! तीन अकुशल (=पापके) वितर्क हैं—(१) काम-वितर्क, (२) व्यापाद-वितर्क और (३) विहिंसा-वितर्क। भिक्षुओ! यह तीन वितर्क कहाँ बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं? चार स्मृति-प्रस्थानों में सुप्रतिष्ठित या अनिमित्त समाधि के अभ्यस्त चित्त में।

भिक्षुओ! अतः तुम्हें इस अनिमित्त समाधि की भावना करनी चाहिए। भिक्षुओ! इस समाधि की भावना तथा अभ्यास का फल महान् है।

भिक्षुओ! दो (मिथ्या) दृष्टियाँ हैं; (१) भव-दृष्टि और (२) विभव-दृष्टि। भिक्षुओ! सो कोई पण्डित आर्यश्रावक ऐसा विचारता है—क्या इस लोक में ऐसी कोई चीज है जिसे पाकर मैं दोष से बचा रह सकूँ?

वह ऐसा जान लेता है—इस लोक में ऐसी कोई चीज नहीं है जिसे पाकर मैं दोष से बचा रह सकूँ। मैं पाने की कोशिश करूँगा तो रूप ही को, वेदना ही को, संज्ञा ही को, संस्कार ही को, या विज्ञान ही को पाऊँगा। उस पाने की कोशिश (=उपादान) से भव होगा, भव से जाति, जाति से जरामरण··· होंगे। इस प्रकार सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होगा।

भिक्षुओ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य?

भन्ते! अनित्य।

यदि अनित्य है तो वह दुःख है या सुख?

भन्ते! दुःख है।

जो अनित्य, दुःख, परिवर्तन-शील है उसे क्या ऐसा समझना ठीक है कि—यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है?

भन्ते! ऐसा समझना ठीक नहीं।

भिक्षुओ! तो क्या समझते हो, वेदना···, संज्ञा···, संस्कार···, विज्ञान···।

भिक्षुओ ! इसी से ऐसा समझने वाला···फिर जन्म को नहीं ग्रहण करता है।

§ ९. पारिलेय्य सुत्त (२१. २. ३. ९)

आश्रवों का क्षय कैसे ?

एक समय भगवान् कौशाम्बी के घोषितराम में विहार करते थे।

तब, भगवान् पूर्वाह्न समय पहन और पात्र-चीवर ले कौशाम्बी में भिक्षाटन के लिये पैठे। कौशाम्बी में भिक्षाटन करके लौट, भोजन कर लेने के बाद स्वयं अपने आसन लपेट, पात्र और चीवर ले, किसी सहायक को बिना कुछ कहे और भिक्षु-संघ से भी बिना मिले बिल्कुल अकेले रमत के लिये चल पड़े।

तब, भगवान के चले जाने के कुछ ही देर बाद कोई भिक्षु जहाँ आयुष्मान आनन्द थे वहाँ आया। आकर आयुष्मान् आनन्द से बोला—आवुस आनन्द ! अभी तुरत भगवान स्वयं अपने आसन लपेट, पात्र और चीवर ले, किसी सहायक को बिना कुछ कहे और भिक्षु-संघ से भी बिना मिले बिल्कुल अकेले रमत के लिये निकल गये हैं। आवुस !···ऐसे समय भगवान् अकेला विहार करना चाहते हैं, अतः किसी को उनके पीछे-पीछे हो लेना अच्छा नहीं।

तब, भगवान् रमत (= चारिका) लगाते हुये क्रमशः वहाँ पहुँचे जहाँ पारिलेय्यक है। वहाँ भगवान् पारिलेय्यक में भद्रशाल वृक्ष के नीचे विहार करने लगे।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ पहुँचे, और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, वे भिक्षु आयुष्मान् आनन्द से बोले—आवुस आनन्द ! भगवान् के मुँह से धर्म सुने बहुत दिन बीत गये। बड़ी इच्छा हो रही है कि फिर भी भगवान् के मुँह से धर्म सुनें।

तब, आयुष्मान आनन्द उन भिक्षुओं को साथ ले पारिलेय्यक में भद्रशाल वृक्ष के नीचे जहाँ भगवान् विहार कर रहे थे वहाँ गये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे हुये उन भिक्षुओं को भगवान् ने धर्मोपदेश कर दिखा दिया, बतला दिया, उत्साह से भर दिया और पुलकित कर दिया।

उस समय किसी भिक्षु के चित्त में ऐसा वितर्क उठा—क्या जान और देख लेने से आश्रवों का क्षय होता है ?

तब, भगवान ने अपने चित्त से उस भिक्षु के चित्त के वितर्क को जान भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! मैंने विश्लेषण करके बतला दिया कि धर्म क्या है, चार स्मृति-प्रस्थान क्या हैं, चार सम्यक् प्रधान क्या हैं, चार ऋद्धि-पाद क्या हैं, पाँच इन्द्रियाँ क्या हैं, पाँच बल क्या हैं, सात बोध्यङ्ग क्या हैं, आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग क्या है। भिक्षुओ ! मैंने इस प्रकार विश्लेषण कर धर्म समझा दिया है। भिक्षुओ ! तो भी, एक भिक्षु के चित्त में ऐसा वितर्क उठा है—क्या जान और देख लेने से आश्रवों का क्षय होता है ?

भिक्षुओ ! क्या जान और देख लेने से आश्रवों का क्षय होता है ?

भिक्षुओ ! कोई अज्ञ = पृथक्जन = आर्य सत्यों को न समझने वाला···सत्पुरुषों के धर्म में अविनीत रूप को आत्मा करके जानता है। भिक्षुओ ! ऐसा जो जानना है वह संस्कार कहलाता है। उस संस्कार का क्या निदान = समुदय = जाति = प्रभव है ?

भिक्षुओ ! अविद्या-पूर्वक संस्पर्श से जो वेदना होती है उससे अज्ञ=पृथक्जन को तृष्णा उत्पन्न होती है। उसी से संस्कार पैदा होता है। भिक्षुओ ! इस तरह, वह संस्कार भी अनित्य, संस्कृत और किसी कारण से उत्पन्न होने वाला है। वह तृष्णा भी अनित्य, संस्कृत और किसी कारणसे उत्पन्न होने

वाली है। वह वेदना भी···। वह स्पर्श भी···। वह अविद्या भी···। भिक्षुओ ! इसे भी जान और देख लेने से आश्रवों का क्षय होता है।

वह रूप को आत्मा करके नहीं जानता है, किंतु आत्मा को रूप वाला जानता है। भिक्षुओ ! उसका जो ऐसा जानना है वह संस्कार है। उस संस्कार का क्या निदान = समुदय = जाति = प्रभव है ? भिक्षुओ ! अविद्या-पूर्वक संस्पर्श से जो वेदना होती है उससे अज्ञ = पृथक्जन को तृष्णा उत्पन्न होती है। उसी से संस्कार पैदा होता है। भिक्षुओ ! इस तरह वह संस्कार भी अनित्य···, तृष्णा भी···, वेदना भी···; स्पर्श भी···, अविद्या भी अनित्य, संस्कृत और किसी कारण से उत्पन्न होने वाली है। भिक्षुओ ! इसे भी जान और देख लेने से आश्रवों का क्षय होता है।

वह रूप को आत्मा करके नहीं जानता है, और न आत्मा को रूपवाला जानता है, किन्तु आत्मा में रूप है ऐसा जानता है। भिक्षुओ ! उसका जो ऐसा जानना है वह संस्कार है। उस संस्कार का क्या निदान···। भिक्षुओ ! इसे भी जान और देख लेने से आश्रवों का क्षय होता है।

वह रूप को आत्मा करके नहीं जानता है, न आत्मा को रूपवाला जानता है, न आत्मा में रूप है, ऐसा जानता है, किन्तु रूप में आत्मा है, ऐसा जानता है। भिक्षुओ ! उसका जो ऐसा जानना है वह संस्कार है। उस संस्कार का क्या निदान = समुदय = जाति = प्रभव है ? भिक्षुओ ! अविद्या-पूर्वक संस्पर्श से जो वेदना होती है उससे अज्ञ = पृथक् जन को तृष्णा उत्पन्न होती है। उसी से संस्कार पैदा होता है। भिक्षुओ ! इस तरह, यह संस्कार भी अनित्य···, तृष्णा भी···, वेदना भी···, स्पर्श भी···, अविद्या भी अनित्य, संस्कृत और किसी कारण से उत्पन्न होने वाली है। भिक्षुओ ! इसे भी जान और देख लेने से आश्रवों का क्षय होता है।

वह रूप को आत्मा करके नहीं जानता है, न आत्मा को रूपवाला जानता है, न आत्मा में रूप है ऐसा जानता है, और न रूप में आत्मा है ऐसा जानता है, किन्तु वह वेदना को आत्मा करके जानता है···, आत्मा को वेदना वाला जानता है···, आत्मा में वेदना है ऐसा जानता है···, वेदना में आत्मा है ऐसा जानता है। संज्ञा को···। संस्कार को···। विज्ञान को···।

वह न तो रूप को, न वेदना को, न संज्ञा को, न संस्कार को और न विज्ञान को आत्मा करके जानता है; किन्तु ऐसा मत मानता है—जो आत्मा है वही लोक है। सो मैं मरने के बाद नित्य, ध्रुव, शाश्वत और परिवर्तन-रहित हो जाऊँगा।

भिक्षुओ ! उसकी जो यह शाश्वत-दृष्टि है वह संस्कार है। उस संस्कार का क्या निदान है···। भिक्षुओ ! इसे भी जान और देख कर आश्रवों का क्षय होता है।

···किन्तु वह ऐसा मत मानता है—न मैं हुआ हूँ और न मेरा कुछ होवे, न मैं हूँगा और न मेरा कुछ होगा।

भिक्षुओ ! उसकी जो यह उच्छेद-दृष्टि है वह संस्कार है।···। भिक्षुओ ! इसे भी जान और देख कर आश्रवों का क्षय होता है।

···किन्तु वह सन्देह वाला होता है, विचिकित्सा करने वाला और सद्धर्म में उसकी निष्ठा नहीं होती है।

भिक्षुओ ! उसका जो यह सन्देह करना और सद्धर्म में निष्ठा का नहीं होना है वह संस्कार है। उस संस्कार का क्या निदान = समुदय = जाति = प्रभव है ? भिक्षुओ ! अविद्या-पूर्वक संस्पर्श से जो वेदना होती है उससे अज्ञ = पृथक्जन को तृष्णा उत्पन्न होती है। उसी से संस्कार पैदा होता है। भिक्षुओ ! इस तरह, यह संस्कार भी अनित्य···, तृष्णा भी···, वेदना भी···, स्पर्श भी···, अविद्या भी अनित्य, संस्कृत और किसी कारण से उत्पन्न होने वाली है। भिक्षुओ ! इसे भी जान और देख लेने से आश्रवों का क्षय होता है।

§ १०. पुण्णमा सुत्त (२१. २. ३. १०)

पञ्चस्कन्धों की व्याख्या

एक समय भगवान् बड़े भिक्षु-संघ के साथ श्रावस्ती में मृगारमाता के पूर्वाराम प्रासाद में विहार करते थे।

उस समय, भगवान् उपोसथ को पूर्णिमा की चाँदनी रात में भिक्षु-संघ के बीच खुले स्थान में बैठे थे।

तब, कोई भिक्षु अपने आसन से उठ, उपरनी को एक कन्धे पर सम्हाल, भगवान् की ओर हाथ जोड़कर बोला—यदि भगवान् की अनुमति हो तो मैं भगवान् से कोई प्रश्न पूछूँ ?

भिक्षु ! तो, तुम अपने आसन पर बैठकर जो पूछना चाहते हो पूछो।

'भन्ते ! बहुत अच्छा' कह वह भिक्षु अपने आसन पर बैठ गया और बोला—भन्ते ! यही पाँच उपादान-स्कन्ध हैं न, जो (१) रूप-उपादान स्कन्ध, (२) वेदना-उपादान स्कन्ध, (३) संज्ञा-उपादान स्कन्ध, (४) संस्कार-उपादान स्कन्ध और (५) विज्ञान-उपादान स्कन्ध ?

हाँ भिक्षु ! यही पाँच उपादान-स्कन्ध हैं, जो रूप-उपादान स्कन्ध···।

साधुकार दे, वह भिक्षु भगवान् के कहे का अभिनन्दन और अनुमोदन कर उसके आगे का प्रश्न पूछा—भन्ते ! इन पाँच उपादान-स्कन्धों का मूल क्या है ?

भिक्षु ! इन पाँच उपादान-स्कन्धों का मूल तृष्णा (=छन्द) है।

साधुकार दे···प्रश्न पूछा—भन्ते ! जो उपादान है क्या वही पाँच उपादान-स्कन्ध है, या पाँच उपादान स्कन्ध दूसरा है और उपादान दूसरा ?

भिक्षु ! न तो जो उपादान है वही पंच-उपादान स्कन्ध है, और न पंच उपादान-स्कन्ध से भिन्न ही कोई उपादान है। बल्कि, जो जहाँ छन्दराग है वही वहाँ उपादान है।

साधुकार दे···प्रश्न पूछा—भन्ते ! पाँच उपादान स्कन्धों में छन्दराग का नानात्व होता है या नहीं ?

भगवान् बोले, "होता है। भिक्षु ! किसी के मन में ऐसा होता है—मैं आगे चलकर ऐसा रूप-वाला हूँगा;···ऐसी वेदनावाला हूँगा;···ऐसी संज्ञावाला हूँगा;···ऐसे संस्कारवाला हूँगा;···ऐसा विज्ञान वाला हूँगा। भिक्षु, इस तरह पाँच उपादान स्कन्धों में छन्द राग का नानात्व होता है।

साधुकार दे···फिर आगे का प्रश्न पूछा—भन्ते ! इन स्कन्धों का नाम "स्कन्ध" ऐसा क्यों पड़ा ?

भिक्षुओ ! जो रूप—अतीत, अनागत, वर्तमान, अध्यात्म, बाह्य, स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूर, निकट है—वह रूप-स्कन्ध कहा जाता है। जो वेदना···। जो संज्ञा···। जो संस्कार···। जो विज्ञान—अतीत···—है वह विज्ञान-स्कन्ध कहा जाता है। भिक्षु ! इसी से स्कन्धों का नाम स्कन्ध पड़ा है।

साधुकार दे···फिर आगे का प्रश्न पूछा—भन्ते ! रूप-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का क्या हेतु = प्रत्यय है ? वेदना-स्कन्ध की···? संज्ञा-स्कन्ध की···? संस्कार-स्कन्ध की···? विज्ञान-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का क्या हेतु = प्रत्यय है ?

भिक्षु ! रूप-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का हेतु = प्रत्यय यही चार महाभूत हैं। वेदना-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का हेतु = प्रत्यय स्पर्श है। संज्ञा-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का हेतु = प्रत्यय स्पर्श है। संस्कार-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का हेतु = प्रत्यय स्पर्श है। विज्ञान-स्कन्ध की प्रज्ञप्ति का हेतु = प्रत्यय नाम-रूप है।

साधुकार दे···फिर आगे का प्रश्न पूछा—भन्ते ! सत्काय-दृष्टि कैसे होती है ?

भिक्षु ! कोई अज्ञ = पृथक्जन······रूप को आत्मा करके जानता है, या आत्मा को रूपवान्,

या आत्मा में रूप, या रूप में आत्मा जानता है। वेदना को···। संज्ञा को···। संस्कार को···। विज्ञान को आत्मा करके···। भिक्षु ! इसी तरह सत्काय-दृष्टि होती है।

साधुकार दे···फिर आगे का प्रश्न पूछा—भन्ते ! रूप के क्या आस्वाद, दोष और मोक्ष हैं ? वेदना···, संज्ञा···, संस्कार···, विज्ञान के क्या आस्वाद, दोष और मोक्ष हैं ?

भिक्षु ! रूप के कारण जो सुख और आराम उत्पन्न होता है वह रूप का आस्वाद है। रूप जो अनित्य, दुःख, और परिवर्तनशील है वह रूप का दोष है। रूप के प्रति जो छन्दराग का प्रहाण है वह रूप से मोक्ष है। वेदना के···। संज्ञा के···। संस्कारों के···। विज्ञान के कारण जो सुख और आराम उत्पन्न होता है वह विज्ञान का आस्वाद है। विज्ञान जो अनित्य, दुःख, और परिवर्तनशील है वह विज्ञान का दोष है। विज्ञान के प्रति जो छन्दराग का प्रहाण है वह विज्ञान से मोक्ष है।

साधुकार दे···फिर आगे का प्रश्न पूछा—भन्ते ! क्या जान और देखकर इस विज्ञान वाले शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार, ममंकार, मान और अनुशय नहीं होते हैं ?

भिक्षु ! जो रूप—अतीत, अनागत, वर्तमान, आध्यात्म, बाह्य, स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूर, निकट—है सभी न मेरा है, न 'मैं' हूँ, और न मेरा आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञा-पूर्वक जान लेता है। जो वेदना···, संज्ञा···, संस्कार···, विज्ञान···न मेरा है, न 'मैं' हूँ और न मेरा आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञा-पूर्वक जान लेता है। भिक्षु ! इसे ही जान और देखकर इस विज्ञानवाले शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार, ममंकार, मान और अनुशय नहीं होते हैं।

उस समय किसी भिक्षु के चित्त में ऐसा वितर्क उठा—यदि रूप अनात्म है, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान सभी अनात्म है, तो अनात्म से किये गये कर्म कैसे किसी को लगेंगे ?

तब, भगवान् ने अपने चित्त से उस भिक्षु के चित्त के वितर्क को जान भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! हो सकता है कि यहाँ कोई बेसमझ, अविद्वान्, तृष्णा से अभिभूत हो अपने चित्त से बुद्ध के धर्म को लाँघ जाने योग्य समझ बैठे—कि यदि रूप अनात्म है···तो अनात्म से किये गये कर्म कैसे किसी को लगेंगे ? भिक्षुओ ! धर्म में ऐसी-ऐसी जगहों पर तुम्हें पूछ कर समझ लेना चाहिये।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो रूप नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

वेदना···, संज्ञा···, संस्कार···, विज्ञान··· !

जो अनित्य है वह दुःख होगा या सुख ?

भन्ते ! दुःख होगा।

जो अनित्य, दुःख, और परिवर्तनशील है उसे क्या ऐसा समझना उचित है—यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?

नहीं भन्ते !

इसलिये···। यह जान और देख वह पुनर्जन्म में नहीं पड़ता।

खज्जनीय वर्ग समाप्त

चौथा भाग

स्थविर वर्ग

§ १. आनन्द सुत्त (२१. २. ४. १)

उपादान से ही अहंभाव

ऐसा मैंने सुना।

एक समय आयुष्मान् आनन्द श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

वहाँ आयुष्मान् आनन्द ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—आवुस भिक्षुओ !

"आवुस !" कहकर उन भिक्षुओं ने आयुष्मान् आनन्द को उत्तर दिया।

आयुष्मान् आनन्द बोले—आवुस ! यह आयुष्मान् मन्तानिपुत्र पूर्ण हम नये भिक्षुओं के बड़े उपकार करने वाले हैं। वे हमें ऐसा उपदेश देते हैं, "आवुस आनन्द ! उपादान के कारण ही 'अस्मि' होता है, अनुपादान के कारण नहीं।

"किसके उपादान से 'अस्मि' (=मैं हूँ) होता है···।

"रूप के उपादान से 'अस्मि' होता है, उसके अनुपादान से नहीं। वेदना के···। संज्ञा के···। संस्कार के···। विज्ञान के उपादान से 'अस्मि' होता है, उसके अनुपादान से नहीं।

"आवुस आनन्द ! जैसे कोई स्त्री, पुरुष, लड़का या युवक अपने को सज-धज कर दर्पण या परि-शुद्ध निर्मल जलपात्र में अपने चेहरे को देखते हुए उपादान के साथ देखे, अनुपादान के साथ नहीं। आवुस आनन्द ! इसी तरह रूप के उपादान से 'अस्मि' होता है, उसके अनुपादान से नहीं। वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान के उपादान से 'अस्मि' होता है, उसके अनुपादान से नहीं।

"आवुस आनन्द ! तो तुम क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

आवुस ! अनित्य है।

"वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

आवुस ! अनित्य है।

"इसलिये···, यह जान और देख कर पुनर्जन्म में नहीं पड़ता है।"

आवुस ! आयुष्मान् मन्तानिपुत्र पूर्ण हम नये भिक्षुओं के बड़े उपकार करने वाले हैं। वे हमें ऐसा उपदेश देते हैं। उनके इस धर्मोपदेश को सुन मैं स्रोतापन्न हो गया।

§ २. तिस्स सुत्त (२१. २. ४. २)

राग-रहित को शोक नहीं

श्रावस्ती···जेतवन···।

उस समय भगवान् के चचेरे भाई आयुष्मान् तिष्य कुछ भिक्षुओं के बीच ऐसा कह रहे थे—आवुस ! मुझे कुछ उत्साह नहीं हो रहा है; मुझे दिशायें भी नहीं दीख रही हैं; धर्म भी मुझे नहीं स्वाल

हो रहा है; मेरे चित्त में बड़ा आलस्य हो रहा है; बेमन से मैं ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा हूँ; धर्म में मुझे विचिकित्सा उत्पन्न हो रही है।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् से कहा, "भन्ते ! भगवान् के चचेरे भाई आयुष्मान् तिष्य कुछ भिक्षुओं के बीच ऐसा कह रहे थे—···धर्म में मुझे विचिकित्सा उत्पन्न हो रही है।"

तब, भगवान् ने किसी भिक्षु को आमन्त्रित किया, "भिक्षु ! सुनो, मेरी, ओर से जाकर तिष्य भिक्षु को कहो—आवुस तिष्य ! आपको बुद्ध बुला रहे हैं।"

"भन्ते, बहुत अच्छा" कह वह भिक्षु भगवान् को उत्तर दे जहाँ आयुष्मान् तिष्य थे वहाँ गया, और बोला—आवुस तिष्य ! बुद्ध आपको बुला रहे हैं।

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान तिष्य उस भिक्षु को उत्तर दे जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् तिष्य से भगवान् बोले, "तिष्य ! क्या तुमने सचमुच कुछ भिक्षुओं के बीच ऐसा कहा है—···धर्म में मुझे विचिकित्सा उत्पन्न हो रही है ?"

भन्ते ! हाँ।

तिष्य ! तो तुम क्या समझते हो, जिसे रूप के प्रति राग = छन्द = प्रेम = पिपासा = परिदाह = तृष्णा बने हैं उसे उस रूप के विपरिणत तथा अन्यथा हो जाने से क्या शोक, रोना, पीटना, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास (=परेशानी) नहीं होते हैं ?"

हाँ भन्ते ! होते हैं।

ठीक है, तिष्य ! ऐसी ही बात है। रूप के प्रति···; वेदना के प्रति···; संज्ञा के प्रति···; संस्कारों के प्रति···; रागादि से···शोक, परिदेव···उत्पन्न होते हैं ?

हाँ भन्ते !

ठीक है, तिष्य ! ऐसी ही बात है। विज्ञान के प्रति जिसे राग = छन्द = प्रेम = पिपासा = परिदाह = तृष्णा बने हैं उसे उस विज्ञान के विपरिणत तथा अन्यथा हो जाने से शोक, रोना, पीटना, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास होते ही हैं।

हाँ भन्ते !···

तिष्य ! तो क्या समझते हो, जिसे रूप के प्रति सभी रागादि नष्ट हो गये हैं उसे उस रूप के विपरिणत तथा अन्यथा हो जाने से शोकादि होंगे ?

नहीं भन्ते !

ठीक है, तिष्य ! ऐसी ही बात है। जिसे रूप के प्रति···; वेदना के प्रति···; संज्ञा के प्रति···; संस्कार के प्रति···; विज्ञान के प्रति सभी रागादि नष्ट हो गये हैं उसे उस विज्ञान के विपरिणत तथा अन्यथा हो जाने से शोकादि नहीं होंगे।

तिष्य ! तो तुम क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···?

अनित्य भन्ते !

इसलिए···यह जान और देख लेने से भी पुनर्जन्म नहीं होता है।

तिष्य ! जैसे, दो पुरुष हों। एक पुरुष मार्ग-कुशल हो और दूसरा नहीं। तब, वह मनुष्य जो मार्गकुशल नहीं है उस मार्गकुशल मनुष्य से मार्ग पूछे। वह ऐसा कहे—हे पुरुष ! यह मार्ग है। इस पर कुछ दूर जाओ। कुछ दूर जाकर तुम एक दोरास्ता देखोगे। वहाँ बायें को छोड़ दाहिने को पकड़ना !

उस रास्ते पर भी कुछ दूर जाओ। कुछ दूर जाकर तुम्हें एक घना जंगल मिलेगा। उस पर भी कुछ दूर जाओ। कुछ दूर जाकर तुम्हें एक नीचा गड्ढा मिलेगा। उस पर भी कुछ दूर जाओ। कुछ दूर जाकर तुम्हें एक खाई और प्रपात मिलेगा। उस पर भी कुछ दूर जाओ। कुछ दूर जाकर तुम एक समतल रमणीय प्रदेश में पहुँचोगे।

तिष्य! बात को समझाने के लिये मैंने यह उपमा कही है। उसका मतलब यह है। तिष्य! यहाँ मार्ग में अकुशल मनुष्य से पृथक्जन समझना चाहिये; और मार्ग में कुशल मनुष्य से अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत को।

तिष्य! दो रास्ता विचिकित्सा का द्योतक है; बायाँ रास्ता अष्टाङ्गिक मिथ्यामार्ग का, दाहिना रास्ता आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का—जैसे सम्यक् दृष्टि···सम्यक् समाधि।

घना जंगल अविद्या का द्योतक है। बड़ा नीचा गड्ढा कामों का, खाई और प्रपात क्रोध तथा उपायास का, और समतल रमणीय प्रदेश निर्वाण का द्योतक है।

तिष्य! इसे समझ कर श्रद्धा से रहो, मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ।

भगवान् यह बोले! संतुष्ट हो आयुष्मान् तिष्य ने भगवान् के कहे का अभिनन्दन किया।

§ ३. यमक सुत्त (२१. २. ४. ३)

मृत्यु के बाद अर्हत् क्या होता है?

एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

उस समय यमक नामक भिक्षु को इस प्रकार की पापयुक्त मिथ्या धारणा हो गई थी—मैं भगवान् के बताये धर्म को इस प्रकार जानता हूँ कि क्षीणाश्रव भिक्षु शरीर के गिर जाने पर (=मृत्यु के बाद) उच्छिन्न हो जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं, मरने के बाद वे नहीं रहते हैं।

कुछ भिक्षुओं ने यमक भिक्षु की यह पापयुक्त मिथ्या धारणा को सुना···। तब, वे भिक्षु जहाँ आयुष्मान् यमक थे वहाँ गये, और कुशल-क्षेम पूछने के बाद एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने आयुष्मान् यमक को कहा, 'आवुस यमक! क्या सचमुच में आप को ऐसी पापमय मिथ्या-धारणा उत्पन्न हुई है···?'

आवुस! मैं भगवान् के बताये धर्म को इसी प्रकार जानता हूँ कि क्षीणाश्रव भिक्षु शरीर के गिर जाने पर उच्छिन्न हो जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं, मरने के बाद वे नहीं रहते हैं।

आवुस यमक! ऐसा मत कहें। भगवान् पर झूठी बात मत थापें। यह अच्छा नहीं है। भगवान् ऐसा नहीं कह सकते हैं कि, क्षीणाश्रव भिक्षु शरीर के गिर जाने पर उच्छिन्न हो जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं, मरने के बाद वे नहीं रहते हैं।'

उन भिक्षुओं से ऐसा कहे जाने पर भी आयुष्मान् यमक अपने आग्रह को पकड़े कहने लगे, "आवुस! मैं भगवान् के बताये धर्म को इस प्रकार जानता हूँ···।"

जब वे भिक्षु आयुष्मान् यमक को इस पापमय मिथ्या धारणा से नहीं अलग कर सके, तब आसन से उठ जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ चले गये। जाकर आयुष्मान् सारिपुत्र से बोले, "आवुस सारिपुत्र! यमक भिक्षु को ऐसी पापमय मिथ्या धारणा हो गई है···। अच्छा होता यदि आप कृपा करके जहाँ आयुष्मान् यमक हैं वहाँ चलते।

आयुष्मान् सारिपुत्र ने चुप रह कर स्वीकार कर लिया।

तब आयुष्मान् सारिपुत्र ने संध्या समय ध्यान से उठ जहाँ आयुष्मान् यमक थे वहाँ गये, और

कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् यमक से बोले, "आवुस ! क्या सच में आपको ऐसी पापमय मिथ्या धारणा हो गई है……?"

आवुस ! मैं भगवान् के बतलाये धर्म को इसी प्रकार जानता हूँ……।

आवुस यमक ! तो क्या समझते हैं, रूप नित्य है या अनित्य ?

आवुस ! अनित्य है।

वेदना…; संज्ञा…; संस्कार…; विज्ञान…?

आवुस ! अनित्य है।

इसलिये…यह जान और देख कर पुनर्जन्म में नहीं पड़ता।

आवुस यमक ! तो क्या समझते हैं, जो यह रूप है वही जीव (= तथागत) है ?

नहीं, आवुस !

वेदना…; संज्ञा…; संस्कार…; विज्ञान है वही जीव है ?

नहीं आवुस !

आवुस यमक ! तो क्या समझते हैं, रूप में जीव है ?

नहीं आवुस !

तो क्या जीव रूप से भिन्न कहीं है ?

नहीं आवुस !

वेदना…; वेदना से भिन्न…?

संज्ञा…; संज्ञा से भिन्न…?

संस्कार…; संस्कार से भिन्न…?

विज्ञान…; विज्ञान से भिन्न…?

नहीं आवुस !

आवुस यमक ! तो क्या समझते हैं, रूप-वेदना-संज्ञा-संस्कार और विज्ञान जीव है ?

नहीं आवुस !

आवुस यमक ! तो क्या समझते हैं, जीव कोई रूप-रहित, वेदना-रहित, संज्ञा-रहित, संस्कार रहित और विज्ञान-रहित है ?

नहीं आवुस !

आवुस यमक ! जब यथार्थ में सचमुच कोई जीव उपलब्ध नहीं होता है, तो क्या आपका ऐसा कहना ठीक है, "भगवान् के बतलाये धर्म को मैं इस प्रकार जानता हूँ कि क्षीणाश्रव भिक्षु शरीर के गिर जाने पर उच्छिन्न हो जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं, मरने के बाद वे नहीं रहते हैं" ?

आवुस सारिपुत्र ! मुझ मूर्ख को ठीक में पापमय मिथ्या धारणा हो गई थी, किन्तु आपके इस धर्मोपदेश को सुन मेरी वह मिथ्या धारणा मिट गई और धर्म मेरे समझ में आ गया।

आवुस यमक ! यदि आपको कोई ऐसा पूछे—हे मित्र यमक, क्षीणाश्रव अर्हत् भिक्षु मरने के बाद क्या होता है ?—तो आप क्या उत्तर देंगे ?

आवुस सारिपुत्र ! यदि मुझे कोई ऐसा पूछेगा तो मैं यह उत्तर दूँगा—मित्र, रूप अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःख है। जो दुःख है वह निरुद्ध = अस्त हो गया। वेदना…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…।…

आवुस यमक ! आपने ठीक कहा। मैं एक उपमा देता हूँ जिससे बात और भी साफ हो जायगी।

आवुस यमक ! जैसे, कोई गृहपति या गृहपति-पुत्र महाधनी वैभवशाली हो, जिसके साथ सदा आरक्षक तैयार रहते हों। तब, उसका कोई शत्रु बन जाय जो उसे जान से मार डालना चाहे। उसके

मन में ऐसा हो, "……इसके साथ खूब आरक्षक सिपाही रहते हैं, इसे पकड़ कर जान से मार देना सहज नहीं है। तो क्यों न मैं चाल से भीतर पैठ कर अपना काम निकालूँ!" वह उस गृहपति या गृहपति-पुत्र के पास जा कर ऐसा कहे—देव! मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ। तब, उसे वह अपनी सेवा में नियुक्त कर ले। वह सेवा करे; स्वामी के उठने के पहले ही उठ जाय; स्वामी के सोने के बाद सोवे; आज्ञा सुनने में सदा तत्पर रहे; मनोहर आचार-विचार का बनके रहे; और सदा प्रिय बोले। वह गृहपति या गृहपति-पुत्र उसे अपना अन्तरंग मित्र समझ कर उसमें बड़ा विश्वास करने लगे। जब उस मनुष्य को यह मालूम हो जाय कि मैंने इस गृहपति या गृहपति-पुत्र के विश्वास को जीत लिया है, तब कहीं एकान्त में उसे अकेला पा कर तेज तलवार से जान से मार दे।

आवुस यमक! तो आप क्या समझते हैं—जब उस मनुष्य ने उस गृहपति या गृहपति-पुत्र से कहा था—देव! मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ—उस समय भी वह उसका वधक ही था। वधक होते हुये भी उसने नहीं पहचाना कि यह मेरा वधक है।

जब वह सेवा कर रहा था, स्वामी के उठने के पहले ही उठ जाया करता था, स्वामी के सोने के बाद सोता था, आज्ञा सुनने में सदा तत्पर रहता था, मनोहर आचार-विचार वाला हो के रहता था, और बड़ा प्रिय बोलता था, उस समय भी वह वधक ही था। वधक होते हुए भी उसने नहीं पहचाना कि यह मेरा वधक है।

जब उसने एकान्त में उसे अकेला पा जान से मार दिया, उस समय भी वह वधक ही था। वधक होते हुये भी उसने नहीं पहचाना कि यह मेरा वधक है।

आवुस! ठीक है।

आवुस! इसी तरह, अज्ञ पृथक्जन…रूप को आत्मा करके जानता है; या आत्मा को रूप वाला, या आत्मा में रूप, या रूप में आत्मा; वेदना…; संज्ञा…; संस्कार…; विज्ञान…। वह अनित्य रूप को अनित्य रूप के तौर पर यथार्थतः नहीं जानता है; अनित्य वेदना को अनित्य वेदना के तौर पर यथार्थतः नहीं जानता है; अनित्य संज्ञा को…; अनित्य संस्कार को…; अनित्य विज्ञान को…। वह दुःख रूप को दुःख रूप के तौर पर यथार्थतः नहीं जानता है; दुःख वेदना को…; दुःख संज्ञा को…; दुःख संस्कार को…; दुःख विज्ञान को…। वह अनात्म रूप को अनात्म रूप के तौर पर यथार्थतः नहीं जानता है; अनात्म वेदना को…; अनात्म संज्ञा को…; अनात्म संस्कार को…; अनात्म विज्ञान को…। संस्कृत रूप को संस्कृत रूप के तौर पर यथार्थतः नहीं जानता है…। वधक रूप को वधक के तौर पर यथार्थतः नहीं जानता है…।

वह रूप को प्राप्त होता है, रूप का उपादान करता है, और समझता है कि रूप मेरा आत्मा है। वेदना…; संज्ञा…; संस्कार…; विज्ञान…। पंच उपादान स्कन्ध को प्राप्त हो, उनका उपादान कर उसे दीर्घकाल तक अपना अहित और दुःख होता है।

आवुस! ज्ञानी आर्यश्रावक…रूप को आत्मा करके नहीं जानता है, न आत्मा को रूप वाला, न आत्मा में रूप, न रूप में आत्मा; न वेदना…, संज्ञा…, संस्कार…, विज्ञान…।

वह अनित्य रूप को अनित्य रूप के तौर पर यथार्थतः जानता है। अनित्य वेदना को…। अनित्य संज्ञा को…। अनित्य संस्कार को…। अनित्य विज्ञान को…।

वह दुःख रूप को दुःख रूप के तौर पर यथार्थतः जानता है…।
वह अनात्म रूप को अनात्म रूप के तौर पर यथार्थतः जानता है…।
वह संस्कृत रूप को संस्कृत रूप के तौर पर यथार्थतः जानता है…।
वह वधक रूप को वधक रूप के तौर पर यथार्थतः जानता है…।
वह रूप को नहीं प्राप्त होता है, रूप का उपादान नहीं करता है, न ऐसा समझता है कि रूप

मेरा आत्मा है। वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···। न ऐसा समझता है कि विज्ञान मेरा आत्मा है। उपादान स्कन्धों को न ग्रास हो, उनका उपादान न करते हुए उसे दीर्घकाल तक अपना हित और सुख होता है।

आवुस सारिपुत्र! वे ऐसा ही होते हैं, जिन आयुष्मानों के वैसे करुणाशील, परमार्थी और उपदेश देने वाले गुरु-भाई होते हैं। यह आयुष्मान् सारिपुत्र के धर्मोपदेश को सुन मेरा चित्त उपादान-रहित हो आश्रवों से मुक्त हो गया।

आयुष्मान् सारिपुत्र यह बोले। संतुष्ट हो आयुष्मान् यमक ने आयुष्मान् सारिपुत्र के कहे का अभिनन्दन किया।

§ ४. अनुराध सुत्त (२१. २. ४. ४)

दुःख का निरोध

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् वैशाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् अनुराध भगवान् के पास ही आरण्य में कुटी लगाकर विहार करते थे।

तब, कुछ तैर्थिक, परिव्राजक जहाँ आयुष्मान् अनुराध थे वहाँ आये, और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ उन तैर्थिक परिव्राजकों ने आयुष्मान् अनुराध को कहा—आवुस! जो तथागत उत्तम पुरुष = परमपुरुष परम-प्राप्ति-प्राप्त हैं वे पूछे जाने पर जीव के विषय में चार स्थानों में से किसी एक को बतलाते हैं—(१) मरने के बाद जीव रहता है, (२) या मरने के बाद जीव नहीं रहता है, (३) या मरने के बाद जीव रहता भी है और नहीं भी रहता है, (४) या मरने के बाद जीव न रहता है, और न नहीं रहता है।

उनके ऐसा कहने पर अनुराध ने उन तैर्थिक परिव्राजकों को कहा—आवुस! हाँ, तथागत··· चार स्थानों में से किसी एक को बतलाते हैं···।

इस पर, उन तैर्थिक परिव्राजकों ने कहा—अवश्य, यह कोई नया अभी तुरत का बना भिक्षु होगा, या कोई मूर्ख बेसमझ स्थविर ही होगा! इस तरह वे आयुष्मान् अनुराध की अवहेलना कर आसन से उठ चले गये।

तब, उन परिव्राजकों के जाने के बाद ही आयुष्मान् अनुराध के मन में यह हुआ—यदि ये परिव्राजक मुझे उसके आगे का प्रश्न पूछें तो मेरे किस प्रकार कहने से भगवान् के सिद्धान्त का ठीक-ठीक प्रतिपादन होगा, भगवान पर झूठी बात का थापना नहीं होगा, धर्मानुकूल बात होगी, और कोई अपने धर्म का वाद के सिलसिले में निन्दित स्थान को नहीं प्राप्त होगा?

तब, आयुष्मान् अनुराध जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् अनुराध भगवान् से बोले—भन्ते! मैं भगवान् के पास ही आरण्य में कुटी लगाकर विहार करता था···। उन परिव्राजकों के जाने के बाद ही मेरे मन में यह हुआ, 'यदि वे परिव्राजक मुझे उसके आगे का प्रश्न पूछें, तो मेरे किस प्रकार कहने से···कोई अपने धर्म का वाद के सिलसिले में निन्दित स्थान को नहीं प्राप्त होगा?

अनुराध! तो तुम क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य?

अनित्य, भन्ते!···

इसलिये···ऐसा जान और देख लेने से पुनर्जन्म में नहीं पड़ता।

अनुराध! तो तुम क्या समझते हो, रूप जीव है?

नहीं भन्ते !

वेदना···, संज्ञा···, संस्कार···, विज्ञान···?

नहीं भन्ते !

अनुराध ! तो तुम क्या समझते हो, रूप में जीव है ?

नहीं भन्ते !

क्या रूप से भिन्न कहीं जीव है ?

नहीं भन्ते !

वेदना···, संज्ञा···, संस्कार···, विज्ञान···से भिन्न कहीं जीव है ?

नहीं भन्ते !

अनुराध ! तो तुम क्या समझते हो, रूप-वेदना-संज्ञा-संस्कार और विज्ञान के बिना कोई जीव है ?

नहीं भन्ते !

अनुराध ! तुमने स्वयं देख लिया कि यथार्थ में सत्यतः किसी जीव की उपलब्धि नहीं होती है, तो क्या तुम्हारा ऐसा कहना ठीक था कि—"आवुस ! हाँ, जो तथागत उत्तमपुरुष = परमपुरुष परम-प्राप्ति-प्राप्त हैं वे पूछे जाने पर जीव के विषय में चार स्थानों में से किसी एक को बताते हैं :—(१) मरने के बाद जीव रहता है, (२) या, मरने के बाद जीव नहीं रहता है, (३) या, मरने के बाद जीव रहता भी है और नहीं भी रहता है, (४) या मरने के बाद जीव न रहता है और न नहीं रहता है ?"

नहीं भन्ते !

ठीक है अनुराध ; मैं पहले और अब भी दुःख और दुःख के निरोध को बता रहा हूँ ।

§ ५. वक्कलि सुत्त (२१. २. ४. ५)

जो धर्म देखता है, वह बुद्ध को देखता है, वक्कलि द्वारा आत्म-हत्या

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय भगवान् राजगृह में वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् वक्कलि एक कुम्हार के घर में रोगी, दुःखी और बड़े बीमार पड़े थे ।

तब, आयुष्मान् वक्कलि ने अपने टहल करनेवालों को आमन्त्रित किया, "आवुस ! सुनें, जहाँ भगवान् हैं वहाँ जायें, और मेरी ओर से भगवान् के चरणों पर शिर से प्रणाम् करें, और कहें—भन्ते ! वक्कलि भिक्षु रोगी, दुःखी और बड़े बीमार हैं; वे आपके चरणों पर शिर से प्रणाम् करते हैं । और ऐसी प्रार्थना करें—भन्ते ! यदि भगवान् जहाँ वक्कलि भिक्षु हैं वहाँ चलते तो बड़ी कृपा होती ।"

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह कर वे भिक्षु आयुष्मान् वक्कलि को उत्तर दे जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा, "भन्ते ! वक्कलि भिक्षु रोगी···, वहाँ चलते तो बड़ी कृपा होती ।"

भगवान् ने चुप रहकर स्वीकार कर लिया ।

तब, भगवान् पहन और पात्र-चीवर ले जहाँ आयुष्मान् वक्कलि थे वहाँ आये ।

आयुष्मान् वक्कलि ने भगवान् को दूर ही से आते देखा, देखकर खाट ठीक करने लगे ।

तब, भगवान् आयुष्मान् वक्कलि से बोले, "वक्कलि ! रहने दो, खाट ठीक मत करो; ये आसन बिछे हैं, मैं इस पर बैठ जाऊँगा ।" भगवान् बिछे आसन पर बैठ गये । बैठकर, भगवान् वक्कलि भिक्षु से बोले, "वक्कलि ! कहो, तबीयत कैसी है, बीमारी घट तो रही है ?"

भन्ते ! मेरी तबीयत अच्छी नहीं है, बड़ी पीड़ा हो रही है. बीमारी बढ़ती ही मालूम होती है ।

वक्कलि ! तुम्हें कोई मलाल या पछतावा तो नहीं रह गया है ?

भन्ते ! मुझे बहुत मलाल और पछतावा हो रहा है।

क्या तुम्हें शील नहीं पालन करने का पश्चात्ताप है ?

नहीं भन्ते ! मुझे यह पश्चात्ताप नहीं है।

वक्कलि ! जब तुम्हें शील नहीं पालन करने का पश्चात्ताप नहीं है तो तुम्हें किस बात का मलाल और पछतावा हो रहा है ?

भन्ते ! बहुत दिनों से भगवान् के दर्शन करने को आने की इच्छा थी, किन्तु शरीर में इतना बल ही नहीं था कि आ सकता।

वक्कलि ! अरे, इस गन्दगी से भरे शरीर के दर्शन से क्या होगा ! वक्कलि ! जो धर्म को **देखता है वह मुझे देखता है; जो मुझे देखता है वह धर्म को देखता है**······।

वक्कलि ! तो तुम क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···?

अनित्य भन्ते !

इसीलिये,···यह जान और देखकर पुनर्जन्म में नहीं पड़ता है।

तब, भगवान् आयुष्मान् वक्कलि को इस तरह उपदेश दे आसन से उठ जहाँ गृद्धकूट पर्वत है वहाँ चले गये।

तब, भगवान् के चले जाने के बाद ही आयुष्मान् वक्कलि ने अपने टहल करनेवालों को आमन्त्रित किया, आवुस ! सुनें, मुझे खाट पर चढ़ा जहाँ ऋषिगिलि शिला है वहाँ ले चलें। मुझ जैसे को घर के भीतर मरना अच्छा नहीं लगता है।

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह, वे आयुष्मान् वक्कलि को उत्तर दे, उन्हें खाट पर चढ़ा जहाँ ऋषिगिलि शिला है वहाँ ले गये।

तब, भगवान् उस रात को और दिन के अवशेष तक गृद्धकूट पर्वत पर विहार करते रहे।

तब, रात बीतने पर दो अत्यन्त सुन्दर देवता अपनी चमक से सारे गृद्धकूट पर्वत को चमकाते हुये जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े हो, एक देवता भगवान् से बोला, "भन्ते ! वक्कलि भिक्षु विमोक्ष में चित्त लगा रहा है।" दूसरा देवता भगवान् से बोला, "भन्ते ! वक्कलि भिक्षु अवश्य विमुक्त हो निर्वाण को प्राप्त होगा।" इतना कह, वे देवता भगवान् को अभिवादन और प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गये।

तब, उस रात के बीत जाने पर भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ ! सुनो, जहाँ वक्कलि भिक्षु है वहाँ जाओ, और उससे कहो—आवुस वक्कलि ! भगवान् ने और जो दो देवताओं ने कहा है उसे सुनें।

···एक ओर खड़े हो, एक देवता भगवान् से बोला, 'भन्ते ! वक्कलि भिक्षु विमोक्ष में चित्त लगा रहा है।' दूसरा देवता···।' आवुस वक्कलि ! और भगवान् आपसे कहते हैं—वक्कलि ! मत डरो, मत डरो, तुम्हारी मृत्यु निष्पाप होगी।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, वे भिक्षु भगवान् को उत्तर दे जहाँ आयुष्मान् वक्कलि थे वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् वक्कलि से बोले—आवुस वक्कलि ! सुनें, भगवान् ने और दो देवताओं ने क्या कहा है।

तब, आयुष्मान् वक्कलि ने अपने टहल करने वालों को आमन्त्रित किया, आवुस ! सुनें, मुझे पकड़ कर खाट से नीचे उतार दें। मुझ जैसे को इस ऊँचे आसन पर बैठ भगवान् का उपदेश सुनना अच्छा नहीं।

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह, उन भिक्षुओं ने आयुष्मान् वक्कलि को उत्तर दे, उन्हें पकड़ कर खाट से उतार दिया।

आवुस ! आज की रात को अत्यन्त सुन्दर देवता⋯। आवुस ! और भगवान् भी आपसे कहते हैं—वक्कलि ! मत डरो, मत डरो, तुम्हारी मृत्यु निष्पाप होगी।

आवुस ! तब, आप लोग मेरी ओर से भगवान् के चरणों पर प्रणाम करें—भन्ते ! वक्कलि भिक्षु रोगी, पीड़ित और बहुत बीमार है, सो वह भगवान् के चरणों पर शिर से प्रणाम करता है और कहता है, "भन्ते ! रूप अनित्य है, मैं उसकी आकांक्षा नहीं करता। जो अनित्य है वह दुःख है, इसमें मुझे सन्देह नहीं। जो अनित्य, दुःख, और परिवर्तनशील है उसके प्रति मुझे छन्द=राग=प्रेम नहीं, इसमें मुझे कुछ सन्देह नहीं।

वेदना⋯; संज्ञा⋯; संस्कार⋯। विज्ञान अनित्य⋯।"

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह, वे भिक्षु आयुष्मान् वक्कलि को उत्तर दे चले गये।

तब, उन भिक्षुओं के जाने के बाद ही आयुष्मान् वक्कलि ने आत्म-हत्या कर ली।

तब, वे भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा, "भन्ते ! वक्कलि भिक्षु रोगी, पीड़ित और बहुत बीमार है, सो भगवान् के चरणों पर शिर से प्रणाम करता है और कहता है—भन्ते रूप अनित्य है मैं उसकी आकांक्षा नहीं करता। जो अनित्य है वह दुःख है, इसमें मुझे सन्देह नहीं। जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है उसके प्रति मुझे छन्द=राग=प्रेम नहीं है, इसमें मुझे कुछ सन्देह नहीं। वेदना⋯; संज्ञा⋯ संस्कार⋯, विज्ञान⋯।

तब, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, 'भिक्षुओ ! चलो, जहाँ कालशिला है वहाँ चल चलें, जहाँ वक्कलि कुलपुत्र ने आत्म-हत्या कर ली है।'

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

तब, कुछ भिक्षुओं के साथ भगवान् जहाँ कालशिला है वहाँ गये। भगवान् ने आयुष्मान् वक्कलि को दूर ही से खाट पर गला कटे सोये देखा। उस समय, कुछ धुँधली धुई छाया के समान पूरब की ओर उड़ रही थी, पच्छिम की ओर उड़ रही थी, ऊपर की ओर उड़ रही थी, नीचे की ओर उड़ रही थी, सभी ओर उड़ रही थी।

तब, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ ! इस कुछ धुँधली धुई छाया के समान पूरब की ओर उड़ रही है⋯इसे देखते हो न ?"

भन्ते ! हाँ।

भिक्षुओ ! यह पापी मार है, जो कुलपुत्र वक्कलि के विज्ञान को खोज रहा है—वक्कलि कुलपुत्र का विज्ञान कहाँ लगा है !

भिक्षुओ ! वक्कलि कुलपुत्र का विज्ञान कहीं नहीं लगा है। उसने तो परिनिर्वाण पा लिया।

§ ६. अस्सजि सुत्त (२१. २. ४. ६)

वेदनाओं के प्रति आसक्ति नहीं रहती

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् अस्सजि काश्यपकाराम में रोगी, पीड़ित और बहुत बीमार थे। तब, आयुष्मान् अस्सजि ने अपने टहल करने वालों को आमन्त्रित किया, "आवुस ! आप जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जायँ, और मेरी ओर से भगवान् के चरणों पर शिर से प्रणाम करें—भन्ते ! अस्सजि भिक्षु रोगी

पीड़ित और बहुत बीमार हैं, सो भगवान् के चरणों पर सिर से प्रणाम् करते हैं। और कहें—भन्ते! यदि कृपा कर जहाँ अस्सजि भिक्षु हैं वहाँ चलते तो बड़ी अच्छी बात होती।

"आवुस! बहुत अच्छा" कह, वे भिक्षु आयुष्मान् अस्सजि को उत्तर दे जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, उन भिक्षुओं ने भगवान् को कहा, "भन्ते! अस्सजि भिक्षु रोगी···।···वहाँ चलते तो बड़ी अच्छी बात होती।"

भगवान् ने चुप रह कर स्वीकार कर लिया।

तब, भगवान् संध्या समय ध्यान से उठ जहाँ आयुष्मान् अस्सजि थे वहाँ गये।

आयुष्मान् अस्सजि ने भगवान् को दूर ही से आते देखा, देख कर खाट ठीक करने लगे।

तब, भगवान् आयुष्मान् अस्सजि से बोले, "रहने दो, अस्सजि! खाट ठीक मत करो। ये आसन बिछे हैं, मैं इन पर बैठ जाऊँगा।

भगवान् बिछे आसन पर बैठ गये, और आयुष्मान् अस्सजि से बोले "अस्सजि! कहो, तबीयत कैसी है···?"

भन्ते! मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।

अस्सजि! तुम्हें कोई मलाल या पछतावा तो नहीं रह गया है?

भन्ते! हमें तो बहुत बड़ा मलाल रह गया है।

अस्सजि! कहीं तुम्हें शील न पालन करने का पश्चात्ताप तो नहीं रह गया है?

भन्ते! नहीं, मुझे शील न पालन करने का पश्चात्ताप नहीं रह गया है।

अस्सजि! यदि तुम्हें शील न पालन करने का पश्चात्ताप नहीं रह गया है, तो किस बात का मलाल या पछतावा है?

भन्ते! इस रोग के पहले मैं अपने आश्वास-प्रश्वास पर ध्यान लगाने का अभ्यास किया करता था, सो मुझे उस समाधि का लाभ नहीं हुआ। अतः मेरे मन में यह बात आई—कहीं मैं शासन से गिर तो नहीं जाऊँगा?

अस्सजि! जिस श्रमण और ब्राह्मण का ऐसा मत है कि समाधि ही असल चीज है (=जिसके बिना मुक्ति नहीं हो सकती है), वे भले ही ऐसा समझते हैं कि समाधि के बिना कहीं मैं च्युत न हो जाऊँ।

अस्सजि! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य?

अनित्य भन्ते!

वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···?

अनित्य भन्ते!

इसीलिए···यह जान और देख पुनर्जन्म में नहीं पड़ता है।

यदि उसे सुखद वेदना होती है तो जानता है कि यह वेदना अनित्य है। वह जानता है कि इसमें लगना नहीं चाहिए। वह जानता है कि इसका अभिनन्दन नहीं करना चाहिए। यदि उसे दुःखद वेदना होती है तो जानता है कि यह वेदना अनित्य है। वह जानता है कि इसमें लगना नहीं चाहिए। वह जानता है कि इसका अभिनन्दन नहीं करना चाहिए। यदि उसे न सुख न दुःख वाली वेदना होती है···।

यदि उसे सुखद वेदना होती है तो वह अनासक्त हो उसे अनुभव करता है। यदि उसे दुःखद···। यदि उसे न सुख-न दुःखवाली वेदना···।

वह कायपर्यन्त वेदना का अनुभव करते जानता है कि यह कायपर्यन्त वेदना है। जीवितपर्यन्त

वेदना का अनुभव करते जानता है कि यह जीवितपर्यन्त वेदना है। देह छूटने, मरने के पहले, यहीं सभी वेदनायें ठंढी हो जायँगी और उनके प्रति कोई आसक्ति नहीं रहेगी।

आवुस ! जैसे तेल और बत्ती के प्रत्यय से प्रदीप जलता है, तथा उसी तेल और बत्ती के न होने से प्रदीप बुझ जाता है, वैसे ही भिक्षु कायपर्यन्त वेदना का अनुभव करते जानता है कि कायपर्यन्त वेदना का अनुभव कर रहा हूँ, जीवितपर्यन्त···; देह छूटने तथा मरने के पहले यहीं सभी वेदनायें ठंढी हो जायँगी और उनके प्रति कोई आसक्ति नहीं रहेगी।

§ ७. खेमक सुत्त (२१. २. ४. ८)

उदय-व्यय के मनन से मुक्ति

एक समय कुछ स्थविर भिक्षु कौशाम्बी के घोषिताराम में विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् खेमक बदरिकाराम में रोगी, पीड़ित और बीमार थे।

तब, संध्या समय ध्यान से उठ उन स्थविर भिक्षुओं ने आयुष्मान् दासक को आमन्त्रित किया, "आवुस दासक ! सुनें, जहाँ खेमक भिक्षु हैं वहाँ जायँ और उनसे कहें—आवुस ! स्थविर भिक्षुओं ने पूछा है कि आपकी तबीयत कैसी है ?"

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह, दासक भिक्षु उन स्थविर भिक्षुओं को उत्तर दे जहाँ खेमक भिक्षु थे वहाँ आये, और बोले—आवुस खेमक ! स्थविर भिक्षुओं ने पूछा है कि आपकी तबीयत कैसी है ?

आवुस ! मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।

तब, आयुष्मान् दासक जहाँ स्थविर भिक्षु थे वहाँ आये और बोले—आवुस ! खेमक भिक्षु ने कहा कि मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।

आवुस दासक ! सुनें, जहाँ खेमक भिक्षु हैं वहाँ जायँ। जाकर खेमक भिक्षु से कहें, "आवुस खेमक ! स्थविर भिक्षुओं ने आपको कहा है—भगवान् ने पाँच उपादान स्कन्ध बताये हैं, जैसे—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान-उपादान-स्कन्ध। इन पाँच में क्या आयुष्मान् खेमक किसी को आत्मा या आत्मीय करके देखते हैं ?

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह······। इन पाँच में क्या आयुष्मान् खेमक किसी को आत्मा या आत्मीय करके देखते हैं ?

आवुस ! भगवान् ने पाँच उपादान स्कन्ध बताये हैं···। इन पाँच में मैं किसी को आत्मा या आत्मीय करके नहीं देखता हूँ।

तब, आयुष्मान् दासक जहाँ स्थविर भिक्षु थे वहाँ आये और बोले, "आवुस ! खेमक भिक्षु कहता है कि—···इन पाँच स्कन्धों में मैं किसी को आत्मा या आत्मीय करके नहीं देखता हूँ।

आवुस दासक ! सुनें, जहाँ खेमक भिक्षु हैं वहाँ जायें। जाकर खेमक भिक्षु से कहें, "आवुस खेमक ! स्थविर भिक्षुओं ने आपको कहा है—···यदि आयुष्मान् खेमक इन पाँच स्कन्धों में से किसी को भी आत्मा या आत्मीय करके नहीं देखते हैं तो अवश्य क्षीणाश्रव अर्हत् हैं।

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् दासक स्थविर भिक्षुओं को उत्तर दे, जहाँ खेमक भिक्षु थे वहाँ गये, और बोले, "आवुस खेमक ! स्थविर भिक्षुओं ने कहा है—···यदि आयुष्मान् खेमक इन पाँच स्कन्धों में से किसी को भी आत्मा या आत्मीय करके नहीं देखते हैं तो अवश्य क्षीणाश्रव अर्हत् हैं।

आवुस !···इन पाँच उपादान स्कन्धों में मैं किसी को आत्मा या आत्मीय करके नहीं देखता, किन्तु मैं क्षीणाश्रव अर्हत् नहीं हूँ। आवुस ! किन्तु, मुझे पाँच उपादान स्कन्धों में 'अस्मि' (=मैं हूँ) की बुद्धि है ही, यद्यपि मैं नहीं जानता कि मैं 'यह' हूँ।

तब, आयुष्मान् दासक जहाँ स्थविर भिक्षु थे···।

आवुस दासक ! सुनें, जहाँ खेमक भिक्षु हैं वहाँ जायँ और कहें, आवुस खेमक ! स्थविर भिक्षुओं ने कहा है—आवुस ! जो आप कहते हैं "मैं हूँ", वह 'मैं हूँ' क्या है ?

क्या रूप को 'मैं हूँ' कहते हैं, या 'मैं हूँ' रूप से कहीं बाहर है ? वेदना···;संज्ञा···; संस्कार··· विज्ञान···?

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् दासक स्थविर भिक्षुओं को उत्तर दे··· ।

आवुस दासक ! यह दौड़-धूप बस रहे। मेरी लाठी लावें मैं स्वयं वहाँ जाऊँगा, जहाँ वे स्थविर भिक्षु हैं।

तब, आयुष्मान् खेमक लाठी टेकते जहाँ वे स्थविर भिक्षु थे वहाँ पहुँचे और कुशल समाचार पूछ कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् खेमक को उन स्थविर भिक्षुओं ने कहा, "आवुस ! जो आप कहते हैं "मैं हूँ," वह "मैं हूँ" क्या है ? क्या रूप को "मैं हूँ" कहते हैं, या "मैं हूँ' रूप से कहीं बाहर है ? वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···?

आवुस ! मैं रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान को "मैं हूँ" नहीं कहता, और न "मैं हूँ" इनसे कहीं बाहर है। किन्तु पाँच उपादान स्कन्धों में "मैं हूँ" ऐसी मेरी बुद्धि है, यद्यपि यह नहीं जानता यह 'मैं हूँ' क्या है।

आवुस ! जैसे उत्पल का या पद्म का या पुण्डरीक का गन्ध है। यदि कोई कहे, "पत्ते का गन्ध है, या इसके रंग का गन्ध है या इसके पराग का गन्ध है" तो क्या वह ठीक समझा जायगा ?

नहीं, आवुस !

आवुस ! तो आप बतावें कि किस प्रकार कहने से ठीक समझा जायगा।

आवुस ! "फूल का गन्ध है" ऐसा कहने से वह ठीक समझा जायगा।

आवुस ! इसी तरह, मैं रूप को "मैं हूँ" नहीं कहता, और न "मैं हूँ" को रूप से बाहर की चीज बताता। न वेदना को···। न संज्ञा को···। न संस्कार को···। न विज्ञान को···। आवुस ! यद्यपि पाँच उपादान स्कन्धों में मुझे "मैं हूँ" की बुद्धि लगी है, तथापि मैं नहीं जानता कि मैं यह हूँ।

आवुस ! आर्यश्रावक के पाँच नीचे के बन्धन कट जाने पर भी उसे पाँच उपादानस्कन्धों के साथ होने वाले "मैं हूँ" का मान, छन्द (=इच्छा), और अनुशय लगा ही रहता है। वह आगे चल कर पाँच उपादान-स्कन्धों में उदय और व्यय (=उत्पत्ति और विनाश) देखते हुये विहार करता है :—यह रूप है, यह रूप की उत्पत्ति है, यह रूप का अस्त हो जाना है। यह वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

इस प्रकार पाँच उपादान-स्कन्धों में उदय और व्यय देखते हुये विहार करने से उसके पाँच उपादान स्कन्धों के साथ होने वाले "मैं हूँ" का मान, छन्द और अनुशय छूट जाता है।

आवुस ! जैसे, कोई बहुत मैला गन्दा कपड़ा हो। उसे उसका मालिक धोबी को दे दे। धोबी राख या खार या गोबर में उस कपड़े को मल-मल कर खूब धोये और साफ पानी में संवार दे। कपड़ा खूब साफ उजला हो जाय, किंतु उसमें राख या खार या गोबर का गन्ध लगा ही रहे। उसे धोबी मालिक को दे दे। मालिक उसे सुगन्धित जल से धो ले। तब, कपड़े में लगा हुआ राख या खार गोबर का गन्ध बिल्कुल दूर हो जाय।

आवुस ! इसी तरह, आर्यश्रावक के पाँच नीचे के बन्धन कट जाने पर भी उसे पाँच उपादान स्कन्धों के साथ होने वाले "मैं हूँ" का मान, छन्द और अनुशय लगा ही रहता है। वह आगे चल कर पाँच उपादान स्कन्धों में उदय और व्यय देखते हुये विहार करता है :—यह रूप है, यह रूप की उत्पत्ति है, यह रूप का अस्त हो जाना है। यह वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···। इस प्रकार पाँच

उपादान-स्कन्धों में उदय और व्यय देखते हुये विहार करने से उसके पाँच उपादान स्कन्धों के साथ होने वाले "मैं हूँ" का मान, छन्द और अनुशय छूट जाता है।

इस पर, वे स्थविर भिक्षु आयुष्मान् खेमक से बोले, "हमने आयुष्मान् खेमक को कुछ नीचा दिखलाने के लिये नहीं पूछा था, किन्तु आप आयुष्मान् यथार्थ में भगवान् के धर्म को विस्तार-पूर्वक बता सकते हैं, समझा सकते हैं, जना सकते हैं, सिद्ध कर सकते हैं, खोल सकते हैं और विश्लेषण करके साफ साफ कर सकते हैं। सो आपने वैसा ही किया।

आयुष्मान् खेमक यह बोले। संतुष्ट हो स्थविर भिक्षुओं ने आयुष्मान् खेमक के कहे का अभिनन्दन किया।

इस धर्मालाप के अनन्तर उन साठ स्थविर भिक्षुओं के तथा आयुष्मान् खेमक के चित्त उपादान-रहित हो आश्रवों से मुक्त हो गये।

§ ८. छन्न सुत्त (२१. २. ४. ८)

बुद्ध का मध्यम मार्ग

एक समय कुछ स्थविर भिक्षु वाराणसी के पास ऋषिपतन मृगदाय में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् छन्न संध्या समय ध्यान से उठ, चाभी ले एक विहार से दूसरे विहार जा स्थविर भिक्षुओं से बोले, "आप स्थविर लोग मुझे उपदेश दें, सिखायें और धर्म की बात कहें जिससे मैं धर्म को जान सकूँ।

इस पर, उन स्थविर भिक्षुओं ने आयुष्मान् छन्न को कहा, "आवुस छन्न! रूप अनित्य है, वेदना···, संज्ञा···, संस्कार···, विज्ञान अनित्य है। रूप अनात्म है, वेदना···, संज्ञा···, संस्कार···, विज्ञान अनात्म है। सभी संस्कार अनित्य हैं, सभी धर्म अनात्म हैं।

तब, आयुष्मान् छन्न के मन में ऐसा हुआ, "मैं भी इसे ऐसा ही समझता हूँ—रूप अनित्य··· अनात्म है···। सभी संस्कार अनित्य हैं, सभी धर्म अनात्म हैं। किन्तु, मेरे सभी संस्कारों के शान्त हो जाने, सभी उपाधियों के अन्त हो जाने, तृष्णा के क्षय हो जाने, विराग, निरोध, निर्वाण में चित्त शान्त, शुद्ध, स्थिर तथा परित्रास से विमुक्त नहीं हो जाता है। उपादान उत्पन्न होता है और मन को आच्छादित कर देता है। तब, मेरा कौन आत्मा है। इस तरह धर्म को जाना नहीं जाता है। तब, मुझे कौन धर्मोपदेश करे कि मैं धर्म को ठीक-ठीक जान सकूँ!

तब आयुष्मान् छन्न के मन में यह हुआ, "यह आयुष्मान् आनन्द कौशाम्बी के घोषिताराम में विहार करते हैं। भगवान् स्वयं उनकी प्रशंसा करते हैं, तथा विज्ञ भिक्षुओं में भी उनका बड़ा सम्मान है। अतः, आयुष्मान् आनन्द मुझे वैसा धर्मोपदेश कर सकते हैं जिससे मैं धर्म को ठीक-ठीक जान सकूँ। मुझे आयुष्मान् आनन्द में पूरा-पूरा विश्वास भी है। तो, मैं चलूँ जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं।

तब, आयुष्मान् छन्न अपना बिछावन समेट, पात्र और चीवर ले, जहाँ कौशाम्बी के घोषिताराम में आयुष्मान् आनन्द विहार कर रहे थे वहाँ पहुँचे, और कुशल-क्षेम पूछने के बाद एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, आयुष्मान् छन्न ने आयुष्मान् आनन्द को कहा, "आवुस आनन्द! एक समय मैं वाराणसी के पास ऋषिपतन मृगदाय में···मुझे आयुष्मान् आनन्द में पूरा विश्वास भी है। तो, मैं चलूँ जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं।

"आयुष्मान् आनन्द मुझे उपदेश दें, समझावें, धर्म की बात बतायें जिससे मैं धर्म को जान लूँ।

इतने भर से हम लोग आयुष्मान् छन्न से संतुष्ट हैं। उसे आयुष्मान् छन्न ने प्रकट कर दिया, खोल दिया। आवुस छन्न! आप स्रोतापत्ति-फल का लाभ करें। आप धर्म अच्छी तरह जान सकते हैं।

इसे सुन आयुष्मान् छन्न के मनमें बड़ी प्रीति उत्पन्न हुई—मैं धर्म अच्छी तरह जान सकता हूँ।

आवुस छन्न ! मैंने स्वयं भगवान् को कात्यायनगोत्र भिक्षु को उपदेश देते सुनकर जाना है :—कात्यायन ! यह संसार दो अज्ञान में पड़ा है, जिनके कारण अस्तित्व और नास्तित्व की भ्रान्ति होती है। कात्यायन ! संसार के समुदय को यथार्थतः जान लेने से संसार के प्रति जो नास्तित्व-बुद्धि है वह नहीं होती है। कात्यायन ! संसार के निरोध को यथार्थतः जान लेने से संसार के प्रति जो अस्तित्व की बुद्धि है वह नहीं होती है। कात्यायन ! यह संसार उपाय, उपादान, और अभिनिवेश से बेतरह जकड़ा है। इसे जान लेने से चित्त में अधिष्ठान, अभिनिवेश और अनुशय नहीं लगते हैं, और न उसे "आत्मा" की भ्रान्ति होती है। उत्पन्न हो कर दुःख ही उत्पन्न होता है, और निरुद्ध हो कर दुःख ही निरुद्ध होता है—इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह जाता। प्रतीत्य-समुत्पाद का पूरा-पूरा ज्ञान हो जाता है। कात्यायन ! इसी को सम्यक्-दृष्टि कहते हैं।

कात्यायन ! "सभी कुछ है" (= सर्वं अस्ति) यह एक अन्त है। "कुछ नहीं है" (=सर्वं नास्ति) यह दूसरा अन्त है। कात्यायन ! इन दो अन्तों में न जा बुद्ध धर्म को मध्य से उपदेश करते हैं। अविद्या के प्रत्यय से संस्कार होते हैं; संस्कार के प्रत्यय से विज्ञान होता है···इस प्रकार सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है। उसी अविद्या के बिल्कुल निरोध हो जाने से संस्कार नहीं होते···इस प्रकार सारा दुःख-समूह बन्द हो जाता है।

आवुस आनन्द ! जिन आयुष्मानों के इस प्रकार कृपालु, परमार्थी और उपदेश देने वाले गुरुभाई होते हैं उनका ऐसा ही होता है। आयुष्मान् आनन्द के इस उपदेश को सुन मुझे पूरा-पूरा धर्म-ज्ञान हो गया।

§ ९. पठम राहुल सुत्त (२१. २. ४. ९)

पञ्चस्कन्ध के ज्ञान से अहंकार से मुक्ति

श्रावस्ती··· जेतवन...।

तब, आयुष्मान् राहुल जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् राहुल भगवान् से बोले, भन्ते ! क्या जान और देख कर मनुष्य को विज्ञानवाले इस शरीर में और बाहर के सभी निमित्तों में अहङ्कार, ममङ्कार, मान और अनुशय नहीं होते हैं ?

राहुल ! जो कुछ रूप—अतीत, अनागत, वर्तमान, अध्यात्म, बाह्य, स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूर, या निकट—है सभी न तो मेरा है, न मैं हूँ और न मेरा आत्मा है। इसी को यथार्थतः पूरा-पूरा जान लेने से।

जो कुछ वेदना...। जो कुछ संज्ञा...। जो कुछ संस्कार...। जो कुछ विज्ञान...।

राहुल ! इसे जान और देख कर मनुष्य को विज्ञानवाले इस शरीर में और बाहर के सभी निमित्तों में अहङ्कार, ममङ्कार, मान और अनुशय नहीं होते हैं।

§ १०. दुतिय राहुल सुत्त (२१. २. ४. १०)

किसके ज्ञान से मुक्ति ?

...भन्ते ! क्या जान और देख कर मनुष्य विज्ञानवाले इस शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहङ्कार, ममङ्कार और मान से रहित मन वाला, द्वन्द्व के परे, शान्त और विमुक्त होता है ?

राहुल ! जो कुछ रूप...। इसे जान और देख कर...।

स्थविर वर्ग समाप्त।

पाँचवाँ भाग

पुष्प वर्ग

§ १. नदी सुत्त (२१. २. ५. १)

अनित्यता के ज्ञान से पुनर्जन्म नहीं

श्रावस्ती…जेतवन…।

भिक्षुओ ! जैसे पर्वत से निकल कर गिराती-पराती बहने वाली वेगवती नदी हो। उसके दोनों तट पर कास उगे हों, जो नदी की ओर झुके हों। कुश भी उगे हों, जो नदी की ओर झुके हों। बब्बज (= भाभड़) भी…। बीरण (= डॅंड़) भी…। वृक्ष भी उगे हों जो नदी की ओर झुके हों।

नदी की धारा में बहता हुआ कोई मनुष्य यदि कासों को पकड़े तो वे उखड़ जायँ। इससे मनुष्य और भी खतरे में पड़ जाय। यदि कुशों को पकड़े…। यदि बब्बजों को पकड़े…। यदि बीरण को पकड़े…। यदि वृक्षों को पकड़े…।

भिक्षुओ ! इसी तरह, अज्ञ=पृथक्जन=आर्यसत्यों को न जानने वाला=आर्यधर्म में अज्ञान=आर्य धर्म में अविनीत…रूप को आत्मा करके जानता है, या रूप में आत्मा को जानता है। उसका वह रूप उखड़ जाता है; उससे वह और विपत्ति में पड़ जाता है। वेदना…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

वेदना…, संज्ञा…, संस्कार…, विज्ञान…?

अनित्य भन्ते !

भिक्षुओ ! इसलिये…इसे जान और देख वह पुनर्जन्म में नहीं पड़ता है।

§ २. पुष्फ सुत्त (२१. २. ५. २)

बुद्ध संसार से अनुपलिप्त रहते हैं

श्रावस्ती…जेतवन…।

भिक्षुओ ! मैं संसार से विवाद नहीं करता, संसार ही मुझसे विवाद करता है। भिक्षुओ ! धर्म-वादी संसार में कुछ विवाद नहीं करता।

भिक्षुओ ! संसार में पण्डित लोग जिसे "नहीं है" कहते हैं उसे मैं भी "नहीं है" कहता हूँ।

भिक्षुओ ! जिसे पण्डित लोग "है" कहते हैं उसे मैं भी "है" कहता हूँ।

भिक्षुओ ! संसार में किसे पण्डित लोग "नहीं है" कहते हैं जिसे मैं भी "नहीं है" कहता हूँ।

भिक्षुओ ! संसार में पण्डित लोग रूप को नित्य=ध्रुव=शाश्वत=अविपरिणामधर्मा नहीं बताते हैं, मैं भी उसे 'ऐसा नहीं है' कहता हूँ। वेदना…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…। भिक्षुओ ! संसार में इसी को पण्डित लोग "नहीं है" कहते हैं जिसे मैं भी "नहीं है" कहता हूँ।

भिक्षुओ ! किसे पण्डित लोग "है" कहते हैं, जिसे मैं भी "है" कहता हूँ ?

भिक्षुओ ! रूप अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है ऐसा पण्डित लोग कहते हैं, और मैं भी ऐसा ही कहता हूँ। वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···विज्ञान···। भिक्षुओ ! संसार में इसी को पण्डित लोग "है" कहते हैं, और मैं भी वैसा ही कहता हूँ।

भिक्षुओ ! संसार का जो यथार्थ धर्म है उसे बुद्ध अच्छी तरह जानते और समझते हैं। जान और समझ कर वे उस को कहते हैं, उपदेश करते हैं, जनाते हैं, सिद्ध करते हैं, खोल देते हैं, और विश्लेषण करके साफ कर देते हैं।

भिक्षुओ ! रूप संसार का यथार्थ धर्म है, जिसे बुद्ध अच्छी तरह जानते और समझते हैं। जान और समझ कर ···। भिक्षुओ ! बुद्ध के इस प्रकार ···साफ कर देने पर भी जो लोग नहीं जानते और देखते हैं, उन बाल=पृथक्जन=अंधा=बिना आँख के=अज्ञ मनुष्य का मैं क्या कर सकता हूँ ! वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···विज्ञान···।

भिक्षुओ ! जैसे, उत्पल, या पुण्डरीक, या पद्म पानी में पैदा होता है और पानी में बढ़ता है, तो भी पानी से वह अलग अनुपलिप्त ही रहता है। भिक्षुओ ! इसी तरह, बुद्ध संसार में रह कर भी संसार को जीत संसार से अनुपलिप्त रहते हैं।

§ ३. फेण सुत्त (२१. २. ५. ३)

शरीर में कोई सार नहीं

एक समय भगवान् अयोध्या में गंगा नदी के तट पर विहार करते थे।

वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया।

भिक्षुओ ! जैसे, यह गंगा नदी बहुत फेन को बहा कर ले जाती है। इसे कोई आँख वाला मनुष्य देखे, भाले और ठीक से परीक्षा करे देख, भाल और ठीक से परीक्षा कर लेने पर उसे वह रिक्त, तुच्छ और असार प्रतीत हो भिक्षुओ ! भला, फेन के पिण्ड में क्या सार रहेगा ?

भिक्षुओ ! वैसे ही, जो कुछ रूप— अतीत, अनागत...—है उसे भिक्षु देखता है, भालता है और ठीक से परीक्षा करता है। देख, भाल और ठीक से परीक्षा कर लेने पर उसे वह रिक्त, तुच्छ और असार प्रतीत होता है। भिक्षुओ ! भला रूप में क्या सार रहेगा ?

भिक्षुओ ! जैसे, शरद् काल में कुछ फूही पड़ जाने पर जल में बुलबुले उठते और लीन होते रहते हैं। उसे कोई आँख वाला मनुष्य देखे...। भिक्षुओ ! भला जल के बुलबुले में क्या सार रहेगा ?

भिक्षुओ ! वैसे ही, जो कुछ वेदना—अतीत, अनागत...—है उसे भिक्षु देखता...। भिक्षुओ ! भला वेदना में क्या सार रहेगा ?

भिक्षुओ ! जैसे, ग्रीष्म के पिछले महीने में दोपहर के समय मरीचिका होती है। उसे कोई आँख वाला मनुष्य देखे...। भिक्षुओ ! भला मरीचिका में क्या सार रहेगा ?

भिक्षुओ ! वैसे ही, जो कुछ संज्ञा...।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई मनुष्य हीर (=सार) की खोज में एक तीक्ष्ण कुठार को लेकर जंगल में पैठ जाय। वह वहाँ एक बड़े, सीधे नये कोमल केला के पेड़ को देखे। उसे वह जड़ से काट कर गिरा दे, फिर अगे काटता जाय, और काट कर छिलका-छिलका अलग कर दे। इस तरह, उसे कभी लकड़ी भी नहीं मिले, हीर की तो बात ही क्या ?

उसे कोई आँख वाला मनुष्य देखे, भाले, और ठीक से परीक्षा करे। देख, भाल और ठीक से परीक्षा कर लेने पर उसे वह रिक्त, तुच्छ और असार प्रतीत हो। भिक्षुओ ! भला केले के तने में क्या सार रहेगा ?

भिक्षुओ ! वैसे ही, जो कुछ संस्कार...।

भिक्षुओ ! जैसे कोई जादूगर या जादूगर का शागिर्द बीच सड़क पर खेल दिखावे। उसे कोई चतुर मनुष्य देखे...। भिक्षुओ ! भला जादू में क्या सार रहेगा ?

भिक्षुओ ! वैसे ही, जो कुछ विज्ञान···।

भिक्षुओ ! इसे देख, पण्डित आर्यश्रावक रूपसे विरक्त होता है, वेदना से भी विरक्त होता है, संज्ञा···, संस्कार···, विज्ञान से भी विरक्त होता है। विरक्त रहने से वह राग-रहित हो जाता है, राग-रहित होने से विमुक्त हो जाता है, विमुक्त हो जाने से उसे "मैं विमुक्त हो गया" ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है।

भगवान् यह बोले। यह बोल कर बुद्ध ने फिर भी कहा :—

> रूप फेनपिण्डोपम है,
> वेदना की उपमा जलके बुलबुले से है,
> संज्ञा मरीचि की तरह है,
> संस्कार केले के पेड़ की तरह,
> जादू के खेल के समान विज्ञान है—
> सूर्य वंशोत्पन्न गौतम बुद्ध ने बताया है॥
> जैसे-जैसे गौर से देखता भालता है,
> और अच्छी तरह परीक्षा करता है,
> उसे रिक्त और तुच्छ पाता है,
> वह, जो ठीक से देखता है॥
> इस निश्चित शरीर के विषय में जो महाज्ञानी ने उपदेश दिया है,
> उस प्रहीण धर्मों को पार किये हुये छोड़े रूप को देखो॥
> आयु, ऊष्मा (= गर्मी) और विज्ञान जब इस शरीर को छोड़ देते हैं,
> तब यह बेकार चेतनाहीन होकर गिर जाता है॥
> इसका सिलसिला ऐसा ही है, बच्चों की माया की तरह,
> यह वधक कहा गया है, यहाँ कोई सार नहीं॥
> स्कन्धों को ऐसा ही समझे, उत्साही भिक्षु,
> सदा दिन और रात संप्रजन्य और स्मृतिमान् होकर रहे॥
> सभी संयोग को छोड़ दे, अपना शरण आप बने
> मानो शिर जल रहा हो ऐसा ख्याल रख कर विचरे,
> निर्वाण-पद की प्रार्थना करते हुये।

§ ४. गोमय सुत्त (२१. २. ५. ४)

सभी संस्कार अनित्य हैं

श्रावस्ती···जेतवन···।

तब, कोई भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, उस भिक्षु ने भगवान् को कहा, "भन्ते ! क्या कोई रूप है जो नित्य = ध्रुव = शाश्वत = परिवर्तनरहित...है ? भन्ते ! क्या कोई वेदना है जो नित्य...? संज्ञा..., संस्कार..., विज्ञान...?

भिक्षु ! कोई रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार या विज्ञान नहीं है जो नित्य = ध्रुव = शाश्वत = परिवर्तनरहित...है।

तब, भगवान् हाथ में बहुत थोड़ा गोबर लेकर उस भिक्षु से बोले, "भिक्षु ! इतना भी आत्म-भाव का प्रतिलाभ नहीं है जो नित्य = ध्रुव...हो। भिक्षु ! यदि इतना भी आत्म-भाव का प्रतिलाभ नित्य = ध्रुव...होता तो ब्रह्मचर्य-पालन दुःख-क्षय के लिये नहीं जाना जाता। भिक्षु ! क्योंकि इतना भी आत्म-भाव का प्रतिलाभ नित्य = ध्रुव...नहीं है इसीलिये ब्रह्मचर्य-पालन दुःख-क्षय के लिये सार्थक जाना जाता है।

"भिक्षु ! पूर्वकाल में मैं मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा था। उस समय, कुशावती राजधानी प्रमुख मेरे चौरासी हजार नगर थे। उस समय, धर्म प्रासाद प्रमुख चौरासी हजार प्रासाद थे। उस समय, महाव्यूह कूटागार प्रमुख मेरे चौरासी हजार कूटागार (=watch tower) थे। उस समय, मेरे चौरासी हजार पलंग थे—हाथी के दाँत के, हीरे के, सोना के, चाँदी के; कालीन लगे हुये, उजले कम्बल लगे हुये, फूलदार कम्बल लगे हुये, कदलिमृग के कीमती चर्म लगे हुये, चँदवा लगे हुये, दोनों ओर लाल तकिये लगे। उस समय, उपोसथ हस्तिराज प्रमुख मेरे चौरासी हजार हाथी थे—सोने के अलङ्कार से अलंकृत, सोने की ध्वजा लगे हुये, सोने के जाल से ढँके। उस समय वलाहक अश्वराज प्रमुख मेरे चौरासी हजार घोड़े थे—सोने के अलङ्कार से अलङ्कृत, सोने की ध्वजा लगे हुए, सोने के जाल से ढँके। उस समय, वैजयन्त रथ प्रमुख मेरे चौरासी हजार रथ थे—सोने के...।...मणिरत्न प्रमुख मेरे चौरासी हजार मणि थे। ...सुभद्रा देवी प्रमुख चौरासी हजार स्त्रियाँ थीं।...परिनायकरत्न प्रमुख चौरासी हजार अधीन राजा थे। ...चौरासी हजार दूध देने वाली गौवें थीं। चौरासी हजार कपड़े थे— रेशम के, पट के, ऊनी और सूती। ...चौरासी हजार थालियाँ थीं, जिन्हें सूपकार दोनों बेला परोस कर ले आता था।

भिक्षु ! उस समय मैं उन चौरासी हजार नगरों में एक कुशावती राजधानी ही में रहता था। ...धर्म प्रासाद ही में रहता था। [इसी तरह सभी के साथ समझ लेना]

भिक्षु ! वे सभी संस्कार अतीत हो गये, निरुद्ध हो गये, विपरिणत हो गये। भिक्षु ! संस्कार ऐसे अध्रुव = अनित्य और आश्वास से रहित हैं।

भिक्षु ! तो, सभी संस्कारों से विरक्त हो जाना भला है, राग-रहित हो जाना भला है, विमुक्त हो जाना भला है।

§ ५. नखसिख सुत्त (२१. २. ५. ५)

सभी संस्कार अनित्य हैं

श्रावस्ती···जेतवन···।

एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! क्या कोई रूप है जो नित्य = ध्रुव = शाश्वत = परिवर्तन-रहित हो? कोई वेदना···? कोई संज्ञा···? कोई संस्कार···? कोई विज्ञान···?

नहीं भिक्षु ! ऐसा कोई रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार या विज्ञान नहीं है जो नित्य = ध्रुव हो।

तब, भगवान् अपने नख के ऊपर एक धूल के कण को रखकर बोले, 'भिक्षु ! इतना भी रूप नहीं है जो नित्य = ध्रुव हो। भिक्षु ! यदि इतना भी रूप नित्य = ध्रुव होता तो ब्रह्मचर्य दुःख-क्षय का साधक नहीं जाना जाता। भिक्षु ! क्योंकि इतना भी रूप नित्य = ध्रुव नहीं है इसी से ब्रह्मचर्य दुःख-क्षय के लिये सार्थक समझा जाता है।

"भिक्षु ! इतनी भी वेदना···। इतनी भी संज्ञा···। इतना भी संस्कार···। इतना भी विज्ञान नित्य = ध्रुव नहीं है···। भिक्षु ! क्योंकि इतना भी विज्ञान नित्य = ध्रुव नहीं है इसी से ब्रह्मचर्य दुःख-क्षय के लिये सार्थक समझा जाता है।"

भिक्षु ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···?

अनित्य भन्ते !

भिक्षु ! इसलिये···, ऐसा जान और देखकर पुनर्जन्म में नहीं पड़ता।

§ ६. सामुद्दक सुत्त (२१. २. ५. ६)

सभी संस्कार अनित्य हैं

श्रावस्ती···जेतवन···।

एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! क्या कोई रूप है जो नित्य···, वेदना···, संज्ञा···, संस्कार···विज्ञान है जो नित्य = ध्रुव हो ?

नहीं भिक्षु !···ऐसा नहीं है।

§ ७. पठम गद्दुल सुत्त (२१. २. ५. ७)

अविद्या में पड़े प्राणियों के दुःख का अन्त नहीं

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! यह संसार अनन्त है। अविद्या के अन्धकार में पड़े, तृष्णा के बन्धन से बँधे तथा आवागमन में भटकते रहने वाले इस संसार के आदि का पता नहीं लगता है।

भिक्षुओ ! एक समय आता है जब महासागर सूख सोख कर नहीं रहता है। भिक्षुओ ! तब भी, अविद्या के अन्धकार में पड़े, तृष्णा के बंधन से बँधे तथा आवागमन में भटकते रहने वाले प्राणियों के दुःख का अन्त नहीं होता।

भिक्षुओ ! एक समय होता है जब पर्वतराज सुमेरु जल जाता है, नष्ट हो जाता है, नहीं रहता है। भिक्षुओ ! तब भी अविद्या के अंधकार में पड़े···।

भिक्षुओ ! एक समय होता है जब यह महापृथ्वी जल जाती है, नष्ट हो जाती है, नहीं रहती है। भिक्षुओ ! तब भी अविद्या के अन्धकार में पड़े···।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई कुत्ता किसी गड़े खूँटे में बँधा हो। वह उसी खूँटे के चारों ओर घूमता है। भिक्षुओ ! वैसे ही, अज्ञ = पृथक्जन···रूप को आत्मा करके जानता है, वेदना···, संज्ञा···, संस्कार···, विज्ञान को आत्मा करके जानता है।···

आत्मा को विज्ञानवान्, या विज्ञान में आत्मा, या आत्मा में विज्ञान···।

वह रूप ही के चारों ओर घूमता है; वेदना···, संज्ञा···, संस्कार···, विज्ञान ही के चारों ओर घूमता है। इस तरह, वह रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान से मुक्त नहीं होता है। जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास से मुक्त नहीं होता है। वह दुःख से मुक्त नहीं होता है, ऐसा मैं कहता हूँ।

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक···रूप को आत्मा करके नहीं जानता है···। वह रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान के चारों ओर नहीं घूमता है। इस तरह, वह रूप···से मुक्त हो जाता है। जाति, जरा···से मुक्त हो जाता है। वह दुःख से मुक्त हो जाता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

§ ८. दुतिय गद्दुल सुत्त (२१. २. ५. ८)

निरन्तर आत्मचिन्तन करो

श्रावस्ती ''जेतवन'''।

भिक्षुओ ! यह संसार अनन्त है। अविद्या के अन्धकार में पड़े, तृष्णा के बन्धन से बँधे तथा आवागमन में भटकते रहनेवाले इस संसार के आदि का पता नहीं लगता है।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई कुत्ता एक गड़े खूँटे में बँधा हो। यदि वह चलता है तो उसी खूँटे के इर्द-गिर्द। यदि वह खड़ा होता है तो उसी खूँटे के इर्दगिर्द। यदि वह बैठता है'''। यदि वह लेटता है तो उसी खूँटे के इर्दगिर्द।

भिक्षुओ ! वैसे ही, अज्ञ पृथक्जन रूप को समझता है कि यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है। वेदना को'''। संज्ञा को'''। संस्कार को'''। विज्ञान को'''। यदि वह चलता है तो इन्हीं पाँच उपादान स्कन्धों के इर्दगिर्द। यदि वह खड़ा होता है''', बैठता है''', लेटता है तो इन्हीं पाँच उपादान स्कन्धों के इर्दगिर्द।

भिक्षुओ ! इसलिये, निरन्तर आत्म-चिन्तन करते रहना चाहिये। यह चित्त बहुत काल से राग, द्वेष और मोह से गन्दा बना है। भिक्षुओ ! चित्त की गन्दगी से प्राणी गन्दे होते हैं और चित्त की शुद्धि से प्राणी विशुद्ध होते हैं।

भिक्षुओ ! पटहरियों* के पट को देखा है ?

हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! पटहरियों के वे चित्र भी चित्त ही से चित्रित किये जाते हैं। पटहरी अपने चित्त से ही विचार-विचार कर उन चित्रों को चित्रित करते हैं।

भिक्षुओ ! इसलिये, निरन्तर आत्म-चिन्तन करते रहना चाहिये। यह चित्त बहुत काल से'''।

भिक्षुओ ! चित्त की तरह दूसरी कोई चीज नहीं है। तिरश्चीन प्राणी अपने चित्त के कारण ही ऐसे हुये हैं। तिरश्चीन प्राणियों का भी चित्त ही प्रधान है।

भिक्षुओ ! इसलिये, निरन्तर आत्म-चिन्तन करते रहना चाहिये। यह चित्त बहुत काल से'''।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई रंगरेज या चित्रकार रंग से या लिखकर, या हल्दी से, या नील से, या मंजीठ से अच्छी तरह साफ किये गये तख्ते पर, या दीवाल पर स्त्री या पुरुष के सर्वाङ्गपूर्ण चित्र उतार दे। भिक्षुओ ! वैसे ही, अज्ञ पृथक्जन रूप में लगा रह रूप ही को प्राप्त होता है। वेदना में लगा रह'''। संज्ञा'''। संस्कार'''। विज्ञान'''।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

'''इसलिये,'''यह जान और देख पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता।

§ ९. नाव सुत्त (२१. २. ५. ९)

भावना से आश्रवों का क्षय

श्रावस्ती'''जेतवन'''।

भिक्षुओ ! जान और देख कर मैं आश्रवों के क्षय का उपदेश करता हूँ, बिना जाने देखे नहीं।

---

* चरणं नाम चित्तं:—"[एक जाति के लोग] जो कपड़े पर नाना प्रकार के सुगति-दुर्गति के अनुसार सम्पत्ति-विपत्ति के चित्र खिंचवा, यह कर्म करने से यह पाता है, यह कर्म करने से यह, ऐसा दिखाते हुये चित्र को लिये फिरते हैं।" —अट्ठकथा।

भिक्षुओ ! जान और देखकर आश्रवों का क्षय होता है ?—यह रूप है, यह रूप की उत्पत्ति है, यह रूप का अस्त हो जाता है। यह वेदना···, संज्ञा···, संस्कार···, विज्ञान···।

भिक्षुओ ! इसे ही जान और देखकर आश्रवों का क्षय होता है।

भिक्षुओ ! भावना में लगे हुये भिक्षु को ऐसी इच्छा उत्पन्न होती है—अरे ! मेरा चित्त उपादान से रहित हो आश्रवों से मुक्त हो जाय, किंतु ऐसा नहीं होता है।

सो क्यों ? कहना चाहिये कि उसका अभ्यास नहीं जमा है। किसका अभ्यास ? चार स्मृति प्रस्थानों का अभ्यास, चार सम्यक् प्रधानों का अभ्यास, चार ऋद्धिपादों का अभ्यास, पाँच इन्द्रियों का अभ्यास, पाँच बलों का, सात बोध्यङ्गों का, आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का।

भिक्षुओ ! जैसे, मुर्गी को आठ, दस या बारह अण्डे हों। मुर्गी उन अण्डों को न तो ठीक से देख भाल करे और न ठीक से सेवे।

उस मुर्गी के मन में ऐसी इच्छा हो, "मेरे बच्चे अपने चंगुल से या चोंच से अण्डे को फोड़ कर कुशलता से बाहर चले आवें। तब, ऐसी बात नहीं हो।

सो क्यों ? क्योंकि मुर्गी ने उन अण्डों को न तो ठीक से देखा भाला और न ठीक से सेवा।

भिक्षुओ ! वैसे ही, भावना में लगे हुये भिक्षु को ऐसी इच्छा उत्पन्न हो - अरे ! मेरा चित्त उपादान से रहित हो आश्रवों से मुक्त हो जाय, किन्तु ऐसा नहीं हो।

सो क्यों ? कहना चाहिये कि उसका अभ्यास नहीं जमा है। किसका अभ्यास ? चार स्मृति प्रस्थानों का···।

भिक्षुओ ! भावना में लगे हुये भिक्षु को ऐसी इच्छा उत्पन्न हो···; और यथार्थ में उसका चित्त उपादान से रहित हो आश्रवों से मुक्त हो जाय।

सो क्यों ? कहना चाहिये कि उसका अभ्यास सिद्ध हो गया है। किसका अभ्यास ? चार स्मृति-प्रस्थानों का···।

भिक्षुओ ! जैसे, मुर्गी को आठ, दस, या बारह अण्डे हों। मुर्गी उन अण्डों को ठीक से देखे भाले और ठीक से सेवे।

उस मुर्गी के मनमें ऐसी इच्छा हो, "मेरे बच्चे अपने चंगुल से या चोंच से अण्डे को फोड़ कर कुशलता से बाहर चले आवें, और यथार्थ में ऐसी ही बात हो······।

भिक्षुओ ! जैसे, बढ़ई या बढ़ई के शागिर्द के बसुले के हत्थड़ (=बेंट) में देखने से अंगुलियों और अँगूठे के दाग पड़े मालूम होते हैं। उसे ऐसा ज्ञान नहीं रहता है कि बसुले का हत्थड़ आज इतना घिसा और कल इतना घिसेगा। किंतु, उसके घिस जाने पर मालूम होता है कि घिस गया।

भिक्षुओ ! वैसे ही, भावना में लगे हुये भिक्षु को ऐसा ज्ञान नहीं होता है कि आज तो मेरे आश्रव इतना क्षीण हुये और कल इतना क्षीण होंगे। किन्तु, जब क्षीण हो जाते हैं तभी मालूम होता है कि क्षीण हो गये।

भिक्षुओ ! जैसे, समुद्र में चलने वाली बेंत से बँधी हुई नाव छः महीने पानी में चलाने के बाद हेमन्त में जमीन पर चढ़ा दी जाय। उसके बन्धन धूप हवा से सूख और वर्षा से भींग सड़ गल कर नष्ट हो जाते हैं।

भिक्षुओ ! वैसे ही, भावना में लगे हुये भिक्षु के सभी बन्धन (=१० संयोजन) नष्ट हो जाते हैं।

§ १०. सञ्ञा सुत्त (२१. २. ५. १०)

अनित्य-संज्ञा की भावना

श्रावस्ती... जेतवन...।

भिक्षुओ ! अनित्य-संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग, रूपराग, भवराग और अविद्या हट जाती है; सभी अहङ्कार और अभिमान समूल नष्ट हो जाते हैं।

भिक्षुओ ! जैसे, शरद्काल में कृषक अच्छे हल से जोतते हुये सभी जड़ मूल को छिन्न-भिन्न करते हुये जोतता है वैसे ही भिक्षुओ ! अनित्य-संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग, रूपराग, भवराग, अविद्या तथा अहंकार और अभिमान छिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

भिक्षुओ ! जैसे, घसगढ़वा घास को गढ़, ऊपर पकड़, इधर उधर डोला कर फेंक देता है। भिक्षुओ ! वैसे ही, अनित्य-संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग···छिन्न भिन्न हो जाते हैं।

भिक्षुओ ! जैसे, किसी आम के गुच्छे की टहनी कट जाने से उसमें लगे सभी आम गिर पड़ते हैं। भिक्षुओ ! वैसे ही, अनित्य-संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग···छिन्न भिन्न हो जाते हैं।

भिक्षुओ ! जैसे, कूटागार के सभी धरण कूट की ओर ही आते हैं, कूट की ओर ही झुके होते हैं, और कूट ही उनका प्रधान होता है। भिक्षुओ ! वैसे ही, अनित्य-संज्ञा की भावना···।

भिक्षुओ ! जैसे, सभी मूल-गन्धों में कालानुसारी उत्तम समझी जाती है। भिक्षुओ ! वैसे ही, अनित्य-संज्ञा की भावना···।

भिक्षुओ ! जैसे, सभी सार गन्धों में लालचन्दन उत्तम समझा जाता है। भिक्षुओ ! वैसे ही, अनित्य-संज्ञा की भावना···।

भिक्षुओ ! जैसे, सभी पुष्प-गन्धों में जूही उत्तम समझी जाती है ! भिक्षुओ ! वैसे ही, अनित्य-संज्ञा की भावना···।

भिक्षुओ ! जैसे, छोटे मोटे राजा सभी चक्रवर्ती राजा के आधीन रहते हैं, और चक्रवर्ती राजा उनका प्रधान समझा जाता है ! भिक्षुओ ! वैसे ही, अनित्य-संज्ञा की भावना···।

भिक्षुओ ! जैसे, सभी ताराओं का प्रकाश चन्द्रमा के प्रकाश का सोलहवाँ हिस्सा भी नहीं होता है, और चन्द्रमा ताराओं में प्रधान माना जाता है। भिक्षुओ ! वैसे ही अनित्य-संज्ञा की भावना···।

भिक्षुओ ! जैसे, शरद्काल में बादलों के हट जाने से आकाश के निर्मल हो जाने पर सूर्य उगकर आकाश के सभी अन्धकार को हटा, चमकता है, तपता है और शोभित होता है। भिक्षुओ ! वैसे ही, अनित्य-संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग, रूपराग, भवराग और अविद्या हट जाती है; सभी अहंकार और अभिमान समूल नष्ट हो जाते हैं।

भिक्षुओ ! अनित्य-संज्ञा की कैसे भावना और अभ्यास करने से सभी कामराग···समूल नष्ट हो जाते हैं ?

"यह रूप है, यह रूप की उत्पत्ति है, यह रूप का अस्त हो जाना है। यह वेदना···। यह संज्ञा···। यह संस्कार···। यह विज्ञान···।"—भिक्षुओ ! इस तरह अनित्य-संज्ञा की भावना और अभ्यास करने से सभी कामराग···समूल नष्ट हो जाते हैं।

पुष्पवर्ग समाप्त

मज्झिमपण्णासक समाप्त।

तीसरा परिच्छेद

चूळ पण्णासक

पहला भाग

अन्त वर्ग

§ १. अन्त सुत्त (२१. ३. १. १)

चार अन्त

श्रावस्ती'''जेतवन'''।

भिक्षुओ ! चार अन्त हैं। कौन से चार ? (१) सत्काय-अन्त, (२) सत्कायसमुदय-अन्त, (३) सत्कायनिरोध-अन्त, और (४) सत्कायनिरोधगामिनी-प्रतिपदा-अन्त।

भिक्षुओ ! सत्काय-अन्त क्या है ? कहना चाहिये कि यही पाँच उपादान-स्कन्ध। कौन से पाँच ? यह जो रूप उपादान-स्कन्ध'''। भिक्षुओ ! इसे कहते हैं 'सत्काय-अन्त'।

भिक्षुओ ! सत्कायसमुदय-अन्त क्या है ? जो यह तृष्णा, पुनर्जन्म करानेवाली, आनन्द और राग के साथवाली, यहाँ वहाँ स्वाद लेनेवाली। जो यह, काम-तृष्णा, भव-तृष्णा, विभव-तृष्णा। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं 'सत्कायसमुदय-अन्त'।

भिक्षुओ ! सत्काय-निरोध-अन्त क्या है ? जो उसी तृष्णा से वैराग्य-पूर्वक निरोध = त्याग = प्रतिनिःसर्ग = मुक्ति = अनालय। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं 'सत्काय निरोध-अन्त'।

भिक्षुओ ! सत्काय-निरोधगामिनी प्रतिपदा-अन्त क्या है ? यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग; सम्यक् दृष्टि...सम्यक् समाधि। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं सत्काय-निरोधगामिनी प्रतिपदा-अन्त।

भिक्षुओ ! यही चार अन्त हैं।

§ २. दुक्ख सुत्त (२१. ३. १. २)

चार आर्यसत्य

श्रावस्ती'''जेतवन'''।

भिक्षुओ ! मैं तुम्हें दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध और दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा का उपदेश करूँगा। उसे सुनो...।

भिक्षुओ ! दुःख क्या है ? यही पाँच उपादान स्कन्ध...।

भिक्षुओ ! दुःखसमुदय क्या है ? जो यह तृष्णा...।

भिक्षुओ ! दुःखनिरोध क्या है ? जो उसी तृष्णा से वैराग्य-पूर्वक निरोध...।

भिक्षुओ ! दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा क्या है ? यही आर्य-अष्टाङ्गिक मार्ग...।

§ ३. सक्काय सुत्त (२१. ३. १. ३)

सत्काय

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! मैं तुम्हें सत्काय, सत्कायसमुदय, सत्काय-निरोध और सत्कायनिरोधगामिनी प्रतिपदा का उपदेश करूँगा ...।

[पूर्ववत्]

§ ४. परिञ्ञेय्य सुत्त (२१. ३. १. ४)

परिज्ञेय-धर्म

श्रावस्ती···जेतवन...।

भिक्षुओ ! मैं तुम्हें परिज्ञेय धर्मों का उपदेश करूँगा, परिज्ञा का और परिज्ञाता का। सुनो...।

भिक्षुओ ! परिज्ञेय धर्म कौन हैं ? रूप परिज्ञेय धर्म है, वेदना..., संज्ञा..., संस्कार...,विज्ञान परिज्ञेय धर्म है। भिक्षुओ ! इन्हीं को परिज्ञेय धर्म कहते हैं।

भिक्षुओ ! परिज्ञा क्या है ? राग-क्षय, द्वेष-क्षय, मोह-क्षय। भिक्षुओ ! इसी को परिज्ञा कहते हैं।

भिक्षुओ ! परिज्ञाता पुद्गल क्या है ? अर्हत्, जो आयुष्मान् इस नाम और गोत्र के हैं—

भिक्षुओ ! इसे कहते हैं परिज्ञाता पुद्गल।

§ ५. पठम समण सुत्त (२१. ३. १. ५)

पाँच उपादान स्कन्ध

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! पाँच उपादान-स्कन्ध हैं। कौन से पाँच ? जो यह, रूप-उपादान-स्कन्ध···।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण इन पाँच उपादान-स्कन्धों के आस्वाद, दोष और छुटकारा को यथार्थतः नहीं जानते हैं···; जानते हैं, वे स्वयं ज्ञान का साक्षात्कार कर ज्ञान को प्राप्त हो विहार करते हैं।

§ ६. दुतिय समण सुत्त (२१. ३. १. ६)

पाँच उपादान स्कन्ध

श्रावस्ती···जेतवन···।

···भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण इन पाँच उपादान-स्कन्धों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और छुटकारा को यथार्थतः नहीं जानते हैं···; जानते हैं, वे स्वयं ज्ञान का साक्षात्कार कर···।

§ ७. सोतापन्न सुत्त (२१. ३. १. ७)

स्रोतापन्न को परमज्ञान की प्राप्ति

श्रावस्ती···जेतवन···।

···भिक्षुओ ! क्योंकि आर्यश्रावक इन पाँच उपादान-स्कन्धों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद,

दोष और छुटकारा को यथार्थतः जानता है, इसी से वह स्रोतापन्न होता है; वह मार्ग से च्युत नहीं हो सकता, वह परमज्ञान को अवश्य प्राप्त करेगा।

§ ८. अरहा सुत्त (२१. ३. १. ८)

अर्हत्

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! क्योंकि भिक्षु इन पाँच उपादान-स्कन्धों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और छुटकारा को यथार्थतः जान उपादानरहित हो विमुक्त हो जाता है, इसी से वह अर्हत् = क्षीणाश्रव = ब्रह्मचर्यवास समाप्त कर लेनेवाला = कृतकृत्य = भारमुक्त = अनुप्राप्तसदर्थ = भवबन्धन जिसके क्षीण हो गये हैं = परमज्ञान से विमुक्त कहा जाता है।

§ ९. पठम छन्दराग सुत्त (२१.३. १. ९)

छन्दराग का त्याग

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! रूप के प्रति जो तुम्हारा छन्द=राग=नन्दि=तृष्णा है उसे छोड़ दो। इस तरह वह रूप प्रहीण हो जायगा, उच्छिन्नमूल, सिर कटे ताड़ के ऐसा, मिटाया हुआ, भविष्य में जो उग नहीं सकता।

वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान के प्रति···।

§ १०. दुतिय छन्दराग सुत्त (२१. ३. १. १०)

छन्दराग का त्याग

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! रूप के प्रति जो तुम्हारे छन्द=राग=नन्दि=तृष्णा, उपाय, उपादान, चित्त का अधिष्ठान अभिनिवेश, अनुशय हैं उन्हें छोड़ दो। इस तरह वह रूप प्रहीण···।

वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

अर्हत् वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

धर्मकथिक वर्ग

§ १. पठम भिक्खु सुत्त (२१. ३. २. १)

अविद्या क्या है ?

श्रावस्ती···जेतवन···।

तब, कोई भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, उस भिक्षु ने भगवान् से यह कहा, "भन्ते ! लोग 'अविद्या' 'अविद्या' कहा करते हैं। भन्ते ! अविद्या क्या है ? अविद्या कैसे होती है ?"

भिक्षु ! कोई अज्ञ-पृथक्जन रूप को नहीं जानता है, रूप के समुदय को नहीं जानता है, रूप के निरोध को नहीं जानता है, रूप की निरोधगामिनी प्रतिपदा (= मार्ग) को नहीं जानता है।

वेदना को···; संज्ञा को···; संस्कार को···; विज्ञान को···।

भिक्षु ! इसी को कहते हैं 'अविद्या'। इसी से अविद्या होती है।

§ २. दुतिय भिक्खु सुत्त (२१. ३. २. २)

विद्या क्या है ?

श्रावस्ती···जेतवन···।

···एक ओर बैठ उस भिक्षुने भगवान् को कहा, "भन्ते ! लोग 'विद्या' 'विद्या' कहा करते हैं। भन्ते ! विद्या क्या है ! विद्या किससे होती है ?"

भिक्षु ! कोई पण्डित आर्यश्रावक रूप को जानता है, रूप के समुदय को···। रूप के निरोध को···; रूप की निरोधगामिनी प्रतिपदा को जानता है।

वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

भिक्षु ! इसी को विद्या कहते हैं, इसी से विद्या होती है।

§ ३. पठम कथिक सुत्त (२१. ३. २. ३)

कोई धर्मकथिक कैसे होता ?

श्रावस्ती···जेतवन···।

···एक ओर बैठ उस भिक्षु ने भगवान् को कहा, "भन्ते ! लोग 'धर्मकथिक' 'धर्मकथिक' कहा करते हैं। भन्ते ! कोई धर्मकथिक कैसे होता है ?

भिक्षु ! यदि कोई रूप से निर्वेद=वैराग्य करने और उसके निरोध के विषय में उपदेश करे तो उतने भर से वह धर्मकथिक कहा जा सकता है। भिक्षु ! यदि कोई रूप के निर्वेद=वैराग्य और निरोध के लिये यत्नशील हो तो उतने से वह धर्मानुधर्मप्रतिपन्न कहा जा सकता है। भिक्षु ! यदि कोई रूप के

निर्वेद=वैराग्य और निरोध से उपादानरहित हो विमुक्त हो गया हो तो कहा जायगा कि उसने अपने देखते ही देखते निर्वाण पा लिया।

वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

§ ४. दुतिय कथिक सुत्त (२१. ३. २. ४)

कोई धर्मकथिक कैसे होता?

श्रावस्ती···जेतवन···।

···भन्ते ! कोई धर्मकथिक कैसे होता है ? कोई धर्मानुधर्मप्रतिपन्न कैसे होता है ? कोई अपने देखते ही देखते निर्वाण कैसे प्राप्त कर लेता है ?

[ऊपर जैसा]

§ ५. बन्धन सुत्त (२१. ३. २. ५)

बन्धन

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! अज्ञ = पृथक्जन···रूप को आत्मा समझता है, रूपवान् आत्मा है ऐसा समझता है, आत्मा रूप है, या रूप में आत्मा है ऐसा समझता है। भिक्षुओ ! कहा जाता है कि यह अज्ञ = पृथक्जन रूप के बन्धन से बँधा है, बाहर और भीतर गाँठ से जकड़ा है, तीर को नहीं देख पाता, पार को नहीं देख पाता, वह ही उत्पन्न होता है, वह ही मरता है और वह ही इस लोक से परलोक को जाता है।

वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक रूप को आत्मा नहीं समझता है, रूपवान् आत्मा है ऐसा नहीं समझता है, आत्मा में रूप है या रूप में आत्मा है ऐसा नहीं समझता है। भिक्षुओ ! कहा जाता है कि यह पण्डित आर्यश्रावक रूप के बन्धन से नहीं बँधा है, बाहर और भीतर गाँठ से नहीं जकड़ा है, तीर को देखनेवाला है, पार को देखनेवाला है। वह दुःख से मुक्त हो गया है ऐसा मैं कहता हूँ।

वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

§ ६. पठम परिमुच्चित सुत्त (२१. ३. २. ६)

रूप के यथार्थ ज्ञान से पुनर्जन्म नहीं

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! क्या तुम रूप को 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है' ऐसा समझते हो ?

नहीं भन्ते !

ठीक है, भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा ही यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक समझ लेना चाहिये।

वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

इस प्रकार देख और जान पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है।

§ ७. दुतिय परिमुच्चित सुत्त (२१. ३. २. ७)

रूप के यथार्थ ज्ञान से पुनर्जन्म नहीं

श्रावस्ती···जेतवन···।

[ठीक ऊपर जैसा]

§ ८. सञ्ञोजन सुत्त (२१. ३. २. ८)

संयोजन

श्रावस्ती ''जेतवन'''।

भिक्षुओ ! संयोजनीय धर्म और संयोजन के विषय में उपदेश करूँगा। उसे सुनो'''।

भिक्षुओ ! संयोजनीय धर्म कौन से हैं, और संयोजन क्या है ?

भिक्षुओ ! रूप संयोजनीय धर्म है, जो उसके प्रति छन्द=राग है वह संयोजन है।

वेदना'''। संज्ञा'''। संस्कार'''। विज्ञान'''।

भिक्षुओ ! यही संयोजनीय धर्म और संयोजन कहलाते हैं।

§ ९. उपादान सुत्त (२१. ३. २. ९)

उपादान

श्रावस्ती ''जेतवन'''।

भिक्षुओ ! उपादानीय धर्म और उपादान के विषय में उपदेश करूँगा। उसे सुनो'''।

'''भिक्षुओ ! रूप उपादानीय धर्म है, और उसके प्रति जो छन्दराग है वह उपादान है।

वेदना'''। संज्ञा'''। संस्कार'''। विज्ञान'''।

§ १०. सील सुत्त (२१. ३. २. १०)

शीलवान् के मनन-योग्य धर्म

एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् महाकोट्ठित वाराणसी के पास ऋषिपतन मृगदाय में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् महाकोट्ठित संध्या समय ध्यान से उठ जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ गये।''' यह बोले, "आवुस सारिपुत्र ! शीलवान् भिक्षु को किन धर्मों का ठीक से मनन करना चाहिये ?"

आवुस कोट्ठित ! शीलवान् भिक्षु को ठीक से मनन करना चाहिये कि—ये पाँच उपादान स्कन्ध अनित्य, दुःख, रोग, दुर्गन्ध, घाव, पाप, पीड़ा, पराया, छूटा, शून्य और अनात्म हैं।

कौन से पाँच ? जो यह रूप उपादान स्कन्ध'''।

आवुस ! ऐसा हो सकता है, कि शीलवान् भिक्षु पाँच उपादान-स्कन्धों का ऐसा मनन कर स्रोतापत्ति के फल का साक्षात्कार कर ले।

आवुस सारिपुत्र ! स्रोतापन्न भिक्षु को किन धर्मों का ठीक से मनन करना चाहिये ?

आवुस कोट्ठित ! स्रोतापन्न भिक्षु को भी यही ठीक से मनन करना चाहिये कि ये पाँच उपादान-स्कन्ध अनित्य...। आवुस ! हो सकता है कि स्रोतापन्न भिक्षु ऐसा मनन कर सकृदागामी..., अनागामी ..., अर्हत् के फल का साक्षात्कार कर ले।

आवुस सारिपुत्र ! अर्हत् को किन धर्मों का ठीक से मनन करना चाहिये ?

आवुस कोट्ठित ! अर्हत् को भी यही मनन करना चाहिये कि—ये पाँच उपादान स्कन्ध अनित्य, दुःख, रोग, दुर्गन्ध, घाव, पाप, पीड़ा,'''अनात्म है। आवुस ! अर्हत् को कुछ और करना या किये का नाश करना नहीं रहता है, इन धर्मों की भावना का अभ्यास यहाँ सुखपूर्वक विहार करने तथा स्मृतिमान् और संप्रज्ञ रहने के लिये होता है।

§ ११. सुतवा सुत्त (२१. ३. २. ११)

श्रुतवान् के मनन-योग्य धर्म

वाराणसी···।

['शीलवान्' के बदले 'श्रुतवान्' करके ऊपर जैसा ज्यों का त्यों]

§ १२. पठम कप्प सुत्त (२१. ३. २. १२)

अहंकार का त्याग

श्रावस्ती···जेतवन···।

तब, आयुष्मान् कप्प···एक ओर बैठ, भगवान् से बोले, "भन्ते ! क्या जान और देख इस विज्ञानवाले शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार, ममङ्कार, मान और अनुशय नहीं होते हैं ?

कप्प ! जो कुछ रूप—अतीत, अनागत···—है सभी न मेरा है, न मैं हूँ और न मेरा आत्मा है। इसे जो यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक देखता है। वेदना···। संज्ञा···। विज्ञान···।

कप्प ! इसे ही जान और देखकर इस विज्ञानवाले शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार···नहीं होते हैं।

§ १३. दुतिय कप्प सुत्त (२१. ३. २. १३)

अहंकार के त्याग से मुक्ति

···भन्ते ! क्या जान और देख इस विज्ञानवाले शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार, ममंकार, मान और अनुशय से रहित मन, द्वन्द्व से परे हो शान्त और सुविमुक्त होता है।

कप्प ! जो रूप—अतीत, अनागत···—है सभी न मेरा है, न मैं हूँ और न मेरा आत्मा है। इसी को यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक देख लेने से कोई उपादानरहित हो विमुक्त हो जाता है।

वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

कप्प ! इसे ही जान और देख इस विज्ञानवाले शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार ममंकार, मान और अनुशय से रहित बन, मन द्वन्द्व से परे हो, शान्त और सुविमुक्त होता है।

धर्मकथिक वर्ग समाप्त

तीसरा भाग

अविद्या वर्ग

§ १. पठम समुदयधम्म सुत्त (२१. ३. ३. १)

अविद्या क्या है ?

श्रावस्ती…जेतवन…।

तब, कोई भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ, उस भिक्षु ने भगवान् को कहा, "भन्ते ! लोग 'अविद्या, अविद्या' कहा करते हैं। भन्ते ! अविद्या क्या है ? कोई अविद्या में कैसे पड़ता है ?"

भिक्षु ! अज्ञ=पृथक्जन समुदयधर्मा (=उत्पन्न होना जिसका स्वभाव है) रूप को समुदयधर्मा के ऐसा तत्वतः नहीं जानता है। व्ययधर्मा रूप को व्ययधर्मा के ऐसा तत्वतः नहीं जानता है। समुदय-व्ययधर्मा रूप को समुदय-व्ययधर्मा रूप के ऐसा तत्वतः नहीं जानता है।

समुदयधर्मा वेदना को…; संज्ञा को…; संस्कार को…; विज्ञान को…।

भिक्षु ! इसी को 'अविद्या' कहते हैं। इसी से कोई अविद्या में पड़ता है।

इस पर, उस भिक्षु ने भगवान् को कहा, "भन्ते ! लोग 'विद्या, विद्या' कहा करते हैं। भन्ते ! विद्या क्या है ? किसी को विद्या कैसे होती है ?"

भिक्षु ! पण्डित आर्यश्रावक समुदयधर्मा रूप को समुदयधर्मा के ऐसा तत्वतः जानता है। व्ययधर्मा रूप को व्ययधर्मा के ऐसा तत्वतः जानता है। समुदय-व्ययधर्मा रूप को समुदय-व्ययधर्मा के ऐसा तत्वतः जानता है।

वेदना…; संज्ञा…; संस्कार…; विज्ञान…।

भिक्षु ! यही विद्या है। किसी को विद्या ऐसे ही होती है।

§ २. दुतिय समुदयधम्म सुत्त (२१. ३. ३. २)

अविद्या क्या है ?

एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् महाकोट्ठित वाराणसी के पास ऋषिपतन मृगदाय में विहार करते थे।

तब, संध्या समय आयुष्मान् महाकोट्ठित…आयुष्मान् सारिपुत्र से बोले, "आवुस सारिपुत्र ! लोग 'अविद्या, अविद्या' कहा करते हैं। आवुस ! अविद्या क्या है ? कोई अविद्या में कैसे पड़ता है ?"

आवुस ! अज्ञ=पृथक्जन समुदयधर्मा रूप को…। [ऊपर जैसा]

§ ३. ततिय समुदयधम्म सुत्त (२१. ३. ३. ३)

विद्या क्या है ?

ऋषिपतन मृगदाय…।

…आवुस ! लोग 'विद्या, विद्या' कहा करते हैं। आवुस ! विद्या क्या है ? कोई विद्या कैसे लाभ करता है ?

आवुस ! पण्डित आर्यश्रावक समुदयधर्मा रूपको···।

[ऊपर जैसा]

§ ४. पठम अस्साद सुत्त (२१. ३. ३. ४)

अविद्या क्या है ?

ऋषिपतन मृगदाय···।

···आवुस सारिपुत्र ! लोग 'अविद्या, अविद्या' कहा करते हैं। आवुस ! अविद्या क्या है ? कोई अविद्या में कैसे पड़ता है ?

आवुस ! अज्ञ=पृथक्जन रूप के आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानता है।

वेदना के···; संज्ञा के···; संस्कार के···; विज्ञान के···।

आवुस ! यही अविद्या है। ऐसे ही कोई अविद्या में पड़ता है।

§ ५. दुतिय अस्साद सुत्त (२१. ३. ३. ५)

विद्या क्या है ?

ऋषिपतन मृगदाय···।

···आवुस सारिपुत्र ! लोग 'विद्या, विद्या' कहा करते हैं। आवुस ! विद्या क्या है···?

आवुस ! पण्डित आर्यश्रावक रूप के आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जानता है।

वेदना के···; संज्ञा के···; संस्कार के···; विज्ञान के···।

आवुस ! यही विद्या है।

§ ६. पठम समुदय सुत्त (२१. ३. ३. ६)

अविद्या

ऋषिपतन मृगदाय···।

आवुस ! अज्ञ = पृथक्जन रूप के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानता है।

वेदना···, संज्ञा···, संस्कार···, विज्ञान···।

आवुस ! यही अविद्या है।

§ ७. दुतिय समुदय सुत्त (२१. ३. ३. ७)

विद्या

ऋषिपतन मृगदाय···।

···आवुस ! पण्डित आर्यश्रावक रूप के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जानता है।

वेदना···, संज्ञा···, संस्कार···, विज्ञान···।

आवुस ! यही विद्या है।

§ ८. पठम कोट्ठित सुत्त (२१. ३. ३. ८)

अविद्या क्या है ?

ऋषिपतन मृगदाय···।

तब, सारिपुत्र संध्या समय···।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् महाकोट्ठित से बोले, "आवुस महाकोट्ठित ! लोग 'अविद्या, अविद्या' कहा करते हैं। आवुस ! अविद्या क्या है ?"

आवुस ! अज्ञ = पृथक्जन रूप के आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानता है। वेदना···विज्ञान···।

आवुस ! यही अविद्या है।

इस पर आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् कोट्ठित से बोले, "···आवुस ! विद्या क्या है ?"

आवुस !···आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जानता है···। यही विद्या है।

§ ९. दुतिय कोट्ठित सुत्त (२१. ३. ३. ९)

विद्या

ऋषिपतन मृगदाय···।

···आवुस कोट्ठित !···अविद्या क्या है ?

आवुस ! अज्ञ = पृथक्जन रूप के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानता है···।

आवुस ! यही अविद्या है।

इस पर, आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् महाकोट्ठित से बोले, "···आवुस कोट्ठित !··· विद्या क्या है ?

आवुस ! पण्डित आर्यश्रावक रूप के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जानता है···।

आवुस ! यही विद्या है।

§ १०. ततिय कोट्ठित सुत्त (२१. ३. ३. १०)

विद्या और अविद्या

ऋषिपतन मृगदाय···।

···आवुस ! अज्ञ = पृथक्जन रूप को नहीं जानता है, रूप के समुदय को नहीं जानता है, रूप के निरोध को नहीं जानता है, रूप के निरोधगामी मार्ग को नहीं जानता है।

वेदना···विज्ञान···।

आवुस ! यही अविद्या है।

···आवुस ! पण्डित आर्यश्रावक रूप को जानता है, रूप के समुदय को जानता है, रूप के निरोध को जानता है, रूप के निरोधगामी मार्ग को जानता है।

वेदना··· विज्ञान···।

आवुस ! यही विद्या है।

अविद्या वर्ग समाप्त

चौथा भाग

कुक्कुल वर्ग

§ १. कुक्कुल सुत्त (२१. ३. ४. १)

रूप धधक रहा है

श्रावस्ती··· जेतवन···।

भिक्षुओ ! रूप धधक रहा है। वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान धधक रहा है।

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक रूप को ऐसा जान, रूप से निर्वेद करता है, वेदना से···, संज्ञा से···, संस्कार से···, विज्ञान से···।

निर्वेद करने से राग-रहित हो जाता है···पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता।

§ २. पठम अनिच्च सुत्त (२१. ३. ४. २)

अनित्य से इच्छा हटाओ

श्रावस्ती··· जेतवन···।

भिक्षुओ ! जो अनित्य है उससे तुम्हें अपनी इच्छा हटा लेनी चाहिये। भिक्षुओ ! क्या अनित्य है ?

रूप अनित्य है, उससे तुम्हें अपनी इच्छा हटा लेनी चाहिये। वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

भिक्षुओ ! जो अनित्य है उससे तुम्हें अपनी इच्छा हटा लेनी चाहिये।

§ ३-४. दुतिय-ततिय-अनिच्च सुत्त (२१. ३. ४. ३-४)

अनित्य से छन्दराग हटाओ

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! जो अनित्य है उससे तुम्हें अपना राग···छन्दराग हटा लेना चाहिये।

§ ५-७. पठम-दुतिय-ततिय दुक्ख सुत्त (२१. ३. ४. ५-७)

दुःख से राग हटाओ

श्रावस्ती···जेतवन···।

···भिक्षुओ ! जो दुःख है उससे तुम्हें अपना छन्द (=इच्छा)···, राग···, इच्छाराग हटा लेना चाहिये···।

§ ८-१०. पठम-दुतिय-ततिय अनत्त सुत्त (२१. ३. ४. ८-१०)

अनात्म से राग हटाओ

श्रावस्ती···जेतवन···।

···भिक्षुओ ! जो अनात्म है उससे तुम्हें अपना छन्द···, राग···, छन्दराग हटा लेना चाहिये।

§ ११. पठम कुलपुत्त सुत्त (२१. ३. ४. ११)

वैराग्य-पूर्वक विहरना

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! श्रद्धा से प्रव्रजित कुलपुत्र का यह धर्म है कि सदा रूप के प्रति वैराग्य-पूर्वक विहार करे। वेदना के प्रति···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

इस प्रकार वैराग्य-पूर्वक विहार करते हुये वह रूप को जान लेता है, वेदना को जान लेता है··· विज्ञान को जान लेता है।

वह रूप को जान कर, वेदना को···विज्ञान को जान कर, रूप से मुक्त हो जाता है···विज्ञान से मुक्त हो जाता है। जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास से मुक्त हो जाता है। अथवा, दुःख से मुक्त हो जाता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

§ १२. दुतिय कुलपुत्त सुत्त (२१. ३. ४. १२)

अनित्य-बुद्धि से विहरना

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! श्रद्धा से प्रव्रजित हुये कुलपुत्र का यह धर्म है कि रूप के प्रति अनित्य-बुद्धि से विहार करे। वेदना के प्रति···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान के प्रति···।

···दुःख से मुक्त हो जाता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

§ १३. दुक्ख सुत्त (२१. ३. ४. १३)

अनात्म-बुद्धि से विहरना

श्रावस्ती···जेतवन···।

···रूप के प्रति अनात्म-बुद्धि से विहार करे।

···दुःख से मुक्त हो जाता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

कुक्कुल वर्ग समाप्त

पाँचवाँ भाग

दृष्टि वर्ग

§ १. अज्झत्तिक सुत्त (२१. ३. ५. १)

अध्यात्मिक सुख-दुःख

श्रावस्ती ··· जेतवन ···।

भिक्षुओ ! किसके होने से, किसके उपादान से आध्यात्मिक सुख-दुःख उत्पन्न होते हैं ?

भन्ते ! हमारे धर्म के मूल तो भगवान् ही हैं··· ।

भिक्षुओ ! रूप के होने से, रूप के उपादान से आध्यात्मिक सुख-दुःख उत्पन्न होते हैं। वेदना के होने से···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

भन्ते ! अनित्य है।

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

भन्ते ! दुःख है।

जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है उसका उपादान नहीं करने से क्या आध्यात्मिक सुख-दुःख उत्पन्न होंगे ?

नहीं भन्ते !

वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

इसे जान और देख,···पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है।

§ २. एतं मम सुत्त (२१. ३. ५. २)

'यह मेरा है' की समझ क्यों ?

श्रावस्ती ··· जेतवन ···।

भिक्षुओ ! किसके होने से, किसके उपादान से, किसके अभिनिवेश से कोई ऐसा समझने लगता है कि—यह मेरा है, यह मैं हूँ, और यह मेरा आत्मा है !

धर्म के मूल भगवान् ही हैं···।

भिक्षुओ ! रूप के होने से, रूप के उपादान से, रूप के अभिनिवेश से कोई ऐसा समझने लगता है कि—यह मेरा है, यह मैं हूँ, और यह मेरा आत्मा है। वेदना के होने से···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य।

···इसे जान और देख···, पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है।

§ ३. एसो अत्ता सुत्त (२१. ३. ५. ३)

'आत्मा लोक है' की मिथ्यादृष्टि क्यों ?

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! किसके होने से, किसके उपादान से, किससे अभिनिवेश से ऐसी मिथ्या-दृष्टि (=मिथ्या धारणा) उत्पन्न होती है—जो आत्मा है वह लोक है, सो मैं मरकर नित्य = ध्रुव = शाश्वत = अविपरिणामधर्मा हो जाऊँगा ?

धर्म के मूल भगवान् ही···।

भिक्षुओ ! रूप के होने से···ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है···। वेदना के होने से···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान के होने से···।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

···इसे जान और देख···पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है।

§ ४. नो च मे सिया सुत्त (२१. ३. ५. ४)

'न मैं होता' की मिथ्यादृष्टि क्यों ?

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! किसके होने से···ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—न मैं होता, न मेरा होवे; न मैं हूँगा, न मेरा होगा।

धर्म के मूल भगवान् ही···।

भिक्षुओ ! रूप के होने से···ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है···। वेदना के होने से···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान के होने से···।

भिक्षुओ !···रूप नित्य है या अनित्य···।

इसे जान और देख···पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है।

§ ५. मिच्छा सुत्त (२१. ३. ५. ५)

मिथ्या-दृष्टि क्यों उत्पन्न होती है ?

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! किसके होने से···मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही···।

भिक्षुओ ! रूप के होने से···मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है। वेदना के···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

भिक्षुओ !···रूप नित्य है या अनित्य···?

इसे जान और देख···पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है।

§ ६. सकाय सुत्त (२१. ३. ५. ६.)

सत्काय दृष्टि क्यों होती है ?

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! किसके होने से···सत्काय-दृष्टि होती है ?

…भिक्षुओ ! रूप के होने से…सत्काय-दृष्टि होती है। वेदना के…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…।

भिक्षुओ ! रूप नित्य है या अनित्य…?

जो अनित्य है…क्या उसके उपादान नहीं करने से सत्काय-दृष्टि उत्पन्न होगी ?

नहीं भन्ते !

वेदना…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…।

§ ७. अत्तानु सुत्त (२१. ३. ५. ७)

आत्म दृष्टि क्यों होती है ?

भिक्षुओ ! किसके होने से…आत्म-दृष्टि होती है ?

…भिक्षुओ ! रूप के होने से…आत्म-दृष्टि होती है। वेदना…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…।

भिक्षुओ ! रूप नित्य है या अनित्य…?

जो अनित्य है…क्या उसके उपादान नहीं करने से आत्म-दृष्टि उत्पन्न होगी ?

नहीं भन्ते !

वेदना…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…।

§ ८. पठम अभिनिवेस सुत्त (२१. ३. ५. ८)

संयोजन क्यों होते हैं ?

श्रावस्ती…जेतवन…।

भिक्षुओ ! किस के होने से…संयोजन, अभिनिवेस, विनिबन्ध उत्पन्न होते हैं ?

…रूप के होने से…। वेदना के होने से…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान के होने से…।

भिक्षुओ ! रूप नित्य है या अनित्य ?

…जो अनित्य है…क्या उसके उपादान नहीं करने से संयोजन… उत्पन्न होंगे ?

नहीं भन्ते…।

§ ९. दुतिय अभिनिवेस सुत्त (२१. ३. ५. ९)

संयोजन क्यों होते हैं ?

श्रावस्ती…जेतवन…।

['विनिबन्ध' के बदले 'विनिबन्धाध्यवसान' करके सारा सूत्र ठीक ऊपर जैसा]

§ १०. आनन्द सुत्त (२१. ३. ५. १०)

सभी संस्कार अनित्य और दुःख हैं

श्रावस्ती…जेतवन…।

तब, आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ आये…और भगवान् से बोले, "भन्ते ! मुझे भगवान् संक्षेप से धर्म का उपदेश करें, जिसे सुन कर मैं अकेला एकान्त में अप्रमत्त संयम-पूर्वक प्रहितात्म हो विहार करूँ।"

आनन्द ! तो क्या समझते हो रूप नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते ।

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

दुःख भन्ते !

जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है उसे क्या ऐसा समझना ठीक है कि—यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?

नहीं भन्ते !

वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

नहीं भन्ते !

आनन्द ! इसलिये, जो कुछ रूप—अतीत, अनागत···।

इसे देख और जान···पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है।

दृष्टि वर्ग समाप्त

चूळ पण्णासक समाप्त

स्कन्ध संयुत्त समाप्त ।

दूसरा परिच्छेद

२२. राध संयुत्त

पहला भाग

प्रथम वर्ग

§ १. मार सुत्त (२२. १. १)

मार क्या है ?

श्रावस्ती···जेतवन···।

तब, आयुष्मान् राध जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन करके एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, "भन्ते ! लोग 'मार, मार' कहा करते हैं। भन्ते ! मार क्या है ?

राध ! रूप के होने से मार होता है, या मारनेवाला, या वह जो मरता है। राध ! इसलिये, तुम रूप ही को मार समझो, मारनेवाला समझो, मरता है ऐसा समझो, रोग समझो, फोड़ा समझो, घाव समझो, पीड़ा समझो। जो रूप को ऐसा समझते हैं वे ठीक समझते हैं।

वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

भन्ते ! ठीक समझने से क्या होता है ?

राध ! ठीक समझने से वैराग्य होता है।

भन्ते ! वैराग्य से क्या होता है ?

राध ! वैराग्य से राग-रहित होता है।

भन्ते ! राग-रहित होने से क्या होता है ?

राध ! राग-रहित होने से विमुक्त होता है।

भन्ते ! विमुक्ति से क्या होता है ?

राध ! विमुक्ति से निर्वाण लाभ होता है।

भन्ते ! निर्वाण से क्या होता है ?

राध ! अब, तुम चूक नहीं सकते। ब्रह्मचर्य का अन्तिम उद्देश्य निर्वाण ही है।

§ २. सत्त सुत्त (२२. १. २)

आसक्त कैसे होता है ?

श्रावस्ती···जेतवन···।

···एक ओर बैठ, आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, "भन्ते ! लोग 'सत्त, सत्त' कहा करते हैं। भन्ते ! कोई सत्त कैसे होता है ?

राध, रूप में जो छन्द=राग=नन्दि=तृष्णा है, और जो वहाँ लगा है, बेतरह लगा है, इसी से वह 'सत्त' कहा जाता है। वेदना…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…।

राध ! जैसे, लड़के या लड़कियाँ बालू के घर से खेलते हैं। जब तक बालू के घरों में उनका राग = छन्द = प्रेम = पिपासा = परिदाह = तृष्णा बनी रहती है तब तक वे उनमें लगे रहते हैं, उनसे खेलते हैं, उन पर ख्याल रखते हैं, उनको अपना समझते हैं।

राध ! …जब बालू के घरों में उनका राग…नहीं रहता है, तब वे हाथ-पैर से उन घरों को तोड़ फोड़ कर नष्ट कर देते हैं और बिखेर देते हैं।

राध ! तुम इसी तरह रूप को तोड़-फोड़कर नष्ट कर दो और बिखेर दो। तृष्णा को क्षय करने में लग जाओ।

वेदना…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…।

राध ! तृष्णा का क्षय होना ही निर्वाण है।

§ ३. भवनेत्ति सुत्त (२२. १. ३)

संसार की डोरी

श्रावस्ती…।

…एक ओर बैठ, आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, "भन्ते लोग 'भवनेत्ति,'[1] और भवनेत्ति-निरोध' कहा करते हैं। भन्ते ! यह "भवनेत्ति और भवनेत्तिनिरोध" क्या है ?

राध ! रूप में जो छन्द = राग = नन्दि = तृष्णा = उपाय = उपादान = चित्त का अधिष्ठान, अभिनिवेश, अनुशय है, उसे कहते हैं 'भवनेत्ति'। उनके निरुद्ध हो जाने को कहते हैं, 'भवनेत्तिनिरोध'।

वेदना में जो…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…।

§ ४. परिञ्ञेय्य सुत्त (२२. १. ४)

परिज्ञेय, परिज्ञा और परिज्ञाता

श्रावस्ती…।

एक ओर बैठे आयुष्मान् राध से भगवान् बोले, "राध ! मैं तुम्हें परिज्ञेय धर्म, परिज्ञा और परिज्ञाता पुद्गल के विषय में उपदेश करूँगा। उसे सुनो…।

…भगवान् बोले, "राध ! परिज्ञेय धर्म कौन से हैं ? राध ! रूप परिज्ञेय धर्म है। वेदना…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…। राध ! इन्हें कहते हैं परिज्ञेय धर्म।

राध ! परिज्ञा क्या है ? राध ! जो राग-क्षय, द्वेषक्षय और मोहक्षय है वही परिज्ञा कही जाती है।

राध ! परिज्ञाता पुद्गल क्या है ? अर्हत्, जो आयुष्मान् इस नाम और गोत्र के हैं—वही परिज्ञाता पुद्गल कहे जाते हैं।

§ ५. पठम समण सुत्त (२२. १. ५)

उपादान-स्कन्धों के ज्ञाता ही श्रमण-ब्राह्मण

श्रावस्ती…।

एक ओर बैठे आयुष्मान् राध से भगवान् बोले, "राध ! यह पाँच उपादानस्कन्ध हैं। कौन से पाँच ? जो यह रूप उपादानस्कन्ध…विज्ञान उपादानस्कन्ध।

---

१. भवनेत्ति—'भवरज्जु' अट्ठकथा। = संसार की डोरी।

राध ! जो श्रमण या ब्राह्मण इन पाँच उपादानस्कन्धों के आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानते हैं वे श्रमण न तो श्रमण कहलाने के योग्य हैं; और न वे ब्राह्मण कहलाने के। वे आयुष्मान् श्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को अपने देखते ही देखते जान, देख और प्राप्त कर नहीं विहार करते हैं।

राध ! जो···यथार्थतः जानते हैं···वे आयुष्मान् श्रमण···या ब्राह्मण के परमार्थ को अपने देखते ही देखते जान, देख और प्राप्त कर विहार करते हैं।

§ ६. दुतिय समण सुत्त (२२. १. ६)

उपादान-स्कन्धों के ज्ञाता ही श्रमण ब्राह्मण

श्रावस्ती···।

एक ओर बैठ आयुष्मान् राध से भगवान् बोले, 'राध ! यह पाँच उपादान स्कन्ध हैं।···

राध ! जो श्रमण या ब्राह्मण इन पाँच उपादान-स्कन्धों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष, और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानते हैं··· जानते हैं···।

§ ७. सोतापन्न सुत्त (२२. १. ७)

स्रोतापन्न निश्चय ही ज्ञान प्राप्त करेगा

श्रावस्ती···।

एक ओर बैठे आयुष्मान् राध से भगवान् बोले, "राध ! यह पाँच उपादान-स्कन्ध हैं···। राध ! क्योंकि आर्यश्रावक इन पाँच उपादानस्कन्धों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जानता है इसीसे वह स्रोतापन्न कहा जाता है। वह मार्ग से च्युत नहीं हो सकता, निर्वाण की ओर जा रहा है, निश्चयपूर्वक परम ज्ञान प्राप्त करेगा।

§ ८. अरहा सुत्त (२२. १. ८)

उपादान-स्कन्धों के यथार्थ ज्ञान से अर्हत्व की प्राप्ति

श्रावस्ती···।

एक ओर बैठे आयुष्मान् राध से भगवान् बोले, "···राध ! क्योंकि भिक्षु इन पाँच उपादान स्कन्धों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जान उपादान-रहित हो विमुक्त हो जाता है, इसी से वह अर्हत्=क्षीणाश्रव=जिसने ब्रह्मचर्यवास पूरा कर लिया है=कृतकृत्य=जिसने भार रख दिया है=अनुप्राप्तसदर्थ=परिक्षीण-भवसंयोजन=परम ज्ञान से विमुक्त कहा जाता है।

§ ९. पठम छन्दराग सुत्त (२२. १. ९)

रूप के छन्दराग का त्याग

श्रावस्ती···।

एक ओर बैठे आयुष्मान् राध से भगवान् बोले, "राध ! रूप में जो छन्द = राग...है उसे छोड़ दो। इस तरह, रूप प्रहीण हो जायगा = उच्छिन्नमूल = सिर कटे ताल के समान = मिटा हुआ = फिर कभी उत्पन्न होने में असमर्थ।

वेदना में जो...। संज्ञा...। संस्कार...। विज्ञान...।

§ १०. दुतिय छन्दराग सुत्त (२२. १. १०)

रूप के छन्दराग का त्याग

श्रावस्ती'''।

एक ओर बैठे आयुष्मान् राध से भगवान् बोले, "राध ! रूप में जो छन्द = राग = नन्दि = तृष्णा = उपाय=उपादान = चित्त का अधिष्ठान, अभिनिवेश, अनुशय है उसे छोड़ दो। इस तरह, वह रूप प्रहीण हो जायगा...।

वेदना...। संज्ञा...। संस्कार...। विज्ञान ..।

प्रथम वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १. मार सुत्त (२२. २. १)

मार क्या है ?

श्रावस्ती···।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, "भन्ते ! लोग "मार, मार" कहा करते हैं। भन्ते ! सो वह मार क्या है ?"

राध ! रूप मार है, वेदना मार है, संज्ञा···, संस्कार···, विज्ञान मार है।

राध ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक रूप में भी निर्वेद (=वैराग्य) करता है···पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता।

§ २. मारधर्म सुत्त (२२. २. २)

मारधर्म क्या है ?

श्रावस्ती···।

···भन्ते ! लोग "मार-धर्म, मार-धर्म" कहा करते हैं। भन्ते ! सो वह मार-धर्म क्या है ?

राध ! रूप मार-धर्म है। वेदना···विज्ञान···।

राध ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···।

§ ३. पठम अनिच्च सुत्त (२२. २. ३)

अनित्य क्या है ?

···भन्ते ! लोग "अनित्य, अनित्य" कहा करते हैं। भन्ते ! सो वह अनित्य क्या है ?

राध ! रूप अनित्य है। वेदना अनित्य है। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान अनित्य है।

राध ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···।

§ ४. दुतिय अनिच्च सुत्त (२२. २. ४)

अनित्य-धर्म क्या है ?

···भन्ते !···सो वह अनित्य-धर्म क्या है ?

राध ! रूप अनित्य-धर्म है। वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

राध ! इसे जान, पण्डित आर्य-श्रावक···।

§ ५–६. पठम-दुतिय दुक्ख सुत्त (२२. २. ५–६)

रूप दुःख है

···राध ! रूप दुःख है। वेदना···विज्ञान···।

…राध ! रूप दुःखधर्म है। वेदना…विज्ञान…।
राध ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक…।

§ ७-८. पठम-दुतिय अनत्त सुत्त (२२. २. ७-८)

रूप अनात्म है

…राध ! रूप अनात्म है। वेदना…विज्ञान…।
…राध ! रूप अनात्म-धर्म है। वेदना…विज्ञान…।
राध ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक…।

§ ९. खयधम्म सुत्त (२२. २. ९)

क्षयधर्म क्या है ?

श्रावस्ती…।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, "भन्ते ! लोग 'क्षयधर्म, क्षयधर्म' कहा करते हैं। भन्ते ! सो वह क्षयधर्म क्या है ?"

राध ! रूप क्षयधर्म है। वेदना…विज्ञान…।
राध ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक…।

§ १०. वयधम्म सुत्त (२२. २. १०)

व्यय-धर्म क्या है ?

श्रावस्ती…।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, "भन्ते ! लोग 'व्ययधर्म, व्ययधर्म' कहा करते हैं। भन्ते ! सो वह व्ययधर्म क्या है ?"

राध ! रूप व्ययधर्म है। वेदना…विज्ञान…।

§ ११. समुदयधम्म सुत्त (२२. २. ११)

समुदय-धर्म क्या है ?

श्रावस्ती…।

…भन्ते ! सो वह समुदयधर्म क्या है ?
राध ! रूप समुदयधर्म है। वेदना…विज्ञान…।
राध ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक…।

§ १२. निरोधधम्म सुत्त (२२. २. १२)

निरोध-धर्म क्या है ?

श्रावस्ती…।

…भन्ते ! सो वह निरोध-धर्म क्या है ?
राध ! रूप निरोध-धर्म है। वेदना…विज्ञान…।
राध ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक…।

द्वितीय वर्ग समाप्त

तीसरा भाग

आयाचन वर्ग

§ १. मार सुत्त (२२. ३. १)

मार के प्रति इच्छा का त्याग

श्रावस्ती…।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, "भन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप से धर्म का उपदेश दें, जिसे सुन मैं अकेला एकान्त में…प्रहितात्म होकर विहार करूँ।"

राध ! जो मार है उसके प्रति अपनी इच्छा का प्रहाण करो। राध ! मार क्या है ? राध ! रूप मार है, उसके प्रति अपनी इच्छा का प्रहाण करो। वेदना…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…।

§ २. मारधम्म सुत्त (२२. ३. २)

मार-धर्म के प्रति छन्दराग का त्याग

राध ! जो मार-धर्म है उसके प्रति छन्द, राग, छन्दराग का प्रहाण करो।

§ ३–४. पठम-दुतिय अनिच्च सुत्त (२२. ३. ३–४)

अनित्य और अनित्य-धर्म

राध ! जो अनित्य है…।

राध ! जो अनित्य-धर्म है…।

§ ५–६. पठम-दुतिय दुक्ख सुत्त (२२. ३. ५–६)

दुःख और दुःख-धर्म

राध ! जो दुःख है…।

राध ! जो दुःख-धर्म है…।

§ ७–८. पठम-दुतिय अनत्त सुत्त (२२. ३. ७–८)

अनात्म और अनात्म धर्म

राध ! जो अनात्म है…।

राध ! जो अनात्म-धर्म है…।

§ ९–१०. खयधम्म-वयधम्म सुत्त (२२. ३. ९–१०)

क्षय धर्म और व्यय धर्म

राध ! जो क्षय-धर्म है…।

राध ! जो व्यय-धर्म है…।

§ ११. समुदयधम्म सुत्त (२२. ३. ११)

समुदय-धर्म के प्रति छन्दराग का त्याग

राध ! जो समुदय धर्म है, उसके प्रति छन्द, राग, छन्दराग का प्रहाण करो।…

§ १२. निरोधधम्म सुत्त (२२. ३. १२)

निरोध-धर्म के प्रति छन्दराग का त्याग

श्रावस्ती…।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, "भन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप से धर्मोपदेश करें, जिसे सुन मैं…प्रहितात्म होकर विहार करूँ।

राध ! जो निरोध-धर्म है उसके प्रति छन्द, राग, छन्दराग का प्रहाण करो। राध ! निरोध-धर्म क्या है ? राध ! रूप निरोध-धर्म है, उसके प्रति छन्द का प्रहाण करो। वेदना…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…।

आयाचन वर्ग समाप्त

चौथा भाग

उपनिसिन्न वर्ग

§ १. मार सुत्त (२२. ४. १)

मार से इच्छा हटाओ

श्रावस्ती…।

एक ओर बैठे आयुष्मान् राध से भगवान् बोले, "राध ! जो मार है उसके प्रति इच्छा को हटाओ। राध ! मार क्या है? राध ! रूप मार है, उसके प्रति इच्छा को हटाओ। वेदना…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…।

§ २. मारधम्म सुत्त (२२. ४. २)

मारधर्म से इच्छा हटाओ

…राध ! जो मार-धर्म है उसके प्रति इच्छा को हटाओ।…

§ ३–४. पठम-दुतिय अनिच्च सुत्त (२२. ४. ३–४)

अनित्य और अनित्य-धर्म

…राध ! जो अनित्य है…।

…राध ! जो अनित्य-धर्म है…।

§ ५–६. पठम-दुतिय दुक्ख सुत्त (२२. ४. ५–६)

दुःख और दुःख-धर्म

…राध ! जो दुःख है…।

…राध ! जो दुःख-धर्म है…।

§ ७–८. पठम-दुतिय अनत्त सुत्त (२२. ४. ७–८)

अनात्म और अनात्म-धर्म

…राध ! जो अनात्म है…।

…राध ! जो अनात्म-धर्म है…।

§ ९–११. खयवय-समुदय सुत्त (२२. ४. ९–११)

क्षय, व्यय और समुदय

…राध ! जो क्षय-धर्म है…।

…राध ! जो व्यय-धर्म है…।

…राध ! जो समुदय-धर्म है…।

§ १२. निरोधधम्म सुत्त (२२. ४. १२)

निरोध-धर्म से इच्छा हटाओ

श्रावस्ती…।

एक ओर बैठे आयुष्मान् राध से भगवान् बोले, "राध ! जो निरोध-धर्म है उसके प्रति इच्छा को हटाओ…। राध ! निरोध-धर्म क्या है ? राध ! रूप निरोध-धर्म है, उसके प्रति इच्छा को हटाओ। वेदना…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…।

उपनिस्सिन्न वर्ग समाप्त

राध-संयुत्त समाप्त

तीसरा परिच्छेद

२३. दृष्टि-संयुत्त

पहला भाग

स्रोतापत्ति वर्ग

§ १. वात सुत्त (२३. १. १)

मिथ्या-दृष्टि का मूल

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ। किसके होने से, किसके उपादान से, किसके अभिनिवेश से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—हवा नहीं बहती है, नदियाँ प्रवाहित नहीं होतीं, गर्भिणियाँ बच्चा नहीं जनतीं, चाँद-सूरज उगते हैं और न डूबते हैं, किन्तु बिल्कुल दृढ़ अचल हैं।

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही···।

भिक्षुओ ! रूप के होने से, रूप के उपादान से, रूप के अभिनिवेश से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—हवा नहीं बहती है···। वेदना के होने से···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान के होने से···।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

···जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है उसके उपादान नहीं करने से क्या ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होगी—हवा नहीं बहती है···?

नहीं भन्ते !

वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

जो यह देखा, सुना, सूँघा, चखा, छूया, जाना गया, पाया गया, खोजा गया, या मन से विचारा गया है वह नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

···जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है उसके उपादान नहीं करने से क्या ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होगी—हवा नहीं बहती···?

नहीं भन्ते !

भिक्षुओ ! इन छः स्थानों में आर्यश्रावक की सभी शंकायें मिटी होती हैं। दुःख में भी उसकी शंका मिटी होती है। दुःख-समुदय में भी···। दुःख-निरोध में भी···। दुःख-निरोधगामिनी—प्रतिपदा में भी···।

भिक्षुओ ! यह आर्यश्रावक स्रोतापन्न कहा जाता है···।

§ २. एतं मम सुत्त (२३. १. २)

मिथ्या-दृष्टि का मूल

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! किसके होने से···ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है !

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही···।

भिक्षुओ ! रूप के होने से···ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है···! वेदना के होने से···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

···जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है उसके उपादान नहीं करने से क्या ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होगी—यह मेरा है, यह मैं हूँ···?

नहीं भन्ते !

भिक्षुओ ! इन छः स्थानों में आर्यश्रावक की सभी शंकायें मिटी होती हैं।···भिक्षुओ ! यह आर्यश्रावक स्रोतापन्न···।

§ ३. सो अत्त सुत्त (२३. १. ३)

मिथ्या-दृष्टि का मूल

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! किसके होने से···ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—जो आत्मा है सो लोक है, सो मैं मर कर नित्य=ध्रुव=शाश्वत=अविपरिणामधर्मा हूँगा ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही···।

भिक्षुओ ! रूप के होने से···ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—जो आत्मा···। वेदना के होने से···। संज्ञा···संस्कार···विज्ञान···।

···भिक्षुओ ! इन छः स्थानों में आर्यश्रावक की सभी शंकायें मिटी होती हैं।···भिक्षुओ ! यह आर्यश्रावक स्रोतापन्न···।

§ ४. नो च मे सिया सुत्त (२३. १. ४)

मिथ्या-दृष्टि का मूल

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! किसके होने से···ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—न मैं होता, न मेरा होवे, न मैं हूँगा, न मेरा होगा।

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही···।

भिक्षुओ ! रूपके होने से···ऐसी मिथ्या-दृष्टि···। वेदना के होने से···। संज्ञा···। संस्कार···विज्ञान···।

···भिक्षुओ ! इन छः स्थानों में आर्यश्रावक की सभी शंकायें मिटी होती हैं।···भिक्षुओ ! यह आर्यश्रावक स्रोतापन्न···।

§ ५. नत्थि सुत्त (२३. १. ५)

उच्छेदवाद

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! किसके होने से···ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—"दान, यज्ञ, होम (का कोई फल) नहीं है, अच्छे और बुरे कर्मों के अपने कुछ फल नहीं होते, यह लोक नहीं है, परलोक नहीं है,

माता नहीं है, पिता नहीं है, औपपातिक सत्त्व (=गर्भ से उत्पन्न होने वाले नहीं, किंतु स्वयंजात), लोक में श्रमण या ब्राह्मण नहीं हैं जो सम्यक् प्रतिपन्न हों, लोक परलोक को स्वयं जान और साक्षात्कार कर उपदेश करते हों। चार महाभूतों से मिलकर पुरुष बना है। मृत्यु के उपरान्त पृथ्वी-धातु पृथ्वी में मिलकर लीन हो जाती है, आपो धातु···, तेजो धातु···, वायु धातु···। इन्द्रियाँ आकाश में लीन हो जाती हैं। पाँच मनुष्य मिल मुर्दे को ले जाकर जला देते हैं। कबूतर जैसी उजली हड्डियाँ केवल बच जाती हैं। उनका दिया दान बिल्कुल झूठा ढोंग है आस्तिकवाद प्रतिपादन करने वाले मूर्ख और पण्डित सभी उच्छिन्न हो जाते हैं, लुप्त हो जाते हैं, मरने के बाद नहीं रहते ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही···।

वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

···भिक्षुओ ! इन छः स्थानों में आर्यश्रावक की सभी शंकायें मिटी होती हैं।···भिक्षुओ ! यह आर्यश्रावक स्रोतापन्न···।

§ ६. करोतो सुत्त (२३. १. ६)

अक्रियवाद

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! किसके होने से ··ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—"करते हुये, कराते हुये, काटते हुये, कटवाते हुये, मारते हुये, मरवाते हुये, सोचते हुये, सोचाते हुये, पकते हुये, पकाते हुये, दबवाते हुये, दबाते हुये, हिंसा करते हुये, चोरी करते, सेंध मारते, डाका मारते, एक घर को लूटते, राहजनी करते, पर-स्त्री का सेवन करते, झूठ बोलते, वह कुछ पाप नहीं करता। यदि कोई छूरे जैसे तेज चक्र से पृथ्वी पर रहने वाले सभी प्राणियों को मार कर मांस का एक बड़ा ढेर लगा दे तो भी उससे उसे कोई पाप नहीं लगता। यदि कोई गंगा के दक्षिण तीर पर मारते, मरवाते, काटते, कटवाते, पकाते, पकवाते···। तो भी उससे उसे कोई पाप नहीं लगता। गंगा के उत्तर तीर पर भी···। दान, दम, संयम और सत्यवादिता से कोई पुण्य नहीं होता ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही···।

भिक्षुओ ! रूप के होने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि···। वेदना के होने से···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

भिक्षुओ ! इन छः स्थानों में आर्यश्रावक की सभी शंकायें मिटी होती हैं।···भिक्षुओ ! यह आर्यश्रावक स्रोतापन्न···।

§ ७. हेतु सुत्त (२३. १. ७)

दैववाद

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! किसके होने से···ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—"सत्वों के संक्लेश के कोई हेतु = प्रत्यय नहीं है। बिना हेतु = प्रत्यय के सत्व संक्लिष्ट होते हैं। सत्वों की विशुद्धि के कोई हेतु = प्रत्यय नहीं हैं। बिना हेतु = प्रत्यय के सत्व विशुद्ध होते हैं। बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम कुछ भी नहीं है। सभी सत्व = प्राणी = भूत = जीव अवश, अबल, अवीर्य, भाग्य के आधीन, संयोग के आधीन, स्वभाव के आधीन छः अभिजातियों में सुख-दुःख का अनुभव करते हैं" ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही···।

भिक्षुओ ! रूप के होने से…ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है…। वेदना…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…।

…भिक्षुओ ! इन छः स्थानों में आर्यश्रावक की सभी शंकायें मिटी रहती हैं।…

§ ८. महादिट्ठि सुत्त (२३. १. ८)

अकृततावाद

श्रावस्ती…।

भिक्षुओ ! किसके होने से…ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—"ये सात काया अकृत हैं, अकारित हैं, अनिर्मित हैं, अनिर्मापित हैं, बंध्या हैं, कूटस्थ हैं, अचल हैं। वे हिलते डोलते नहीं, न विपरिणत होते हैं, और न अन्योन्य प्रभावित करते हैं। एक दूसरे को न सुख दे सकते हैं और न दुःख।

"कौन सात ? पृथ्वी-काया, आप-काया, तेज-काया, वायु-काया, सुख, दुःख, जीव। यही सात काया।

"जो तेज हथियार से शिर काटता है, सो कोई किसी की जान नहीं मारता। सात कायों के बीच में हथियार केवल एक छेद कर देता है।

"चौदह लाख छाछठ योनियाँ हैं। पाँच सौ कर्म हैं, और पाँच कर्म हैं, और तीन कर्म हैं, कर्म में और अर्धकर्म में बासठ प्रतिपदायें हैं, बासठ अन्तर-कल्प हैं, छः अभिजातियाँ, आठ पुरुष-भूमियाँ, उनचास सौ आजीवक, उनचास सौ परिव्राजक, उनचास सौ नागवास, बीस सौ इन्द्रियाँ, तीस सौ नरक, छत्तीस रजोधातु, सात संज्ञी-गर्भ, सात असंज्ञी-गर्भ, सात निर्गन्थि-गर्भ, सात दिव्य, सात मानुष, सात पैशाच, सात सर, सात प्रबुध, सात प्रपात, और सात सौ प्रपात, सात स्वप्न, और सात सौ स्वप्न, अस्सी से कम महाकल्प, सात हजार मूर्ख और पण्डित जन्म जन्मान्तर में पड़ते हुये दुःख का अन्त करेंगे।

"ऐसी बात नहीं है कि इस शील से, या इस व्रत से, या इस तप से, या इस ब्रह्मचर्य से अपरिपक्व कर्म को परिपक्व बना दूँगा, या परिपक्व कर्म को उपभोग कर धीरे-धीरे समाप्त कर दूँगा, संसार में न तो नपे तुले सुख-दुःख हैं, और न उनकी निश्चित अवधि है। कमना, अधिक होना = घटना, बढ़ना भी नहीं है।

"जैसे, सूत की गोली फेंकी जाने पर खुलती हुई जाती है, वैसे ही मूर्ख और पण्डित खुलते हुये सुख-दुःख का अन्त करेंगे ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही…।

भिक्षुओ ! रूप के होने से…। वेदना…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…।

…भिक्षुओ ! इन छः स्थानों में आर्यश्रावक की…।

§ ९. सस्सतो लोको सुत्त (२३. १. ९)

शाश्वतवाद

श्रावस्ती…।

भिक्षुओ ! किसके होने से…ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—"यह लोक शाश्वत है" ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही…।

भिक्षुओ ! रूप के होने से…ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—"यह लोक शाश्वत है"। वेदना के होने से…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…।

भिक्षुओ !…रूप नित्य है या अनित्य ?

…भिक्षुओ ! इन छः स्थानों में आर्यश्रावक की…।

§ १०. असस्सतो सुत्त (२३. १. १०)

अशाश्वतवाद

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! किसके होने से···ऐसी मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होती है—"लोक अशाश्वत है"?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही···।

भिक्षुओ ! रूप के होने से···।

···भिक्षुओ ! इन छः स्थानों में आर्यश्रावक···।

§ ११. अन्तवा सुत्त (२३. १. ११)

अन्तवान्-वाद

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! किसके होने से···ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—"अन्तवाला लोक है"?

···भिक्षुओ ! रूप के होने से···।

§ १२. अनन्तवा सुत्त (२३. १. १२)

अनन्त-वाद

···भिक्षुओ ! किसके होने से···—"लोक अनन्त है" ?···

§ १३. तं जीवं तं सरीरं सुत्त (२३. १. १३)

'जो जीव है वही शरीर है' की मिथ्या-दृष्टि

···भिक्षुओ ! किसके होने से···—जो जीव है वही शरीर है ?···

§ १४. अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं सुत्त (२३. १. १४)

'जीव अन्य है और शरीर अन्य है' की मिथ्या-दृष्टि

···भिक्षुओ ! किसके होने से···—"जीव अन्य है और शरीर अन्य है" ?···

§ १५. होति तथागतो परम्मरणा सुत्त (२३. १. १५)

'मरने के बाद तथागत फिर होता है' की मिथ्या-दृष्टि

···भिक्षुओ ! किसके होने से···—"मरने के बाद तथागत होता है" ?···

§ १६. न होति तथागतो परम्मरणा सुत्त (२३. १. १६)

'मरने के बाद फिर तथागत नहीं होता है' की मिथ्या-दृष्टि

···भिक्षुओ ! किसके होने से···—"मरने के बाद तथागत नहीं होता है" ?···

§ १७. होति च न च होति तथागतो परम्मरणा सुत्त (२३. १. १७)

'तथागत होता है और नहीं भी होता है' की मिथ्या-दृष्टि

···भिक्षुओ ! किसके होने से···"तथागत होता है और नहीं भी होता है" ?···

§ १८. नेव होति न न होति तथागतो परम्मरणा सुत्त (२३. १. १८)

'तथागत न होता है, न नहीं होता है, की मिथ्या-दृष्टि

···भिक्षुओ ! किसके होने से···—"तथागत न होता है, और न नहीं होता है" ?

···भिक्षुओ ! इन छः स्थानों में आर्यश्रावक···।

पहला भाग समाप्त

दूसरा भाग

(पुरिमगमनं—अठारह वेय्याकरण)

§ १. वात सुत्त (२३. २. १)

मिथ्या-दृष्टि का मूल

श्रावस्ती…।

भिक्षुओ ! किसके होने से…ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—"न हवा बहती है, न नदियाँ प्रवाहित होती हैं, न गर्भिणियाँ जनती हैं, न सूरज-चाँद उगते-डूबते हैं। बिल्कुल अचल स्थिर हैं ?"

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही…।

भिक्षुओ रूपके होने से…। वेदना के होने से…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…

भिक्षुओ !…रूप नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

…उसके उपादान नहीं करने से क्या ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होगी !

नहीं भन्ते !

भिक्षुओ ! इस तरह, दुःख के होने से, दुःख के उपादान से, दुःख के अभिनिवेश से ऐसी दृष्टि उत्पन्न होती है…।

§ २-१८. सब्बे सुत्तन्ता पुब्बे आगता येव (२३. २. २—१८)

[ऊपर के आये १८ वेय्याकरणों को विस्तार कर लेना चाहिये]

द्वितीय गमन (द्वितीय बार)

§ १९. रूपी अत्ता होति सुत्त (२३. २. १९)

'आत्मा रूपवान् होता है' की मिथ्या-दृष्टि

श्रावस्ती…।

भिक्षुओ ! किसके होने से…—"मरने के बाद आत्मा रूप वाला अरोग होता है" ?

…भिक्षुओ ! रूपके होने से…।

…भिक्षुओ ! इस तरह, दुःख के होने से, दुःख के उपादान से, दुःख के अभिनिवेश से ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है…।

§ २०. अरूपी अत्ता होति सुत्त (२३. २. २०)

'अरूपवान् आत्मा है' की मिथ्या-दृष्टि

…भिक्षुओ ! किसके होने से…—"मरने के बाद आत्मा रूपरहित अरोग होता है" ?…

§ २१. रूपी च अरूपी च अत्ता होति सुत्त (२३. २. २१)

'रूपवान् और अरूपवान् आत्मा होता है' की मिथ्या-दृष्टि

…"मरने के बाद आत्मा रूपवाला और रूपरहित अरोग होता है"।

§ २२. नेवरूपी नारूपी अत्ता होति सुत्त (२३. २. २२)

'न रूपवान्, न अरूपवान् आत्मा होता है' की मिथ्या-दृष्टि

…"मरने के बाद आत्मा न रूपवाला और न रूपरहित अरोग होता है"।

§ २३. एकन्तसुखी अत्ता होति सुत्त (२३. २. २३)

'आत्मा एकान्त सुखी होता है' की मिथ्या-दृष्टि

मरने के बाद आत्मा एकान्त-सुख अरोग होता है।

§ २४. एकन्तदुक्खी अत्ता होति सुत्त (२३. २. २४)

'आत्मा सुख दुःखी होता है' की मिथ्या-दृष्टि

मरने के बाद आत्मा एकान्त-दुःख अरोग होता है।

§ २५. सुखदुक्खी अत्ता होति सुत्त (२३. २. २५)

'आत्मा सुखदुःखी होता है' की मिथ्या-दृष्टि

मरने के बाद आत्मा सुखदुःखी अरोग होता है।

§ २६. अदुक्खमसुखी अत्ता होति सुत्त (२३. २. २६)

'आत्मा सुख दुःख से रहित होता है' की मिथ्या-दृष्टि

मरने के बाद आत्मा अदुःखमसुखी अरोग होता है।

तीसरा भाग

तृतीय गमन

§ १. वात सुत्त (२३. ३. १)

मिथ्यादृष्टि का मूल

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! किसके होने से···ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—"न हवा बहती है···" ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही···।

भिक्षुओ ! रूप के होने से···। वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

भिक्षुओ ! रूप नित्य है या अनित्य ?

···भिक्षुओ ! इस तरह, जो अनित्य है वह दुःख है। उसके होने से, उसके उपादान से, ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—हवा नहीं बहती है···।

§ २–२५. सब्बे सुचन्ता पुब्बे आगता येव (२३. ३. २–२५)

[इसके आगे ऐसा ही विस्तार करके समझ लेना चाहिये]

§ २६. अरोगो होति परम्मरणा सुत्त (२३. ३. २६)

'आत्मा अरोग होता है' की मिथ्या-दृष्टि

भिक्षुओ ! किसके होने से···ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—"मरने के बाद आत्मा अदुःखम-सुखी अरोग रहता है" ?

···भिक्षुओ ! इस तरह, जो अनित्य है वह दुःख है। उसके होने से, उसके उपादान से, उसके अभिनिवेश से, ऐसी दृष्टि उत्पन्न होती है···।

चौथा भाग

चतुर्थ गमन

§ १. वात सुत्त (२३. ४. १)

मिथ्या-दृष्टि का मूल

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! किसके होने से···ऐसी मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है—"हवा नहीं बहती है···" ?

···भिक्षुओ ! रूप के होने से···। वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

भिक्षुओ ! ···रूप नित्य है या अनित्य ?

···भिक्षुओ ! इसलिये, जो कुछ रूप—अतीत, अनागत···है सभी न मेरा है, न मैं हूँ और न मेरा आत्मा है। इसे यथार्थतः ठीक से प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिये।

यह जान···।

§ २–२६. सब्बे सुत्तन्ता पुब्बे आगता येव (२३. ४. २–२६)

[इसके आगे ऐसा ही विस्तार करके समझ लेना चाहिये]

···भिक्षुओ ! यह जान, पण्डित आर्यश्रावक रूप से वैराग करता है। वेदना से···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···। वैराग्य करने से रागरहित हो विमुक्त हो जाता है। तब, उसे 'मैं विमुक्त हो गया' ऐसा ज्ञान होता है। जाति क्षीण हुई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, पुनर्जन्म नहीं होगा—ऐसा जान लेता है।

दृष्टि-संयुत्त समाप्त।

चौथा परिच्छेद

२४. ओक्कन्त-संयुत्त

§ १. चक्खु सुत्त (२४. १.)

चक्षु अनित्य है

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! चक्षु अनित्य है, परिवर्तनशील है, बदल जाने वाला है। श्रोत अनित्य है···। घ्राण··· जिह्वा···। काया···। मन अनित्य है, परिवर्तनशील है, बदल जाने वाला है।

भिक्षुओ ! जो इन धर्मों को इस प्रकार विश्वासपूर्वक जान लेता है वह मुक्त हो जाता है। इसी को कहते हैं—**सद्धर्मानुसारी**, जिसका मार्ग समाप्त हो गया है, सत्पुरुष-भूमि को जिसने पा लिया है, पृथक्जन-भूमि से जो हट गया है। वह उस कर्म को नहीं कर सकता, जिसके करने से नरक में, तिर्श्चीन योनि में, या प्रेतों में उत्पन्न होना पड़े। जब तक स्रोतापत्ति-फल की प्राप्ति न हो ले तब तक वह मर नहीं सकता।

भिक्षुओ ! जिन्हें ये धर्म प्रज्ञा-पूर्वक ध्यान में आते हैं, वे **धर्मानुसारी** कहे जाते हैं, जिसका मार्ग समाप्त हो गया है,···। जब तक स्रोतापत्ति-फल की प्राप्ति न हो ले तब तक वह मर नहीं सकता।

भिक्षुओ ! जो इन धर्मों को इस प्रकार जानता, देखता है, वह **स्रोतापन्न** कहा जाता है···।

§ २. रूप सुत्त (२४. २)

रूप अनित्य है

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! रूप अनित्य हैं = परिवर्तनशील हैं = बदल जाने वाले हैं। शब्द···। गन्ध···। रस···। स्पर्श···। धर्म अनित्य हैं, परिवर्तनशील हैं, बदल जाने वाले हैं।

भिक्षुओ ! जो इन धर्मों को इस प्रकार विश्वास-पूर्वक जान लेता है···[शेष पूर्ववत्]

§ ३. विञ्ञाण सुत्त (२४. ३)

चक्षु-विज्ञान अनित्य है

भिक्षुओ ! चक्षु-विज्ञान अनित्य है, परिवर्तन शील है, बदल जाने वाला है। श्रोत-विज्ञान···। घ्राण-विज्ञान···। जिह्वा-विज्ञान···। काय-विज्ञान···। मनोविज्ञान···।···

§ ४. फस्स सुत्त (२४. ४)

चक्षु-स्पर्श अनित्य है

भिक्षुओ ! चक्षु-स्पर्श अनित्य है, परिवर्तनशील है, बदल जाने वाला है। श्रोत्र-स्पर्श···। घ्राण-स्पर्श···। जिह्वा-स्पर्श···। काय-स्पर्श···। मनः-स्पर्श···।

§ ५. वेदना सुत्त (२४. ५)

वेदना अनित्य है

भिक्षुओ ! चक्षु-संस्पर्शजा वेदना अनित्य···है।···

§ ६. सञ्ञा सुत्त (२४. ६)

रूप-संज्ञा अनित्य है

भिक्षुओ ! रूप-संज्ञा अनित्य···है।···

§ ७. चेतना सुत्त (२४. ७)

चेतना अनित्य है

भिक्षुओ ! रूप-संचेतना अनित्य···है।···

§ ८. तण्हा सुत्त (२४. ८)

तृष्णा अनित्य है

भिक्षुओ ! रूप-तृष्णा अनित्य···है।···

§ ९. धातु सुत्त (२४. ९)

पृथ्वी-धातु अनित्य है

भिक्षुओ ! पृथ्वी-धातु अनित्य···है।···

§ १०. खन्ध सुत्त (२४. १०)

पञ्चस्कन्ध अनित्य है

भिक्षुओ ! रूप अनित्य है, परिवर्तनशील है, बदल जानेवाला है। वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

भिक्षुओ ! जो इन धर्मों को इस प्रकार विश्वास-पूर्वक जान लेता है···

भिक्षुओ ! जिन्हें ये धर्म प्रज्ञा-पूर्वक ध्यान में आते हैं···।

भिक्षुओ ! जो इन धर्मों को इस प्रकार जानता देखता है, वह स्रोतापन्न कहा जाता है।

ओक्कन्त-संयुत्त समाप्त

पाँचवाँ परिच्छेद

२५. उत्पाद-संयुत्त

§ १. चक्खु सुत्त (२५. १)

चक्षु-निरोध से दुःख-निरोध

श्रावस्ती···

भिक्षुओ ! जो चक्षु की उत्पत्ति, स्थिति, और प्रादुर्भाव है, वह दुःख की उत्पत्ति, रोगों की स्थिति और जरामरण का प्रादुर्भाव है ; जो श्रोत्र की···। जो घ्राण की···। जो जिह्वा की···। जो काया की···। जो मन की···।

भिक्षुओ ! जो चक्षु के निरोध, व्युपशम और अस्त हो जाना है, वह दुःख का निरोध, रोगों का व्युपशम, और जरामरण का अस्त हो जाना है। जो श्रोत्र का निरोध···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

§ २. रूप सुत्त (२५. २)

रूप-निरोध से दुःख-निरोध

श्रावस्ती···

भिक्षुओ ! जो रूपों की उत्पत्ति, स्थिति, और प्रादुर्भाव है, वह दुःख की उत्पत्ति, रोगों की स्थिति और जरामरण का प्रादुर्भाव है। जो शब्दों की···। जो गन्धों की···। जो रसों की···। जो स्पर्शों की···। जो धर्मों की···।

भिक्षुओ ! जो रूपों के निरोध, व्युपशम और अस्त हो जाना है, वह दुःखों का निरोध, रोगों का व्युपशम, और जरामरण का अस्त हो जाना है। जो शब्दों का···जो धर्मों का···।

§ ३. विञ्ञाण सुत्त (२५. ३)

चक्षु-विज्ञान

भिक्षुओ ! जो चक्षु-विज्ञान की उत्पत्ति···। जो श्रोत्र विज्ञान की···। जो मनो-विज्ञान की···।

भिक्षुओ ! जो चक्षु-विज्ञान का निरोध···।

§ ४. फस्स सुत्त (२५. ४)

स्पर्श

भिक्षुओ ! जो चक्षु-संस्पर्श की उत्पत्ति···।

भिक्षुओ ! जो चक्षु-संस्पर्श का निरोध···।

§ ५. वेदना सुत्त (२५. ५)

वेदना

भिक्षुओ ! जो चक्षु-संस्पर्शजा वेदना की उत्पत्ति···।

भिक्षुओ ! जो चक्षु-संस्पर्शजा वेदना का निरोध···।

§ ६. सञ्ञा सुत्त (२५. ६)

संज्ञा

भिक्षुओ ! जो रूप-संज्ञा की उत्पत्ति···।
भिक्षुओ ! जो रूप-संज्ञा का निरोध···।

§ ७. चेतना सुत्त (२५. ७)

चेतना

भिक्षुओ ! जो रूप-संचेतना की उत्पत्ति···।
भिक्षुओ ! जो रूप-संचेतना का निरोध···।

§ ८. तण्हा सुत्त (२५. ८)

तृष्णा

भिक्षुओ ! जो रूप-तृष्णा की उत्पत्ति···।
भिक्षुओ ! जो रूप-तृष्णा का निरोध···।

§ ९. धातु सुत्त (२५. ९)

धातु

भिक्षुओ ! जो पृथ्वी-धातु की उत्पत्ति···।
भिक्षुओ ! जो पृथ्वी-धातु का निरोध···।

§ १०. खन्ध सुत्त (२५. १०)

स्कन्ध

भिक्षुओ ! जो रूप की उत्पत्ति···। वेदनाकी···। संज्ञाकी···। संस्कारकी···। विज्ञानकी···।
भिक्षुओ ! जो रूप का निरोध···।

उत्पाद-संयुत्त समाप्त

छठाँ परिच्छेद

२६. क्लेश-संयुत्त

§ १. चक्खु सुत्त (२६. १)

चक्षु का छन्दराग चित्त का उपक्लेश है

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! जो चक्षु में छन्दराग है वह चित्त का उपक्लेश है। जो श्रोत्र में···जो मन में···।

भिक्षुओ ! जब इन छः स्थानों में (=चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया, मन) भिक्षु का चित्त उपक्लेश-रहित होता है, तो उसका चित्त नैष्कम्य की ओर झुका होता है। नैष्कम्य में अभ्यस्त चित्त प्रज्ञापूर्वक साक्षात्कार करने योग्य धर्मों में लगता है।

§ २. रूप सुत्त (२६. २)

रूप

भिक्षुओ ! जो रूपों में छन्दराग है वह चित्त का उपक्लेश है। जो शब्दों में···जो धर्मों में···।

भिक्षुओ ! जब इन छः स्थानों में भिक्षु का चित्त उपक्लेश रहित होता है··· ।

३. विञ्ञाण सुत्त (२६. ३)

विज्ञान

भिक्षुओ ! जो चक्षु विज्ञान में छन्दराग है···।

§ ४. सम्फस्स सुत्त (२६. ४)

स्पर्श

भिक्षुओ ! जो चक्षुसंस्पर्श में छन्दराग है···।

§ ५. वेदना सुत्त (२६. ५)

वेदना

भिक्षुओ ! जो चक्षुसंस्पर्शजा वेदना में छन्दराग है···।

§ ६. सञ्ञा सुत्त (२६. ६)

संज्ञा

भिक्षुओ ! जो रूप संज्ञा में छन्दराग है···।

§ ७. सञ्चेतना सुत्त (२६. ७)

चेतना

भिक्षुओ ! जो रूप संचेतना में छन्दराग है···।

§ ८. तण्हा सुत्त (२६. ८)

तृष्णा

भिक्षुओ ! जो रूप-तृष्णा में छन्दराग है···।

§ ९. धातु सुत्त (२६. ९)

धातु

भिक्षुओ ! जो पृथ्वी धातु में छन्दराग है···।

§ १०. खन्ध सुत्त (२६. १०)

स्कन्ध

भिक्षुओ ! जो रूप में छन्दराग है···। जो वेदना में···। जो संज्ञा में···। जो संस्कार में···। जो विज्ञान में···।

क्लेश-संयुक्त समाप्त

सातवाँ परिच्छेद

२७. सारिपुत्र-संयुत्त

§ १. विवेक सुत्त (२७. १)

प्रथम ध्यान की अवस्था में

एक समय, आयुष्मान् सारिपुत्र श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

तब, पूर्वाह्न में आयुष्मान् सारिपुत्र पहन और पात्रचीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिये पैठे।

भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने पर दिन के विहार के लिये जहाँ अन्धवन है वहाँ गये। अन्धवन में पैठ किसी वृक्ष के नीचे बैठ गये।

तब, संध्या समय आयुष्मान् सारिपुत्र ध्यान से उठ जहाँ अनाथपिण्डिक का आराम जेतवन है वहाँ आये।

आयुष्मान् आनन्द ने आयुष्मान् सारिपुत्र को दूर ही से आते देखा। देखकर, आयुष्मान् सारिपुत्र से कहा, "आवुस सारिपुत्र ! आपकी इन्द्रियाँ बहुत प्रसन्न हैं, मुख की कान्ति बड़ी शुद्ध हो रही है। आज आप कैसे विहार कर रहे थे ?

आवुस ! यह मैं कामों से विविक्त हो, पाप-धर्मों से विविक्त हो, वितर्कवाले, विचारवाले, तथा विवेकज प्रीतिसुख वाले प्रथम ध्यान का लाभ कर विहार करता था। आवुस ! तब मैं यह नहीं समझ रहा था कि मैं प्रथम ध्यान को प्राप्त कर रहा हूँ, या प्रथम ध्यान को प्राप्त कर लिया हूँ, या प्रथम ध्यान से उठ रहा हूँ।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार, ममङ्कार; मान और अनुशय बहुत पहले ही नष्ट हो चुके थे। इसलिये, उनको इसका भी पता नहीं था कि मैं प्रथम ध्यान को प्राप्त कर रहा हूँ, या प्रथम ध्यान को प्राप्त कर लिया हूँ; या प्रथम ध्यान से उठ रहा हूँ।

§ २. अवितक्क सुत्त (२७. २)

द्वितीय ध्यान की अवस्था में

श्रावस्ती…।

…[पूर्ववत्]

आवुस ! यह मैं वितर्क और विचार के शान्त हो जाने से; आध्यात्म संप्रसाद, चित्त की एकाग्रता, अवितर्क, अविचार, समाधिज प्रीतिसुख वाले द्वितीय ध्यान प्राप्त हो विहार कर रहा था। आवुस ! तब मैं यह नहीं समझ रहा था कि मैं द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर रहा हूँ। या द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर लिया हूँ। या द्वितीय ध्यान से उठ रहा हूँ।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार…।

§ ३. पीति सुत्त (२७. ३)

तृतीय ध्यान की अवस्था में

श्रावस्ती···।

...आवुस ! यह मैं प्रीति से और विराग से उपेक्षा रखते हुये विहार कर रहा था—जिसे पण्डित लोग कहते हैं कि उपेक्षा के साथ स्मृतिमान् हो सुखपूर्वक विहार करता है उस तृतीय ध्यान को प्राप्त हो विहार कर रहा था...।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार...।

§ ४. उपेक्खा सुत्त (२७. ४)

चतुर्थ ध्यान की अवस्था में

...आवुस ! यह मैं सुख और दुःख के प्रहाण हो जाने से, पहले ही सौमनस्य-दौर्मनस्य के अस्त हो जाने से सुख-दुःख से रहित उपेक्षा स्मृतिपरिशुद्ध वाले चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहार कर रहा था...।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार...।

§ ५. आकास सुत्त (२७. ५)

आकाशानन्त्यायतन की अवस्था में

···भिक्षुओ ! यह मैं रूप-संज्ञा का बिल्कुल समतिक्रमण कर, प्रतिघसंज्ञा के अस्त हो जाने से, नानात्म-संज्ञा के मन में न आने से, 'आकाश अनन्त है' ऐसा आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहार कर रहा था।···

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार···।

§ ६. विञ्ञाण सुत्त (२७. ६)

विज्ञानानन्त्यायतन की अवस्था में

···आवुस ! यह मैं आकाशानन्त्यायतन का बिल्कुल समतिक्रमण कर, "विज्ञान अनन्त है" ऐसा विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहार कर रहा था···।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार···।

§ ७. आकिञ्चञ्ञ सुत्त (२७. ७)

आकिञ्चन्यायतन की अवस्था में

···आवुस ! यह मैं विज्ञानानन्त्यायतन का बिल्कुल समतिक्रमण कर, "कुछ नहीं है" ऐसा आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त हो विहार कर रहा था।···

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार···।

§ ८. नेवसञ्ञ सुत्त (२७. ८)

नैवसंज्ञानासंज्ञायतन की अवस्था में

···आवुस ! यह मैं आकिञ्चन्यायतन का बिल्कुल समतिक्रमण कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हो विहार कर रहा था···।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार···।

§ ९. निरोध सुत्त (२७. ९)

संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्था में

"'आवुस ! यह मैं नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का बिल्कुल समतिक्रमण कर संज्ञावेदयितनिरोध को प्राप्त हो विहार कर रहा था'''।

आयुष्मान् सारिपुत्र के अहङ्कार'''।

§ १०. सूचिमुखी सुत्त (२७. १०)

भिक्षु धर्मपूर्वक आहार ग्रहण करते हैं

एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र राजगृह में वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् सारिपुत्र पूर्वाह्न समय पहन और पात्र चीवर ले राजगृह में भिक्षाटन के लिये पैठे। राजगृह में द्वार-द्वार पर भिक्षा ले, उस भिक्षान्न को एक दीवाल से लगे बैठकर खा रहे थे। तब, शूचिमुखी परिव्राजिका जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ आई, और बोली, "श्रमण ! नीचे मुँह किये क्यों खा रहा है ?"

बहन ! मैं नीचे मुँह किये नहीं खा रहा हूँ।

श्रमण ! तो ऊपर मुँह करके खा रहे हो ?

बहन ! मैं ऊपर मुँह करके भी नहीं खा रहा हूँ।

श्रमण ! तो चारों ओर मुँह घुमा-घुमाकर खा रहे हो ?

बहन ! मैं चारों ओर मुँह घुमा-घुमाकर भी नहीं खा रहा हूँ।'''

'''श्रमण ! जब तुम सभी में 'नहीं' कहते हो, तो भला कैसे खा रहे हो ?

बहन ! जो श्रमण या ब्राह्मण वस्तुविद्या तिरश्चीन विद्या के मिथ्या-आजीव से जीवन निर्वाह करते हैं, वे नीचे मुँह करके खानेवाले कहे जाते हैं।

बहन ! जो श्रमण या ब्राह्मण नक्षत्रविद्या के मिथ्याजीव से जीवन निर्वाह करते हैं, वे ऊपर मुँह करके खानेवाले कहे जाते हैं।

बहन ! जो श्रमण या ब्राह्मण दूत के काम के मिथ्याजीव से जीवन निर्वाह करते हैं, वे दिशाओं में मुँह करके खानेवाले कहे जाते हैं।

बहन ! जो श्रमण या ब्राह्मण अङ्गविद्या के मिथ्याजीव से जीवन निर्वाह करते हैं, वे विदिशाओं में मुँह करके खाने वाले कहे जाते हैं।

...बहन ! इनमें मैं किसी तरह जीवन निर्वाह नहीं करता। मैं धर्म-पूर्वक भिक्षाटन करके खाता हूँ

तब, शूचिमुखी परिव्राजिका राजगृह में एक गली से दूसरी गली, और एक चौराहे से दूसरे चौराहे पर जा-जाकर कहने लगी—शाक्यपुत्र श्रमण धर्मपूर्वक आहार ग्रहण करते हैं, शाक्यपुत्र अनिन्द्य आहार ग्रहण करते हैं। शाक्यपुत्र श्रमणों को भिक्षा दो।

सारिपुत्र-संयुत्त समाप्त

आठवाँ परिच्छेद

२८. नाग-संयुत्त

§ १. सुद्धिक सुत्त (२८. १)

चार नाग-योनियाँ

आवस्ती···।

भिक्षुओ ! नाग-योनियाँ चार हैं। कौन सी चार ? (१) अण्डज नाग, (२) पिण्डज नाग, (३) संस्वेदज नाग, (४) औपपातिक नाग। भिक्षुओ ! यही चार नाग-योनियाँ हैं।

§ २. पणीततर सुत्त (२८. २)

चार नाग-योनियाँ

आवस्ती···।

भिक्षुओ ! नाग-योनियाँ चार हैं।···

भिक्षुओ ! अण्डज नाग से ऊपर के तीन नाग ऊँचे हैं।

भिक्षुओ ! अण्डज और पिण्डज नाग से ऊपर के दो नाग ऊँचे हैं।

भिक्षुओ ! अण्डज पिण्डज और संस्वेदज नाग से औपपातिक नाग ऊँचा है।

§ ३. पठम उपोसथ सुत्त (२८. ३)

कुछ नाग उपोसथ रखते हैं

आवस्ती···।

तब, कोई भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! क्या हेतु = प्रत्यय है कि कुछ अण्डज नाग उपोसथ रखते हैं और अच्छे शरीर वाले हो जाते हैं ?

भिक्षु ! कुछ अण्डज नागों के मन में ऐसा होता है, "हम पहले शरीर से, वचन से और मनसे पुण्य-पाप करने वाले थे, सो हम मरने के बाद अण्डज नाग-योनि में उत्पन्न हुये।

तो, हम अब शरीर, वचन और मन से सदाचार करें, जिससे मरने के बाद हम स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त करें।

···भिक्षुओ ! यही हेतु = प्रत्यय है कि कुछ अण्डज नाग उपोसथ रखते हैं और अच्छे शरीर वाले हो जाते हैं।

§ ४–६. दुतिय-ततिय-चतुत्थ उपोसथ सुत्त (२८. ४–६)

कुछ नाग उपोसथ रखते हैं

···भन्ते ! क्या हेतु = प्रत्यय है कि कुछ पिण्डज नाग···; संस्वेदिक नाग···? औपपातिक नाग···?···

§ ७. पठम तस्स सुतं सुत्त (२८. ७)

नाग-योनि में उत्पन्न होने का कारण

श्रावस्ती···।

···एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! क्या हेतु = प्रत्यय है कि कुछ लोग मरने के बाद अण्डज नाग-योनि में उत्पन्न होते हैं ?

भिक्षु ! कुछ लोग शरीर, वचन और मनसे पुण्य-पाप करने वाले होते हैं। वे सुनते हैं—अण्डज नाग दीर्घायु, सुन्दर और सुखी होते हैं। अतः, उनके मनमें होता है, "अरे ! हम मरने के बाद अण्डज नागों में उत्पन्न होवें।"

वे मरने के बाद अण्डज नागों में उत्पन्न होते हैं।

भिक्षु ! यही हेतु = प्रत्यय है···।

§ ८-१०. दुतिय-ततिय-चतुत्थ तस्स सुतं सुत्त (२८. ८–१०)

नाग-योनि में उत्पन्न होने का कारण

···भन्ते ! क्या हेतु=प्रत्यय है कि कुछ लोग मरने के बाद पिण्डज···, संस्वेदज···, औपपातिक नाग-योनि में उत्पन्न होते हैं ?···

§ ११. पठम दानुपकार सुत्त (२८. ११)

नाग-योनि में उत्पन्न होने का कारण

···उसके मन में ऐसा होता है, "अरे ! हम भी मरने के बाद अण्डज नाग-योनि में उत्पन्न हों।"

वह अन्न, पान, वस्त्र, सवारी, माला, गन्ध, विलेपन, शय्या, घर, प्रदीप का दान करता है। वह मरने के बाद अण्डज नाग-योनि में उत्पन्न होता है।

भिक्षु ! यही हेतु = प्रत्यय है···।

§ १२–१४. दुतिय-ततिय-चतुत्थ दानुपकार सुत्त (२८. १२–१४)

नाग-योनि में उत्पन्न होने का कारण

···वह मरने के बाद पिण्डज नाग-योनि में···, संस्वेदज नाग-योनि में, ···, औपपातिक नाग-योनि में उत्पन्न होता है।···

नाग संयुत्त समाप्त

नवाँ परिच्छेद

२९. सुपर्ण-संयुत्त

§ १. सुद्धक सुत्त (२९. १)

चार सुपर्ण-योनियाँ

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! चार सुपर्ण-योनियाँ हैं। कौन सी चार ? अण्डज, पिण्डज, संस्वेदज, और औपपातिक···।

§ २. हरन्ति सुत्त (२९. २)

हर ले जाते हैं

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! अण्डज सुपर्ण अण्डज नागों को हर ले जाते हैं, पिण्डज, संस्वेदज और औपपातिक को नहीं।

पिण्डज सुपर्ण अण्डज और पिण्डज नागों को हर ले जाते हैं, संस्वेदज और औपपातिक को नहीं।

संस्वेदज सुपर्ण अण्डज, पिण्डज और संस्वेदज नागों को हर ले जाते हैं, औपपातिक को नहीं।

औपपातिक सुपर्ण सभी नागों को हर ले जाते हैं। भिक्षुओ ! यही चार सुपर्ण-योनियाँ हैं।

§ ३. पठम द्वयकारी सुत्त (२९. ३)

सुपर्ण-योनि में उत्पन्न होने का कारण

श्रावस्ती···।

···एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! क्या हेतु=प्रत्यय है कि कुछ लोग मरने के बाद अण्डज सुपर्ण योनि में उत्पन्न होते हैं ?

भिक्षु ! कुछ लोग शरीर, वचन और मन से पुण्य-पाप करने वाले होते हैं। वे सुनते हैं—अण्डज सुपर्ण दीर्घायु, सुन्दर और सुखी होते हैं। अतः, उनके मन में होता है, "अरे ! हम मरने के बाद अण्डज सुपर्णों में उत्पन्न होवें।

वे मरने के बाद अण्डज सुपर्णों में उत्पन्न होते हैं।

भिक्षु ! यही हेतु=प्रत्यय···।

§ ४–६. दुतिय-ततिय-चतुत्थ द्वयकारी सुत्त (२९. ४–६)

सुपर्ण-योनि में उत्पन्न होने का कारण

श्रावस्ती···।

···भन्ते ! क्या हेतु=प्रत्यय है कि कुछ लोग मरने के बाद पिण्डज···, संस्वेदज···, औपपातिक सुपर्ण योनि में उत्पन्न होते हैं ?···

§ ७. पठम दानुपकार सुत्त (२९. ७)

दान आदि देने से सुपर्ण योनि में

…उसके मन में ऐसा होता है, "अरे! हम भी मरने के बाद अण्डज सुपर्ण-योनि में उत्पन्न हों"।

वह अन्न, पान, वस्त्र, सवारी, माला, गन्ध, विलेपन, शय्या, घर, प्रदीप का दान करता है। वह मरने के बाद अण्डज सुपर्ण योनि में उत्पन्न होता है।

भिक्षु! यही हेतु=प्रत्यय…।

§ ८-१०. दुतिय-ततिय-चतुत्थ दानुपकार सुत्त (२९. ८-१०)

दान आदि देने से सुपर्ण योनि में

…वह मरने के बाद पिण्डज सुपर्ण-योनि में…, संस्वेदज सुपर्ण योनि में…, औपपातिक सुपर्ण-योनि में उत्पन्न होता।…

सुपर्ण-संयुक्त

दसवाँ परिच्छेद

३०. गन्धर्वकाय-संयुत्त

§ १. सुद्धक सुत्त (३०. १)

गन्धर्वकाय देव कौन हैं ?

श्रावस्ती…।

भिक्षुओ ! गन्धर्वकाय देवों के विषय में कहूँगा। उसे सुनो…।

भिक्षुओ ! गन्धर्वकाय देव कौन से हैं ?

भिक्षुओ ! मूलगन्ध में वास करने वाले देव हैं। सारगन्ध में वास करने वाले देव हैं। कच्ची लकड़ी के गन्ध में वास करने वाले देव हैं। छाल के गन्ध में वास करने वाले देव हैं। पपड़ी के गन्ध में। पत्तों के गन्ध में। फूल के गन्ध में…। फल के गन्ध में…। रस के गन्ध में…। गन्ध के गन्ध में…।

भिक्षुओ ! यही गन्धर्वकायिक देव कहलाते हैं।

§ २. सुचरित सुत्त (३०. २)

गन्धर्व-योनि में उत्पन्न होने का कारण

श्रावस्ती…।

…एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! क्या हेतु=प्रत्यय है कि कोई यहाँ मरकर गन्धर्वकायिक देवों के बीच उत्पन्न होता है ?

भिक्षु ! कोई शरीर, वचन और मन से सदाचार करता है। वह कहीं सुन पाता है—गन्धर्वकायिक देव दीर्घायु, सुन्दर और सुखी होते हैं।

तब, उसके मन में ऐसा होता है, "अरे ! मरने के बाद मैं भी गन्धर्वकायिक देवों में उत्पन्न होऊँ। वह ठीक में मरने के बाद गन्धर्वकायिक देवों में उत्पन्न होता है।

भिक्षु ! यही हेतु=प्रत्यय है कि कोई यहाँ मरकर गन्धर्वकायिक देवों के बीच उत्पन्न होता है।

§ ३. पठम दाता सुत्त (३०. ३)

दान से गन्धर्व-योनि में उत्पत्ति

श्रावस्ती…।

…उसके मन में यह होता है—अरे ! मरने के बाद मैं मूलगन्ध में वास करनेवाले देवों के बीच उत्पन्न होऊँ। वह मूलगन्धों का दान करता है। वह मरने के बाद मूलगन्धों में वास करने वाले देवों के बीच उत्पन्न होता है।…

§ ४-१२. दाता सुत्त (३०. ४-१२)

दान से गन्धर्व-योनि में उत्पत्ति

... वह सारगन्धों का दान करता है। वह मरने के बाद सारगन्धों में वास करने वाले देवों के बीच उत्पन्न होता है।...

...वह लकड़ी के गन्धों का दान करता है।...

...वह छाल के गन्धों का दान करता है।...

...पपड़ीके...।

...पत्तों के...।

...फूल के...।

...फल के...।

...रस के...।

...गन्ध के...।

भिक्षुओ ! यही हेतु=प्रत्यय...।

§ १३. पठम दानुपकार सुत्त (३०. १३)

दान से गन्धर्व-योनि में उत्पत्ति

श्रावस्ती...।

...भन्ते ! क्या हेतु=प्रत्यय है कि कोई यहाँ मर कर मूलगन्ध में वास करने वाले देवों के बीच उत्पन्न होता है ?

...उसके मन में ऐसा होता है—अरे ! मरने के बाद मैं मूलगन्ध में वास करने वाले देवों के बीच उत्पन्न होऊँ। वह अन्न, पान, वस्त्र, सवारी...का दान करता है। वह मरने के बाद मूलगन्ध में वास करने वाले देवों के बीच उत्पन्न होता है।

भिक्षु ! यही हेतु=प्रत्यय...।

§ १४-२३. दानुपकार सुत्त (३०. १४-२३)

दान से गन्धर्व-योनि में उत्पत्ति

[शेष दस गन्धर्वों के साथ भी लगाकर समझ लेना चाहिये]

गन्धर्वकाय-संयुत्त समाप्त

ग्यारहवाँ परिच्छेद

३१. वलाहक-संयुत्त

§ १. देसना सुत्त (३१. १)

वलाहक देव कौन हैं ?

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! वलाहककायिक देवों के विषय में कहूँगा। उसे सुनो···।

भिक्षुओ ! वलाहककायिक देव कौन से हैं ? भिक्षुओ ! शीत वलाहक देव हैं। उष्ण वलाहक देव हैं। अभ्र वलाहक देव हैं। वात वलाहक देव हैं। वर्षा वलाहक देव हैं।

भिक्षुओ ! इन्हीं को वलाहककायिक देव कहते हैं।

§ २. सुचरित सुत्त (३१. २)

वलाहक योनि में उत्पन्न होने का कारण

···भिक्षु ! कोई शरीर, वचन और मन से सदाचार करता है। वह कहीं सुन लेता है···। उसके मन में ऐसा होता है···।

मरने के बाद वह वलाहककायिक देवों के बीच उत्पन्न होता है।

भिक्षु ! यही हेतु = प्रत्यय···।

§ ३. पठम दानुपकार सुत्त (३१. ३)

दान से वलाहक-योनि में उत्पत्ति

···वह अन्न, पान, वस्त्र···का दान करता है। वह मरने के बाद शीत वलाहक देवों के बीच उत्पन्न होता है।···

§ ४-७. दानुपकार सुत्त (३१. ४-७)

दान से वलाहक-योनि में उत्पत्ति

···उष्ण वलाहक देवों के बीच उत्पन्न होता है।

···अभ्र वलाहक देवों के बीच उत्पन्न होता है।

···वात वलाहक देवों के बीच उत्पन्न होता है।

···वर्षा वलाहक देवों के बीच उत्पन्न होता है।

§ ८. सीत सुत्त (३१. ८)

शीत होने का कारण

श्रावस्ती···।

एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! क्या हेतु = प्रत्यय है कि कभी शीत होता है ?"

भिक्षु ! शीत बलाहक नाम के देव हैं। उनके मन में जब यह होता है—हमलोग अपनी रति से रमण करें, तब उनके मन में ऐसा होने से शीत होता है।

§ ९. उण्ह सुत्त (३१. ९)

गर्मी होने का कारण

…भिक्षु ! उष्ण बलाहक नाम के देव हैं।…

§ १०. अब्भ सुत्त (३१. १०)

बादल होने का कारण

…भिक्षु ! अभ्र बलाहक नाम के देव हैं।…

§ ११. वात सुत्त (३१. ११)

वायु होने का कारण

…भिक्षु ! वात बलाहक नाम के देव हैं।…

§ १२. वस्स सुत्त (३१. १२)

वर्षा होने का कारण

…भिक्षु ! वर्षा बलाहक नाम के देव हैं।…

बलाहक संयुत्त समाप्त

बारहवाँ परिच्छेद

३२. वत्सगोत्र-संयुत्त

§ १. अञ्ञाण सुत्त (३२. १)

अज्ञान से नाना प्रकार की मिथ्या-दृष्टियों की उत्पत्ति

श्रावस्ती···।

तब, वत्सगोत्र परिव्राजक जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और कुशल क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, वत्सगोत्र परिव्राजक भगवान् से बोला, "गौतम ! क्या हेतु=प्रत्यय है कि संसार में इतनी अनेक प्रकार की मिथ्या-दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं—"लोक शाश्वत है, या लोक अशाश्वत है। लोक सान्त है, या लोक अनन्त है। जो जीव है वही शरीर है, या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है। मरने के बाद तथागत होता है, या मरने के बाद तथागत नहीं होता है। मरने के बाद तथागत होता है भी और नहीं भी होता है। मरने के बाद तथागत न होता है और न नहीं होता है" ?

वत्स ! रूप के अज्ञान से, रूप-समुदय के अज्ञान से, रूपनिरोध के अज्ञान से, रूप-निरोधगामिनी प्रतिपदा के अज्ञान से, संसार में इतनी अनेक प्रकार की मिथ्या-दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं—"लोक शाश्वत है···।

§ २–५. अञ्ञाण सुत्त (३२. २–५)

अज्ञान से मिथ्या-दृष्टियों की उत्पत्ति

···वत्स ! वेदना के अज्ञान से···।

···वत्स ! संज्ञा के अज्ञान से···।

···वत्स ! संस्कार के अज्ञान से···।

···वत्स ! विज्ञान के अज्ञान से, विज्ञान-समुदय के अज्ञान से, विज्ञान निरोध के अज्ञान से, विज्ञान-निरोधगामिनी प्रतिपदा के अज्ञान से, संसार में इतनी अनेक प्रकार की मिथ्या-दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं—"लोक शाश्वत है···।"

§ ६–१०. अदस्सन सुत्त (३२. ६–१०)

अदर्शन से मिथ्या-दृष्टियों की उत्पत्ति

श्रावस्ती···।

एक ओर बैठ, वत्सगोत्र परिव्राजक भगवान् से बोला, गौतम ! क्या हेतु=प्रत्यय है कि संसार में इतनी अनेक प्रकार की मिथ्या-दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं—"लोक शाश्वत है···" ?

वत्स ! रूप के अदर्शन से···। वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

§ ११-१५. अनभिसमय सुत्त (३२. ११-१५)

ज्ञान न होने से मिथ्या-दृष्टियों की उत्पत्ति

श्रावस्ती…।

…वत्स ! रूप में अभिसमय नहीं होने से…।

…वत्स ! वेदना में…।

…वत्स ! संज्ञा में…।

…वत्स ! संस्कार में…!

…वत्स ! विज्ञान में…।

§ १६-२०. अननुबोध सुत्त (३२. १६-२०)

भली प्रकार न जानने से मिथ्या दृष्टियों की उत्पत्ति

श्रावस्ती…।

…वत्स ! रूप में अनुबोध नहीं होने से…।

…वत्स ! वेदना में…।

…वत्स ! संज्ञा में…।

…वत्स ! संस्कार में…।

…वत्स ! विज्ञान में…।

§ २१-२५. अप्पटिवेध सुत्त (३२. २१-२५)

अप्रतिवेध न होने से मिथ्या-दृष्टियाँ

…वत्स ! रूप के अप्रतिवेध से…विज्ञान के अप्रतिवेध से…।

§ २६-३०. असल्लक्खण सुत्त (३२. २६-३०)

भली प्रकार विचार न करने से मिथ्या-दृष्टियाँ

…वत्स ! रूप के असल्लक्षण से…विज्ञान के असल्लक्षण से…।

§ ३१-३५. अनुपलक्खण सुत्त (३२. ३१-३५)

अनुपलक्षण से मिथ्या-दृष्टियाँ

…वत्स ! रूप के अनुपलक्षण से…विज्ञान के अनुपलक्षण से…!

§ ३६-४०. अपच्चुपलक्खण सुत्त (३२. ३६-४०)

अप्रत्युपलक्षण से मिथ्या-दृष्टियाँ

…वत्स ! रूप के अप्रत्युपलक्षण से…विज्ञान के अप्रत्युपलक्षण से…।

§ ४१-४५. असमपेक्खण सुत्त (३२. ४१-४५)

असमप्रेक्षण से मिथ्या-दृष्टियाँ

…वत्स ! रूप के असमप्रेक्षण से…विज्ञान के…।

§ ४६-५०. अपच्चुपेक्खण सुत्त (३२. ४६-५०)

अप्रत्योप प्रेक्षण से मिथ्या-दृष्टियाँ

…वत्स ! रूप के अप्रत्योपप्रेक्षण से…विज्ञान के…।

§ ५१. अपच्चक्खकम्म सुत्त (३२. ५१)

अप्रत्यक्ष कर्म से मिथ्या-दृष्टियाँ

श्रावस्ती…।

तब, वत्सगोत्र परिव्राजक जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और कुशल क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, वत्सगोत्र परिव्राजक भगवान् से बोला, "गौतम ! क्या हेतु=प्रत्यय है कि संसार में इतनी अनेक प्रकार की मिथ्या-दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं—"लोक शाश्वत है'…।"

वत्स ! रूप के अप्रत्यक्ष-कर्म से, रूप समुदय के अप्रत्यक्ष कर्म से, रूपनिरोध के अप्रत्यक्ष कर्म से, रूप निरोधगामिनी प्रतिपदा के अप्रत्यक्ष कर्म से इतनी अनेक प्रकार की मिथ्या-दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं…।

§ ५२-५५. अपच्चुपेक्खण सुत्त (३२. ५२-५५)

अप्रत्यक्ष कर्म से मिथ्या-दृष्टियाँ

…वत्स ! वेदना के अप्रत्यक्ष कर्म से…।

…वत्स ! संज्ञा के अप्रत्यक्ष कर्म से…।

…वत्स ! संस्कार के अप्रत्यक्ष कर्म से…।

…वत्स ! विज्ञान के अप्रत्यक्ष कर्म से…।

वत्सगोत्र संयुत्त समाप्त

तेरहवाँ परिच्छेद

३३. ध्यान संयुत्त

§ १. समाधि-समापत्ति सुत्त (३३. १)

ध्यायी चार हैं

श्रावस्ती…।

…भिक्षुओ ! ध्यायी चार हैं। कौन से चार ?

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधि-कुशल होता है, समाधि में समापत्ति-कुशल नहीं।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समापत्ति-कुशल होता है, समाधि में समाधि-कुशल नहीं।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी न समाधि में समाधि-कुशल होता है, न समाधि में समापत्ति-कुशल।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधि-कुशल भी होता है, और समाधि में समापत्ति-कुशल भी।

भिक्षुओ ! जो ध्यायी, समाधि में समाधि-कुशल भी होता है, और समाधि में समापत्ति-कुशल भी, वही इन चार ध्यायियों में अग्र=श्रेष्ठ=मुख्य=उत्तम=प्रवर है।

भिक्षुओ ! जैसे, गाय से दूध, दूध से दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी, और घी से भी मण्ड अच्छा समझा जाता है। भिक्षुओ ! वैसे ही, जो ध्यायी समाधि में समाधि-कुशल भी होता है, और समाधि में समापत्ति-कुशल भी, वही इन चार ध्यायियों में अग्र=श्रेष्ठ=मुख्य=उत्तम=प्रवर है।

§ २. ठिति सुत्त (३३. २)

स्थिति कुशल ध्यायी श्रेष्ठ

श्रावस्ती…।

…भिक्षुओ ! ध्यायी चार हैं। कौन से चार ?

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधि कुशल होता है, समाधि में स्थिति कुशल नहीं।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में स्थिति कुशल होता है, समाधि-कुशल नहीं।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी न समाधि में समाधिकुशल होता है, और न समाधि में स्थितिकुशल।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी, और समाधि में स्थितिकुशल भी होता है।

भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी, और समाधि में स्थितिकुशल भी होता है, वही इन चार ध्यायियों में अग्र=श्रेष्ठ=मुख्य=उत्तम=प्रवर होता है।

भिक्षुओ ! जैसे गाय से दूध…।

§ ३. वुट्ठान सुत्त (३३. ३)

व्युत्थान कुशल ध्यायी उत्तम

भिक्षुओ ! ध्यायी चार होते हैं। कौन से चार ?

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल होता है, समाधि में व्युत्थानकुशल नहीं।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, समाधि में समाधिकुशल नहीं।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी न समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, न समाधि में समाधिकुशल।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी होता है, और समाधि में व्युत्थानकुशल भी।

भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी होता है, और समाधि में व्युत्थानकुशल भी, वही इन चार ध्यायियों में अग्र=श्रेष्ठ=मुख्य=उत्तम=प्रवर होता है।

§ ४. कल्लित सुत्त (३३. ४)

कल्य कुशल ध्यायी श्रेष्ठ

श्रावस्ती…।

भिक्षुओ ! ध्यायी चार होते हैं। कौन से चार ?

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल होता है, समाधि में कल्य-कुशल नहीं।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में कल्यकुशल होता है, समाधि में समाधिकुशल नहीं।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी न समाधि में समाधिकुशल होता है, और न समाधि में कल्यकुशल।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी होता है और समाधि में कल्यकुशल भी।

भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी होता है, और समाधि में कल्यकुशल भी, वही इन चार ध्यायियों में अग्र = श्रेष्ठ…होता है।

भिक्षुओ ! जैसे, गाय से दूध…।

§ ५. आरम्मण सुत्त (३३. ५)

आलम्बन कुशल ध्यायी श्रेष्ठ

श्रावस्ती…।

भिक्षुओ ! चार ध्यायी…।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल होता है, समाधि में आलम्बनकुशल नहीं।…

भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी, और समाधि में आलम्बनकुशल भी हैं, वे ही इन चार ध्यायियों में अग्र=श्रेष्ठ…।

§ ६. गोचर सुत्त (३३. ६)

गोचरकुशल ध्यायी

…चार ध्यायी…।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल होता है, समाधि में गोचरकुशल नहीं।…

भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी, और समाधि में गोचरकुशल भी हैं, वे ही… अग्र…।

§ ७. अभिनीहार सुत्त (३३. ७)

अभिनीहार-कुशल ध्यायी

…चार ध्यायी…।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल होता है, समाधि में अभिनीहार-कुशल नहीं…।

भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी, और समाधि में अभिनीहार-कुशल भी है, वे ही...अग्र...।

§ ८. सक्कच्च सुत्त (३३. ८)

गौरव करनेवाला ध्यायी

...चार ध्यायी...।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल होता है, समाधि में गौरव करनेवाला नहीं।...

भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी, और समाधि में गौरव करनेवाले भी हैं, वे ही...अग्र...।

§ ९. सातच्च सुत्त (३३. ९)

निरन्तर लगा रहनेवाला ध्यायी

...चार ध्यायी...।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समाधिकुशल होता है, समाधि में सातत्यकारी नहीं।...

भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी होता है, और समाधि में सातत्यकारी भी, वही अग्र=श्रेष्ठ...।

§ १०. सप्पाय सुत्त (३३. १०)

सप्रायकारी ध्यायी

...भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समाधिकुशल भी होता है, और समाधि में सप्रायकारी भी, वही अग्र=श्रेष्ठ...।

§ ११. ठिति सुत्त (३३. ११)

ध्यायी चार हैं

श्रावस्ती...।

...चार ध्यायी...।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल होता है, समाधि में स्थितिकुशल नहीं।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में स्थितिकुशल होता है, समाधि में समापत्तिकुशल नहीं।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में न समापत्तिकुशल होता है, और न स्थितिकुशल।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल भी होता है, और स्थितिकुशल भी।

भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल भी होता है, और स्थितिकुशल भी, व अग्र=श्रेष्ठ...।

§ १२. वुट्ठान सुत्त (३३. १२)

स्थिति कुशल

...भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल भी होता है, और व्युत्थानकुशल भी, वह अग्र...।

§ १३. कल्लित सुत्त (३३. १३)

कल्य-कुशल

…भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल भी होता है, और कल्यकुशल भी, वह अग्र…।

§ १४. आरम्मण सुत्त (३३. १४)

आलम्बन कुशल

…भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्ति कुशल होता है, और समाधि में आलम्बनकुशल भी, वह अग्र…।

§ १५. गोचर सुत्त (३३. १५)

गोचर-कुशल

…भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल होता है, और समाधि में गोचरकुशल भी, वह अग्र…।

§ १६. अभिनीहार सुत्त (३३. १६)

अभिनीहार-कुशल

…भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल होता है, और समाधि में अभिनीहारकुशल भी, वह अग्र…।

§ १७. सक्कच्च सुत्त (३३. १७)

गौरव करने में कुशल

…भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल होता है, और समाधि में सत्कृत्यकारी भी, वह अग्र…।

§ १८. सातच्च सुत्त (३३. १८)

निरन्तर लगा रहने वाला

…भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल होता है, और समाधि में सातत्यकारी भी, वह अग्र…।

§ १९. सप्पाय सुत्त (३३. १९)

सप्रायकारी

…भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में समापत्तिकुशल होता है, और समाधि में सप्रायकारी भी, वह अग्र…।

§ २०. ठिति सुत्त (३३. २०)

स्थिति-कुशल

…चार ध्यायी…।

…भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में स्थितिकुशल होता है, समाधि में व्युत्थानकुशल नहीं…।

…भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में स्थिति कुशल होता है, और समाधि में व्युत्थानकुशल भी, वह अग्र…।

§ २१-२७. पुब्बे आगत सुत्तन्ता सुत्त (३३. ४. २१-२७)

[इसी तरह, 'स्थिति के' साथ कल्यकुशल, आलम्बनकुशल, गोचर-कुशल, अभिनीहार, सत्कृत्यकारी, सातत्यकारी, सप्रायकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये]

§ २८-३४. वुट्ठान सुत्त (३३. २८-३४)

…भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में व्युत्थानकुशल होता है, समाधि में कल्यकुशल नहीं…।

[इसी तरह, आलम्बनकुशल, गोचरकुशल, अभिनीहार कुशल, सत्कृत्यकारी, सातत्यकारी, सप्रायकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये]

§ ३५-४०. कल्लित सुत्त (३३. ३५—४०)

…भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में कल्यकुशल होता है, समाधि में आलम्बनकुशल नहीं।

[इसी तरह, गोचरकुशल, अभिनीहार कुशल, सत्कृत्यकारी, सातत्यकारी, सप्रायकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये]

§ ४१-४५. आरम्मण सुत्त (३३.४१-४५)

[इसी तरह, गोचरकुशल, अभिनीहारकुशल, सत्कृत्यकारी, सातत्यकारी, सप्रायकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये]

§ ४६-४९. गोचर सुत्त (३३. ४६-४९)

[इसी तरह, अभिनीहारकुशल, सत्कृत्यकारी, सातत्यकारी, सप्रायकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये।]

§ ५०-५२. अभिनीहार सुत्त (३३. ५०-५२)

[इसी तरह, सत्कृत्यकारी, सातत्यकारी, सप्रायकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये]

§ ५३-५४. सक्कच्च सुत्त (३३. ५३-५४)

[इसी तरह, सातत्यकारी, सप्रायकारी के साथ भी समझ लेना चाहिये]

§ ५५. सातच्च-सप्पाय सुत्त (३३. ५५)

ध्यायी चार हैं

श्रावस्ती…।

भिक्षुओ ! ध्यायी चार हैं। कौन से चार ?

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में सातत्यकारी होता है, समाधि में सप्रायकारी नहीं।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में सप्रायकारी होता है, सातत्यकारी नहीं ?

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में न सातत्यकारी होता है, और न सप्रायकारी।

भिक्षुओ ! कोई ध्यायी समाधि में सातत्यकारी होता है और सप्रायकारी भी।

भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में सातत्यकारी होता है और सप्रायकारी भी, वह इन चार ध्यायियों में अग्र=श्रेष्ठ=मुख्य=उत्तम=प्रवर होता है।

भिक्षुओ ! जैसे, गाय से दूध, दूध से दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी, घी से मण्ड अच्छा होता है। वैसे ही, भिक्षुओ ! जो ध्यायी समाधि में सातत्यकारी होता है और सप्रायकारी भी, वह इन चार ध्यायियों में अग्र=श्रेष्ठ=मुख्य=उत्तम=प्रवर होता है।

भगवान् यह बोले। संतुष्ट होकर उन भिक्षुओं ने भगवान् के कहे का अनुमोदन किया।

ध्यान संयुत्त समाप्त

खन्ध वर्ग समाप्त

परिशिष्ट

१. उपमा सूची

२. नाम-अनुक्रमणी

---

३. शब्द-अनुक्रमणी
